स्मृति-सन्दर्भः

श्रीमन्महर्षिप्रणीत—धर्मशास्त्रसंग्रहः

याज्ञवल्क्यादिसप्तदशस्मृत्यात्मकः

तृतीयो भागः

नाग प्रकाशक
११ ए/यू. ए., जवाहर नगर, दिल्ली-७

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के आर्थिक अनुदान से प्रकाशित

नाग प्रकाशक

1. 11 A/U. A. जवाहरनगर, दिल्ली-110007

2. 8 A/3 U. A. जवाहरनगर, दिल्ली-110007

3. जलालपुरमाफी (चुनार-मिर्जापुर) उ० प्र०

ISBN : 81-7081-170-8 (Set)

संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

१९८८

मूल्य :: 900.00 रु० छः भागों के

नागशरण सिंह, नाग प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित
तथा न्यू ज्ञान आफसेट प्रिंटर्स, शाहजादा बाग, दिल्ली द्वारा मुद्रित

THE SMRITI SANDARBHA

COLLECTION OF THE SEVENTEEN DHARMASHASTRIC TEXTS BY MAHARSHIES.

Volume III
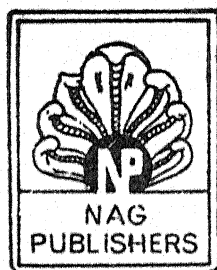
NAG PUBLISHERS
11-A/U.A. JAWAHAR NAGAR (P. O. BUILDING)
DELH-I110007

This Publication has been brought out with the financial assistance from the Govt. of India, Ministry of Human Resource Development.

(If any defect is found in this volume, please return the copy per VPP for postage to the Publisher for free exchange.)

NAG PUBLISHERS
(i) 11A/ U.A. Jawahar Nagar, Delhi-110007
(ii) 8A/3 U.A. Jawaharnagar, Delhi-110007
(iii) Jalalpur Mafi (Chunar-Mirzapur) U. P.

ISBN 81-7081-170-8 (Set)

1988
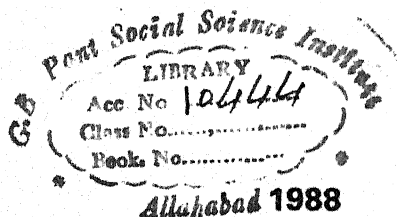
PRICE Rs. 900-00 per 6 vols. set

PRINTED IN INDIA
Published by Nag Sharan Singh for Nag Publishers, 11A/U.A. Jawaharnagar, Delhi-110007 and printed at New Gian Offset Printers, Delhi.

॥ श्रीगणेशोऽव्यात् ॥

अथ स्मृतिसन्दर्भस्य तृतीयभागस्थ मुद्रितस्मृतीनां नामनिर्देशः ।

—❀::❀—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

स्मृतिसन्दर्भ तृतीयभाग की विषय-सूची

याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रधान विषय

अध्याय	प्रधानविषय	पृष्ठाङ्क
	याज्ञवल्क्य स्मृति में तीन अध्याय हैं। प्रथमाध्याय में संस्कार आश्रम, ग्रह शान्ति आदि, द्वितीयाध्याय में राजधर्म, व्रतधर्म, राजसभा, वादिप्रतिवादि का निर्णय, व्यवहार के भेद, गृहस्थ धर्म दण्डनीति, दायभाग आदि, तृतीयाध्याय में सूतक, अशौच, पाप, पापों का प्रायश्चित्त, वानप्रस्थ और संन्यास के धर्मों का वर्णन है।	
१	अथाचाराध्यायः—उपोद्घात प्रकरण वर्णनम्	१२३५
	उस देश का वर्णन जहाँ वर्णाश्रम धर्म का विधान है (१-२)। धर्म का लक्षण, धर्मशास्त्र प्रणेता मनु आदि बीस धर्मशास्त्र प्रणेताओं के नाम और धर्म की परिभाषा (३-६)।	

अध्याय	प्रधानविषय	पृष्ठाङ्क
२	साहस कहते हैं। जो जितने मूल्य की वस्तु छीन कर ले जावे उसको उससे दूना दण्ड दिलवाना चाहिये तथा छिपाने पर चार गुना दण्ड। स्वच्छन्दता से किसी विधवा स्त्री के साथ गमन करनेवाला या बिना कारण किसी को गाली देने वाला और झूठी शपथ करनेवाला तथा जिस काम के योग्य न हो उसको करने को तैयार हो जाना एवं दासी के गर्भ को नष्ट कर देना, पशु के लिङ्ग को काट देना, पिता पुत्र गुरु और स्त्री को छोड़ने वाले को सौ पल दण्ड का विधान बताया है। धोबी दूसरे के कपड़ों को अपने पास रक्खे तो उसको तीन पल दण्ड। पिता और पुत्र की लड़ाई में जो गवाही देवे उसे तीन पल दण्ड। तराजू और बाटों को जो छल कपट से बनाकर व्यवहार करे तो उसे पूरा दण्ड। जो कपट को सत्य और सत्य को कपट कहे उसे भी साहस प्रकरण का दण्ड। जो वैद्य झूठी दवा बनावे उसको भी दण्ड। जो कर्मचारी अपराधी को छोड़ देवे उसको दण्ड। जो मूल्य लेकर वस्तु को नहीं देता है उसको भी दण्ड (२३३-२६१)।

यति सम्पूर्ण प्राणीमात्र का हित करनेवाला, शान्त और दण्ड धारण करने वाला हो। यति के सब पात्र बाँस और मिट्टी के होते हैं इनकी शुद्धि जल से हो जाती है। यति को राग द्वेष का त्याग कर अपने आपकी शुद्धि जिससे आत्मज्ञान का विकाश हो ऐसा करना चाहिये।

सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः।
संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सार्व उदाहृतः॥

सत्य, अस्तेय, अक्रोध, पवित्रादि में सब धर्म बतलाये हैं (४६-६६)। अध्यात्म ज्ञान का प्रकरण आया है। जैसे तप्त लौह पिण्ड से चिनगारी निकलती है उसी प्रकार उस प्रकाश पुंज आत्मा से यह समष्टि व्यष्टि संसार रूपी चिनगारी निकलती है। आत्मा अजर अमर है शरीर में आने से इसे जन्म लेना कहते हैं। सूर्य की तपन से वृष्टि फिर औषधि तथा अन्न होकर शुक्र हो जाता है। स्त्री पुरुष के संयोग से यह पञ्चधातु मय शरीर पैदा होता है। एक एक तत्त्व से

कात्यायन स्मृति के प्रधान विषय

आपस्तम्बस्मृति के प्रधान विषय

लघुशङ्खस्मृति के प्रधान विषय

शङ्खस्मृति के प्रधान विषय

इष्ट के करने से स्वर्ग प्राप्ति और पूर्त से मोक्ष प्राप्ति का वर्णन किया है। वापी, कूप, तड़ाग, देव मन्दिर तथा पतितों का जो उद्धार करें उसे पूर्त तथा अग्निहोत्र वैश्वदेवादि कार्य करें उसे इष्ट कहते हैं। इष्टापूर्त कर्म का विधान तथा लक्षण बताया है।

गङ्गा में अस्थि प्रवाह का माहात्म्य तथा एकोद्दिष्ट श्राद्ध का वर्णन, श्राद्ध में भोजन करनेवालों के

शङ्खलिखित स्मृति के प्रधान विषय

वशिष्ठ स्मृति के प्रधान विषय

औशनस संहिता के प्रधान विषय

औशनस स्मृति के प्रधान विषय

बृहस्पति स्मृति के प्रधान विषय

अध्याय	प्रधानविषय	पृष्ठाङ्क
	गोचर्मलक्षणं पृथिवीदानफलवर्णनम् ।	१६११
	सफलं नीलवृषभलक्षणं,भूमिहर्तुर्निन्दावर्णनम्	१६१३
	अन्यायेनभूमिहरणेफलं— कन्यानृतादिविषयेदोषनिरूपणफलम्	१६१५
	तडागादिनिर्माणफलाभिधानम्	१६१७

इन्द्र ने शत यज्ञ समाप्त कर गुरु बृहस्पति से दान माहात्म्य एवं उत्कृष्ट दान पूछा। उत्तर में गुरु बृहस्पति ने सुवर्ण दान और भूमिदान का माहात्म्य बताया किन्तु भूमिदान सुपात्र विद्यावान् तपस्वी ब्राह्मण को ही देना बताया, अपात्र (मूर्ख अतपस्वी) को देने से पाप भी बताया है (१-८१)।

लघुव्यास स्मृति के प्रधान विषय

अध्याय	प्रधानविषय	पृष्ठाङ्क
१	सफलं स्नानविधिवर्णनम्—	१६१८
	सफलं सन्ध्याकर्तव्यवर्णनम्—	१६२१

प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में स्नान करना चाहिये। स्नान के पूर्व जिन वृक्षों के दतौन करते हैं उनका नाम तथा सूर्योपस्थान सन्ध्या प्रति दिन करने का

सांस्कृतिक जीवनी का वर्णन, माता पिता ही परम तीर्थ है। दान के विषय में यथा—

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनां धनम् ।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥

दान देना तथा धन का भोग करना यही अपना धन समझो। धन होने पर दाता भोक्ता बनो यह धार्मिक नैतिक अनुशासन बताया है। पढ़े हुए पुरुष का जीवन सफल और अनपढ़ का जीवन निरर्थक है। आचार्य आदि की परिभाषा, सुपात्र को दान देने से ही वह सफल होता है (१-७२)।

देवल स्मृति के प्रधान विषय

समुद्र तट पर ध्यानावस्थित देवल से ऋषियों ने पूछा कि महाराज! म्लेच्छों के साथ जिनका सम्पर्क हो गया है अर्थात् जो पुरुष बलात् या स्वेच्छा से धर्म परिवर्तन कर चुका है उसको क्या करना चाहिये जिससे वह पुनः अपनी जाति में पावन हो जाय। इसके उत्तर में ऋषि देवल ने उन सबका प्रायश्चित्त विभिन्न प्रकार से बताया। प्रारम्भ में अपेय पान अभक्ष्य भक्षण से सब प्रकार के सांसर्गादि पातित्य कर्मों में पृथक्-पृथक् प्रायश्चित्त कर सबकी शुद्धि बताई है। प्राय-श्चित्तों के करने पर अन्त में गङ्गा स्नान से शुद्धि बताई है। इस स्मृति में जाति शुद्धि, देह शुद्धि और समाज शुद्धि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है (१-९०)।

इस स्मृति में एक ही श्राद्ध कर्म का पूर्णाङ्ग पूर्ण विधि से वर्णन किया गया है। शुक्राचार्य के कथन से श्राद्धकल्प में उथल पुथल हो गई थी। श्राद्ध कर्म के न करने से द्विजाति बलहीन और राक्षस बल हरण करनेवाले हो गये थे। अतः श्राद्धकल्प पर प्रजापति श्राद्ध के सम्बन्ध में श्राद्ध के भेद, श्राद्ध विधि,

लध्वाश्वलायन स्मृति के प्रधान विषय

आश्वलायन गृह्यसूत्र के निर्माता भी हैं। इस स्मृति में शंख, औशनस, व्यास और प्राजापत्यादि स्मृतियों की रीति पर व्यवहार प्रकरण का स्थान नहीं है केवल धार्मिक और सांस्कृतिक आचार का ही विस्तृत वर्णन है। इससे इन स्मृतियों की प्राचीनता का अनुमान होता है। यथा— "धर्मैकताना पुरुषाः यदासन् सत्यवादिनः" जब जनता धर्मपरायण रही उस समय सब सत्यवादी होते थे। इस कारण व्यवहार अर्थात् दण्डदापन राजशासन-विधि की आवश्यकता न होने से व्यवहार प्रकरण का विस्तार नहीं रखा गया है। इस अध्याय में मुनियों ने आश्वलायन आचार्य से द्विजातियों के धम कहकर मनुष्यों के सांस्कृतिक जीवन के आचार पर प्रश्न किया, साथ ही यह बताया कि इस प्रकार के आचरण करनेवाले मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। द्विज शब्द यहाँ पर मनुष्य शब्द का वाचक है। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठना, शौचाचार एवं स्नान के मन्त्रों का वर्णन किया है (१-३६)। सूर्यार्घ्य, सायं, प्रातः और

बौधायन स्मृति में धर्म की प्रधानता अर्थ की गौणता प्राचीन वैदिकाचार का वर्णन है। इसमें मुख्य तीन प्रश्नों का निर्णय है। प्रथम प्रश्न— "उपदिष्टो धर्मः प्रति वेदम्" "तस्यानुव्याख्यास्यामः" "स्मार्तो द्वितीयः" "तृतीयः शिष्टागमः"। "उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम्" इसकी व्याख्या १२ अध्यायों में क्रमशः वर्णन की गई है। "शिष्टागम" की परिभाषा स्वयं बौधायन ने की है। "विगतमत्सरनिरहंकारकुम्भीधान्या अलोलुपदम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः" धर्म का ज्ञान वेदों से होता है। वेद के अभाव में स्मृति ग्रन्थों से शिष्ट पुरुषों द्वारा परिषद् का निर्णय। परिषद् का निर्णय इस प्रकार बताया है—

चातुर्वैद्यं विकल्पी च अङ्गविद् धर्मपाठकः।
आश्रमस्थास्त्रयो विप्राः पर्षदेषा दशावरा ॥

॥ स्मृति संदर्भ के तृतीय भाग की विषय-सूची समाप्त ॥

॥ शुभम् भूयात् ॥

॥ अथ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्यस्मृतिः ।

श्रीगणेशाय नमः ।

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथाचाराध्यायः - उपोद्घातप्रकरणवर्णनम् ।

योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं सम्पूज्य मुनयोऽब्रुवन् ।
वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्म्मानशेषतः ॥१

मिथिलास्थः स योगीन्द्रः क्षणं ध्यात्वाब्रवीन्मुनीन् ।
यस्मिन् देशे मृगः कृष्ण स्तस्मिन् धर्म्मान्निबोधत ॥२

पुराणन्यायमीमांसा धर्म्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्म्मस्य च चतुर्दश ॥३

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ।
यमापस्तम्बसम्वर्त्ता कात्यायनवृहस्पती ॥४

पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ ।
शातातपो वशिष्ठश्च धर्म्मशास्त्र प्रयोजकाः ॥५

देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धा समन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत् सकलं धर्म्मलक्षणम् ॥६

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् सङ्कल्पजः कामो धर्म्ममूलमिदं स्मृतम् ॥७
इज्याचारदमाहिंसादानं स्वाध्यायकर्म्म च ।
अयं तु परमो धर्म्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥८
चत्वारो वेदधर्म्मज्ञाः पर्षत् त्रैविद्यमेव वा।
सा ब्रूते यं स धर्म्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तमः ॥९

अथब्रह्मचारिप्रकरणवर्णनम्।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः।
निषेकादि श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ॥१०
गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात् पुरा।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म्म च ॥११
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूड़ा कार्य्या यथाकुलम् ॥१२
एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्।
तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः ॥१३
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ॥१४
उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥१५
दिवासन्ध्यासु कर्णस्थ ब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः।
कुर्य्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥१६

गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः।
गन्धलेपक्षयकरं कुर्य्याच्छौचमतन्द्रितः ॥१७

अन्तर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥१८

कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूल्यान्यग्रं करस्य च।
प्रजापति पितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥१९

त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्यात् खान्यद्भिः समुपस्पशेत्।
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥२०

हृत्कण्ठतालुगाभिस्तु यथा संख्यं द्विजातयः।
शुद्ध्येरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥२१

स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्ज्जनं प्राणसंयमः।
सूर्य्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः॥२२

गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ॥२३

प्राणानायम्य सम्प्रोक्ष्य त्र्यृचेनाब्दैवतेन तु।
जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात्। २४

सन्ध्यां प्राक् प्रातरेवं हि तिष्ठेदासूर्य्यदर्शनात्।
अग्निकार्य्यं ततः कुर्य्यात् सन्ध्ययोरुभयोरपि ।२५

ततोऽभिवादयेद् वृद्धानसावहमिति ब्रुवन्।
गुरुञ्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ।२६

आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत्।
हितं चास्याचरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्म्मभिः ॥२७

कृतज्ञोऽद्रोही मेधावी शुचिः(कुल्योऽनसूयका):कल्याणसूचकाः।
अध्याप्याः धर्म्मतः साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः॥२८
दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत्।
ब्राह्मणेषु चरेद्भैक्षमनिन्द्येष्वात्मवृत्तये॥२९
आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षिता।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भैक्षचर्य्या यथाक्रमम्॥३०
कृताग्निकार्य्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्व्वनुज्ञया।
आपोशानक्रियापूर्व्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन्॥३१
ब्रह्मचर्य्ये स्थितोनैक मन्नमद्यादनापदि।
ब्राह्मणः काममश्नीयाच्छ्राद्धे व्रतमपीडयन्॥३२
मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम्।
भास्करालोकनाश्लीलपरिवादांश्च वर्जयेत्॥३३
स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति।
उपनीय ददद्वेदमाचार्य्यः स उदाहृतः॥३४
एकदेशमुपाध्याय ऋत्विग् यज्ञकृदुच्यते।
एते मान्या यथापूर्व्वमेभ्यो माता गरीयसी॥३५
प्रतिवेदं ब्रह्मचर्य्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा।
ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडशे॥३६
आ षोडशाब्दाद् द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात्।
ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः परः॥३७
अत ऊर्द्ध्वं पतन्त्येते सर्व्वधर्म्मबहिष्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः॥३८

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ॥३६

यज्ञानां तपसाञ्चैव शुभानां चैव कर्मणाम्।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥४०

मधुना पयसा चैव स देवां स्तर्पयेद् द्विजः।
पितृंश्च मधुसर्पिर्भ्यामृचोऽधीते तु योऽन्वहम् ॥४१

यजूंषि शक्तितोऽधीते योऽन्वहं स घृतामृतैः।
प्रीणाति देवानाज्येन मधुना च पितृंस्तथा ॥४२

स तु सोमघृतैर्देवां स्तर्पयेद्योऽन्वहं पठेत्।
सामानि तृप्तिं कुर्याच्च पितृणां मधुसर्पिषा ॥४३

मेदसा तर्पयेद्देवानथर्वाङ्गिरसः पठन्।
पितृंश्च मधुसर्पिर्भ्यामन्वहं शक्तितो द्विजः ॥४४

वाकोवाक्यं पुराणञ्च नाराशंसीश्च गाथिकाः।
इतिहासां स्तथा विद्यां योऽधीते शक्तितोऽन्वहम् ॥४५

मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं स दिवौकसाम्।
करोति तृप्तिञ्च तथा पितृणां मधुसर्पिषा ॥४६

ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः।
यं यं क्रतुमधीये च तस्य तस्याप्नुयात् फलम् ॥४७

त्रिर्वित्तपूर्णपृथिवीदानस्य फलमश्नुते।
तपसश्च परस्येह नित्यं स्वाध्यायवान् द्विजः ॥४८

नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसन्निधौ।
तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥४६

अनेन विधिना देहं साधयन् विजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेहा जायते पुनः ॥५०

अथ विवाहप्रकरणवर्णनम् ।

गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वाप्युभयमेव वा ॥५१
अविलुप्तब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥५२
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ।
पञ्चमात् सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥५३
दशपूरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् ।
स्फीतादपि न सञ्चारिरोगदोषसमन्वितात् ॥५४
एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः ।
यत्नात् परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः ॥५५
यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः ।
न तन्मम मतं यस्मात्तत्रात्मा जायते स्वयम् ॥५६
तिस्रोवर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम् ।
ब्राह्मणक्षत्त्रियविशां भार्य्या स्वा शूद्रजन्मनः ॥५७
ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलङ्कृता ।
तज्ज पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥५८
यज्ञस्थऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ।
चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् ॥५९
इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने ।
स कायः पावयत्पद्यः षट्षड्वंश्यान् सहात्मना ॥६०

आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥६१

पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात् क्षत्रिया शरम्।
वश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ॥६२

पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा।
कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥६३

अप्रयच्छन् समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ।
गम्यन्त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात् स्वयम्वरम् ॥६४

सकृत् प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक्।
दत्तामपि हरेत् पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत् ॥६५

अनाख्याय ददद्दोषं दण्ड्य उत्तमसाहसम्।
अदुष्टाञ्च त्यजन् कन्यां दूषयंश्च मृषा शतम् ॥६६

अक्षता वा क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः।
स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत् ॥६७

अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात् ॥६८

आगर्भ सम्भवाद् गच्छेत् पतितस्त्वन्यथा भवेत्।
अनेन विधिना जातः क्षेत्रजः स भवेत् सुतः ॥६९

हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम्।
परिभूतामध शय्यां वासयेद् व्यभिचारिणीम् ॥७०

सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वाश्च शुभां गिरम्।
पावकः सर्वभक्ष्यत्वं मेध्या वै योषितो ह्यतः ॥७१

व्यभिचाराद्दतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते।
गर्भभर्तृवधादौ च तथा महति पातके ॥७२

सुरापी व्याधिता धूर्त्ता वन्ध्यार्थघ्न्यप्रियम्वदा।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥७३

अधिविन्ना तु भर्तव्या महदेनोऽन्यथा भवेत्।
यत्रानुकूल्यं दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते ॥७४

मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति।
सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ॥७५

आज्ञासम्पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम्।
त्यजन् दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ॥७६

स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्यमेषधर्मः परः स्त्रियाः।
आ शुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः ॥७७

लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः।
यस्मात्तस्मात् स्त्रियः सेव्या भर्त्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥७८

षोडशर्त्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्।
ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत् ॥७९

एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मघां मूलञ्च वर्जयेत्।
शस्त इन्दौ सकृत् पुत्रं लक्षण्यं जनयेत् पुमान् ॥८०

यथा कामी भवेद्वापी स्त्रीणां वरमनुस्मरन्।
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः ॥८१

भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥८२

संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ।
कुर्याच्छ्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्परा ॥८३

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका ॥८४

रक्षेत् कन्यां पिता विन्नां पतिः पुत्रास्तु वार्द्धके ।
अभावे ज्ञातयस्तेषां स्वातन्त्र्यं न क्वचित् स्त्रियाः ॥८५

पितृमातृसुतभ्रातृश्श्रूश्वशुरमातुलैः ।
हीना न स्याद्विना भर्त्रा गर्हणीयान्यथा भवेत् ॥८६

पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा संयतेन्द्रिया ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुपमं सुखम् ॥८७

सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् ।
सवर्णासु विधौ धर्मे ज्येष्ठया न विनेतराः ॥८८

दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ।
आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलम्बयन् ॥८९

अथ वर्णजातिविवेकवर्णनम् ।

सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते वै सजातयः ।
अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्द्धनाः ॥९०

विप्रान्मूर्द्धाभिषिक्तो हि क्षत्त्रियाणां विशः स्त्रियाम् ।
अम्बष्ठः शूद्रयां निषादो जातः पारशवोऽपि वा ॥९१

वैश्याशूद्र्योस्तु राजन्यान्माहिष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ ।
वैश्यात्तु करणः शूद्र्यां विन्नास्वेषविधिः स्मृतः ॥९२

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात् सूतो वैश्याद्वैदेहकस्तथा ।
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥९३

क्षत्रिया मागधं वैश्याच्छूद्रात् क्षत्तारमेव तु।
शूद्रादायोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम् ॥९४

माहिष्येण करण्यान्तु रथकारः प्रजायते।
असत्सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ॥९५

जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः सप्तमे पञ्चमेऽपि वा।
व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चोत्तराधरम ॥९६

अथ गृहस्थधर्मप्रकरणवर्णनम्।

कर्म स्मार्त्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही।
दायकालाहृते वाऽपि श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥८७

शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिर्द्विजः।
प्रातः सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥८८

हुत्वाग्नीन् सूर्यदैवत्यान् जपेन्मन्त्रान् समाहितः।
वेदार्थानधिगच्छेत शास्त्राणि विविधानि च ॥९९

उपेयादीश्वरञ्चैव योगक्षेमार्थसिद्धये।
स्नात्वा देवान् पितॄंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा ॥१००

वेदाथर्वपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः।
जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्याञ्चाध्यात्मिकीं जपेत् ॥१०१

बलिकर्मस्वधाहोमस्वध्यायातिथिसत्क्रियाः।
भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥१०२

देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद् भूतबलिं हरेत्।
अन्नं भूमौ श्वचण्डालवायोभ्यश्चैव निक्षिपेत् ॥१०३

अन्नं पितृमनुष्येभ्यो देयमप्यन्वहं जलम्।
स्वाध्यायमन्वहं कुर्यात् न पचेदन्नमात्मनः ॥१०४

बालं सु(स्व)वासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः ।
सम्भोज्यातिथिभृत्यांश्च दम्पत्योः शेषभोजनम् ॥१०५
आपोशानेनोपरिष्टादधस्तादश्नता तथा ।
अनग्नममृतञ्चैव कार्यमन्नं द्विजन्मना ॥१०६
अतिथित्वेऽपि वर्णेभ्यो देयं शक्त्यानुपूर्वशः ।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपि वाग्भूतृणोदकैः ॥१०७
सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या सुव्रताय च ।
भोजयेच्चागतान् काले सखिसम्बन्धिबान्धवान् ॥१०८
महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत् ।
सत्क्रियान्वासनं स्वादु भोजनं सुनृतं वचः ॥१०९
प्रतिसम्वसरं त्वर्घ्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः ।
प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यत्विजः पुनः ॥११०
अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः ।
मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सतः ॥१११
परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामन्त्रणादृते ।
वाक्पाणिपादचापल्यं वर्जयेच्चातिभोजनम् ॥११२
अतिथिं श्रोत्रियं तृप्तमासीमान्तादनुव्रजेत् ।
अहः शेषं सहासीत शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः ॥११३
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वाग्नीं स्तानुपास्य च ।
भृत्यः परिवृतो भुक्त्वा नातितृप्त्योऽथ संविशेत् ॥११४
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय चिन्तयेदात्मनोहितम् ।
धर्मार्थकामान् स्वे काले यथाशक्ति न हापयेत् ११५

विद्याकर्मवयोबन्धुवित्तैर्मान्या यथाक्रमम् ।
एतैः प्रभूतैः शूद्रोऽपि वार्द्धक्ये मानमर्हति ॥११६

वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचक्रिणाम् ।
पन्थादेयोनृपस्तेषां मान्यः स्नातस्तु भूपतेः ॥११७

इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च ।
प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा ॥११८

प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम् ।
कुसीदकृषिवाणिज्यं पाशुपाल्यं विशः स्मृतम् ॥११९

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तयाऽजीवन् वणिग्भवेत् ।
शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद् द्विजातिहितमाचरन् ॥१२०

भार्यारतिः शुचिर्भृत्यभर्ता श्राद्धक्रियारतः ।
नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान् न हापयेत् ॥१२१

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥१२२

वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेषश्रुताभिजनकर्मणाम् ।
आचरेत् सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा ॥१२३

त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स तु सोमं पिबेद् द्विजः ।
प्राक्सौमिकाः क्रियाः कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भवेत् ॥१२४

प्रतिसम्वत्सरं सोमः पशुः प्रत्ययनं तथा ।
कर्तव्याग्रयणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि चैव हि ॥१२५

एषामसम्भवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः ।
हीनकल्पं न कुर्वीत सति द्रव्ये फलप्रदम् ॥१२६

चण्डालो जायते यज्ञकारणाच्छूद्रभिक्षिता ।
यज्ञार्थं लब्धमददद्भासः काकोऽपि जायते ॥१२७

कुसूल कुम्भीधान्यो वा त्र्यैहिकोऽश्वस्तनोपि वा ।
जीवेद्वापि सिलोञ्छेन श्रेयानेषां परः परः ॥१२८

अथ स्नातकधर्मप्रकरणवर्णनम् ।

न स्वाध्याय विरोध्यर्थमीहेत न यतस्ततः ।
न विरुद्ध प्रसङ्गेन सन्तोषी च सदा भवेत् ॥१२९

राजान्तेवासियाज्येभ्यः सीदन्निच्छेद्धनं क्षुधा ।
दम्भिहैतुकपाषण्डिवकवृत्तींश्च वर्जयेत् ॥१३०

शुक्लाम्बरधरो नीचकेशश्मश्रुनखः शुचिः ।
न भार्य्यादर्शनेऽश्नीयान्नैकवासा न संस्थितः ॥१३१

न संशयं प्रपद्येत नाकस्मादप्रियं वदेत् ।
नाहितं नानृतं चैव न स्तेनः स्यान्नवार्द्धुषिः ॥१३२

दाक्षायणी ब्रह्मसूत्री वेणुमान् सकमण्डलुः ।
कुर्य्यात्प्रदक्षिणं देवमृद्गो विप्रवनस्पतीन् ॥१३३

न तु मेहेन्नदीच्छायावर्त्मगोष्ठाम्बुभस्मसु ।
न प्रत्यर्काग्निगोसोमसन्ध्याम्बु स्त्री द्विजन्मनः ॥१३४

नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीं न च संस्पृष्टमैथुनाम् ।
नच मूत्रपुरीषं वा नाशुचीराहुतारकाः ॥१३५

अयं मे वज्र इत्येवं सर्वंमन्त्रमुदीरयन् ।
वर्षत्यप्रावृतो गच्छेत् स्वप्यात् प्रत्यक्शिरा न च ॥१३६

ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सु न निक्षिपेत् ।
पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ न चैनमभिलङ्घयेत् ॥१३७

जलं पिबेन्नाञ्जलिना शयानं न प्रबोधयेत्।
नाक्षैः क्रीडेन्न धर्म्मघ्नैर्व्याधितैर्व्वा न संविशेत् ॥१३८
विरुद्धं वर्जयेत् कर्म्म प्रेतधूमं नदीतरम्।
केशभस्म तुषाङ्गार कपालेषु च संस्थितिम् ॥१३६
नाचक्षीत धयन्तीं गां नाद्वारेण विशेत् क्वचित्।
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥१४०
प्रतिग्रहे सूनिचक्रिध्वजिवेश्या नराधिपाः।
दुष्टा दशगुणं पूर्व्वात् पूर्व्वादेते यथोत्तरम् ॥१४१
अध्यायानामुपाकर्म्म श्रावण्यां श्रवणेन वा।
हस्तेनौषधि भावे वा पञ्चम्यां श्रावणस्य तु ॥१४२
पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा।
जलान्ते च्छन्दसां कुर्य्यात्तदुत्सर्गं विधिं वहिः ॥१४३
त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु।
उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये मृते ॥१४४
सन्ध्यागर्जितनिर्घात भूकम्पोल्कानिपातने।
समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥१४५
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके।
ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥१४६
पशुमण्डूक नकुलमार्जारश्वाहि मूषिकैः।
कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्र(शक्र)पाते तथोच्छ्रये ॥१४७
श्वक्रोष्टु गर्दभोलूकसामवाणार्त्तनिःस्वने।
अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥१४८

देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे।
भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोऽन्तरर्द्ध रात्रेऽतिमारुते ॥१४६
पांशुवर्षे दिशां दाहे सन्ध्यानीहारभीतिषु।
धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥१५०
खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे।
सप्तत्रिंशदनध्यायानेतां स्तात्कालिकान् विदुः ॥१५१
देवर्त्विक्स्नातकाचार्य्यराज्ञां छायां परस्त्रियाः।
नाक्रामेद्रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्तनादि च ॥१५२
विप्राहिक्षत्रियात्मानो नावज्ञेयाः कदाचन।
आमृत्योः श्रियमाकांक्षेन्न कञ्चिन्मर्म्मणि स्पृशेत् ॥१५३
दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि समुत्सृजेत्।
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् नित्यमाचारमाचरेत् १५४
गोब्राह्मणानलान्नानि नोच्छिष्टानि पदास्पृशेत्।
न निन्दा ताड़ने कुर्य्यात्सुतं शिष्यञ्च ताड़येत् ॥१५५
कर्म्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्म्मं समाचरेत्।
अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्ममप्याचरेन्न तु ॥१५६
मातृपित्रतिथिभ्रातृजातिसम्बन्धिमातुलैः।
वृद्धबालातुराचार्य्यवैद्यसंश्रितबान्धवैः ॥१५७
ऋत्विक्पुरोहितापत्य भार्य्यादास सनाभिभिः।
विवादं वर्जयित्वा तु सर्व्वां लोकान् जयेद् गृही ॥१५८
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिषु।
स्नायान्नदी देवखातगर्त्त प्रस्रवणेषु च ॥१५६

परशय्यासनोद्यानगृहयानानि वर्जयेत्।
अदत्तान्यग्निहीनस्य नान्नमद्यादनापदि ॥१६०

कदर्य्यबद्धचौराणां क्लीवरङ्गवतारिणाम्।
वैणाभिशस्तवाद्धुर्षिगणिकागणदीक्षिणाम् ॥१६१

चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम्।
क्रूरोग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम् ॥१६२

अवीरस्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम्।
शस्त्रविक्रयिकर्म्मारतुन्नवायश्वजीविनाम् ॥१६३

नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम्।
चैलधावसु(धा)राजीविसहोपपतिवेश्मनाम् ॥१६४

पिशुनानृतिनोश्चैव तथा चाक्रिकवन्दिनाम्।
एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा ॥१६५

अथ भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणवर्णनम्।

अनर्चितम् वृथामांसं केशकीटसमन्वितम्।
शुक्तं पर्य्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम् ॥१६६

उदक्यारपृष्टसंघुष्टं पर्य्यायान्नञ्च वर्जयेत्।
गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पद स्पृष्टञ्च कामतः ॥१६७

शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः।
भोज्यान्नानापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥१६८

अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम्।
अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरस विक्रियाः ॥१६९

सन्धिन्यनिर्दशाऽवत्सगोः पयः परिवर्जयेत्।
औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ॥१७०

देवतार्थं हविः शिग्रुं लोहितान् व्रश्चनांस्तथा ।
अनुपाकृतमांसानि विड्जानि करकाणि च ॥१७१

क्रव्याद पक्षिदात्यूह शुकप्रत्युदटिट्टिभान् ।
सारसैकशफान् हंसान् सर्वांश्च ग्रामवासिनः ॥१७२

कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकवकविष्किरान् ।
वृथाकृषरसंयावपायसापूपशष्कुलीः ॥१७३

कलविङ्कं सकाकोलं कुररं रज्जुदालकम् ।
जालपादान् खञ्जरीटानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ॥१७४

चाषांश्च रक्तपादांश्च सौनं वल्लूरमेव च ।
मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत् ॥१७५

पलाण्डुं विड्वराहञ्च छत्राकं ग्रामकुक्कुटम् ।
लशुनं गृञ्जनञ्चैव जग्ध्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१७६

भक्ष्याः पञ्चनखाः सेधागोधाकच्छपशल्लकाः ।
शशश्च मत्स्येष्वपि हि सिंहतुण्डकरोहिताः ॥१७७

तथा पाठीनराजीवसशल्काश्च द्विजातिभिः ।
अतः शृणुत मांसस्य विधिं भक्षणवर्ज्जने ॥१७८

प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया ।
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्च्य खादन् मांसं न दोषभाक् ।१७९

वसेत् स नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः ।
सम्मितानि दुराचारो योहन्त्यविधिना पशून् ॥१८०

सर्व्वान् कामानवाप्नोति वाजिमेधफलं तथा ।
गृहेऽपि निवसन् विप्रो मुनिर्मांसस्य वर्जनात् ॥१८१

अथ द्रव्यशुद्धिप्रकरणवर्णनम्।

सौवर्णराजताब्जानामूर्ध्वपात्रग्रहाश्मनाम्।
शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्म्मणाम् ॥१८२

पात्राणाञ्चमसानाञ्च वारिणा शुद्धिरिष्यते।
चरुस्रुक्स्रुवसस्नेहपात्राण्युष्णेन वारिणा ॥१८३

स्फ्यशूर्पाजिनधान्यानां मुषलोदूखलानसाम्।
प्रोक्षणं संहतानाञ्च बहूनां चैव वाससाम् ॥१८४

तक्षणं दारुशृङ्गास्थ्नां गोवालैः फलसम्भुवाम्।
मार्ज्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्म्मणि ॥१८५

सोषैरुदक गोमूत्रैः शुद्ध्याविककौशिकम्।
सश्रीफलैरंशुपट्टं सारिष्टैः कुतपन्तथा ॥१८६

सगौरसर्षपैः क्षौमं पुनःपाकान् महीमयम्।
कारुहस्तः शुचिः पण्यं भैक्षं योषिन्मुखस्तथा ॥१८७

भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात् कालाद् गोक्रमणात्तथा।
सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहं मार्जनलेपनात् ॥१८८

गोघ्रातेऽन्ने तथा कीटमक्षिकाकेशदूषिते।
सलिलं भस्म मृद्वारि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये ॥१८९

त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः।
भस्माद्भिः कांस्यलौहानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च ॥१९०

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः शुद्धिर्गन्धापकर्षणात्।
वाक्शस्तमम्बुनिर्णिक्तमज्ञातञ्च सदा शुचि ॥१९१

शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम्।
तथा मांसं श्वचण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् ॥१९२

रश्मिरग्नी रजश्छाया गौरश्वो वसुधानिलः।
विप्रुषोमक्षिका स्पर्शे वत्सः प्रस्रवणे शुचिः ॥१९३

अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गौर्न्न नरजामलाः।
पन्थानश्च विशुद्ध्यन्ति सोमसूर्य्यांशुमारुतैः ॥१९४

मुखजा विप्रुषोमेध्यास्तथाचमनविन्दवः।
श्मश्रु चास्यगतं दन्तसक्तं मुक्त्वा ततः शुचिः ॥१९५

स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्ते रथ्योपसर्पणे।
आचान्तः पुनराचामेद्वासोविपरिधाय च ॥१९६

रथ्याकर्द्दमतोयानि स्पृष्टान्यन्त्यश्ववायसैः।
मारुतेनैव शुध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥१९७

अथ दानप्रकरणवर्णनम्।

तपस्तप्त्वाऽसृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान् वेदगुप्तये।
तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्म्मसंरक्षणाय च ॥१९८

सर्वस्य प्रभवो विप्राः श्रुताध्ययनशालिनः।
तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मवित्तमाः ॥१९९

न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम् ॥२००

गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्च्चितम्।
नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता ॥२०१

विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः।
गृह्णन् प्रदातारमधोनयत्यात्मानमेव च ॥२०२

दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः।
याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतञ्च शक्तितः ॥२०३

हेमशृङ्गी शफैरौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता।
सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥२०४
दातास्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सराल्लोँमसम्मितान्।
कपिला चेत्तारयति भूयश्चा सप्तमं कुलम् ॥२०५
स वत्सरोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीम्।
दातास्याः स्वर्गमाप्नोति पूर्णेन विधिना ददत् ॥२०६
यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योनौ च दृश्यते।
तावद् गौः पृथिवी ज्ञेया यावद् गर्भं न मुञ्चति ॥२०७
यथा कथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा।
अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ॥२०८
श्रान्तसम्वाहनं रोगि परिचर्या सुरार्चनम्।
पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत् ॥२०९
भूदीपाश्वान्न वस्त्राम्भस्तिलसर्पिः प्रतिश्रयान्।
नैवेशिकं स्वर्णधुर्य्यं दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥२१०
गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम्।
यानं वृक्षं प्रियं (जलं) शय्यां दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥२११
सर्वदानमयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः।
तद्ददत् समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम् ॥२१२
प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम्।
ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति पुष्कलान् ॥२१२
कुशाः शाकं पयो मत्स्यागन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः।
मांसं शय्यासनं धानाः प्रत्याख्येयं न वारि च ॥२१४

अयाचिता हृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः।
अन्यत्र कुलटाषण्डपतितेभ्य स्तथा द्विषः ॥२१५

देवातिथ्यर्च्चनकृते गुरुभृत्यादिवृत्तये।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयादात्मवृत्तार्थमेव च ॥२१६

अथ श्राद्धप्रकरणम्।

अमावास्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम्।
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत् सूर्यसंक्रमः ॥२१७

व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः।
श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥२१८

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु श्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवा।
वेदार्थविज्ज्येष्ठसामा त्रिमधु स्त्रिसुपर्णकः ॥२१९

ऋत्विक् स्वस्रीयजामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः।
तृणाचिकेत दौहित्र शिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ॥२२०

कर्मनिष्ठा स्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः।
पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसम्पदः ॥२२१

रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्भव स्तथा।
अवकीर्णि कुण्डगोलौ कुनखी श्यावदन्तकः ॥२२२

भृतकाध्यापकः (क्रूरः) क्लीवः कन्यादूष्यभिशस्तकः।
मित्रध्रुक् पिशुनः सोमविक्रयी च विनिन्दकः ॥२२२

मातापितृ गुरुत्यागी कुण्डाशी वृषलात्मजः।
परपूर्वापतिः स्तेनः कर्मदुष्टाश्च निन्दिताः ॥२२४

निमन्त्रयीत पूर्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवान् शुचिः।
तैश्चापि संयतैर्भाव्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥२२५

अपराह्णे समभ्यर्च्य स्वागतेनागतांस्तु तान् ।
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ॥२२६

युग्मान् दैवे यथाशक्ति पित्र्येऽयुग्मांस्तथैव च ।
परिश्रिते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवने तथा ॥२२७

द्वौ दैवे प्राक्त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा ।
मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ॥२२८

पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि ।
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा ॥२२९

यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके ।
शन्नो देव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवां स्तथा ॥२३०

या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिःक्षिपेत् ।
दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूपं वासः सदीपकम् ॥२३१

तथाच्छादनदानञ्च करशौचार्थमम्बु च ।
अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम् ॥
द्विगुणांस्तु कुशान् दत्त्वा ह्युशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन् ॥२३२

आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायान्तु नस्ततः ।
यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ॥२३३

दत्त्वार्घ्यसंस्रवां स्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः ।
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः ॥२३४

अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो हुत्वाग्नौ पितृयज्ञवत् ॥२३५

हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः ।
यथा लाभोपपन्नेषु रौप्येषु तु विशेषतः ॥२३६

दत्त्वान्नं पृथिवी पात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् ।
कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् ॥२३७

सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचम् ।
जप्त्वा यथा सुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः ॥२३८

अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्यादक्रोधनोऽत्वरः ।
आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपन्तथा ॥२३९

अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवानुमन्य च ।
तदन्नं विकिरेद् भूमौ दद्याच्चापः सकृत् सकृत् ॥२४०

सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ।
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान् प्रदद्यात् पितृयज्ञवत् ॥२४१

मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः ।
स्वस्ति वाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ॥२४२

दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ।
वाच्यतामित्यनुज्ञातः प्रकृतेभ्यः स्वधोच्यताम् ॥२४३

ब्रू युरस्तु स्वधेत्येवं भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ।
विश्वेदेवाश्च प्रीयन्तां विप्रैश्चोक्त इदं जपेत् ॥२४४

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहु देयञ्च नोऽस्त्विति ॥२४५

अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ॥२४६

इत्युक्त्वा तु प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत्।
वाजे वाजे इति प्रीतः पितृपूर्वं विसर्जनम् ॥२४७

यस्मिंस्ते संस्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निवेशिताः।
पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान् विसर्जयेत् ॥२४८

प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुञ्जीत पितृसेवितम्।
ब्रह्मचारी भवेत्तान्तु रजनीं ब्राह्मणैः सह ॥२४९

एवं प्रदक्षिणं कृत्वा वृद्धौ नान्दीमुखान् पितॄन्।
यजेत दधिकर्कन्धूमिश्रान् पिण्डान् यवैः क्रिया ॥२५०

एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्।
आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥२५१

उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने।
अभिरम्यतामिति वदेद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ॥२५२

गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात् पात्रचतुष्टयम्।
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥२५३

ये समानाइति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत्।
एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥२५४

अर्वाक् सपिण्डीकरणं यस्य सम्वत्सराद्भवेत्।
तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात् सम्वत्सरं द्विजे ॥२५५

मृताहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम्।
प्रतिसम्वत्सरञ्चैव आद्यमेकादशेऽहनि ॥२५६

पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपिवा।
प्रक्षिपेत् सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥२५७

हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ।
मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥२५८
ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृद्ध्या हि तृप्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः ॥२५६
खड्गामिषं महाशल्कं मधु मुन्यन्नमेव च ।
लोहामिषं महाशाकं मांसं वार्ध्रीणसस्य च ॥२६०
यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमुच्यते ।
तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च न संशयः ॥२६१
कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून् मुख्यान् सुतानपि ।
द्यूतं कृषिञ्च वाणिज्यं द्विशफैकशफांस्तथा ॥२६२
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरूप्ये सकुप्यके ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ॥२६३
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान् वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ॥२६४
स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्य्यं क्षेत्रं बलं तथा ।
पुत्रान् श्रैष्ठ्यञ्च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम् ॥२६५
प्रवृत्तचक्रताञ्चैव वाणिज्यं प्रभुतां तथा ।
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥२६६
धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं कुप्यं गा अप्यजाविकम् ।
अश्वानायुश्च विधिवद् यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति ॥२६७
कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामानाप्नुयादिमान् ।
आस्तिकः श्रद्दधानश्च व्यपेतमदमत्सरः ॥२६८

वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ।
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः ॥२६९

आयुः प्रज्ञां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नॄणां पितामहाः ॥२७०

अथ विनायकादिकल्पप्रकरणम्

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजित ।
गणानामाधिपत्याय रुद्रेण ब्राह्मणा तथा ॥२७१

तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥२७२

काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति ।
अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठते ॥२७३

व्रजन्तश्च तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परः ।
विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः ॥२७४

तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः ।
कुमारी न च भर्त्तारमपत्यं नच गर्भिणी ॥२७५

आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ।
वणिग्लाभं नचाप्नोति कृषिञ्चैव कृषीवलः ॥२७६

स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।
गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च ॥२७७

सर्वौषधैः सर्वगन्धैः प्रलिप्तशिरसस्तथा ।
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्या द्विजाः शुभाः ॥२७८

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदात् ।
मृत्तिकां रोचनां गन्धान् गुग्गुलुश्चाप्सु निक्षिपेत् ॥२७९

या आहृता एकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात्।
चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं तथा ॥२८०
सहस्राक्षं शतं धारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥२८१
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमन्त्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥२८२
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु ते सदा ॥२८३
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण च।
जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान् सव्येन परिगृह्य च ॥२८४
मितश्च संमितश्चैव तथा सालकटङ्कटः।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्च जपेत् स्वाहासमन्वितैः २८५
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कार समन्वितैः।
दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥२८६
कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च।
मत्स्यान् पक्कांस्तथैवामान् मांसमेतावदेव तु ॥२८७
पुष्पं चित्रं सुगन्धञ्च सुराञ्च त्रिविधामपि।
मूलकं पूरिकापूपांस्तथै(वोड्डेरक)वैरण्डिकाः स्रजः ॥२८८
दध्यन्नं पायसञ्चैव गुडपिष्टं समोदकम्।
एतान् सर्वानुपाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः ॥२८९
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम्।
दूर्वासर्षप(कल्केन)पुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥२९०

रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति ! देहि मे ।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ॥२६१

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।
ब्राह्मणान् भोजयेद्द्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥२६२

एवं विनायकं पूज्यं ग्रहांश्चैवं विधानतः ।
कर्मणां फलमाप्नोति श्रियश्चाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२६३

आदित्यस्य सदा पूजां तिलकस्वामिनस्तथा ।
महागणपतेश्चैव कुर्वन् सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२६४

अथ ग्रहशान्तिप्रकरणम् ।

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ।
वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्नरीन् २६५

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः ।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः ॥२६६

ताम्रिकात् स्फटिकाद्रक्तचन्दनात् स्वर्णकादुभौ ।
रजतादयसः सीसात् कांस्यात् कार्यग्रहाः क्रमात् ॥२६७

स्वैर्वर्णैर्वा पटे लेख्या गन्धमण्डलकेषु वा ।
यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥२६८

गन्धाश्च बलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः ।
कर्तव्या मन्त्र(तन्त्र)वन्तश्च चरवः प्रतिदैवतम् ॥२६९

आकृष्णेन इमं देवा अग्निमूर्द्धा दिवः ककुत् ।
उद्बुध्यस्वेति च ऋचो यथासंख्यं प्रकीर्तिताः ॥३००

बृहस्पते अतिअदर्य्यस्तथैवान्नात् परिश्रुतः ।
शन्नो देवीस्तथा काण्डात् केतुं कृण्वन्निमाः क्रमात् ॥३०१

अर्कः पलाशखदिरावपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥३०२

एकैकस्य त्वष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा ।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा युता ॥३०३

गुलौदनं पायसञ्च हविष्यं क्षीरषाष्टिकम् ।
दध्योदनं हवि(पूपान्)श्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव च ॥३०४

दद्याद् ग्रहक्रमादेतद् द्विजेभ्यो भोजनं बुधः ।
शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥३०५

धेनुः शङ्ख स्तथानड्वान् हेम वासो हयस्तथा ।
कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ॥३०६

यश्च यस्य यदा दुःस्थः स तं यत्नेन पूजयेत् ।
ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिता पूजयिष्यथ ॥३०७

ग्रहाधीना नरेन्द्राणा मुच्छ्रयाः पतनानि च ।
भावाभावौ च जगतस्तस्मात् पूज्यतमाः स्मृताः ॥३०८

अथ राजधर्मप्रकरणवर्णनम् ।

महोत्साहः स्थूललक्ष्यः कृतज्ञो वृद्धसेवकः ।
विनीतः सत्वसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक् शुचिः ॥३०९

अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुषस्तथा ।
धार्मिको(दृढभक्तिश्च)ऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित् ॥३१०

स्वरन्ध्रगोप्तान्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च ।
विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्याञ्चैव नराधिपः ॥३११

स मन्त्रिणः प्रकुर्वीत प्राज्ञान् मौलान् स्थिरान् शुचीन् ।
तैः सार्द्धं चिन्तयेद्राज्यं विप्रेणाथ ततः स्वयम् ॥३१२

पुरोहितञ्च कुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम्।
दण्डनीत्याञ्च कुशलमथर्वाङ्गिरसे तथा ॥३१३

श्रौतस्मार्त्तक्रियाहेतोर्वृणुयादृत्विजस्तथा।
यज्ञांश्चैव प्रकुर्वीत विधिवद् भूरिदक्षिणान् ॥३१४

भोगांश्च दद्याद्विप्रेभ्यो वसूनि विविधानि च।
अक्षयोऽयं निधी राज्ञां यद्विप्रेषूपपादितम् ॥३१५

अस्कन्नमव्ययश्चैव प्रायश्चित्तैरदूषितम्।
अग्नेः सकाशाद्विप्रास्यं पूतं श्रेष्ठमिहोच्यते ॥३१६

धर्मेण लब्धुमीहेत लब्धं यत्नेन पालयेत्।
पालितं वर्द्धयेन्नीत्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥३१७

दद्याद् भूमिं निबन्धं वा कृत्वा लेख्यञ्च कारयेत्।
आगामिभ(क्षु)द्रनृपतिपरिज्ञानाय पार्थिवः ॥३१८

पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिह्नितम्।
अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानञ्च महीपतिः ॥३१९

प्रतिग्रहपरीमाणं दानाच्छेदोपवर्णनम्।
स्वहस्तकालसम्पन्नं शासनं कारयेत् स्थिरम् ॥३२०

रम्यं पशव्यमाजीव्यं जाङ्गलं देशमावसेत्।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकोषात्मगुप्तये ॥३२१

तत्र तत्र च निष्णातानध्यक्षान् कुशलान् शुचीन्।
प्रकुर्यादायकर्मान्तव्ययकर्मसु चोद्यतान् ॥३२२

नातः परतरो धर्मो नृपाणां यदुपार्जितम् (रणार्जितम्)।
विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाभयं तथा ॥३२३

य आहवेषु बध्यन्ते भूम्यर्थ मपराङ्मुखाः।
अकूटैरायुधैर्यान्ति ते स्वर्गं योगिनो यथा ॥३२४
पदानि क्रतुतुल्यानि भग्नेष्वविनिवर्त्तिनाम्।
राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् ॥३२५
तवाहं वादिनं क्लीवं निर्हेतिं परसङ्गतम्।
न हन्याद्विनिवृत्तञ्च युद्धप्रेक्षणकादिकम् ॥३२६
कृतरक्षः सदोत्थाय पश्येदायव्ययौ स्वयम्।
व्यवहारांस्ततो दृष्ट्वा स्नात्वा भुञ्जीत कामतः ॥३२७
हिरण्यं व्यापृतानीतं भाण्डागारेषु निःक्षिपेत्।
पश्येच्चारांस्ततो दूतान् प्रेरयेन्मन्त्रिसंयुतः ॥३२८
ततः स्वैरविहारी स्यान्मन्त्रिभिर्व्वा समागतः।
बलानां दर्शनं कृत्वा सेनान्या सह चिन्तयेत् ॥३२९
सन्ध्यामुपास्य शृणुयाच्चाराणां गूढभाषितम्।
गीतनृत्यैश्च भुञ्जीत पठेत् स्वाध्यायमेव च ॥३३०
संविशेत्तूर्य्यघोषेण प्रतिबुध्येत्तथैव च।
शास्त्राणि चिन्तयेद् बुद्ध्या सर्वकर्त्तव्यतान्तथा ॥३३१
प्रेषयेच्च ततश्चारान् स्वेषु चान्येषु सादरम्।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्य्यैराशीर्भिरभिनन्दितः ॥३३२
दृष्ट्वा ज्योतिर्विदो वैद्यान् दद्याद् गां काञ्चनं महीम्।
नैवेशिकानि च तथा श्रोत्रियाणां गृहाणि च ॥३३३
ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिम्भः क्रोधनोऽरिषु।
स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता ॥३३४

पुण्यात् षड्भागमादत्त न्यायेन परिपालयन्।
सर्वदानाधिकं यस्मात् प्रजानां परिपालनम् ॥३३५
चाटुतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः।
पीड्यमानाः प्रजा रक्षेत् कायस्थैश्च विशेषतः ॥३३६
अरक्ष्यमाणाः कुर्वन्ति यत् किञ्चित् किल्विषं प्रजाः।
तस्माच्च नृपतेरर्द्धं यस्माद् गृह्णात्यसौ करान् ॥३३७
ये राष्ट्राधिकृता स्तेषां चारैर्ज्ञात्वा विचेष्टितम्।
साधून् सम्पालयेद्राजा विपरीतांस्तु घातयेत् ॥३३८
उत्कोचजीविनो द्रव्यहीनान् कृत्वा प्रवासयेत्।
सम्मानदानसत्कारैः श्रोत्रियान् वासयेत् सदा ॥३३९
अन्यायेन नृपो राष्ट्रात् स्वकोषं योऽभिवर्द्धयेत्।
सोऽचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबान्धवः ॥३४०
प्रजापीड़नसन्तापसमुद्भूतो हुताशनः।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणान् नादग्धा विनिवर्त्तते ॥३४१
य एव धर्म्मो नृपतेः स्वराष्ट्रपरिपालने।
तमेव कृत्स्नमाप्नोति परराष्ट्रं वशं नयन् ॥३४२
यस्मिन् देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितिः!
तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः ॥३४३
मन्त्रमूलं यतो राज्यमतो मन्त्रं सुरक्षितम्।
कुर्य्याद्यथान्ये न विदुः कर्म्मणामाफलोदयात् ॥३४४
अरिर्मित्रमुदासीनोऽनन्तरस्तत् परः परः।
क्रमशो मण्डलं चिन्त्यं सामादिभिरनुक्रमैः ॥३४५

उपायाः साम दानञ्च भेदो दण्डस्तथैव ।
सम्यक् प्रयुक्ताः सिद्धेयुर्दण्डस्त्वगतिका गतिः ॥३४६

सन्धिञ्च विग्रहं यानमासनं संश्रयं तथा ।
द्वैधीभावं गुणानेतान् यथावत् परिकल्पयेत् ॥३४७

यदा सम्यग्गुणोपेतं परराष्ट्रं तदा व्रजेत् ।
परश्च हीन आत्मा च हृष्टवाहनपूरुषः ॥३४८

दैवे पुरुषकारे च कर्म्मसिद्धिर्व्यवस्थिता ।
तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदेहिकम् ॥३४९

केचिद्दैवात् स्वभावाच्च कालात् पुरुषकारतः ।
संयोगे केचिदिच्छन्ति फलं कुशलबुद्धयः ॥३५०

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥३५१

हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः ।
अतो यतेत तत् प्राप्तौ रक्षेत् सत्यं समाहितः ॥३५२

स्वाम्यमात्यो जनोदुर्गं कोषो दण्डस्तथैव च ।
मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते ॥३५३

तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत् ।
धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ॥३५४

स नेतुं न्यायतोऽशक्यो लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
सत्यसन्धेन शुचिना सुसहायेन धीमता ॥३५५

यथाशास्त्रं प्रयुक्तः सन् सदेवासुरमानुषम् ।
जगदानन्दयेत् सर्वमन्यथा तु प्रकोपयेत् ॥३५६

अधर्म्मदण्डनं स्वर्गकीर्त्ति लोकविनाशनम्।
सम्यक् च दण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्त्ति जयावहम्॥३५७
अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्म्माद्विचलितः स्वकात्॥१५८
यो दण्ड्यान् दण्डयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत्।
इष्टं स्यात् क्रतुभिस्तेन सहस्रशतदक्षिणैः॥३५६
इति संचिन्त्य नृपतिः क्रतुतुल्यफलं पृथक्।
व्यवहारान् स्वयं पश्येत् सभ्यः परिवृतोऽन्वहम्॥३६०
कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणान् जानपदांस्तथा।
स्वधर्म्मचलितान्राजा विनीय स्थापयेत् पथि॥३६१
जालसूर्य्यमरीचिस्थं त्रसरेणूरजः स्मृतम्।
तेऽष्टौ लिक्षा तु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते॥३६२
गौरस्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्यस्तु ते त्रयः।
कृष्णलः पञ्च ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोड़श॥३६३
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वाऽपि प्रकीर्तितम्।
द्वे कृष्णले रूप्यमाषोधरणं षोड़शैव ते॥३६४
शतमानस्तु दशभिर्धरणैः पलमेव च।
निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः॥३६५
साशीतिः पणसाहस्री दण्ड उत्तमसाहसः।
तदर्द्धं मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धमधमः स्मृतः॥३६६
धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा।
योज्या व्यस्ताः समस्ता वा अपराधवशादिमे॥३६७

ज्ञात्वापराधं देशञ्च कालं बलमथापि वा ।
वयः कर्म्म च वित्तञ्च दण्डं दण्डेषु पातयेत् ॥३६८

इति याज्ञवल्क्यीये धर्म्मशास्त्रे आचारोनाम प्रथमोऽध्यायः ।

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ व्यवहाराध्यायः ।

तत्रादौ—सामान्यन्यायप्रकरणम् ।

व्यवहारान् नृपः पश्येद्विद्वद्भि र्ब्राह्मणैः सह ।
धर्म्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः ॥१
श्रुताध्ययनसम्पन्ना धर्मज्ञाः सत्यवादिनः ।
राज्ञा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः ॥२
अपश्यता कार्यवशाद् व्यवहारान् नृपेण तु ।
सभ्यैः सह नियोक्तव्यो ब्राह्मणः सर्वधर्मवित् ॥३
रागाल्लोभाद्भयाद्वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः ।
सभ्याः पृथक् पृथक् दण्ड्या विवादाद् द्विगुणं (धनम्)दमम् ॥४
स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः ।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ॥५
प्रत्यर्थिनोऽग्रतो लेख्यं यथावेदितमर्थिना ।
समामासतदर्द्धाहोर्नामजात्यादिचिह्नितम् ॥६

श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ।
ततोऽर्थी लेखयेत् सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ॥७
तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा।
चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेषूपदर्शितः ॥८
अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत्।
अभियुक्तश्च नान्येन नोक्तं विप्रकृतं नयेत् ॥९
कुर्यात् प्रत्यभियोगञ्च कलहे साहसेषु च।
उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्यनिर्णये ॥१०
निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे च तत्समम्।
मिथ्याभियोगी द्विगुणमभियोगाद्धनं हरेत् ॥११
साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये स्त्रियाम्।
विवादयेत् सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः ॥१२
देशाद्देशान्तरं याति सृक्कणी परिलेढि च।
ललाटं स्विद्यते यस्य मुखं वैवर्णमेति च ॥१३
परिशुष्यत्स्खलद्वाक्योविरुद्धं बहु भाषते।
वाक्चक्षुः पूजयति नो तथोष्ठौ निर्भुजत्यपि ॥१४
स्वभावाद्विकृतिं गच्छेन् मनोवाक्कायकर्मभिः।
अभियोगे च साक्ष्ये वा दुष्टः स परिकीर्तितः ॥१५
सन्दिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत्।
नचाहूतो वदेत् किञ्चिद्धीनो दण्ड्यश्च स स्मृतः ॥१६
साक्षिषूभयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः।
पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः ॥१७

सपणश्चेद्विवादः स्यात्तत्र हीनन्तु दापयेत् ।
दण्डञ्च स्वपणं राज्ञे धनिने धनमेव च ॥१८
छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान्नयेन्नृपः ।
भूतमप्यनुपन्यस्तं हीयते व्यवहारतः ॥१९
निह्नुते लिखितं नैकमेकदेशविभावितः ।
दाप्यः सर्वं नृपेणार्थं न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः ॥२०
स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः ।
अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः ॥२१
प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम् ।
एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते ॥२२
सर्वेष्वथ विवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया ।
आधौ प्रतिगृहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा ॥२३
पश्यतो ब्रुवतो भूमे र्हानिर्विंशतिवार्षिकी ।
परेण भुज्यमानाया धनस्य दशवार्षिकी ॥२४
आधिसीमोपनिःक्षेपजड़बालधनैर्विना ।
तथोपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणां धनैरपि ॥२५
आध्यादीनां हि हर्त्तारं धनिने दापयेद्धनम् ।
दण्डञ्च तत्समं राज्ञे शक्त्यपेक्ष मथापि वा ॥२६
आगमोऽभ्यधिको भोगाद्विना पूर्वक्रमागतात् ।
आगमोऽपि बलं नैव भुक्तिस्तोकापि यत्र नो ॥२७
आगमस्तु कृतो येन सोऽभियुक्तस्तमुद्धरेत् ।
न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी ॥२८

योऽभियुक्तः परेतः स्यात्तस्य रिक्थी तमुद्धरेत्।
न तत्र कारणं भुक्तिरागमेन विनाकृता ॥२९
आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम्।
अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नैव गच्छति ॥३०
नृपेणाधिकृताः पूगाः श्रेणयोऽथ कुलानि च।
पूर्वं पूर्वं गुरु ज्ञेयं व्यवहारविधौ नृणाम् ॥३१
बलोपधिविनिर्वृत्तान् व्यवहारान्निवर्त्तयेत्।
स्त्रीनक्तमन्तरागारबहिः शत्रुकृतांस्तथा ॥३२
मत्तोन्मत्तार्त्तव्यसनिबालभीतादि योजितः।
असम्बद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्ध्यति ॥३३
प्रणष्टाधिगतं देयं नृपेण धनिने धनम्।
विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्समं दण्डमर्हति ॥३४
राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद् द्विजेभ्योऽर्द्धं द्विजः पुनः।
विद्वानशेषमादद्यात् स सर्वस्य प्रभुर्यतः ॥३५
इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्ठांशमाहरेत्।
अनिवेदितविज्ञातो दाप्यस्तं दण्डमेव च ॥३६
देयं चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जानपदाय तु।
अददद्धि समाप्नोति किल्विषं यस्य तस्य तत् ॥३७

इति सामान्यप्रकरणम्।

अथ ऋणादानप्रकरणम् ।

अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके ।
वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुःपञ्चकमन्यथा ।।३८

कान्तारगास्तु दशकं सामुद्राविंशकं शतम् ।
दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ।।३९

सन्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा ।
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणाः स्मृताः ।।४०

प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतेर्भवेत् ।
साध्यमानो नृपं गच्छन् दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनम् ।।४१

गृहीता तु क्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिकः ।
दत्त्वा तु ब्राह्मणायैव नृपतेस्तदनन्तरम् ।।४२

राज्ञाधमर्णिकोदाप्यः साधिताद्दशकं शतम् ।
पञ्चकञ्च शतं दाप्यः प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णकः ।।४३

हीनजातिं परिक्षीण मृणार्थं कर्म कारयेत् ।
ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम् ।।४४

दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकं धनम् ।
मध्यस्थस्थापितं तत्स्याद्वर्द्धते न ततः परम् ।।४५

अविभक्तैः कुटुम्बार्थे यदृणञ्च कृतं भवेत् ।
दद्युस्तद्रिक्थिनः प्रेते प्रोषिते वा कुटुम्बिनि ।।४६

न योषित्पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता ।
दद्यादृते कुटुम्बार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा ।।४७

सुराकामद्यूतकृतं दण्डशुल्कावशिष्टकम्।
वृथादानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥४८
गोपशौण्डिकशैलूषरजकव्याधयोषिताम्।
ऋणं दद्यात् पतिस्तेषां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया ॥४९
प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत् कृतम्।
स्वयं कृतं वा यदृणं नान्यत् स्त्री दातुमर्हति ॥५०
पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽथवा।
पुत्रपौत्रैरृणं देयं निह्नवे साक्षिभावितम् ॥५१
ऋक्थग्राह ऋणं दाप्यो योषिद्ग्राहस्तथैव च।
पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य ऋक्थिनः ॥५२
भ्रातृणामथदम्पत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि।
प्रातिभाव्य मृणं साक्ष्यमविभक्ते न तु स्मृतम् ॥५३
दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते।
आद्यौ तु वितथे दाप्यावितरस्य सुता अपि ॥५४
दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोऽपिवा।
न तत् पुत्रा ऋणं दद्यु र्दद्यु र्दानाय ये स्थिताः ॥५५
बहवः स्यूर्यदि स्वांशैर्दद्युः प्रतिभुवो धनम्।
एकच्छायाश्रितेष्वेषु धनिकस्य यथारुचि ॥५६
प्रतिभूर्दापितो यत्तु प्रकाशं धनिनो धनम्।
द्विगुणं प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत् ॥५७
सन्ततिः स्त्रीपशुष्वेव धान्यं त्रिगुणमेव च।
वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणस्तथा ॥५८

आधिः प्रणश्येद् द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते ।
काले कालकृतं नश्येत् फलभोग्यो न नश्यति ॥५६

गोप्याधिभोगे नो वृद्धिः सोपकारेऽथ हापिते ।
नष्टो देयो विनष्टश्च दैवराजकृताहते ॥६०

आधेः स्वीकरणात् सिद्धीरक्ष्यमाणोऽप्यसारताम् ।
यातश्चेदन्य आधेयो धनभाग्वा धनी भवेत् ॥६१

चरित्रवन्धककृतं सवृद्ध्या दापयेद्धनम् ।
सत्यङ्कारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिदापयेत् ॥६२

उपस्थितस्य मोक्तव्यआधिस्तेनोऽन्यथा भवेत् ।
प्रयोजकेऽसति धनं कुले न्यस्याधिमाप्नुयात् ॥६३

तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकः ।
विनाधारणकाद्वापि विक्रणीत स साक्षिकम् ॥६४

यदा तु द्विगुणीभूतमृणमाधौ तदा खलु ।
मोच्य आधिस्तदुत्पन्ने प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥६५

इति ऋणादानप्रकरणम् ।

अथ उपनिधिप्रकरणम् ।

वासनस्थमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य यदर्पितम् ।
द्रव्यं तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तत् ॥६६

न दाप्योऽपहृतं तत्तु राजदैविकतस्करैः ।
भ्रेषश्चेन्मार्गितेऽदत्ते दाप्यो दण्डश्च तत्समम् ॥६७

आजीवन् स्वेच्छया दण्ड्यो दाप्यस्तश्चापि सोदयम् ।
याचितान्वाहितन्यासनिःक्षेपादिष्वयं विधिः ॥६८

इति उपनिधिप्रकरणं ॥

....

अथ साक्षिप्रकरणम् ।

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।
धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्ते धनान्विताः ॥६९
त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः पञ्चयज्ञक्रियारताः ।
यथाजाति यथावर्णं सर्वेसर्वासु वा पुनः ॥७०
श्रोत्रियास्तापसावृद्धा ये च प्रव्रजितादयः ।
असाक्षिणस्तेवचनान्नात्रहेतुरुदाहृतः ॥७१
स्त्रीवृद्धबालकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः ।
रङ्गावतारिपाषण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः ॥७२
पतिताप्तार्थसम्बन्धिसहायरिपुतस्कराः ।
साहसी दृष्टदोषश्च निर्धूतश्चेत्यसाक्षिणः ॥७३
उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोऽपि धर्म्मवित् ।
सर्वः साक्षी संग्रहणे दण्डपारुष्यसाहसे ॥७४

साक्षिणः श्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमोपगान्।
ये पातककृतां लोका महापातकिनान्तथा ॥७५

अग्निदानाञ्च ये लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम्।
तान् सर्व्वान् समवाप्नोति यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥७६

सुकृतं यत्त्वया किञ्चिज्जन्मान्तरशतैः कृतम्।
तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसि यं मृषा ॥७७

अब्रुवन् हि नरः साक्ष्यमृणं स दशबन्धकम्।
राज्ञा सर्वं प्रदाप्यः स्यात् षट्चत्वारिंशकेऽहनि ॥७८

न ददाति च यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः।
स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्योदण्डेन चैव हि ॥७९

द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां तथा।
गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तमाः ॥८०

यस्योचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां स जयी भवेत्।
अन्यथावादिनो यस्य ध्रुवं तस्य पराजयः ॥८१

उक्तेऽपि साक्षिभिः साक्ष्ये यद्यन्ये गुणवत्तराः।
द्विगुणा वान्यथा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः ८२

पृथक् पृथक् दण्डनीयाः कूटकृत् साक्षिणस्तथा।
विवादाद्द्विगुणं द्रव्यं विवास्यो ब्राह्मणः स्मृतः ॥८३

यः साक्ष्यं श्रावितोऽन्येननिह्नुते तत्तमोवृतः।
स दाप्योऽष्टगुणं द्रव्यं ब्राह्मणन्तु विवासयेत् ॥८४

वर्णिनान्तु बधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत्।
तत्पावनाय कर्तव्यश्चरुः सारस्वतो द्विजैः ॥८५

इति साक्षिप्रकरणम्॥

॥ अथ लिखितप्रकरणम्॥

यः कश्चिदर्थो निष्णातः स्वरुच्या तु परस्परम्।
लेख्यं वा साक्षिमत् कार्य्यं तस्मिन् धनिकपूर्वकम् ॥८६
समामासतदर्धाहोनामजातिस्वगोत्रकैः।
सब्रह्मचारीकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम्॥८७
समाप्तेऽर्थे ऋणी नाम स्वहस्तेन निवेशयेत्।
मतं मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरिलेखितम्॥८८
साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम्।
अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः॥८९
अलिपिज्ञ ऋणी यः स्यात् स्वमतं लेखयेत् तु सः।
साक्षी वा साक्षिणान्येन सर्वसाक्षिसमीपगः॥
उभयाभ्यर्थितेनेदन्मया ह्यमुकसूनुना।
लिखितं त्वमुकेनेति लेखकोऽन्ते ततो लिखेत्॥९०
विनापि साक्षिभिर्लेख्यं स्वहस्तलिखितन्तु यत्।
तत्प्रमाणं स्मृतं लेख्यं बलोपधिकृतादृते॥९१

ऋणं लेख्यकृतं देयं पुरुषस्त्रिभिरेव तु ।
आधिस्तु भुज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते॥ ९२

देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा ।
भिन्ने दग्धेतथाच्छिन्ने लेख्यमन्यत्तु कारयेत् ॥९३

सन्दिग्धलेख्यशुद्धिः स्यात् स्वहस्तलिखितादिभिः ।
युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसम्बन्धागमहेतुभिः ॥९४

लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेद्दत्त्व दत्त्वा धनं ऋणी ।
धनी चोपगतं दद्यात् स्वहस्तपरिचिह्नितम् ॥९५

दत्त्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्ध्यै वान्यत्तु कारयेत् ।
साक्षिमच्च भवेद्यद्वा तद्दातव्यं ससाक्षिकम् ॥ ९६

इति लिखितप्रकरणम् ।

अथ दिव्यप्रकरणम् ।

तुलाग्न्यापो विषं कोशो दिव्यानीह विशुद्धये ।
महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि ॥९७

रुच्या वान्यतरः कुर्यादितरो वर्त्तयेच्छिरः ।
विनापि शीर्षकात् कुर्यान्नृपद्रोहेऽथ पातके ॥९८

सचैलस्नातमाहूय सूर्योदय उपोषितम् ।
कारयेत् सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥९९

तुला स्त्रीबालवृद्धा(र्त)न्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणाम् ।
अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाः सप्त विषस्य च ॥१००

नासहस्राद्धरेत् फालं न विषं न तुलां तथा ।
नृपार्थेष्वभियोगेषु वहेयुः शुचयः सदा ॥१०१

सहस्रार्थे तुलादीनि कोशमल्पेऽपिकारयेत् ।
पञ्चाशद् दापयेच्छुद्धमशुद्धो दण्डभाग्भवेत् ॥

तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः ।
प्रतिमानसमीभूतो लेखाः कृत्वावतारितः ॥१०२

त्वं तुले ! सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता ।
तत्सत्यं वद कल्याणि ! संशयान्मां विमोचय ॥१०३

यद्यस्मि पापकृन्मात ! स्ततो मां त्वमधो नय ।
शुद्धश्चेद् गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत् ॥१०४

करौ विमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत् ।
सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत्सूत्रेण वेष्टयेत् ॥१०५

त्वमग्ने ! सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक ! ।
साक्षिवत् पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं करे मम ॥१०६

तस्येत्युक्तवतो लोहं पञ्चाशत्पलिकं समम् ।
अग्निवर्णं न्यसेत्पिण्डं(क्षिप्रं)हस्तयोरुभयोरपि ॥१०७

स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत् ।
षोडशाङ्गुलिकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम् ॥१०८

मुक्ताग्नि मृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात् ।
अन्तरा पतिते पिण्डे सन्देहो वा पुनर्हरेत् ॥१०९

सत्येन माभिरक्ष(स्व) त्वं वरुणेत्यभिशाप्य कम् ।
नाभिदघ्नोदकस्थस्य गृहीत्वोरू जलं विशेत् ॥११०

समकालमिषु मुक्तमानयेत् यो जवी नरः ।
गते ऽन्यस्मिन्निमग्नाङ्गं पश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥१११

त्वं विष ! ब्रह्मणः पुत्र ! सत्यधर्मे व्यवस्थितः ।
त्रायस्वास्मान्मभिशापात् सत्येन भव मेऽमृतम् ॥११२

एव मुक्त्वा विषं शार्ङ्गं भक्षयेद्धिमशैलजम् ।
यस्य वेगैर्विना जीर्णं तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥११३

देवानुग्रान् समभ्यर्च्य तत्स्नानोदकमाहरेत् ।
संश्राव्य पाययेत्तस्माज्जलात्तु प्रसृतित्रयम् ॥११४

अर्वाक् चतुर्दशादह्नो यस्य नो राजदैविकम् ।
व्यसनं जायते घोरं स शुद्धः स्यान्न संशयः ॥११५

इति दिव्यप्रकरणम् ।

अथ दाय विभागप्रकरणम् ।

विभागं चेत् पिता कुर्यात् स्वेच्छया विभजेत्सुतान् ।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः ॥११६

यदि दद्यात् समानंशान् पत्न्यः कार्याः समांशिकाः ।
न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वसुरेण वा ॥११७

शक्तस्यानीहमानस्य किञ्चिद्दत्वा पृथक् क्रिया ।
न्यूनाधिकविभक्तानां धर्मः पितृकृतः स्मृतः ॥११८

विभजेरन् सुताः पित्रोरूर्ध्वं रिक्थमृणं समम्।
मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वयः ॥११९
पितृद्रव्या(विनाशेन)विरोधेन यदन्यत् स्वयमार्जितम्।
मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव दायादानं न तद्भवेत् ॥१२०
क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेत्तु यः।
दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च ॥१२१
यत्किञ्चित् पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ॥१२२
सामान्यार्थसमुत्थाने विभागस्तु समः स्मृतः।
अनेकपितृकाणान्तु पितृतो भागकल्पना ॥१२३
भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा।
तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः ॥१२४
विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायाः विभागभाक्।
दृश्याद्वा तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात् ॥१२५
पितृभ्यां यस्य यद्दत्तं तत्तस्यैव धनं भवेत्।
पितुरूर्द्ध्वं विभजतां माताऽप्यंशं समाप्नुयात् ॥१२६
असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः।
भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांशं तु तुरीयकम् ॥१२७
चतुस्त्रिद्व्येकभागीनाः वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः।
क्षत्त्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जास्तु द्व्येकभागिनः ॥१२८
अन्योन्यापहृतं द्रव्यं विभक्तै यत्र दृश्यते।
तत्पुनस्ते समैरंशैर्विभजेरन्निति स्थितिः १२९

अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः।
उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ॥१३०

औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः।
क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ॥१३१

गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतो मतः।
कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतोमतः ॥१३२

अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवस्तथा।
दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥१३३

क्रीतस्तु ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमस्तु स्वयं कृतः।
दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भे विन्नः सहोढजः ॥१३४

उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत् सुतः।
पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ॥१३५

सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः।
जातोऽपि दास्यां शूद्रेण कामतोंऽशहरो भवेत् १३६

मृते पितरि कुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्द्धभागिनम्।
अभ्रातृको हरेत्सर्वं दुहितॄणां सुताद्दते ॥१३७

पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा।
तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः ॥१३८

एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥१३९

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामृक्थभागिनः।
क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः ॥१४०

संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदरस्य तु सोदरः।
दद्याच्चोपहरेदंशं जातस्य च मृतस्य च ॥१४१
अन्योदर्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्यो धनं हरेत्।
असंसृष्ट्यपि चादद्यात् संसृष्टो नान्यमातृजः ॥१४२
क्लीवोऽथ पतितस्तज्जः पङ्गुरुन्मत्तको जडः।
अन्धोऽचिकित्स्यरोगी च भर्त्तव्याः स्युर्निरंशकाः ॥१४३
औरसाः क्षेत्रजास्तेषां निर्दोषा भागहारिणः।
सुताश्चैषां प्रभर्त्तव्या; यावद्वै भर्तृसात्कृताः ॥१४४
अपुत्रा योषितश्चैषां भर्त्तव्याः साधुवृत्तयः।
निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च ॥१४५
पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधिवेदनिकाद्यञ्च स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥१४६
बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव वा।
अतीतायामप्रजसि बान्धवास्तदवाप्नुयुः ॥१४७
अप्रजः स्त्रीधनं भर्त्तुर्ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि।
दुहितॄणां प्रसूता चेत् शेषेषु पितृगामि तत् ॥१४८
दत्त्वा कन्यां हरन् दण्ड्योऽव्ययं दद्याच्च सोदयम्।
मृतायां दत्तमादद्यात्परिशोध्योभयव्ययम् ॥१४९
दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ सम्प्रतिरोधके।
गृहीतं स्त्रीधनं भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ॥१५०
अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम्।
न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्द्धं प्रकीर्तितम् ॥१५१

विभागनिह्नवे ज्ञातिबन्धुसाक्ष्यभिलेखितैः ।
विभागभावना ज्ञेया गृहक्षेत्रैश्च यौतकैः ॥१५२

इति दायविभागप्रकरणवर्णनम् ।

अथ सीमाविवादप्रकरणवर्णनम् ।

सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः स्थविरादयः ।
गोपाः सीम्नः कृषाणोऽन्ये सर्वे च वनगोचराः ॥१५३
नयेयुरेतैः सीमान्तं स्थूलाङ्गारतुषद्रुमैः ।
सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षितम् ॥१५४
सामन्ता वा समग्रामाश्चत्वारोऽष्टौ दशापि वा ।
रक्तस्रग्वसनाः सीमां नयेयुः क्षितिधारिणः ॥१५५
अनृते च पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ।
अभावे ज्ञानचिह्नानां राजा सीम्नः प्रवर्तिता ॥१५६
आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु ।
एष एव विधिर्ज्ञेयो वर्षाम्बुप्रवहादिषु ॥१५७
मर्यादायाः प्रभेदे तु सीमातिक्रमणे तथा ।
क्षेत्रस्य हरणे दण्डा अधमोत्तममध्यमाः ॥१५८
न निषेध्योऽल्पबाधस्तु सेतुः कल्याणकारकः ।
परभूमिं हरन् कूपः स्वल्पक्षेत्रो बहूदकः ॥१५९

स्वामिने योऽनिवेद्यैव क्षेत्रे सेतुं प्रवर्त्तयेत् ।
उत्पन्ने स्वामिनो भोगस्तदभावे महीपतेः ॥१६०

फालाहतमपि क्षेत्रं यो न कुर्यान्न कारयेत् ।
तं प्रदाप्यः कृष्टफलं (अकृष्टशदं) क्षेत्रमन्येन कारयेत् ॥१६१

इति सीमाविवादप्रकरणवर्णनम् ।

अथ स्वामिपालविवादप्रकरणवर्णनम् ।

माषानष्टौ तु महिषी शस्यघातस्य कारिणी ।
दण्डनीया तदर्द्धन्तु गौस्तदर्द्ध मजाविकम् ॥१६२

भक्षयित्वोपविष्टानां यथोक्ताद् द्विगुणो दमः ।
सममेषां विवीतेऽपि खरोष्ट्रं महिषीसमम् ॥१६३

यावच्छस्यं विनश्येत तावत् क्षेत्री फलम् लभेत्।
गोपा(पाल)स्ताड्यस्तु गोमी तु पूर्वोक्तं दण्डमर्हति ॥१६४

पथि ग्रामविवीतान्ते क्षेत्रे दोषो न विद्यते ।
अकामतः कामचारे चौरवद्दण्डमर्हति ॥१६५

महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकागन्तु(कीचगौः)कादयः ।
पालो येषान्तु ते मोच्या दैवराजपरिप्लुताः ॥१६६

यथार्पितान् पशून् गोपः सायं प्रत्यर्पयेत्तथा ।
प्रमादमृतनष्टांश्च प्रदाप्यः कृतवेतनः ॥१६७

पालदोषविनाशे च पाले दण्डो विधीयते ।
अर्द्धं त्रयोदशपणः स्वामिनो द्रव्यमेव ॥१६८

ग्राम्येच्छया गोप्रचारो भूमिराजवशेन वा ।
द्विजस्तृणैधपुष्पाणि सर्वतः स्ववदाहरेत् ॥१६९

धनुः शतं परीणाहो ग्रामक्षेत्रान्तरं भवेत् ।
द्वे शते कर्पटस्य स्यान्नगरस्य चतुः शतम् ॥१७०

इति स्वामिपालविवादप्रकरणवर्णनम् ।

....

अथास्वामिविक्रयप्रकरणवर्णनम् ।

स्वं लभेतान्यविक्रीतं क्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते ।
हीनाद्रहो हीनमूल्ये वेलाहीने च तस्करः ॥१७१

नष्टापहृतमासाद्य हर्तारं ग्राहयेन्नरम् ।
देशकालातिपत्तौ च गृहीत्वा स्वयमर्पयेत् ॥१७२

विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम् ।
क्रेता मूल्यमवाप्नोति तस्माद्यस्तस्य विक्रयी ॥१७३

आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोऽन्यथा ।
पञ्चबन्धो दमस्तत्र राज्ञो तेनाविभाविते ॥१७४

हृतं प्रणष्टं यो द्रव्यं परहस्तादवाप्नुयात् ।
अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षण्णवतिं पणान् ॥१७५

शौल्किकैः स्थानपालैर्वा नष्टापहृतमाहृतम् ।
अर्वाक् सम्वत्सरात् स्वामी हरेत(लभेत)परतो नृपः ॥१७५

पणानेकशफे दद्याच्चतुरः पञ्च मानुषे ।
महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके ॥१७७

इत्यस्वामिविक्रयप्रकरणवर्णनम् ।

अथ दत्ताप्रदानिकंप्रकरणवर्णनम् ।

स्वं कुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते ।
नान्वये सति सर्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम् ॥१७८

प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात् स्थावरस्य विशेषतः ।
देयं प्रति श्रुतञ्चैव दत्त्वा नापहरेत् पुनः ॥१७६

इति दत्ताप्रदानिकंनामप्रकरणवर्णनम् ।

अथ क्रीतानुशयप्रकरणवर्णनम् ।

दशैकपञ्चसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकम् ।
बीजायोबाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसां परीक्षणम् ॥१८०

अग्नौ सुवर्णमक्षीणं रजते द्विपलं शतम् ।
अष्टौ त्रपुणि सीसे च ताम्रे पञ्चदशायसि ॥१८१

शते दश पला वृद्धिरौर्णे कार्पाससौत्रिके ।
मध्ये पञ्चपला सूत्रे सूक्ष्मे तु त्रिपला मता ॥१८२

वार्मिके रोमबद्धे च त्रिंशद्भागः क्षयो मतः ।
न क्षयो न च वृद्धिः स्यात् कौशेये वल्कलेषु च ॥१८३

देशं कालञ्च भोगञ्च ज्ञात्वा नष्टे बलाबलम् ।
द्रव्याणां कुशला ब्रूयुर्यत्तद्दाप्यमसंशयम् ॥१८४

इति क्रीतानुशयप्रकरणवर्णनम् ।

अथाभ्युपेत्याशुश्रूषाप्रकरणवर्णनम् ।

बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते ।
स्वामिप्राणप्रदो भ(भा)क्तत्यागात्तन्निष्क्रयादपि ॥१८५

प्रव्रज्यावसितो राज्ञो दासश्चामरणान्तिकः ।
वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ॥१८६

कृतशिल्पोऽपि निवसेत् कृतकालं गुरोर्गृहे ।
अन्तेवासी गुरुप्राप्तभोजनस्तत्फलप्रदः ॥१८७

इत्याभ्युपेत्याशुश्रूषाप्रकरणवर्णनम् ।

अथ संविद्व्यतिक्रमप्रकरणवर्णनम् ।

राजा कृत्वा पुरे स्थानं ब्राह्मणान्न्यस्य तत्र तु ।
त्रैविद्यं वृत्तिमद् ब्रूयात् स्वधर्मः पाल्यतामिति ॥१८८

निजधर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत् ।
सोऽपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः ॥१७६

गणद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लङ्घयेच्च यः ।
सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥१६०

कर्तव्यं वचनं सर्वैः समूहहितवादिनाम् ।
यस्तत्र विपरीतः स्यात् स दाप्यः प्रथमं दमम् ॥१६१

समूहकार्य आयातान् कृतकार्यान् विसर्जयेत् ।
स दानमानसत्कारैः पूजयित्वा महीपतिः ॥१९२

समूहकार्यप्रहितो यल्लभेत तदर्पयेत् ।
एकादशगुणं दाप्यो यद्यसौ नार्पयेत् स्वयम् ॥१९३

मर्मज्ञाः (विद्ज्ञाः) शुचयोऽलुब्धा भवेयुः कार्यचिन्तकाः ।
कर्त्तव्यं वचनं तेषां समूहहितवादिनाम् ॥१९४

श्रेणिनैगमपाषण्डिगणानामप्ययं विधिः ।
भेदञ्चैषां नृपो रक्षेत् पूर्ववृत्तिञ्च पालयेत् ॥१९५

इति सम्विद्व्यतिक्रमप्रकरणवर्णनम् ।

अथ वेतनादानप्रकरणवर्णनम् ।

गृहीतवेतनः कर्म त्यजन् द्विगुणमावहेत् ।
अगृहीते समं दाप्यो भृत्यैरक्ष्य उपस्करः ॥१९६

दाप्यस्तु दशमं भागं वाणिज्यपशुसस्यतः ।
अनिश्चित्य भृतिं यस्तु कारयेत् स महीक्षिता ॥१९७

देशं कालञ्च योऽतीयात् लाभं कुर्याच्च योऽन्यथा ।
तत्र स्यात् स्वामिनश्छन्दोऽधिकं देयं कृतेऽधिके ॥१९८

यो यावत् कुरुते कर्म तावत्तस्य तु वेतनम् ।
उभयोरप्य(शाठ्य)साध्यञ्चेत् साध्ये(शाठ्य)कुर्याद्यथाश्रुतम् ॥१९९

अराजदैविकं नष्टं भाण्डं दाप्यस्तु वाहकः ।
प्रस्थानविघ्नकृच्चैव प्रदाप्यो द्विगुणां भृतिम् ॥२००

प्रक्रान्ते सप्तमं भागं चतुर्थं पथि संत्यजन् ।
भृतिमर्द्धं पथे सर्वां प्रदाप्यस्त्याजकोऽपि च ॥२०१

इति वेतनादानप्रकरणवर्णनम् ।

अथ द्यूतसमाह्वयप्रकरणवर्णनम् ।

ग्लहे शतिकवृद्धेस्तु (गलत्सभिकवृद्धिस्तु) सभिकः पञ्चकं शतम् ।
गृह्णीयाद् धूर्तकितवादितराद्दशकं शतम् ॥२०२
स सम्यक् पालितो दद्याद्राज्ञे भागं यथाकृतम् ।
जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रे दद्यात् सत्यं वचः क्षमी ॥२०३
प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्तमण्डले ।
जितं ससभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥२०४
द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि ।
राज्ञा सचिह्ना निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः ॥२०५
द्यूतमेकमुखं कार्यं तस्करज्ञानकारणात् ।
एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते समाह्वये ॥२०६

इति द्यूतसमाह्वयाख्यंप्रकरणवर्णनम् ।

अथ वाक्पारुष्यप्रकरणवर्णनम् ।

सत्यासत्यन्यथास्तोत्रैर्न्यूनाङ्गेन्द्रियरोगिणाम् ।
क्षेपं करोति चेद्दण्ड्यः पणानर्द्धत्रयोदश ॥२०७

अभिगन्तासि भगिनीं मातरं वा तवेति च ।
शपन्तं दापयेद्राजा पञ्चविंशतिकं दमम् ॥२०८

अर्द्धोऽधमेषु द्विगुणः परस्त्रीषूत्तमेषु च ।
दण्डप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरैः ॥२०९

प्रतिलोम्यापवादेषु द्विगुणा(चतुः)स्त्रिगुणा दमाः ।
वर्णानामानुलोम्येन तस्मादर्द्धार्द्धहानतः ॥२१०

बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे वाचिके दमः ।
सत्यस्तदर्द्धिकः पादनासाकर्णकरादिषु ॥२११

अशक्तस्तु वदन्नेवं दण्डनीयः पणान् दश ।
तथा शक्तः प्रतिभुवं दाप्यः क्षेमाय तस्य तु ॥२१२

पतनीये कृते क्षेपे दण्ड्यो मध्यमसाहसः ।
उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥२१३

त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसः ।
मध्यमो जातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः ॥२१४

इति वाक् पारुष्यप्रकरणवर्णनम् ।

अथ दण्डपारुष्यप्रकरणवर्णनम् ।

असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चागमेन च ।
द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृताद् भयात् ॥२१५

यत्रनोक्तो दमः सर्वैः प्रमादेन महात्मभिः ।
तत्र कार्यं परिज्ञाय कर्तव्यं दण्डधारणम् ।

भस्मपङ्करजःस्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः ।
अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणः स्मृतः ॥२१६
समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणन्तूत्तमेषु च ।
हीनेष्वर्द्ध दमो मोहमदादिभिरदण्डनम् ॥११७
विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु ।
उद्गूर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तु तदर्द्धिकः ॥२१८
उद्गूर्णे हस्तपादे च दशविंशतिकौ दमौ ।
परस्परं तु सर्वेषां शस्त्रे मध्यमसाहसः ॥२१६
पादकेशांशुककरालुञ्छनेषु पणान् दश ।
पीडाकर्षां(जना)शुकावेष्ट्यपादाध्यासे शतं दमः ॥२२०
शोणितेन विना दुःखं कुर्वन् काष्ठादिभि र्नरः ।
द्वात्रिंशतं पणान् दाप्यो द्विगुणं दर्शनेऽसृजः ॥२२१
करपाददतोभङ्गे च्छेदने कर्णनासयोः ।
मध्यो दण्डो व्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ॥२२२
चेष्टाभोजनवाग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने ।
कन्धराबाहुसक्थ्नाश्च भङ्गे मध्यमसाहसः ॥२२३
एकं घ्नतां बहूनाञ्च यथोक्ताद् द्विगुणो दमः ।
कलहापहृतं देयं दण्डश्च द्विगुणः स्मृतः ॥२२४
दुःखमुत्पादयेद्यस्तु स समुत्थानजं व्ययम् ।
दाप्यो दण्डश्च यो यस्मिन् कलहे समुदाहृतः ॥२२५
अभिघाते तथाच्छेदे भेदे कुड्यावपातने ।
पणान् दाप्यः पञ्च दश विंशतिन्तद्द्वयं तथा ॥२२६

दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन् प्राणहरन्तथा ।
षोडशाद्यः पणान् दाप्यो द्वितीयो मध्यमं दमम् ॥२२७

दुःखे च शोणितोत्पादे शाखाङ्गच्छेदने तथा ।
दण्डः क्षुद्रपशूनाञ्च द्विपणप्रभृतिक्रमात् ॥२२८

लिङ्गस्य च्छेदने मृत्यौ मध्यमो मूल्यमेव च ।
महापशूनामेतेषु स्थानेषु द्विगुणो दमः ॥२२९

प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे ।
उपजीव्यद्रुमाणाञ्च विंशतेर्द्विगुणो दमः ॥२३०

चैत्यश्मशानसीमासु पुण्यस्थाने सुरालये ।
जातद्रुमाणां द्विगुणो दमो वृक्षेऽथ विश्रुते ॥२३१

गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम् ।
पूर्वस्मृतादर्द्ध दण्डः स्थानेषूक्तेषु कर्त्तने ॥२३२

इति दण्डपारुष्यप्रकरणवर्णनम् ।

अथ साहसप्रकरणवर्णनम् ।

सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात् साहसं स्मृतम् ।
तन्मूल्याद् द्विगुणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गुणः ॥२३३

यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमम् ।
यश्चैवमुक्त्वाहं दाता कारयेत् स चतुर्गुणम् ॥२३४

अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृद् भ्रातृभार्याप्रहारदः ।
सन्दिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकृत् ॥२३५

सामन्तकुलिकादीनामपकारस्य कारकः ।
पञ्चाशत्पणिको दण्ड एषामिति विनिश्चयः ॥२३६

स्वच्छन्दं विधवागामी विक्रुष्टेऽनाभिधावकः ।
अकारणे च विक्रोष्टा चाण्डालश्चोत्तमान् स्पृशन् ॥२३७

शूद्रः प्रव्रजितानाञ्च दैवे पित्र्ये च भोजकः ।
अयुक्तं शपथं कुर्वन्नयोग्योऽयोग्यकर्मकृत् ॥२३८

वृषक्षुद्रपशूनाञ्च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत् ।
साधारणस्यापलापी दासीगर्भविनाशकृत् ॥२३९

पितापुत्रस्वसृभ्रातृदम्पत्याचार्यशिष्यकाः ।
एषामपतितान्योऽन्यत्यागी च शतदण्डभाक् ॥२४०

वसानस्त्रीन् पणान् दण्ड्यो (दाप्यो) रजकस्तु परांशुकम् ।
विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु पणान् दश ॥२४१

पितापुत्रविरोधे तु साक्षिणां त्रिपणो (द्विशतो) दमः ।
अन्तरे च तयोर्यः स्यात्तस्याप्यष्ट(शतो)गुणो दमः ॥२४२

तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च ।
एभिश्च व्यवहर्ता यः स दाप्यो दण्ड(दत्र)मुत्तमम् ॥२४३

अकूटं कूटकं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम् ।
स नाणकपरीक्षी तु दाप्य उत्तमसाहसम् ॥२४४

भिषङ् मिथ्याचरन् दाप्यस्तिर्यक्षु प्रथमं दमम् ।
मानुषे मध्यमं राजमानुषेषूत्तमं दमम् ॥२४५

अबन्ध्यं यश्च बध्नाति बन्ध्यं यश्च प्रमुञ्चति ।
अप्राप्तव्यवहारञ्च स दाप्यो दण्डमुत्तमम् ॥२४६

मानेन तुलया वाऽपि योंऽशमष्टमकं हरेत् ।
दण्डं स दाप्यो द्विशतं वृद्धौ हानौ च कल्पितम् ॥२४७

भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुडादिषु ।
पण्येषु प्रक्षिपन् हीनं पणान् दाप्यस्तु षोडश ॥२४८

मृच्चर्ममणिसूत्रायः काष्ठवल्कलवाससाम् ।
अजातौ जातिकरणे विक्रेयाऽष्टगुणो दमः ॥२४९

समुद्गपरिवर्तञ्च सारभाण्डञ्च कृत्रिमम् ।
आधानं विक्रयं वाऽपि नयतो दण्डकल्पना ॥२५०

भिन्ने पणे तु पञ्चाशत् पणे तु शतमुच्यते ।
द्विपणे द्विशतो दण्डो मूल्यवृद्धौ च वृद्धिमान् ॥२५१

सम्भूय कुर्वतामर्घं साबाधं कारुशिल्पिनाम् ।
अर्घस्य ह्रासं वृद्धिं वा साहस्रो दम उत्तमः ॥२५२

सम्भूय वणिजां पण्यमनर्घेणोपरुन्धताम् ।
विक्रीणतां वा विहितो दण्ड उत्तमसाहसः ॥२५३

राजनि स्थाप्यते योऽर्घः प्रत्यहं तेन विक्रयः ।
क्रयो वा (विक्रयोवापि)निःस्रवस्तस्माद्वणिजां लाभतः स्मृतः॥२५४

स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग्गृह्णीत पञ्चकम् ।
दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी ॥२५५

पण्योस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवम् ।
अर्घोऽनुग्रहकृत् कार्यः क्रतुर्विक्रतुरेव च ॥२५६

इति साहसप्रकरणवर्णनम् ।

अथ विक्रीयासंप्रदानप्रकरणम् ।

गृहीतमूल्यं यः पण्यं क्रेतुर्नैव प्रयच्छति ।
सोदयं तस्य दाप्योऽसौ दिग्लाभं वा दिशां गते ॥२५७
विक्रीतमपि विक्रेयं पूर्वक्रेतर्यगृह्णति ।
हानिश्चेत् क्रेतृदोषेण क्रेतुरेव हि सा भवेत् ॥२५८
राजदैवोपघातेन पण्ये दोषमुपागते ।
हानिर्विक्रेतुरेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः ॥२५९
अन्यहस्ते च विक्रीतं दुष्टं वाऽदुष्टवद् यदि ।
विक्रीणीत दमस्तत्र मूल्यात्तु द्विगुणो भवेत् ॥२६०
क्षयं वृद्धिश्च वणिजा पण्यानां तु विजानता ।
क्रीत्वा नानुशयः कार्यः कुर्वन् षड्भागदण्डभाक् ॥२६१

इति विक्रीयासम्प्रदानप्रकरणवर्णनम् ।

अथ सम्भूयसमुत्थानप्रकरणवर्णनम् ।

समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम् ।
लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा सम्विदाकृता ॥२६२
प्रतिषिद्धमनादिष्टं प्रमादाद्यच्च नाशितम् ।
स तद्दद्याद्विप्लवाच्च रक्षिता दशमांशभाक् ॥२६३

अर्घप्रक्षेपणाद्विंशं भागं शुल्कं नृपो हरेत्।
व्यासिद्धं राजयोग्यञ्च विक्रीतं राजगामि तत्॥२६४

मिथ्या वदन् परीमाणं शुल्कस्थानादपासरन्।
दाप्यस्त्वष्टगुणं यश्च स व्याजक्रयविक्रयी ॥२६५

तारिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन् दाप्यः पणान् दश ।
ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे ॥२६६

देशान्तरगते प्रेते द्रव्यं दायादबान्धवाः ।
ज्ञातयो वा हरेयुस्तदागतैस्तैर्विना नृपः ॥२६७

जिह्मं त्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोऽन्येन कारयेत् ।
अनेन विधिनाख्यातमृत्विक्कर्षककर्मिणाम् ॥२६८

इति सम्भूयसमुत्थानप्रकरणवर्णनम्।

अथ स्तेयप्रकरणवर्णनम्।

ग्राहकैर्गृह्यते चौरो लोप्त्रेणाथ पदेन वा ।
पूर्वकर्मापराधी च तथा चाशुद्धवासकः ॥२६९

अन्येऽपि शङ्कया ग्राह्या ज्ञातिनामादिनिह्नवैः ।
द्यूतस्त्रीपानसक्ताश्च शुष्कभिन्नमुखस्वराः ॥२७०

परद्रव्यगृहाणां च प्रच्छका गूढचारिणः ।
निराया व्ययवन्तश्च विनष्टद्रव्यविक्रयाः ॥२७१

गृहीतः शङ्कया चौर्य्ये नात्मानं चेद्विशोधयेत् ।
दापयित्वा हृतं द्रव्यं चौरदण्डेन दण्डयेत् ॥२७२
चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्बधैः ।
सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवाशयेत् ॥२७३
घातितेऽपहृते दोषो ग्रामभर्त्तुरनिर्गते ।
विवीतभर्त्तुस्तु पथि चौरोद्धर्त्तुरवीतके ॥२७४
स्वसीम्नि दद्याद् ग्रामस्तु पदं वा यत्र गच्छति ।
पञ्चग्रामी वहिःक्रोशाद्दशग्राम्यथवा पुनः ॥२७५
बन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणाञ्च हारिणः ।
प्रसह्यघातिनश्चैव शूलमारोपयेन्नरान् ॥२७६
उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसन्दंशहीनकौ ।
कार्यौ द्वितीयेऽपराधे करपादैकहीनकौ ॥२७७
क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे सारतो दमः ।
देशकालवयःशक्ति संचिन्त्यं दण्डकर्मणि ॥२७८
भक्तावकाशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान् ।
दत्त्वा चौरस्य हन्तुर्वा जानतो दण्ड उत्तमः ॥२७६
शस्त्रावपाते गर्भस्य पातने चोत्तमो दमः ।
उत्तमो वाऽधमो वाऽपि पुरुषस्त्रीप्रमापणे ॥२८०
विप्रदुष्टां (विषप्रदां) स्त्रियञ्चैव पुरुष[illegible]घ्नीमगर्भिणीम् ।
सेतुभेदकरीञ्चाप्सु शिलां बद्ध्वा प्रवेशयेत् ॥२८१
विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापिणीम् ।
विकर्णकरनासोष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ॥२८२

अविज्ञातहतस्याशु कलहं सुतबान्धवाः।
प्रष्टव्या योषितश्चास्य परपुंसि रताः पृथक् ॥२८३

स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामो वा केन वायं गतः सह।
मृत्युदेशसमासन्नं पृच्छेद्वापि जनं शनैः ॥२८४

क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना ॥२८५

इति स्तेयप्रकरणवर्णनम्।

अथ स्त्रीसंग्रहणप्रकरणवर्णनम्।

पुमान् संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रियाः।
सद्यो वा कामजैश्चिह्नैः प्रतिपत्तौ द्वयोस्तथा ॥२८६

नीवीस्तनप्रावरण(नाभि)सक्थिकेशाभिमर्शनम्।
अदेशकालसम्भाषां सहैकस्थानमेव च ॥२८७

स्त्रीनिषिद्धा शतं दद्याद् द्विशतन्तु दमं पुमान्।
प्रतिषेधे द्वयोर्दण्डो यथा संग्रहणे तथा ॥२८८

स्वजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः।
प्रातिलोम्ये वधः पुंसः स्त्रीणां नासादिकर्त्तनम् ॥२८९

अलङ्कृतां हरन् कन्यामुत्तमस्त्वन्यथाधमम्।
दण्डं दद्यात् सवर्णासु प्रातिलोम्ये वधः स्मृतः ॥२९०

सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा (धमः)दमः ।
दूषणे तु करच्छेद उत्तमायां वधस्तथा ॥२६१

शतं स्त्री दूषणे दद्याद् द्वे तु मिथ्याभिशंसने ।
पशून् गच्छन् शतं दाप्यो हीनां स्त्रीं गाश्च मध्यमम् ॥२६२

अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च।
गम्यास्वपि पुमान् दाप्यः पञ्चाशत् पणिकं दमम् ॥२६३

प्रसह्य दास्यभिगमे दण्डो दशपणः स्मृतः ।
बहूनां यद्यकामासौ चतुर्विंशतिकः पृथक् ॥२६४

गृहीतवेतना वेश्या नेच्छन्ती द्विगुणं वहेत् ।
अगृहीते समं दाप्यः पुमानप्येवमेव च ॥२६५

अयोनौ गच्छतो योषां पुरुषं वाऽपि मोहतः ।
चतुर्विंशतिको दण्डस्तथा प्रव्रजितागमे ॥२६६

अन्त्याभिगमने त्वङ्क्यः कु(क)बन्धेन प्रवासयेत् ।
शूद्रस्तथान्त्य एव स्यादन्त्यस्यार्य्यागमे वधः ॥२६७

इति स्त्रीसंग्रहप्रकरणवर्णनम् ।

अथ प्रकीर्णकप्रकरणवर्णनम् ।

ऊनं वाप्यधिकं वाऽपि लिखेद् यो राजशासनम् ।
पारदारिकचोरौ वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ॥२६८

अभक्ष्येण द्विजं दूष्यन् दण्ड्य उत्तमसाहसम् ।
क्षत्रियं मध्यमं वैश्यं प्रथमं शूद्रमर्द्धकिम् ॥२९९

कूटस्वर्णव्यवहारी विमांसस्य च विक्रयी ।
त्र्यङ्गहीनस्तु कर्तव्यो दाप्यश्चोत्तमसाहसम् ॥३००

चतुष्पादकृते दोषो नापेहीति प्रजल्पतः ।
काष्ठलोष्ट्रेषुपाषाणबाहुयुग्यकृतस्तथा ॥३०१

छिन्ननस्येन यानेन तथा भग्नयुगादिना ।
पश्चाच्चैवापसरता हिंसने स्वाम्यदोषभाक् ॥३०२

शक्तो ह्यमोक्षयन् स्वामी दंष्ट्रिणां शृङ्गिणां तथा ।
प्रथमं साहसं दद्याद्विक्रुष्टे द्विगुणं ततः ॥३०३

जारं (चोरं) चौरेत्यभिवदन् दाप्यः पञ्चशतं दमम् ।
उपजीव्य धनं मुञ्चंस्तदेवाष्टगुणीकृतम् ॥३०४

राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारं तस्यैवाक्रोशकारिणम् ।
तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं जिह्वां छित्त्वा प्रवासयेत् ॥३०५

मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा ।
राज(शय्या)यानासनारोढुर्दण्ड उत्तम(मध्यम)साहसः ॥३०६

द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्टादेशकृतस्तथा ।
विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोऽष्टशतो दमः ॥३०७

दुर्दृष्टांस्तु पुनर्दृष्ट्वा व्यवहारान्नृपेण तु ।
सभ्याः सजयिनो दण्ड्या विवादाद् द्विगुणं दमम् ॥३०८

यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः ।
तमायान्तं पुनर्जित्वा दापयेद् द्विगुणं दमम् ॥३०९

राज्ञाऽन्यायेन यो दण्डोऽगृहीतो वरुणाय तम्।
निवेद्य दद्याद्विप्रेभ्यः स्वयं त्रिंशद्गुणीकृतम् ॥३१०

इति श्रीयाज्ञवल्क्यीये धर्मशास्त्रे व्यवहारोनाम द्वितीयोऽध्यायः।

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ प्रायश्चित्ताध्यायः।

तत्रादावशौचप्रकरणवर्णनम्।

ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदकं ततः।
आ श्मशानादनुव्रज्य इतरो ज्ञातिभिर्मृतः ॥१
यमसूक्तं यमीं गाथां जपद्भिर्लौकिकाग्निना।
स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत् ॥२
सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः।
अप नः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥३
एवं मातामहाचार्य(प्रत्त)प्रेतानामुदकक्रिया।
कामोदकं सखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥४
सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः।
न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा ॥५
पाषण्डमाश्रिताः स्तेना भर्तृघ्न्यः कामगादिकाः।
सुराप्य आत्मत्यागिन्यो नाशौचोदकभाजनाः ॥६

कृतोदकान् समुत्तीर्णान् मृदुशाद्वलसंस्थितान्।
स्नातानपवदेयुस्तानितिहासैः पुरातनैः॥७

मानुष्ये कदलीस्तम्भनिःसारे सारमार्गणम्।
यः करोति स संमूढो जलबुद्बुदसन्निभे॥८

पञ्चधा सम्भृतः कायो यदि पञ्चत्वमागतः।
कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिवेदना॥९

गन्त्री वसुमती नाशमुदधिर्दैवतानि च।
फेनप्रख्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति॥१०

श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः।
अतो न रोदितव्यन्तु क्रियाः कार्याः स्वशक्तितः॥११

इति संश्रुत्य गच्छेयुर्गृहान् बालपुरःसराः।
विदश्य निम्बपत्राणि नियताद्वारि वेश्मनः॥१२

आचम्याग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान्।
प्रविशेयुः समालभ्य दत्वाश्मनि पदं शनैः॥१३

प्रवेशनाधिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनामपि।
इच्छतां तत्क्षणाच्छुद्धिः परेषां स्नानसंयमात्॥१४

आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती।
स कटान्नं न चाश्नीयन्नच तैः सह संवसेत्॥१५

क्रीतलब्धाशिनो भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक् पृथक्।
पिण्डयज्ञावृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम्॥१६

जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरञ्च मृण्मये।
वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिदर्शनात्॥१७

त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमुच्यते ।
ऊनद्विवर्षमुभयोः सूतकं मातुरेव हि ॥१८

पित्रोस्तु सूतकं मातुस्तदसृग्दर्शनाद् ध्रुवम् ।
तदहर्न प्रदूष्येत पूर्वेषां जन्मकारणात् ॥१९

अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुद्धयति ।
गर्भस्रावे मासतुल्या निशाः शुद्धेस्तु कारणम् ॥२०

हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षञ्चात्मघातिनाम् ।
प्रोषिते कालशेष स्यात् पूर्णे दत्तोदकं शुचिः ॥२१

ब्राह्मणस्य दशाहं तु भवति प्रेतसूतकम् ।
क्षत्त्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु ।
त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य (प्रेतसूतकमुच्यते) तदर्द्धं न्यायवर्तिनः ॥२२

आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रता देशाद्दशरात्रमतः परम् ॥२३

अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् ।
गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च ॥२४

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्य्यास्वन्यगतासु च ।
निवासराजनि प्रेते तदहः शुद्धिकारणम् ॥२५

गोनृपब्रह्महतानामन्वक्षं चात्मघातिनम् ।
प्रायानाशक शस्त्राग्निविषाद्यैरिच्छतां स्वयम् ।
ब्राह्मणेनानुगन्तव्यो न शूद्रो (हि) न (मृतः) द्विजः क्वचित् ।
अनुगम्याम्भसि स्नात्वा स्पृष्ट्वाग्निं घृतभुक् शुचिः ॥२६

महीपतीनां नाशौचं हतानां विद्युता तथा।
गोब्राह्मणार्थे संग्रामे यस्य नेच्छति भूमिपः ॥२७

ऋत्विजां दीक्षितानाञ्च यज्ञियं कर्म कुर्वताम्।
सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा ॥२८

दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे।
आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥२९

उदक्याशौचिभिः स्नायात् संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत्।
अब्लिङ्गानि जपेच्चैव सावित्रीं मनसा सकृत् ॥३०

कालोऽग्निः कर्म मृद्वायुर्मनोज्ञानं तपो जलम्।
पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽमी शुद्धिहेतवः ॥३१

अकार्यकारिणां दानं वेगो नद्यास्तु शुद्धिकृत्।
शोध्यस्य मृच्च तोयञ्च संन्यासो वै द्विजन्मनाम् ॥३२

तपो वेदविदां क्षान्तिर्विदुषां वर्ष्मणो जलम्।
जपः प्रच्छन्नपापानां मनसः सत्यमुच्यते ॥३३

भूतात्मनस्तपोविद्ये बुद्धेर्ज्ञानं विशोधनम्।
क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता ॥३४

इत्याशौचप्रकरणवर्णनम्।

अथापद्धर्मप्रकरणवर्णनम्।

क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः।
निस्तीर्य तामथात्मानं पावयित्वा न्यसेत् पथि ॥३५

फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः।
तिलौदनरसक्षारान् दधि क्षीरं घृतं जलम् ॥३६

शस्त्रासवं मधूच्छिष्टं मधु लाक्षाश्च बर्हिषः।
मृच्चर्मपुष्पकुतपकेशतक्रविषक्षितीः ॥३७

कौशेयनीलीलवणमांसैकशफसीसकान्।
शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगन्धांस्तथैव च ॥३८

वैश्यवृत्त्यापि जीवन्नो विक्रीणीत कदाचन।
धर्मार्थं विक्रयं नेयास्तिला धान्येन तत्समाः ॥३९

लाक्षालवणमांसानि पतनीयानि विक्रये।
पयोदधि च मद्यञ्च हीनवर्णकराणि च ॥४०

आपद्गतः सम्प्रगृह्णन् भुञ्जानो वा यतस्ततः।
न लिप्येतैनसा विप्रो ज्वलनार्कसमो हि सः ॥४१

कृषिः शिल्पं भृतिर्विद्या कुसीदं शकटं गिरिः।
सेवाऽनूपं नृपो भैक्षमापत्तौ जीवनानि तु ॥४२

बुभुक्षितस्त्र्यहं स्थित्वा धान्य(धन)मब्राह्मणाद्धरेत्।
प्रतिगृह्य तदाख्येयमभियुक्तेन धर्मतः ॥४३

तस्य वृत्तं कुलं शीलं श्रुतमध्ययनं तपः।
ज्ञात्वा राजा कुटुम्बञ्च धर्म्यां वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥४४

इत्यापद्धर्मप्रकरणवर्णनम्।

अथ वानप्रस्थधर्मप्रकरणवर्णनम्।

सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वानुगतो वनम्।
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः सोपासनो (क्षमी)व्रजेत्॥४५
अफालकृष्टेनाग्नींश्च पितॄन्देवातिथींस्तथा।
भृत्यांस्तु तर्पयेत् श्मश्रुजटालोमभृदात्मवान्॥४६
अह्नो मासस्य षण्णां वा तथा संवत्सरस्य वा।
अर्थस्य सञ्चयं कुर्यात् कृतमाश्वयुजे त्यजेत्॥४७
दान्तस्त्रिषवणस्नायी निवृत्तश्च प्रतिग्रहात्।
स्वाध्यायवान् दानशीलः सर्वसत्वहिते रतः॥४८
दन्तोलूखलिकः कालपक्वाशी वाऽश्मकुट्टकः।
श्रौतं स्मार्त्तं फलस्नेहैः कर्म कुर्यात् क्रियास्तथा॥४६
चान्द्रायणैर्नयेत्कालं कृच्छ्रैर्वा वर्त्तयेत्सदा।
पक्षे गते वाप्यश्नीयान्मासे वाऽह्नि वा गते॥५०
स्वप्याद्भूमौ शुची रात्रौ दिवा संप्रपदैर्नयेत्।
स्थानासनविहारैर्वा योगाभ्यासेन वा तथा॥५१
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते शक्त्या वाऽपि तपश्चरेत्॥५२
यः कण्टकैर्वितुदति चन्दनैर्यश्च लिम्पति।
अक्रुद्धोऽपरितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च॥५३
अग्नीन् वाप्यात्मसात् कृत्वा वृक्षावासी मिताशनः।
वानप्रस्थगृहेष्वेव यात्रार्थं भैक्ष्यमाचरेत्॥५४

ग्रामदाहृत्य वा ग्रासानष्टौ भुञ्जीत वाग्यतः।
वायुभक्षः प्रागुदीचीं गच्छेदावर्ष्म संक्षयात् ॥५५

इति वानप्रस्थधर्मप्रकरणवर्णनम्।

अथ यतिधर्मप्रकरणवर्णनम्।

वनाद् गृहाद्वा कृत्वेष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
प्राजापत्यां तदन्ते तानग्नीनारोप्य चात्मनि ॥५६
अधीतवेदो जपकृत् पुत्रवानन्नदोऽग्निमान्।
शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा ॥५६
सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः।
एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥५८
अप्रमत्तश्चरेद्भैक्षं सायाह्ने नाभिलक्षितः।
रहिते भिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्रमलोलुपः ॥५६
यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च।
सलिलैः शुद्धिरेतेषां गोवालैश्चावघर्षणात् ॥६०
सन्निरुध्येन्द्रियग्रामं रागद्वेषौ विहाय च।
भयं हृत्वा च भूतानाममृती भवति द्विजः ॥६१
कर्तव्याशयशुद्धिस्तु भिक्षुकेण विशेषतः।
ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात् स्वातन्त्र्यकरणाय च ॥६२
अवेक्ष्योगर्भवासश्च कर्मजा गतयस्तथा।
आधयो व्याधयः क्लेशा जरारूपविपर्यया: ॥६२

भवो जातिसहस्रेषु प्रियाप्रियविपर्य्ययः ।
ध्यानयोगेन संपश्येत् सूक्ष्म आत्मात्मनि स्थितः ॥६४
नाश्रमः कारणं धर्मे क्रियमाणो भवेद्धि सः ।
अतो यदात्मनोऽपथ्यं परस्य न तदाचरेत् ॥६५
सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः ।
संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सार्व उदाहृतः ॥६६
निःसरन्ति यथा लोहपिण्डात्तस्मात् स्फुलिङ्गकाः ।
सकाशादात्मनस्तद्वदात्मनः प्रभवन्ति हि ॥६७
तत्रात्मा हि स्वयं किञ्चित् कर्म किञ्चित् स्वभावतः ।
करोति किञ्चिदभ्यासाद्धर्माद्धर्मोभयात्मकम् ॥६८
निमित्तमक्षरः कर्त्ता बोद्धा ब्रह्म गुणी वशी ।
अजः शरीरग्रहणात् स जात इति कीर्त्यते ॥६९
सर्गादौ स यथाकाशं वायुं ज्योतिर्जलं महीम् ।
सृजत्येकोत्तरगुणांस्तथादत्ते भवन्नपि ॥७०
आहुत्याप्यायते सूर्यस्तस्माद्वृष्टिरथौषधः ।
तदन्नं रसरूपेण शुक्र(क्ल)त्वमुपगच्छति ॥७१
स्त्रीपुंसयोस्तु संयोगे विशुद्धे शुक्रशोणिते ।
पञ्चधातु स्वयं षष्ठानादत्ते युगपत् प्रभुः ॥७२
इन्द्रियाणि मनः प्राणो ज्ञानमायुः सुखं धृतिः ।
धारणा प्रेरणं दुःखमिच्छाहंकार एव च ॥७३
प्रयत्न आकृतिर्वर्णः स्वरद्वेषौ भवाभवौ ।
तस्यैतदात्मजं सर्वमनादेरादिमिच्छतः ॥७४

प्रथमे मासि संक्लेदभूतो धातुविमूर्च्छितः ।
मास्यर्बुदं द्वितीये तु तृतीयेऽङ्गेन्द्रियैर्युतः ॥७५
आकाशल्लाघवं सौक्ष्म्यं शब्दं श्रोत्रं बलादिकम् ।
वायोस्तु स्पर्शनं चेष्टां व्यूहनं रौक्ष्यमेव च ॥७६
पित्त.त्तु (अग्नेस्तु) दर्शनं पक्तिमौष्ण्यं रूपं प्रकाशिताम् ।
रसात्तु रसनं शैत्यं स्नेह क्लेदं समार्दवम् ॥७७
भूमेर्गन्धं तथा घ्राणं गौरवं मूर्तिमेव च ।
आत्मा गृह्णात्यजः सर्वं तृतीये स्पन्दते ततः ॥७८
दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् ।
वैरूप्यं मरणं वाऽपि तस्मात् कार्य्यं प्रियं स्त्रियाः ॥७९
स्थैर्य्यं चतुर्थं त्वङ्गानां पञ्चमे शोणितोद्भवः ।
षष्ठे बलस्य वर्णस्य नखरोम्णाञ्च सम्भवः ॥८०
मनश्चैतन्ययुक्तोऽसौ नाड़ीस्नायुशिरायुतः ।
सप्तमे चाष्टमे चैव त्वङ्मांसस्मृतिमानपि ॥८१
पुनर्द्धात्रीं पुनर्गर्भमोजस्तस्य प्रधावति ।
अष्टमे मास्यतो गर्भो जातः प्राणैर्वियुज्यते ॥८२
नवमे दशमे वाऽपि प्रबलै सूतिमारुतैः ।
निःसार्य्यते वाण इव यन्त्रच्छिद्रेण सज्वरः ॥८२
तस्य वो(षो)ढा शरीराणि षट्त्वचो धारयन्ति च ।
षड़ङ्गानि तथास्थ्नाञ्च सह षष्ठ्या शतत्रयम् ॥८४
स्थालैः सह चतुःषष्टिर्दन्ता वै विंशतिर्नखाः ।
पाणिपादशलाकाश्च तासां स्थानचतुष्टयम् ॥८५

षष्ठ्यङ्गुलीनां द्वे पाष्ण्योर्गुल्फेषु च चतुष्टयम्।
चत्वार्य्यरत्निकास्थीनि जङ्घयोस्तावदेव तु ॥८६
द्वे द्वे जानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे।
अक्षः स्थालूषके श्रोणीफलके च विनिर्दिशेत् ॥८७
भगास्थेकं तथा पृष्ठे चत्वारिंशच्च पञ्च च।
ग्रीवा पञ्चदशास्थिः स्याज्जत्र्वेकैकं तथा हनुः ॥८८
तन्मूले द्वे ललाटाक्षिगण्डनासाघनास्थिका।
पार्श्वकाः स्थालकैः सार्द्धमर्वुदैश्च द्विसप्ततिः ॥८९
द्वौ शङ्खकौ कपालानि चत्वारि शिरसस्तथा।
उरः सप्तदशास्थीनि पुरुषस्यास्थिसंग्रहः ॥९०
गन्धरूपरसस्पर्शशब्दाश्च विषयाः स्मृताः।
नासिका लोचने जिह्वा त्वक् श्रोत्रं चेन्द्रियाणि च ॥९१
हस्तौ पायुरुपस्थश्च वाक्पादौ चेति पञ्च वै।
कर्मेन्द्रियाणि जानीयान्मनश्चैवोभयात्मकम् ॥९२
नाभिरोजो गुदं शुक्रं शोणितं शङ्खकौ तथा।
मूर्द्धांसकण्ठहृदयं प्राणस्यायतनानि तु ॥९३
वपावसावहननं नाभिः क्लोम यकृत् प्लिहा।
क्षुद्रान्त्रं वृक्कौ वस्तिः पुरीषाधानमेव च ॥९४
आमाशयोऽथ हृदयं स्थूलान्त्रं गुदमेव च।
उदरञ्च गुदः कोष्ठ्यो विस्तारोऽयमुदाहृतः ॥९५
कनीनिके साक्षिकूटे शष्कुली कर्णपत्रकौ।
कर्णौ शङ्खौ भ्रुवौ दन्तावेष्टावोष्ठौ ककुन्दरौ ॥९६

वङ्क्षणौ वृषणौ वृक्कौ श्लेष्मसङ्घातजौ स्तनौ ।
उपजिह्वा स्फिचौ बाहू जङ्घोरुषु च पिण्डिका ॥९७

तालूदरं वस्ति शीर्षं चिबुके गलशुण्डिके ।
अवटुश्चैवमेतानि स्थानान्यत्र शरीरके ॥९८

अक्षि(वर्त्म)कर्णचतुष्कञ्च पद्धस्तहृदयानि च ।
नवच्छिद्राणि तान्येव प्राणस्यायतनानि तु ॥९९

शिराः शतानि सप्तैव नवस्नायुशतानि च ।
धमनीनां शते द्वे च पेशी पञ्चशतानि च ॥१००

एकोनत्रिंशल्लक्षाणि तथा नवशतानि च ।
षट्पञ्चाशच्च जानीत शिराधमनिसंज्ञिताः ॥१०१

त्रयोलक्षास्तु विज्ञेयाः श्मश्रुकेशाः शरीरिणाम् ।
सप्तो(अष्टो)त्तरं मर्म्मशतं द्वे च सन्धिशते तथा ॥१०२

रोम्णां कोट्यश्च पञ्चाशच्चतस्रः कोट्य एव च ।
सप्तषष्टिस्तथा लक्षाः सार्द्धाः स्वेदायनैः सह ॥१०३

वयवीयैर्विगण्यन्ते विभक्ताः परमाणवः ।
यद्यप्येकोऽनुवेदेषां भावनाञ्चैव संस्थितिम् ॥१०४

रसस्य नव विज्ञेया जलस्याञ्जलयो दश ।
सप्तैव तु पुरीषस्य रक्तस्याष्टौ प्रकीर्तिताः ॥१०५

षट्श्लेष्मा पञ्च पित्तञ्च चत्वारो मूत्रमेव ।
वसा त्रयो द्वौ तु मेदो मज्जैकाऽर्द्धन्तु मस्तके ॥१०६

श्लेष्मौजसस्तावदेव रेतसस्तावदेव तु ।
इत्येतदस्थिरं वर्ष्म यस्य मोक्षाय कृत्यसौ ॥१०७

द्वासप्तति सहस्राणि हृदयादभिनिःसृता।
हिताहितानामनाड्यस्तासां मध्ये शशिप्रभम् १०८
मण्डलं तस्य मध्यस्थ आत्मा दीप इवाचलः।
स ज्ञेयस्तं विदित्वेह पुनरायतने न तु ॥१०९
ज्ञेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान्।
योगशास्त्रञ्च मत्प्रोक्तं ज्ञेयं योगमभीप्सता ॥११०
अनन्यविषयं कृत्वा मनोबुद्धिस्मृतीन्द्रियम्।
ध्येय आत्मा स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत् प्रभुः ॥१११
यथाविधानेन पठन् साम गायत्यविच्युतम्।
सावधानस्तदभ्यासात् परं ब्रह्माधिगच्छति ॥११२
अपरान्तकमुल्लोप्यं मद्रकं प्रकरीं तथा।
औवेणकं सरोविन्दुमुत्तरं गीतकानि च ॥११२
ऋग्गाथा पाणिका दक्षविहिता ब्रह्मगीतिकाः।
ज्ञेयमेतत्तदभ्यासकरणान्मोक्षसंज्ञितम् ॥११४
वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ॥११५
गीतज्ञो यदि(योगेन)गीतेन नाप्नोति परमं पदम्।
रुद्रस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते ॥११६
अनादिरात्मा कथितस्तस्यादिस्तु शरीरकम्।
आत्मनश्च जगत् सर्वं जगतश्चात्मसम्भवः ॥११७
कथमेतद्विमुह्यामः सदेवासुरमानवम्।
जगदुद्भूतमात्मा च कथं तस्मिन् वदस्व नः ॥११८

मोहजालमपास्येदं पुरुषो दृश्यते हि यः।
सहस्रकरपन्नेत्रः सूर्यवर्चाः सहस्रशः ॥११९
स आत्मा चैव यज्ञश्च विश्वरूपः प्रजापतिः।
विराजः सो(म)ऽन्नरूपेण यज्ञत्वमुपगच्छति ॥१२०
यो द्रव्यदेवतात्यागसम्भूतो रस उत्तमः।
देवान् सन्तर्प्य स रसो यजमानं फलेन च ॥१२१
संयोज्य वायुना सोमं नीयते रश्मिभिस्ततः।
ऋग्यजु सामविहितं सौरं धामोपनीयते ॥१२२
स्वमण्डलादसौ सूर्य्यः सृजत्यमृतमुत्तमम्।
यज्जन्म सर्वभूतानामशनानशनात्मनाम् ॥१२३
तस्माद(न्नात्)न्नात पुनर्यज्ञ पुनरन्नं पुनः क्रतुः।
एवमतदनाद्यन्तं चक्रं सम्परिवर्तते ॥१२४
अनादिरात्मा सम्भूतिर्विद्यते नान्तरात्मनः।
समवायी तु पुरुषो मोहेच्छाद्वेषकर्म्मजः ॥१२५
सहस्रात्मा मया यो व आदिदेव उदाहृतः।
मुखबाहूरुपज्जाः स्युस्तस्य वर्णा यथाक्रमात् ॥१२६
पृथिवी पादतस्तस्य शिरसो द्यौरजायत।
प्राणा दिशः श्रोत्रात् स्पर्शा(त्वचो)द्वायुर्मुखाच्छिखी ॥१२७
मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षुषश्च दिवाकरः।
जघनादन्तरिक्षञ्च जगच्च सचराचरम् ॥१२८
यद्येवं स कथं ब्रह्मन् पापयोनिषु जायते।
ईश्वरः स कथं भावरनिष्टैः संप्रयुज्यते ॥१२९

करणैरन्वितस्यापि पूर्वज्ञानं कथञ्च न।
वेत्ति सर्वगतां कस्मात् सर्वगोऽपि न वेदनाम् ॥१३०
अन्त्यपक्षिस्थावरतां मनोवाक्कायकर्म्मजैः।
दोषैः प्रयाति जीवोऽयं भवं योनि(जाति) शतेषु च ॥१३१
अनन्ताश्च यथा भावाः शरीरेषु शरीरिणाम्।
रूपाण्यपि तथैवेह सर्वयोनिषु देहिनाम् ॥१३२
विपाकः कर्म्मणां प्रेत्य केषाञ्चिदिह जायते।
इह चामुत्र चैकेषां भावस्तत्र प्रयोजनम् ॥१३३
परद्रव्याण्यभिध्यायं स्तथा निष्टानि चिन्तयन्।
वितथाभिनिवेशी च जायन्तेऽन्त्यासु योनिषु ॥१३४
पुरुषोऽनृतवादी च पिशुनः पुरुषस्तथा।
अनिबद्ध प्रलापी च मृगपक्षिषु जायते ॥१३५
अदत्तादान निरतः परदारोपसेवकः।
हिंसकश्चाविधानेन स्थावरेष्वभिजायते ॥१३६
आत्मज्ञः शौचवान् दान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः।
धर्म्मकृद् वेदविद्याभिः सात्त्विको देवयोनिषु १३७
असत्कार्यरतोऽधीर आरम्भी विषयी च यः।
स राजगो मनुष्येषु मृतोजन्माधिगच्छति ॥१३८
निद्रालु क्रूरकृल्लुब्ध नास्तिको याचकस्तथा।
प्रमादवान् भिन्नवृत्तोभवेत्तिर्य्यक्षु तामसः ॥१३९
रजसा तमसा चैव समाविष्टो भ्रमन्निह।
भावैरनिष्टैः संयुक्तः संसारं प्रतिपद्यते ॥१४०

मलिनो हि यथादर्शो रूपालोकस्य न क्षमः ।
तथाऽविपक्वकरण आत्मा ज्ञानस्य न क्षमः ॥१४१
कटूर्वारौ यथाऽपक्वे मधुरः सन् रसोऽपि न ।
प्राप्यते ह्यात्मनि तथा नापक्वकरणे ज्ञाता ॥४२
सर्व्वाश्रयां निजे देहे देही विन्दति वेदनाम् ।
योगी युक्तश्च सर्व्वेषां यो नावाप्नोति वेदनाम् ॥१४३
आकाशमेक हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत् ।
तथात्मैकोऽप्यनेकस्तु जलाधारेष्विवांशुमान् ॥१४४
ब्रह्मखानिलतेजांसि जलं भूश्चेति धातवः ।
इमे लोका एष चात्मा तस्माच्च सचराचरम् ॥१४५
गृह(मृद्)दण्डचक्रसंयोगात् कुम्भकारो यथा घटम् ।
करोति तृणमृत्काष्ठैर्गृहं वा गृहकारकः ॥१४६
हेममात्रमुपादाय रूप्यं (रूपं) वा हेमकारकः ।
निजलालासमायोगात् कोशं वा कोशकारकः ॥१४७
कारणान्येवमादाय तासु तास्विह योनिषु ।
सृजत्यात्मानमात्मा च सम्भूय करणानि च ॥१४८
महाभूतानि सत्यानि यथात्मापि तथैव हि ।
कोऽन्यथैकेन नेत्रेण दृष्टमन्येन पश्यति ॥१४९
वाचं वा को विजानाति पुनः संश्रुत्य संश्रुताम् ।
अतीतार्थस्मृतिः कस्य को वा स्वप्नस्य कारकः ॥१५०
जातिरूपवयोवृत्तिविद्यादिभिरहङ्कृतः ।
शब्दादिविषयो(सक्तः)द्योगं कर्म्मणा मनसा गिरा ॥१५१

स सन्दिग्धमतिः कर्म्मफलमस्ति न वेति वा।
विप्लुतः सिद्धमात्मानमसिद्धोऽपि हि मन्यते ॥१५२
मम दारसुतामात्या अहमेषामिति स्थितः।
हिताहितेषु भावेषु विपरीतमतिः सदा ॥१५३
ज्ञेऽज्ञे प्रकृतौ चैव विकारे वाऽविशेषवान्।
अनाशका(ग्निप्रवेश)नलापातजलप्रपतनोद्यमी ॥१५४
एवं वृत्तोऽविनीतात्मा वितथाभिनिवेशवान्।
कर्म्मणा द्वेषमोहाभ्यामिच्छया चैव बध्यते। १५५
आचार्य्योपासनं वेदशास्त्र(थ्याथे)षु विवेकिता।
तत्कर्म्मणामनुष्ठानं सङ्गः सद्भिर्गिरः शुभाः ॥१५६
स्त्र्यालोकालम्भविगमः सर्वभूतात्मदर्शनम्।
त्यागः परिग्रहाणाञ्च जीर्णकाषायधारणम् ॥१५७
विषयेन्द्रियसंरोधस्तन्द्रालस्यविवर्जनम्।
शरीरपरिसं(ख्यानं)स्थानं प्रवृत्तिष्वघदर्शनम् ॥१५८
नीरजस्तमता सत्त्वशुद्धिर्निःस्पृहता शमः।
एतैरुपायैः संशुद्धः सत्वयुक्तोऽमृतीभवेत् ॥१५९
तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात् सत्वयोगात् परिक्षयात्।
कर्म्मणा सन्निकर्षाच्च सतां योगः प्रवर्तते ॥१६०
शरीरसंक्षये यस्य मनः सत्त्वस्थमीश्वरम्।
अविप्लुतस्मृतिः सम्यक् स जातिस्मरतामियात् ॥१६१
यथा हि भरतो वर्णैर्वर्तयत्यात्मनस्तनुम।
नानारूपाणि कुर्व्वाणस्तथात्मा कर्म्मजस्तनुम् ॥१६२

कालकर्मात्मबीजानां दोषैर्मातुस्तथैव च ।
गर्भस्य वैकृतं दृष्टम(ना)ङ्गहीनादि जन्मतः ॥१६३

अहङ्कारेण मनसा गत्या कर्मफलेन च ।
शरीरेण च नात्मायं मुक्तपूर्वः कथञ्चन ॥१६४

दाता सत्यः क्षमी प्राज्ञः शुभकर्मा जितेन्द्रियः ।
तपस्वी योगशीलश्च न रोगैः परिभूयते ।
वर्त्याधारस्नेहयोगाद् यथा दीपस्य संस्थितिः ।
विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ॥१६५

अनन्ता रश्मयस्तस्य दीपवद् यः स्थितो हृदि ।
सितासिताः कद्रुनीलाः कपिलाः पीतलोहिताः ॥१६६

ऊर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् ।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परां गतिम् ॥१६७

यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्द्धमेव व्यवस्थितम् ।
तेन देवशरीराणि स धामानि प्रपद्यते ॥१६८

येऽनेकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयोऽस्य मृदुप्रभाः ।
इह कर्मोपभोगार्थस्तैः संसरति सोऽवशः ॥१६९

वेदैः शास्त्रैः सविज्ञानैर्जन्मना मरणेन च ।
आध्या गत्या तथागत्या सत्येन ह्यनृतेन च ॥१७०

श्रेयसा सुखदुःखाभ्यां कर्मभिश्च शुभाशुभैः ।
निमित्तशाकुनज्ञानैर्ग्रहसंयोगजैः फलैः ॥१७१

तारानक्षत्रसञ्चारैर्जागरैः स्वप्नजैरपि ।
आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैस्तथा ॥१७२

मन्वन्तरैर्युगप्राप्त्या मन्त्रौषधिबलैरपि ।
वित्तात्मानं विद्यमानं कारणं जगत(सदा)स्तथा ॥१७३

अहङ्कारः स्मृतिर्मेधा द्वेषो बुद्धिः सुखं धृतिः ।
इन्द्रियान्तरसञ्चार इच्छाधारणजीविते ॥१७४
स्वर्गः स्वप्नश्च भावानां प्रेरणं मनसो गतिः ।
निमेषश्चेतना यत्न आदानं पाञ्चभौतिकम् ॥१७५
यत एतानि दृश्यन्ते लिङ्गानि परमात्मनः ।
तस्मादस्ति परो देहादात्मा सर्वग ईश्वरः ॥१७६
बुद्धीन्द्रियाणि सार्थानि मनः कर्मेन्द्रियाणि च ।
अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि ॥१७७
अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञः क्षेत्रस्यास्य निगद्यते ।
ईश्वरः सर्वभूतस्थः सन्नसन् सदसच्च (सः)यः ॥१७८
बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्तात्ततोऽहङ्कारसम्भवः ।
तन्मात्रादीन्यहङ्कारा(तस्मात्खादीनिजायन्ते)देकोत्तरगुणानि च ॥१७९
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तद्गुणाः ।
यो यस्मान्निःसृतश्चैषां (यो यस्मिन्नाश्रिततेस्यौं)सतस्मिन्नेव लीयते ॥१८०
यथात्मानं सृजत्यात्मा तथा वः कथितो मया ।
विपाकात्त्रिप्रकाराणां कर्मणामीश्वरोऽपि सन् ॥१८१
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्तस्यैव कीर्तिताः ।
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद् भ्राम्यते हि सः ॥१८२
अनादिरादिमांश्चैव स एव (य एष) पुरुषः परः ।
लिङ्गेन्द्रियग्राह्यरूपः सविकार उदाहृतः ॥१८३
पितृयाणोऽजवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चान्तरम् ।
तेनाग्निहोत्रिणो यान्ति स्वर्गकामा (प्रजाकामा)दिवं प्रति ॥१८४

ये च दानपराः सम्यगष्टाभिश्च गुणैर्युताः ।
तेऽपि तेनैव मार्गेण (गच्छन्ति) सत्यव्रतपरायणाः ॥१८५

तत्राष्टाशीतिसाहस्रा मुनयो गृहमेधिनः ।
पुनरावर्तिनो बीजभूता धर्मप्रवर्तकाः ॥१८६

सप्तर्षिनागवीथ्यन्तर्देवलोकसमाश्रिताः ।
तावन्त एव मुनयः सर्वारम्भविवर्जिताः ॥१८७

तपसा ब्रह्मचर्य्येण सङ्गत्यागेन मेधया ।
तत्रैव तावत्तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥१८८

यतो वेदाः पुराणञ्च विद्योपनिषदस्तथा ।
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यच्च किञ्चन वाङ्मयम् ॥१८९

वेदानुवचनं यज्ञो ब्रह्मचर्य्यं तपो दमः ।
श्राद्धोपवासः स्वातन्त्र्यमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥१९०

स ह्याश्रमै(र्निदिध्यास्यः)र्विजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेव तु ।
द्रष्टव्यस्त्वथ मन्तव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः ॥१९१

य एवमेनं विन्दन्ति ये चारण्यकमाश्रिताः ।
उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः ॥१९२

क्रमात्ते सम्भवन्त्यर्चिरहः शुक्लं तथोत्तरम् ।
अयनं देवलोकञ्च सवितारं सवैद्युतम ॥१९३

ततस्तान् पुरुषोऽभ्येत्य मानसो ब्रह्मलौकिकान् ।
करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते ॥१९४

यज्ञेन तपसा दानैर्ये हि स्वर्गजितो नराः ।
धूमं निशां कृष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च ॥१९५

पितृलोकं चन्द्रमसं वायुं (नभो)वृष्टिं जलं महीम्।
क्रमात्ते सम्भवन्तीह पुनरेव व्रजन्ति च ॥१९६

एतद् यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मवान्।
दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत् कीटोऽथवा कृमिः ॥१९७
ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्येतरं करम्।
उत्तानं किञ्चिदुन्नम्य मुखं विष्टभ्य चोरसा ॥१९८
निमीलिताक्षः सत्वस्थो दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन्।
तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्य सुनिश्चलः ॥१९९
सन्निरुध्येन्द्रियग्रामं नातिनीचोच्छ्रितासनः।
द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि प्राणायाममुपक्रमेत् ॥२००
ततो ध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत् प्रभुः।
धारयेत्तत्र चात्मानं धारणां धारयन् बुधः ॥२०१
अन्तर्द्धानं स्मृतिः कान्तिर्दृष्टिः श्रोत्रज्ञता तथा।
निजं शरीरमुत्सृज्य परकायप्रवेशनम् ॥२०२
अर्थानां छन्दतः सृष्टिर्योगसिद्धेस्तु लक्षणम्।
सिद्धे योगे त्यजन्देहममृतत्वाय कल्पते ॥२०३
अथवाप्यभ्यसन् वेदं न्यस्तकर्मा वने (सुते) वसन्।
अयाचिताशी मितभुक् परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२०४
न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः।
श्राद्धकृत् सत्यवादी च गृहस्थोऽपि हि मुच्यते ॥२०५

इति यति धर्म प्रकरणवर्णनम्।

अथ प्रायश्चित्तधर्मप्रकरणवर्णनम्।

महापातकजान् घोरान्नरकान् प्राप्य गर्हितान्।
कर्मक्षयात् प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह ॥२०६
मृगश्वशूकरोष्ट्राणां ब्रह्महा योनिमृच्छति।
खरपुक्(ल्कस)श वेनानां सुरापो नात्रसंशयः ॥२०७
कृमिकीटपतङ्गत्वं स्वर्णहारी समाप्नुयात्।
तृणगुल्मलतात्वञ्च क्रमशो गुरुतल्पगः ॥२०८
ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात् सुरापः श्यावदन्तकः।
हेमहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥२०९
योषेन संवसत्येषां सप्तलिङ्गोऽभिजायते।
(यो येन संविपत्येषां सतल्लिङ्गोऽभि जायते)
अन्नहर्तामयावी स्यान्मूको वागपहारकः ॥२१०
धान्यमिश्रोऽतिरिक्ताङ्ग पिशुनः पूतिनासिकः।
तैलहृत्तैलपायी स्यात् पूतिवक्त्रस्तु सूचकः ॥२११
परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च।
अरण्ये निर्ज्ज(ले)ने घोरे(देशे)भवति ब्रह्मराक्षसः ॥२१२
हीनजातौ प्रजायन्ते पररत्नापहारकः।
पत्रशाकं शिखी हृत्वा गन्ध शुच्छुन्दरिः शुभान् ॥२१३
मूषिको धान्यहारी स्याद्यानमुष्ट्रः फलं कपिः।
जलं प्लवः (अजः पशुं) पयः काको गृहकारी ह्युपस्करम् ॥२१४
मधु दंशः पलं गृध्रो गां गोधाग्नि वकस्तथा।
श्वित्री वस्त्रं श्वा रसन्तु चीरी लवणहारकः ॥२१५

प्रदर्शनार्थमेतत्तु मयोक्तं स्तेयकर्मणि ।
द्रव्यप्रकारा हि यथा तथैव प्राणिजातयः ॥२१६

यथाकर्मफलं प्राप्य तिर्यक्त्वं कालपर्ययात् ।
जायन्ते लक्षणभ्रष्टा दरिद्राः पुरुषाधमाः ॥२१७

ततो निष्कल्मषीभूताः कुले महति भोगिनः ।
जायन्ते विद्ययोपेता धनधान्यसमन्विताः ॥२१८

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥२१९

तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥२२०

प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पापेषु निरता नराः ।
अपश्चात्तापिनः कष्टान्नरकान् यान्ति दारुणान् ॥२२१

तामिस्रं लोहशङ्कुञ्च महानिरयशाल्मली ।
रौरवं कुड्मलं पूतिमृत्तिकं कालसूत्रकम् ॥२२२

संघातं लोहितोदञ्च सविषं सम्प्रतापनम् ।
महानरककाकोलं संजीवनमहा(नदी) पथम् ॥२२३

अवीचिमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकं तथैव च ।
असिपत्रवनञ्चैव तपनञ्चैकविंशकम् ॥२२४

महापातकजैर्घोरैरुपपातकजैस्तथा ।
अन्विता यान्त्यचरितप्रायश्चित्ता नराधमाः ॥२२५

प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदज्ञानकृतं भवेत् ।
कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादिह जायते ॥२२६

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनोगुरुतल्पग एव च।
एते महापातकिनो यश्च तैः (संपिबेत्समाम्)सह संवसेत् ॥२२७
गुरुणामत्यधिक्षेपो वेदनिन्द्या सुहृद्वधः।
ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयमधीतस्य च नाशनम् ॥२२८
निषिद्धभक्षणं जैह्म्यमुत्कर्षञ्च वचोऽनृतम्।
रजस्वलामुखास्वादः सुरापानसमानि तु ॥२२९
अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणं तथा।
निक्षेपस्य च सर्वं हि सुवर्णस्तेयसम्मितम् ॥२३०
सखिभार्याकुमारीषु स्वयोनिस्वन्त्यजासु च।
सगोत्रासु सुतस्त्रीषु गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥२३१
पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्नुषामपि।
मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्य्यतनयां तथा ॥२३२
आचार्य्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः।
छित्त्वा लिङ्गं वधस्तस्य सकामायाः स्त्रिया अपि ॥२३३
गोबधो व्रात्यया स्तेयमृणानाञ्चानपक्रिया।
अनाहिताग्निताऽपण्यविक्रयः परिवेदनम् ॥२३४
भृतादध्ययनादानं भृतकाध्यापनं तथा।
पारदार्य्यं पारिवित्त्यं वार्द्धु(ध्यं)ष्यं लवणक्रिया ॥२३५
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रबधो निन्दितार्थोपजीवनम्।
नास्तिक्यं व्रतलोपश्च सुतानाञ्चैव विक्रयः ॥२३६
धान्यरूप्यपशुस्तेयमयाज्यानाञ्च याजनम्।
पितृमातृगुरुत्यागस्तडागारामविक्रयः ॥२३७

कन्यासंदूषणञ्चैव परिवेदकयाजनम्।
कन्याप्रदानं तस्यैव कौटिल्यं व्रतलोपनम् ॥२३८

आत्मार्थं च क्रियारम्भो मद्यस्त्रीनिषेवणम्।
स्वाध्यायाग्निसुतत्यागो बान्धवत्याग एव च ॥२३६

इन्धनार्थं द्रुमच्छेदः स्त्रीहिंस्रौषधिजीवनम्।
हिंस्रयन्त्रविधानञ्च व्यसनान्यात्मविक्रयः ॥२४०

असच्छास्त्राधिगमनमाकरेष्वधिकारिता।
भार्याया विक्रयश्चैषामेकैकमुपपातकम् ॥२४१

शिरःकपाली ध्वजवान् भिक्षाशी कर्म वेदयन्।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक् शुद्धिमाप्नुयात् ॥२४२

ब्राह्मणस्य परित्राणाद्गवां द्वादशकस्य वा।
तथाश्वमेधावभृथस्नानाद्वा शुद्धिमाप्नुयात् ॥२४३

दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणं गामथापि वा।
दृष्ट्वा पथि निरातङ्कं कृत्वा वा ब्रह्महा शुचिः ॥२४४

आनीय विप्रसर्वस्वं हृतं घातित एव वा।
तन्निमित्तं क्षतः शस्त्रैर्जीवन्नपि विशुद्ध्यति ॥२४५

लोमभ्यः स्वाहेत्येवं हि लोमप्रभृति वै तनुम्।
मज्जान्तं जुहुयाद्वापि मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् ॥२४६

संग्रामे वा हतो लक्ष्यभूतः शुद्धिमवाप्नुयात्।
मृतकल्पः प्रहारार्तो जीवन्नपि विशुद्ध्यति ॥२४७

अरण्ये नियतो जप्त्वा त्रिकृत्वोवेदसंहिताम्।
मुच्यते वा मिताशीत्वा प्रतिश्रोतः सरस्वतीम् ॥२४८

पात्रे धनं वा पर्य्याप्तं दत्त्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ।
आदातुश्च विशुद्ध्यर्थमिष्टिर्वैश्वानरी स्मृता ॥२४९

यागस्थक्षत्रविड्घाती चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ।
गर्भहा च यथावर्णं तथात्रेयीनिषूदकः ॥२५०

चरेद् व्रतमहत्वापि घातार्थञ्चेत् समागतः ।
द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे व्रतमादिशेत् ॥२५१

सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्निसन्निभम् ।
सुरापोऽन्यतमं पीत्वा मरणाच्छुद्धिमृच्छति ॥२५२

बालवासा जटी वाऽपि ब्रह्महत्याव्रतञ्चरेत् ।
पिण्याकं वा कणां वाऽपि भक्षयेत्त्रिसमां निशि ॥२५३

अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतो विण्मूत्रमेव वा ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥२५४

पतिलोकं न सा याति ब्राह्मणी या सुरां पिबेत् ।
इहैव सा शुनी गृध्री सूकरी चाभिजायते ॥२५५

ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु राज्ञे मूसलमर्पयेत् ।
स्वकर्म ख्यापयंस्तेन हतो मुक्तोऽपि वा शुचिः ॥२५६

अनिवेद्य नृपे शुद्ध्यै सुरापव्रतमाचरेत् ।
आत्मतुल्यं सुवर्णं वा दद्याद्वा विप्रतुष्टिकृत् ॥२५७

तप्तेऽयः शयने सार्द्धमायस्या योषिता स्वपेत् ।
गृहीत्वोत्कृत्य वृषणौ नैर्ऋत्याञ्चोत्सृजेत्तनुम् ॥२५८

प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समां वा गुरुतल्पगः ।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसन् वेदसंहिताम् ॥२५९

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः ।
ब्राह्मण्येतान् यदा गच्छेत् कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥
श्वपाकं पुल्कसं म्लेच्छं चण्डालं पतितं तथा ।
क्षत्तारन्तु ब्राह्मणी गत्वा चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥

एभिस्तु संवसेद् (संपिवेद्) यो वै वत्सरं सोऽपि तत्समः ।
कन्यां समुद्वहेदेषां सोपवासामकिञ्चनाम् ॥२६०
चान्द्रायणं चरेत् सर्वानपकृष्टान्निहत्य तु ।
शूद्रोऽधिकारहीनोऽपि कालेनानेन शुध्यति ॥२६१
मिथ्याभिशंसिनो दोषो द्विगुणोऽनृतवादिनः ।
मिथ्याभिशस्तपापञ्च समादत्ते मृषा वदन् ॥२६२
पञ्चगव्यं पिबेद् गोघ्नो मासमासीत संयतः ।
गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥२६३
कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रञ्च चरेद्वापि समाहितः ।
दद्यात्त्रिरात्रं वोपोष्य वृषभैकादशास्तु गाः ॥२६४
उपपातकशुद्धिः स्यादेवञ्चान्द्रायणेन वा ।
पयसा वाऽपि मासेन पराकेणाथवा पुनः २६५
ऋषभैकसहस्रा गा दद्यात् क्षत्रवधे पुमान् ।
ब्रह्महत्याव्रतं वाऽपि वत्सरत्रितयं चरेत् ॥२६६
वैश्यहाब्दं चरेदेतद्दद्याद्वैकशतं गवाम् ।
षण्मासान् शूद्रहा ह्येतद्दद्याद्धेनुर्दशापि वा ॥२६७
दुर्वृत्तां ब्रह्मविट्क्षत्त्रशूद्रयोषाः प्रमाप्य तु ।
दृतिं धनुर्वस्तमविं क्रमाद्दद्याद्विशुद्धये ॥२६८
अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतञ्चरेत् ।
अस्थिमतां सहस्रञ्च तथानस्थिमतामनः २६९
मार्ज्जारगोधानकुलमण्डूकश्वपतत्रिणः ।
हत्वा त्र्यहं पिबेत् क्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकं चरेत् ॥२७०

गजे नीलवृषाः पञ्च शुके वत्सो द्विहायनः ।
खराजमेषेषु वृषो देयः क्रौञ्चे त्रिहायनः ॥२७१

हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखण्डिनः ।
भासञ्च हत्वा दद्याद् गामक्रव्यादस्तु वत्सिकाम् ॥२७२

उरगेष्वायसो दण्डः पण्डके त्रपु(माषकः)सीसकम् ।
कोले घृतघटो देय उष्ट्रे गुञ्जा हयेऽशुकम् ॥२७३

तित्तिरौ तु तिलेद्रोणं गजादीनामशक्नुवन् ।
दानं दातुञ्चरेत् कृच्छ्रमेकैकस्य विशुद्धये ॥२७४

फलपुष्पान्नरसजसत्वघाते घृताशनम् ।
किञ्चित्सास्थिवधे देयं प्राणायामस्त्वनस्थिके ॥२७५

वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने जप्यमृक्शतम् ।
स्यादोषधिवृथाच्छेदे क्षीराशी गोनुगोदिनम् ॥२७६

पुंश्चलीवानरखरैर्दष्टश्चोष्ट्रादिवायसैः ।
प्राणायामं जले कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२७७

यन्मेद्यरेत इत्याभ्यां स्कन्नं रेतोऽनुमन्त्रयेत् ।
स्तनान्तरं भ्रुवोर्म्मध्यं तेनानामिकया स्पृशेत् ॥२७८

मयि तेज इतिच्छायां स्वां दृष्ट्वाम्बुगतां जपेत् ।
गायत्रीमशुचौ दृष्टे चापल्ये चानृतेऽपि च ॥२७९

अवकीर्णी भवेद् गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम् ।
गर्द्दभं पशुमालभ्य नैर्ऋत्यं स विशुध्यति ॥२८०

भैक्षाग्निकार्य्यं त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमनातुरः ।
कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् ॥२८१

उपस्थानं ततः कुर्य्यात् सं मा सिञ्चत्वनेन तु।
मधुमांसाशने कार्य्यः कृच्छ्रः शेषव्रतानि च ॥२८२

प्रतिकूलं गुरोः कृत्वा प्रसाद्यैव विशुध्यति।
कृच्छ्रत्रयं गुरुः कुर्य्यान्म्रियेत प्रहितो यदि ॥२८३

औषधान्नप्रदानाद्यैर्भिषग्योगाद्युपक्रमैः।
क्रियमाणोपकारे तु मृते विप्रे न पातकम्।
विपाके गोवृषाणाञ्च भेषजाग्निक्रियासु च ॥२८४

महापापोपपापाभ्यां योऽभिशंसेन्मृषा परम्।
अब्भक्षो मासमासीत स जापी नियतेन्द्रियः ॥२८५

अभिशस्तो मृषा कृच्छ्रं चरेदाग्नेयमेव वा।
निर्वपेच्च पुरोडाशं वायव्यं पशुमेव वा ॥२८६

अनियुक्तो भ्रातृजायां गच्छंश्चान्द्रायणञ्चरेत्।
त्रिरात्रान्ते घृतं प्राश्य गत्वोदक्यां विशुद्ध्यति ॥२८७

त्रीन् कृच्छ्रानाचरेद् व्रात्ययाजकोऽभिचरन्नपि।
वेदप्लावी यवाश्यब्दं त्यक्त्वा च शरणागतम् ॥२८८

गोष्ठे वसन् ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रतः।
गायत्रीजापनिरतो मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥२८९

प्राणायामी जले स्नात्वा खरयानोष्ट्रयानगः।
नग्नः स्नात्वा च (सुप्त्वा)भुक्त्वा च गत्वा चैव दिवा स्त्रियम् २९०

गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः।
हत्वावबध्य वा क्षिप्रं प्रसाद्योपवसेद्दिनम् ॥२९१

विप्रदण्डोद्यमे कृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रो निपातने।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते २९२

देशं कालं वयः शक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः।
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद् यत्र चोक्ता न निष्कृतिः ॥२९३

दासीकुम्भं बहिर्ग्रामान्निनयेयुः स्वबान्धवाः।
पतितस्य वहिष्कुर्य्युः सर्वकार्य्येषु चैव तम् ॥२९४

चरितव्रत आयाते निनयेरन्नवं घटम्।
जुगुप्सेरन्न चाप्येनं संपिबेयुश्च सर्वशः ॥२९५

पतितानामेष एव विधिः स्त्रीणां प्रकीर्तितः।
वासो गृहान्तिके देयमन्नं वासः सरक्षणम् ॥२९६

नीचाभिगमनं गर्भपातनं भर्तृहिंसनम्।
विशेषपतनीयानि स्त्रीणामेतान्यपि ध्रुवम् ॥२९७

शरणागतबालस्त्रीहिंसकान् सं(पिबेन्न)वसेन तु।
चीर्णव्रतानपि सदा कृतघ्नसहितानिमान् ॥२९८

घटेऽपवर्जिते ज्ञाति मध्यस्थः प्रथमं गवाम्।
प्रदद्यात् यवसं गोभिः सत्कृतस्य हि सत्क्रिया ॥२९९

विख्यातदोषः कुर्व्वीत पर्षदोऽनुमतं व्रतम्।
अनभिख्यातदोपस्तु रहस्यं व्रतमाचरेत् ॥३००

त्रिरात्रोपोपितो जप्त्वा ब्रह्महा त्वघमर्षणम्।
अन्तर्जले विशुध्येत गां दत्त्वा च पयस्विनीम् ॥३०१

लोमभ्यः स्वाहेत्यथवा दिवसं मारुताशनः।
जले स्थित्वाभिजुहुयाच्चत्वारिंशद्घृताहुती: ॥३०२

त्रिरात्रोपोषितो भू(हु)त्वा कूष्माण्डीभिर्घृतं शुचिः।
सुरापः स्वर्णहारी तु रुद्रजापो जले स्थितः ॥३०३

सहस्रशीर्षा(दि)जापी तु मुच्यते गुरुतल्पगः ।
गौर्देया कर्म्मणोऽस्यान्ते पृथगेभिः पयस्विनी ॥३०४
प्राणायामशतं कार्य्यं सर्वपापापनुत्तये ।
उपपातकजातानामनिर्दिष्टस्य(मनिर्दिष्टस्य)सनादिष्टस्य चैव हि ॥३०५
ओङ्काराभिष्टुतं सोमसलिलं पावनं पिबेत् ।
कृत्वा तु (कृतोपवासनं)रेतोविण्मूत्रप्राशनञ्च द्विजोत्तमः ॥३०६
निशायां वा दिवा वाऽपि यदज्ञानकृतं त्वघम् ।
त्रैकाल्यसन्ध्याकरणात्तत् सर्वं विप्रणश्यति ॥३०७
शुक्रिया(मन्त्रविशेष)रण्यकजपो गायत्र्याश्च विशेषतः ।
सर्वपापहरा ह्येते रुद्रैकादशिनी तथा ॥३०८
यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या (जप) वार्चनन्तथा ॥३०९
वेदाभ्यासरतं क्षान्तं महा(पंच)यज्ञक्रियारतम् ।
न स्पृशन्तीह पापानि महापातकजान्यपि ॥३१०
वायुभक्षो दिवा तिष्ठन्रात्रिं नीत्वाप्सु सूर्य्यदृक् ।
जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुध्येद् ब्रह्मवधादृते ॥३११
ब्रह्मचर्य्यं दया क्षान्तिर्ध्यानं सत्यमकल्कता ।
अहिंसास्तेयमाधुर्य्यदमाश्चेति यमाः स्मृताः ॥३१२
स्नानमौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः ।
नियमागुरुशुश्रूषाशौचाक्रोधप्रमादता: ॥३१३
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
जग्ध्वा परेऽह्न्युपवसेत् कृच्छ्रं सान्तपनं चरन् ॥३१४

पृथक्सान्तपनद्रव्यैः षडहः सोपवासकः।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनः स्मृतः ॥३१५

पर्णौदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः।
प्रत्येकं प्रत्यहं पीतैः पर्णकृच्छ्र उदाहृतः ॥३१६

तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्।
एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः ॥३१७

एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च।
उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ॥३१८

यथाकथञ्चित्त्रिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते।
अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात् पाणिपूरान्नभोजिनः ॥३१९

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम्।
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥३२०

पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रः सौम्योऽयमुच्यते ॥३२१

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम्।
तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पाञ्चदशाह्निकः ॥३२२

तिथिवृद्ध्या चरेत् पिण्डान् शुक्ले शिख्यण्डसम्मितान्।
एकैकं ह्रासयेत् कृष्णे पिण्डं चान्द्रायणं चरेत् ॥३२३

जथाकथञ्चित् पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम्।
मासेनैवोपभुञ्जीत चान्द्रायणमथापरम् ॥३२४

कुर्य्यात्त्रिषवणस्नायी कृच्छ्रं चान्द्रायणं तथा।
पवित्राणि जपेत् पिण्डान् गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥३२५

अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु ।
धर्म्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति स लोकताम् ॥३२६

कृच्छ्रकृद्धर्म्मकामस्तु महतीं श्रियमाप्नुयात् ।
यथा गुरुक्रतुफलं प्राप्नोति च समाहितः ॥३२७

श्रुत्वेमानृषयो धर्मान् याज्ञवल्क्येन भाषितान् ।
इदमूचुर्महात्मानं योगीन्द्रममितौजसम् ॥३२८

य इदं धारयिष्यन्ति धर्मशास्त्रमतन्द्रिताः ।
इहलोके यशः प्राप्य ते यास्यन्ति त्रिविष्टपम् ॥३२९

विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां धनकामोधनन्तथा ।
आयुस्कामस्तथैवायुः श्रीकामो महतीं श्रियम् ॥३३०

श्लोकत्रयमपि ह्यस्माद् यः श्राद्धे श्रावयिष्यति ।
पितृणां तस्य तृप्तिः स्यादक्षया नात्र संशयः ॥३३१

ब्राह्मणः पात्रतां याति क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्योऽपि धान्यधनवानस्य शास्त्रस्य धारणात् ॥३३२

य इदं श्रावयेद्विप्रान् द्विजान् पर्वसु पर्वसु ।
अश्वमेधफलं तस्य तद्भवाननुमन्यताम् ॥३३३

श्रुत्वैतद्याज्ञवल्क्योऽपि प्रीतात्मा मुनिभाषितम् ।
एवमस्त्विति होवाच नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ॥३३४

इति याज्ञवल्कीये धर्मशास्त्रे प्रायश्चित्त प्रकरणंनाम
तृतीयोऽध्यायः ।

इति याज्ञवल्क्यस्मृतिः समाप्ता ।

ॐतत्सत्

——:※:——

॥ अथ ॥

* कात्यायनस्मृतिः *

—:❀::❀:—

॥ श्रीसामवेदाय नमः ॥

—❀❀❀—

प्रथमः खण्डः ।

अथाचाराध्यायः

तत्रादौ यज्ञोपवीतकर्मप्रकरणवर्णनम् ।

अथातो गोभिलोक्तानामन्येषां चैव कर्मणाम् ।
अस्पष्टानां विधिं सम्यग्दर्शयिष्ये प्रदीपवत् ॥१

त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् ।
त्रिवृत्तच्चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ॥२

पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् ।
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातोलम्बं नचोच्छ्रितम् ॥३

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत्कृतम् ॥४

त्रिःप्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् ।
आस्यनासाक्षिकर्णांश्च नाभिवक्षःशिरोंऽशकान् ॥५

संहताभिस्त्र्यङ्गुलिभिरास्यमेवमुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं चैवमुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुः श्रोत्रं पुनः पुनः ॥६
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ।
सर्वाभिस्तु शिरः पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥७
यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरङ्गं न तूच्यते ।
दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥८
यत्र दिङ्नियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु ।
तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्रीसौम्यापराजिताः ॥६
तिष्ठन्नासीनः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः ।
तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता ॥१०
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥११
हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह ।
गणेशेनाधिका ह्येतावृद्धौ पूज्याश्चषोड़श ॥१२
कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः ।
पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥१३
प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा पटादिषु ।
अपिवाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥१४
कुड्यलग्नां वसोर्द्धारां सप्तधारां घृतेन तु ।
कारयेत् पञ्चधारां वा नातिनीचां न चोच्छ्रिताम् ॥१५

आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ।
षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु भक्त्या श्राद्धमुपक्रमेत् ॥१६

अनिष्ट्वा तु पितॄंच्छ्राद्धे न कुर्यात् कर्म वैदिकम् ।
तत्रापि मातरः पूर्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥१७

वशिष्ठोक्तो विधिः कृत्स्नो द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि विशेष इह यो भवेत् ॥१८

इति प्रथमः खण्डः ।

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

अथ नित्यनैमित्तिक (श्राद्ध) कर्म **वर्णनम्** ।

प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा ।
उपवेश्य कुशान् दद्यादृजुनैव हि पाणिना ॥१

हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयज्ञियाः ।
समूलाः पितृदैवत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः ॥२

हरिता वै सपिञ्जलाः शुष्काः स्निग्धाः समाहिताः ।
रत्निमात्राः प्रमाणेन पितृतीर्थेन संस्तृताः ॥३

पिण्डार्थं ये स्तृता दर्भास्तर्पणार्थं तथैव च ।
धृतैः कृते च विण्मूत्रे त्यागस्तेषां विधीयते ॥४

दक्षिणं पातयेज्जानु देवान् परिचरन् सदा ।
पातयेदितरज्जानु पितॄन् परिचरन्नपि ॥५

निपातो नहि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित्।
सदा परिचरेद्भक्त्या पितॄनप्यत्र देववत् ॥६
पितृभ्य इति दत्तेष उपवेश्य कुशेषु तान्।
गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितॄनर्घं प्रदापयेत् ॥७
नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थ मिष्यते।
पात्राणां पूरणादीनि दैवेनैव हि कारयेत् ॥८
ज्येष्ठोत्तरकरान् युग्मान् कराग्राग्रपवित्रकान्।
कृत्वार्घ्यं संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥६
अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।
प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥१४
एतदेव हि पिञ्जल्या लक्षणं समुदाहृतम्।
आज्यस्योत्पवनार्थं यत्तदप्येतावदेव तु ॥११
एतत्प्रमाणमेवैके कौशीमेवार्द्रमंजरीम्।
शुष्कां वा शीर्णकुसुमां पिञ्जलीं परिचक्षते ॥१२
पित्र्यमन्त्रानु द्रवण आत्मालम्भेऽधमेक्षणे।
अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥१३
मार्जारमशकस्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसम्भवे।
निमित्तेष्वेषु सर्वत्र कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥१४

इति द्वितीयः खण्डः।

॥ तृतीयः खण्डः ॥

अथ त्रिविधक्रियावर्णनम्।

अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्मकारिणाम्।
अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथाक्रिया ॥१
स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयञ्च यः।
कर्त्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम् ॥२
यन्नाम्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च।
विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत् ॥३
प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात् कथञ्चन।
यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥४
समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम्।
तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥५
प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः।
तदङ्गस्याक्रियायाञ्च नावृत्तिर्नैव तत्क्रिया ॥६
मधुमध्वितियस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम्।
गायत्र्यनन्तरं सोऽत्र मधुमन्त्रविवर्जितः ॥७
नचाश्नत्सु जपेदत्र कदाचित् पितृसंहिताम्।
अन्य एव जपः कार्यः सोमसामादिकः शुभः ॥८
यस्तत्र प्रकरोऽन्नस्य तिलवद् यववत्तथा।
उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र तृप्तेषु विपरीतकः ॥६
सम्पन्नमिति तृप्ताः स्थ प्रश्नस्थाने विधीयते।
सुसम्पन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥१०

प्रागग्रेष्वथ दर्भेषु आद्यमामन्त्र्य पूर्ववत् ।
अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्ष्वेति पात्रतः ॥११

द्वितीयञ्च तृतीयञ्च मध्यदेशाग्रदेशयोः ।
मातामहप्रभृतींस्त्रीनेतेवामेव वामतः ॥१२

सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यञ्जनैरुपसिच्य च ।
संयोज्य यवकर्कन्धूदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः ॥१३

अवनेजनवत् पिण्डान् दत्त्वा बिल्वप्रमाणकान् ।
तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत् ॥१४

इति तृतीयः खण्डः ।

॥ चतुर्थः खण्डः ॥

अथ श्राद्धप्रकरणवर्णनम् ।

उत्तरोत्तरदानेन पिण्डानामुत्तरोत्तरः ।
भवेदधश्चाधराणामधरश्राद्धकर्मणि ॥१

तस्माच्छ्राद्धेषु सर्वेषु वृद्धिमत्स्वितरेषु च ।
मूलमध्याग्रदेशेषु ईषत्सक्तांश्च निर्वपेत् ॥२

गन्धादीन्निः क्षिपेत्तूष्णीं तत आचामयेद् द्विजान् ।
अन्यत्राप्येष एव स्याद्यवादिरहितो विधिः ॥३

दक्षिणाप्लवने देशे दक्षिणाभिमुखस्य च ।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु एषोऽन्यत्र विधिः स्मृतः ॥४

अथाग्रभूमिमासिञ्चेत् सुसंप्रोक्षितमस्त्विति।
शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन च ॥५
सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम्।
अक्षतञ्चारिष्टं चास्त्वित्यक्षतान् प्रतिपादयेत् ॥६
अक्षय्योदकदानं तु अर्घ्यदानवदिष्यते।
षष्ठ्यैव नित्यं तत् कुर्यान्न चतुर्थ्यां कदाचन ॥७
अर्घ्येऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने।
तन्त्रस्य तु निवृत्तिः स्यात् स्वधावाचन एव च ॥८
प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्वास्वेव द्विजोत्तमैः।
पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रकृत् ॥६
युग्मानेव स्वस्ति वाच्यमङ्गुष्ठाग्रग्रहं सदा।
कृत्वा धुर्यस्य विप्रस्य प्रणम्यानुव्रजेत्ततः ॥१०
एषः श्राद्धविधिः कृत्स्न उक्तः संक्षेपतो मया।
ये विन्दन्ति न मुह्यन्ति श्राद्धकर्मसु ते क्वचित् ॥११
इदं शास्त्रञ्च गुह्यञ्च परिसंख्यानमेव च।
वशिष्ठोक्तञ्च यो वेद स श्राद्धं वेद नेतरः ॥१२

इति चतुर्थः खण्डः।

॥ पञ्चमः खण्डः ॥

अथ श्राद्धप्रकरणवर्णनम्।

असकृत्वानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिभिः।
प्रतिप्रयोगं नैताः स्युर्मातरः श्राद्धमेव च ॥१

आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च ।
बलिकर्मणि दर्शे च पौर्णमासे तथैव च ॥२

नवयज्ञे च यज्ञज्ञावदन्त्येवं मनीषिणः ।
एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक् ॥३

नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते ।
न सोष्यन्तीजातकर्म प्रोषितागतकर्मसु ॥४

विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते ।
विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात् ॥५

प्रदोषे श्राद्धमेकं स्याद्गोनिष्क्रामप्रवेशयोः ।
न श्राद्धं युज्यते कर्त्तुं प्रथमे पुष्टिकर्मणि ॥६

हलाभियोगादिषु तु षट्सु कुर्यात् पृथक् पृथक् ।
प्रतिप्रयोगमप्येवानादावेकन्तु कारयेत् ॥७

वृहत्पत्रक्षुद्रपशुस्वस्त्यर्थं परिविन्यतोः ।
सूर्येन्द्वोः कर्मणी ये तु तयोः श्राद्धं न विद्यते ॥८

न दशाग्रन्थिके चैव विषवद्दष्टकर्मणि ।
कृमिदष्टचिकित्सायां नैव शेषेषु विद्यते ॥९

गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत् ।
सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥१०

यत्र तत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः ।
प्रासङ्गिकमिदं प्रोक्तमतः प्रकृतमुच्यते ॥११

इति पञ्चमः खण्डः ।

॥ षष्ठः खण्डः ॥

अथानेककर्मवर्णनम्।

आधानकाला ये प्रोक्तास्तथा यश्चाग्नियोनयः।
तदाश्रयोऽग्निमादध्यादग्निमानग्रजो यदि ॥१

दाराधिगमनाधाने यः कुर्यादग्रजाग्रिमः।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥२

परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकं गच्छतो ध्रुवम्।
अपि चीर्णप्रायश्चित्तौ पादोनफलभागिनौ ॥३

देशान्तरस्थक्लीवैकवृषणानसहोदरान्।
वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥४

जडमूकान्धवधिरकुब्जवामनकुण्ठकान्।
अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥५

धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा।
कुलटोन्मत्तचौरांश्च परिविन्दन्न दुष्यति ॥६

धनवार्द्धुषिकं राजसेवकं कमकस्तथा।
प्रोषितञ्च प्रतीक्षेत वर्षत्रयमपि त्वरन् ॥७

प्रोषितं यद्यशृण्वानमब्दादूर्ध्वं समाचरेत्।
आगते तु पुनस्तस्मिन् पादं तच्छुद्धये चरेत् ॥८

लक्षणे प्राग्गतायास्तु प्रमाणं द्वादशाङ्गुलम्।
तन्मूलसक्ता योदीची तस्या एतन्नवोत्तरम् ॥९

उदग्गतायाः संलग्नाः शेषाः प्रादेशमात्रिकाः।
सप्तसप्ताङ्गुलांस्त्यक्त्वा कुशेनैव समुल्लिखेत् ॥१०

मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्त्तरि ।
मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेव निश्चयः ॥११
पुण्यमेवादधीताग्निं स हि सर्वैः प्रशस्यते ।
अनद्धुंकत्वं यत्तस्य काम्यैस्तन्नीयते शमम् ॥१२
यस्य दत्ता भवेत् कन्या वाचा सत्येन केनचित् ।
सोऽन्त्यां समिधमाधास्यन्नादधीतैव नान्यथा ॥१३
अनूढैव तु सा कन्या पञ्चत्वं यदि गच्छति ।
न तथा व्रतलोपोऽस्य तेनैवान्यां समुद्वहेत् ॥१४
अथ चेन्न लभेतान्यां याचमानोऽपि कन्यकाम् ।
तमग्निमात्मसात् कृत्वा क्षिप्रं स्यादुत्तराश्रमी ॥१५

इति षष्ठः खण्डः ।

॥ सप्तमः खण्डः ॥

अथशमीगर्भाद्यनेकप्रकरणवर्णनम् ।

अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः ।
तस्य या प्राङ्मुखी शाखा वोदीची वोर्द्ध्वगापि वा ॥१
अरणिस्तन्मयी प्रोक्ता तन्मय्येवोत्तरारणिः ।
सारवद्दारवञ्चत्रमोविली च प्रशस्यते ॥२
संसक्तमूलो यः शम्याः स शमीगर्भ उच्यते ।
अलाभे त्वशमीगर्भादुद्धरेदविलम्बितः ॥३
चतुर्विंशतिरङ्गुष्ठदैर्घ्यं षडपि पार्थिवम् ।
चत्वार उच्छ्रये मानमरण्योः परिकीर्तितम् ॥४

अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चत्रं स्याद्द्वादशाङ्गुलम् ।
ओवीली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम् ॥५

अङ्गुष्ठाङ्गुलमानन्तु यत्र यत्र यत्रोपदिश्यते ।
तत्र तत्र वृहत्पर्वग्रन्थिभिर्मिनुयात् सदा ॥६

गोवालैः शणसंमिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् ।
व्यामप्रमाणं नेत्रं स्यात् प्रमथ्यस्तेन पावकः ॥७

मूर्द्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी ।
अङ्गुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यङ्गुष्ठं वक्ष उच्यते ॥८

अङ्गुष्ठमात्रं हृदयं त्र्यङ्गुष्ठमुदरं स्मृतम् ।
एकाङ्गुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौ वस्ति द्वौ च गुह्यकम् ॥९

ऊरू जङ्घे च पादौ च चतुस्त्र्येकैर्यथाक्रमम् ।
अरण्यवयवाह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः ॥१०

यत्तद्गुह्यमिति प्रोक्तं देवयोनिस्तु सोच्यते ।
अस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते ॥११

अन्येषु ये तु मथ्नन्ति ते रोगभयमाप्नुयुः ।
प्रथमे मन्थने त्वेष नियमो नोत्तरेषु च ॥१२

उत्तरारणिनिष्पन्नः प्रमन्थः सर्वदा भवेत् ।
योनिसङ्करदोषेण युज्यते ह्यन्यमन्थकृत् ॥१३

आर्द्रा सशुषिरा चैव घूर्णाङ्गी पाटिता तथा ।
न हिता यजमानानामरणिश्चोत्तरारणिः ॥१४

इति सप्तमः खण्डः ।

।। अष्टमः खण्डः ।।

अथ सयज्ञस्त्रुवसमिधलक्षणवर्णनम् ।

परिधायाहतं वासः प्रावृत्य च यथाविधि ।
विभृयात् प्राङ्मुखो यन्त्रमावृता वक्ष्यमाणया ।।१
चत्रवृध्ने प्रमन्थाग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः ।
कृत्वोत्तराग्रामरणिं तद्वृध्नमुपरिन्यसेत् ।।२
चत्राधः कीलकाग्रस्था मोविलीमुदगग्रकाम् ।
विष्टम्भाद्धारयेद्यन्त्रं निष्कम्पं प्रयतः शुचिः ।।३
त्रिरुद्वेष्ट्याथ नेत्रेण चत्रं पत्न्यो हतांशुकाः ।
पूर्वं मथ्नन्त्यरण्यान्त्याः प्राच्यग्नेः स्याद्यथा च्युतिः ।।४
नैकयापि विना कार्य्यमाधानं भार्य्यया द्विजैः ।
अकृतं तद्विजानीयात् सर्व्वान्वाचारभन्ति यत् ।।५
वर्णज्यैष्ठ्ये न वह्वीभिः सवर्णाभिश्च जन्मतः ।
कार्य्यमग्निच्युतेराभिः साध्वीभिर्मथनं पुनः ।।६
नात्र शूद्रीं प्रयुञ्जीत न द्रोहद्वेषकारिणीम् ।
नचैवाव्रतस्थां नान्यपुंसा च सह सङ्गताम् ।।७
ततः शक्ततरा पश्चादासामन्यतरापिवा ।
उपेतानां वान्यतमा मन्थेदग्निं निकामतः ।।८
जातस्य लक्षणं कृत्वा तं प्रणीय समिध्य च ।
आधाय समिधं चैव ब्रह्माणं चोपवेशयेत् ।।९

ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा सर्वमन्त्रसमन्विताम् ।
गां दद्याद् यज्ञवास्त्वन्ते ब्रह्मणे वाससी तथा ॥१०
होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये स्रुवः स्मृतः ।
पाणिरेवेतरस्मिंस्तु स्रुचैवात्र तु हूयते ॥११
खादिरो वाऽथ पालाशो द्विवितस्तिः स्रुवः स्मृतः ।
स्रुग्बाहुमात्रा विज्ञेया वृत्तस्तु प्रग्रहस्तयोः ॥१२
स्रुवाग्रे घ्राणवत् खातं द्व्यङ्गुष्ठपरिमण्डलस्थलम् ।
जुह्वाः शरावकवत् खातं सनिर्व्वाहं षडङ्गुलं कुर्य्यात् ॥१३
तेषां प्राक्शः कुशैः कार्य्यः संप्रमार्गो जुहुषता ।
प्रतापनञ्च लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ॥१४
प्राञ्चं प्राञ्चमुदगग्नेरुदगग्रं समीपतः ।
तत्तथासादयेद् द्रव्यं यद्यथा विनियुज्यते ॥१५
आज्यं हव्यमनादेशे जुहोति च विधीयते ।
मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥१६
नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या समित् स्थूलतया क्वचित् ।
न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥१७
प्रादेशान्नाधिका नो न तथा न स्याद्विशाखिका ।
न सपर्णा न निर्व्वीर्य्या होमेषु च विजानता ॥१८
प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणं परिकीर्त्तितम् ।
एवंविधाः स्युरेवेह समिधः सर्वकर्मसु ॥१९
समिधोऽष्टादशेध्मस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ।
दर्शे च पौर्णमासे च क्रियास्वन्यासु विंशतिः २०

समिदादिषु होमेषु मन्त्रदैवतवर्जिता।
पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च हीन्धनार्थं समिद्भवेत् ॥२१

इध्मोऽप्येधार्थमाचार्यैर्हविराहुतिषु स्मृतः।
यत्र चास्य निवृत्तिः स्यात्तत् स्पष्टीकरवाण्यहम् ॥२२

अङ्गहोमसमित्तन्त्रसोष्यन्त्याख्येषु कर्मसु।
येषां चैतदुपर्य्युक्तं तेषु तत्सदृशेषु च ॥२३

अक्षभङ्गादिविपदि जलहोमादिकर्म्मणि।
सोमाहुतिषु सर्व्वासु नैतेष्विध्म विधीयते ॥२४

इति अष्टमः खण्डः।

॥ नवमः खण्डः ॥

अथ सन्ध्याकालाद्युद्दिश्यकर्मवर्णनम्।

सूर्य्येऽस्तशैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिः सदाङ्गुलैः।
प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासाञ्च दर्शनात् ॥१

हस्तादूर्द्ध्वं रविर्यावत् गिरिं हित्वा न गच्छति।
तावद्धोमविधिः पुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम् ॥२

यावत् सम्यग् न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः।
न च लौहित्यमापैति तावत् सायञ्च हूयते ॥३

रजोनीहारधूमाभ्रवृक्षाग्रान्तरिते रवौ।
सन्ध्यामुद्दिश्य जुहुयाद् हुतमस्य न लुप्यते ॥४

न कुर्य्यात् क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनम् ।
विरूपाक्षञ्च न जपेत् प्रवदञ्च विवर्जयेत् ॥५

पर्य्युक्षणञ्च सर्वत्र कर्त्तव्यमदितेन्विति ।
अन्ते च वामदेवस्य गानं कुर्य्यादृचस्त्रिधा ॥६

अहोमकेष्वपि भवेद् यथोक्तं चन्द्रदर्शनम् ।
वामदेव्यं गणेष्वन्ते कल्पान्ते वैश्वदेविके ॥७

यान्यधस्तरणान्तानि न तेषु स्तरणं भवेत् ।
एककार्य्यार्थसाध्यत्वात् परिधीनपि वर्जयेत् ॥८

वर्हिः पर्य्युक्षणं चैव वामदेव्यजपस्तथा ।
कृत्वाहुतिषु सर्वासु त्रिकमेतन्न विद्यते ॥६

हविष्येषु यवामुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः ।
माषकोद्रवगौरादिसर्व्वालाभेऽपि वर्जयेत् ॥१०

पाण्याहृतिर्द्वादशपर्वपारिका कंसादिना चेत् स्रुवमात्रपावका ।
दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः स्वङ्गारिणि स्वर्च्चिषि तच्च पावके ॥११

योऽनर्च्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥१२

तस्मात् समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ।
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीम्पराम् ॥१३

होतव्ये च हुते चैव पाणिसूर्पस्फ्यदारुभिः ।
न कुर्य्यादग्निधमनं कुर्य्याद्वा व्यजनादिना ॥१४

मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत ।
नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तत् ॥१५

इति नवमः खण्डः ।

।। दशमः खण्डः ।।

अथ प्रातःकालिकस्नानादिक्रियावर्णनम् ।

यथाहनि तथा प्रातर्नित्यं स्नायादनातुरः ।
दन्तान् प्रक्षाल्य नद्यादौ गृहे चेत्तदमन्त्रवत् ।।१
नारदाद्युक्तवार्क्षं यदाष्टाङ्गुलमपाटितम् ।
सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधावयेत् ।।२
उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
परिजप्य च मन्त्रेण भक्षयेद्दन्तधावनम् ।।३
आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाःपशुन् वसूनि च ।
ब्रह्मप्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्वन्नो देहि वनस्पते ।।४
यत्व्यद्वयं श्रावणादि सर्व्वा नद्यो रजस्वलाः ।
तासु स्नानं न कुर्व्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ।।५
धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते ।
न ता नदीः शब्दवहा गर्त्तान्ताः परिकीर्तिताः ।।
उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च ।
चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ।।७
वेदाश्छन्दांसि सर्व्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः ।
जलार्थिनोऽथ पितरो मरीच्याद्यास्तथर्षयः ।।८
उपाकमणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः ।
पियासूननुगच्छन्ति सन्तुष्टाः स्वशरीरिणः ।।६
समागमस्तु यत्रैषां तत्र हत्यादयोमलाः ।
नूनं सर्व्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः ।।१०

ऋषीणां सिच्यमानानामन्तरालं समाश्रितः ।
संपिबेद् यः शरीरेण पर्षन्मुक्तजलच्छटाः ॥११

विद्यादीन् ब्राह्मणः कामान् वरादीन् कन्यका ध्रुवम् ।
आमुष्मिकान्यपि सुखान्याप्नुयात् स न संशयः ॥१२

अशुच्यशुचिना दत्तमाममन्तर्जलादिना ।
अनिर्गतदशाहास्तु प्रेता रक्षांसि भुञ्जते ॥१३

स्वर्धुन्यम्भः समानि स्युः सर्वाण्यम्भांसि भूतले ।
कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥१४

इति दशमः खण्डः ।

इति कर्मप्रदीपपरिशिष्टे कात्यायनविरचिते प्रथमः प्रपाठकः ।

॥ एकादशः खण्डः ॥

अथ सन्ध्योपासनविधिवर्णनम् ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सन्ध्योपासनकं विधिम् ।
अनर्हः कर्मणां विप्रः सन्ध्याहीनो यतः स्मृतः ॥१

सव्ये पाणौ कुशान् कृत्वा कुर्यादाचमनक्रियाम् ।
ह्रस्वाः प्रचरणीयाः स्युः कुशा दीर्घास्तु बर्हिषः ॥२

दर्भाः पवित्रमित्युक्तमतः सन्ध्यादिकर्मणि ।
सव्यः सोपग्रहः कार्यो दक्षिणः सपवित्रकः ॥३

रक्षयेद्वारिणात्मानं परिक्षिप्य समन्ततः ।
शिरसो मार्जनं कुर्यात् कुशैः सोदकविन्दुभिः ॥४
प्रणवो भूर्भुव स्वश्च सावित्री च तृतीयका ।
अब्दैवत्यं त्र्यृचञ्चैव चतुर्थमिति मार्जनम् ॥५
भूराद्यास्तिस्र एवैता महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
महर्ज्जनस्तपः सत्यं गायत्री च शिरस्तथा ॥६
आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरतिशिरः ।
प्रतीप्रतीकं प्रणवमुच्चारयेदन्ते च शिरसः ॥७
एता एतां सहानेन तथैभिर्दशभिः सह ।
त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥८
करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च ।
जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाघमर्षणम् ॥९
उत्थायार्कं प्रतिप्रोहे त्रिकेणाञ्जलिनाम्भसः ।
उच्चित्रमृग्द्वयेनाथ चोपतिष्ठेदनन्तरम् ॥१०
सन्ध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेतदाहुर्मनीषिणः ।
मध्ये त्वह्न उपर्यस्य विभ्राडादीच्छया जपेत् ॥११
तदसंसक्तपार्ष्णिर्वा एकापादर्द्ध पादपि ।
कुर्यात् कृताञ्जलिर्वापि ऊर्द्ध्वबाहुरथापि वा ॥१२
यत्र स्यात् कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः ।
भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्यते ॥१३
तिष्ठेदुदयनात् पूर्वां मध्यमामपि शक्तितः ।
आसीतोडुद्गमाच्चान्त्यां सन्ध्यां पूर्वात्रिकं जपन् ॥१४

एतत् सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्र तिष्ठति।
यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥१५

सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलश्च यः सदा ।
तं दोषानोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ॥१६

वेदमादित आरभ्य शक्तितोऽहरहर्जपेत् ।
उपतिष्ठेत्ततो रुद्रसर्वाद्वा वैदिकाज्जपात् ॥१७

इति एकादशः खण्डः ।

॥ द्वादशः खण्डः ॥

अथ तर्पणविधिवर्णनम् ।

अथाद्भिस्तर्पयेद्देवान् सतिलाभिः पितॄनपि ।
नमोऽन्ते तर्पयामीति आदावोमीति च ब्रुवन् ॥१

ब्रह्माणं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिं वेदान् देवांश्छन्दांस्यृषीन् पुराणानाचार्यान् गन्धर्वानितरान्मासं संवत्सरं सावयवं देवीरप्सरसो देवानुगान्नागान् सागरान् पर्वतान् सरितो दिव्यान् मनुष्यानितरान् मनुष्यान् यक्षान् रक्षांसि सुपर्णान् पिशाचान् पृथिवीमोषधीः पशून् वनस्पतीन् भूतग्रामं चतुर्विधमित्युपवीत्यथप्राचीनावीती यमं यमपुरुषान् कव्यवाडनलं सोमं यममर्य्यमणमनिष्वात्तान् सोमपीथान् बर्हिषदोऽथ स्वान् पितॄन् सकृत् सकृन्मातामाहांश्चेति प्रतिपुरुषमभ्यस्येज्ज्येष्ठभ्रातृश्वशुरपितृव्यमातुलांश्च पितृवंशमातृवंशौ ये चान्ये मत्त उदकमर्हन्ति तांस्तर्पयामीत्ययमवसानाञ्जलिरथ श्लोकाः ।.२

छायां यथेच्छेच्छरदातपार्त्तः परः पिपासुः क्षुधितोऽलमन्नम् ।
बालो जनित्रीं जननी च बालं योषित् पुमांसं पुरुषश्च योषाम् ॥३

तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
विप्रादुदकमिच्छन्ति सर्वाभ्युदयकृद्धि सः ॥४
तस्मात् सदैव कर्तव्यमकुर्वन्महतैनसा ।
युज्यते ब्राह्मणः कुर्वन्विश्वमेतद्धिभर्त्ति हि ॥५
अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात् स्नानकर्मणः ।
प्रातर्न तनुयात् स्नानं होमलोपो हि गर्हितः ॥६

इति द्वादशखण्डः ।

॥ त्रयोदशखण्डः ॥

अथ पञ्चमहायज्ञविधिवर्णनम् ।

पञ्चानामथ सत्राणां महतामुच्यते विधिः ।
यैरिष्ट्वा सततं विप्रः प्राप्नुयात् सद्म शाश्वतम् ॥१
देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात् ।
महासत्राणि जानीयात् एवेह महामखाः ॥२
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥३
श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात् पित्र्यो बलिरथापि वा ।
यश्च श्रुतिजयः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स चोच्यते ॥४
स चार्वाक् तर्पणात् कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः ।
वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्रतो निमित्तकात् ॥५
अप्येकमाशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ।
अदैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमथापि वा ॥६

अप्युद्धृत्य यथाशक्त्या किञ्चिदन्नं यथाविधि।
पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्द्विजे ॥७

पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत्।
हन्तकारं मनुष्येभ्यस्तदर्द्धं निनयेदपः ॥८

मुनिभिर्द्विरसनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम्।
अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धप्रथमयामान्तः ॥६

सायं प्रातर्वैश्वदेवः कर्तव्यो बलिकर्म च।
अनश्नतापि सततमन्यथा किल्विषी भवेत् ॥१०

अमुष्मै नम इत्येवं बलिदानं विधीयते।
बलिदानप्रदानार्थं नमस्कारः कृतो यतः ॥११

स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारा दिवौकसाम्।
स्वधाकारः पितृणाञ्च हन्तकारो नृणां कृतः ॥१२

स्वधाकारेण निनयेत् पित्र्यं बलिमतः सदा।
तदप्येके नमस्कारं कुर्वते नेति गौनमः ॥१३

नावराद्धर्यावलयो भवन्ति महामार्जारश्रवणप्रमाणात्।
एकत्र चेदविकृष्टा भवन्तीतरेतरसंसक्ताश्च ॥१४

इति त्रयोदशखण्डः।

॥ चतुर्दशखण्डः ॥

अथ ब्रह्मयज्ञविधिवर्णनम्।

अथ तद्भिन्यासोवृद्धिपिण्डानिवोत्तरांश्चतुरोवलीन्निदध्यात्
पृथिव्यै वायवे विश्वेभ्यो देवेभ्यः प्रजापतय इति सव्यत

एतेषामेकैकमद्भ्य ओषधिवनस्पतिभ्य आकाशाय कामायेत्येतेषामपि मन्यव इन्द्राय वासुकये ब्रह्मण इत्येतेषामपि रक्षोजनेभ्य इति सर्वेषां दक्षिणतः पितृभ्य इति चतुर्दश नित्या आशस्य प्रभृतयः काम्याः सर्वेषामुभयतोऽद्भिः परिषेकः पिण्डवच्च पश्चिमा प्रतिपत्तिः ॥१

न स्यातां काम्यसामान्ये जुहोति बलिकर्मणी।
पूर्वं नित्यविशेषोक्तं जुहोति बलिकर्मणोः ॥२
कामान्ते च भवेयातां न तु मध्ये कदाचन।
नैकस्मिन् कर्मणि तते कर्माण्यत्तायते यतः ॥३
अग्न्यादिर्गौतमाद्युक्तो होमः शाकल एव च।
अनाहिताग्नेरप्येष युज्यते बलिभिः सह ॥४
स्पृष्ट्वापो वीक्षमाणोऽग्निं कृताञ्जलिपुटस्ततः।
वामदेव्यजपात् पूर्वं प्रार्थयेद्द्रविणोदकम ॥५
आरोग्यमायुरैश्वर्य्यं धीर्धृतिः शं बलं यशः।
ओजो वर्चः पशून् वीर्यं ब्रह्म ब्रह्मण्यमेव च ॥६
सौभाग्यं कर्मसिद्धिञ्च कुलज्यैष्ठ्यं सुकर्तृताम्।
सर्वमेतत् सर्वसाक्षिन् द्रविणोदरिरीहिणः ॥७

न ब्रह्मयज्ञादधिकोऽस्ति यज्ञो न तत्प्रदानात् परमस्ति दानम्।
सर्वे तदन्ताः क्रतवः सदानानान्तो दृष्टः कैश्चिदस्य द्विकस्य ॥८

ऋचः पठन् मधुपयः कुल्याभिस्तर्पयेत् सुरान्।
घृतामृतौघकुल्याभिर्यजूंष्यपि पठन् सदा ॥९

सामान्यपि पठन् सोमघृतकुल्याभिरन्वहम् ।
मेदः कुल्याभिरपिच आथर्वाङ्गिरसः पठन् ॥१०

मांसक्षीरौदनमधुकुल्याभिस्तर्पयेत् पठन् ।
वाकोवाक्यं पुराणानि इतिहासानि चान्वहम् ॥११

ऋगादीनामन्यतममेतेषां शक्तितोऽन्वहम् ।
पठन् मध्वाज्यकुल्याभिः पितॄनपि च तर्पयेत् ॥१२

ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं जीवन्तं प्रेतमेव च ।
कामचारी च भवति सर्वेषु सुरसद्मसु ॥१३

गुर्व्वप्येनो न तं स्पृशेत् पंक्तिञ्चैव पुनाति सः ।
यं यं क्रतुञ्च पठति फलभाक्तस्य तस्य च ।
वसुपूर्णा वसुमती त्रिर्दानफलमाप्नुयात् ।
ब्रह्मयज्ञादपि ब्रह्म दानमेवातिरिच्यते ॥१५

इति चतुर्दशखण्डः ।

॥ पञ्चदशखण्डः ॥

अथ यज्ञविधिवर्णनम् ।

ब्रह्मणे दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्त्तिता ।
कर्मान्तेऽनुच्यमानापि पूर्णपात्रादिका भवेत् ॥१

यावता बहुभोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णेन विद्यते ।
नावरार्द्ध्यमतः कुर्यात् पूर्णपात्रमिति स्थितिः ॥२

विद्ध्याद्धौत्रमन्यश्चेद्दक्षिणार्द्धहरो भवेत् ।
स्वयञ्चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रातिपादयेत् ॥३
कुलर्त्विजमधीयानं सन्निकृष्टं तथा गुरुम् ।
नातिक्रामेत् सदा दित्सन् य इच्छेदात्मनो हितम् ॥४
अहमस्मै ददामीति एवमाभाष्य दीयते ।
नैतावपृष्ट्वा ददतः पात्रेऽपि फलमस्ति हि ॥५
दूरस्थाभ्यामपि द्वाभ्यां प्रदाय मनसा वरम् ।
इतरेभ्यस्ततो देयादेष दानविधिः परः ॥६
सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ।
यद्ददाति तमुल्लङ्घ्य ततस्तेयेन युज्यते ॥७
यस्य त्वेक गृहे मूर्खो दूरस्थश्च गुणान्वितः ।
गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥८
ब्राह्मणाभिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥९
आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा ।
महीमयी वा कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च ॥१०
आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाकामन्तु कारयेत् ।
सुदृढामव्रणां भद्रामाज्यस्थालीं प्रचक्षते ॥११
तिर्यगूर्द्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी ।
मृन्मय्यौदुम्बरी वाऽपि चरुस्थाली प्रशस्यते ॥१२
स्वशाखोक्तः प्रसुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभः ।
नचातिशिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा ॥१३

इध्मजातीयमिध्माद्धं प्रमाणं मेक्षणं भवेत् ।
वृत्तं चाङ्गुष्ठपृथ्वग्रमवदानक्रियाक्षमम् ॥१४

एषैव दर्वी यस्तत्र विशेषस्तमहं ब्रुवे ।
दर्वी द्व्यङ्गुलपृथ्वग्रा तुरीयो नन्तमेक्षमम् ॥१५

मुषलोलूखले वार्क्षे स्वायते सुदृढे तथा ।
इच्छाप्रमाणे भवतः शूर्पं वैणवमेव च ॥१६

दक्षिणं वामतो वाह्यमात्माभिमुखमेव च ।
करं करस्य कुर्वीत करणे न्यञ्चकर्मणः ॥१७

कृत्वाग्न्यभिमुखौ पाणी स्वस्थानस्थौ सुसंयतौ ।
प्रदक्षिणं तथासीनः कुर्यात् परिसमूहनम् ॥१८

बाहुमात्राः परिधय ऋजवः सत्वचोऽव्रणाः ।
त्रयो भवन्ति शीर्णाग्रा एकेषान्तु चतुर्दिशाम् ॥१६

प्रागग्रावभितः पश्चादुदग्रमथवापरम् ।
न्यसेत् परिधिमन्यञ्चेदुदगग्रः स पूर्वतः ॥२०

यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ।
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥२१

इति पञ्चदशखण्डः ।

॥ षोड़शखण्डः ॥

अथ श्राद्धतिथिविशेषेणविधिवर्णनम् ।

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ।
वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥१

यदा चतुर्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत् ।
अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥२
यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः ।
अनयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि ॥३
यच्चोक्तं दृश्यमानेऽपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया ।
अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्वपेत् ॥४
अष्टमेंऽशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः ।
अमावास्याष्टमांशे च पुनः किल भवेदणुः ॥५
आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्यैष्ठस्य या भवेत् ।
विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः ॥६
अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागो न कलावशिष्टः ।
तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्नमेवं ज्योतिश्चक्रविदोवदन्ति ॥७
यस्मिन्नब्दे द्वादशैकश्च यव्य-
स्तस्मिंस्तृतीयया परिदृश्यो नोपजायते ।
एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा
क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात् ॥८
सम्मिश्रा या चतुर्दश्या अमावास्या भवेत् क्वचित् ।
खर्विता तां विदुः केचिद् गताध्वामिति चापरे ॥९
वर्द्धमानाममावास्यां लभेच्चेदपरेऽहनि ।
यामांस्त्रीनधिकान् वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥१०॥
पक्षादावेव कुर्वीत सदा पक्षादिकं चरुम् ।
पूर्वाह्ण एव कुर्वन्ति विद्धेऽप्यन्ये मनीषिणः ॥११

स्वपितुः पितृकृत्येषु ह्यधिकारो न विद्यते ।
न जीवन्तमतिक्रम्य किञ्चिद्दद्यादिति श्रुतिः ॥१२
पितामहे म्रियते च पितुः प्रेतस्य निर्वपेत् ।
पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत् प्रपितामहः ॥१३
पितुः पितुः पितुश्चैव तस्यापि पितुरेव च ।
कुर्य्यात् पिण्डत्रयं यस्य संस्थितः प्रपितामहः ॥१४
जीवन्तमति दद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः ।
पितुः पितृभ्यो वा दद्यात् स्वपितेत्यपरा श्रुतिः ॥१५
पितामहः पितुः पश्चात् पञ्चत्वं यदि गच्छति।
पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥१६
नैतत् पौत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रवांश्चेत् पितामहः ।
पितुः सपिण्डनं कृत्वा कुर्य्यान्मासानुमासिकम् ॥१७
असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्व्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः ।
पितरं तत्र संस्कुर्य्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥१८
पापिष्ठमति शुद्धेन शुद्धं पापीकृतापि वा ।
पितामहेन पितरं संस्कुर्य्यादिति निश्चयः ॥१९
ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते ।
व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥२०
मातुः सपिण्डीकरणं पितामह्या सहोदितम् ।
यथोक्तेनैव कल्पेन पुत्रिकया न चेत् सुतः ॥२१
न योषिद्भ्यः पृथग् दद्यादवसानदिनादृते ।
स्वभर्तृपिण्डमात्राभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता ॥२२

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्व्वपेत् पुत्रिकासुतः।
द्वितीयन्तु पितुस्तस्यास्तृतीयन्तु पितुः पितुः २३

इति षोडशखण्डः

॥ सप्तदशखण्डः ॥

अथ श्राद्धवर्णनम्।

पुरतो ह्यात्मनः कर्षूः सा पूर्व्वा परिकीर्त्यते।
मध्यमा दक्षिणेनास्यास्तद्दक्षिणत उत्तमा ॥१
वाय्वग्निदिङ्मुखान्तास्ताः कार्य्याः सार्द्धाङ्गुलान्तराः।
तीक्ष्णान्ता यवमध्याश्च मध्यं नाव इवोत्किरेत् ॥२
शङ्कुश्च खादिरः कार्य्यो रजतेन विभूषितः।
शङ्कुश्चैवोपत्रेषश्च द्वादशाङ्गुल इष्यते ॥३
अग्न्याशाग्रैः कुशैः कार्य्यं कर्षूणां स्तरणं घनैः।
दक्षिणान्तं तदग्रैस्तु पितृयज्ञे परिस्तरेत् ॥४
स्थगरं सुरभि ह्रीयं चन्दनादि विलेपनम्।
सौवीराञ्जनमित्युक्तं पिञ्जलीनां यदञ्जनम् ॥
स्वस्तरे सर्व्वमासाद्य यथावदुपयुज्यते।
देवपूर्वं ततः श्राद्धमत्वरः शुचिरारभेत् ॥६
आसनाद्यर्घपर्य्यन्तं वशिष्ठेन यथेरितम्।
कृत्वा कर्म्माथ पात्रेषु उक्तं दद्यात्तिलोदकम् ॥७

तूष्णीं पृथगपो दत्त्वा मन्त्रेण तु तिलोदकम् ।
गन्धोदकञ्च दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण तु ॥८

आसुरेण तु पात्रेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम् ।
पितरस्तस्य नाश्नन्ति दश वर्षाणि पञ्च च ॥९

कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं मृण्मयं स्मृतम् ।
तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत् ॥१०

गन्धान् ब्राह्मणसात् कृत्वा पुष्पाण्यतुभवानि च ।
धूपञ्चैवानुपूर्व्वेण ह्यग्नौ कुर्य्यादनन्तरम् ॥११

अग्नौ करणहोमश्च कर्त्तव्य उपवीतिना ।
प्राङ्मुखेनैव देवेभ्यो जुहोतीति श्रुतिश्रुतेः ॥१२

अपसव्येन वा कार्य्यो दक्षिणाभिमुखेन च ।
निरुप्य हविरन्यस्मा दन्यस्मै न हि हूयते ॥१३

स्वाहा कुर्य्यान्न चात्रान्ते न चैव जहुयाद्धविः ।
स्वाहाकारेण हुत्वाग्नौ पश्चान्मन्त्रं समापयेत् ॥१४

पित्र्ये यः पंक्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निमान् ।
हुत्वा मन्त्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥१५

नोद्धुर्याद्धोममन्त्राणां पृथगादिषु कुत्रचित् ।
अन्येषाञ्चाविकृष्टानां कालेनाचमनादिना ॥१६

सव्येन पाणिनेत्येवं यदत्र समुदीरितम् ।
परिग्रहणमात्रन्तत् सव्यस्यादिशति व्रतम् ॥१७

पिञ्जूल्याद्यभिसंगृह्य दक्षिणेनेतरात् करात् ।
अन्वारभ्य च सव्येन कुर्यादुल्लेखनादिकम् ॥१८

यावदर्थमुपादाय हविषोऽर्भकमर्भकम्।
चरुणा सह सन्नीय पिण्डान् दातुमुपक्रमेत् ॥१६
पितुरुत्तरकर्ष्वंशे मध्यमे मध्यमस्य तु।
दक्षिणे तत्पितुश्चैव पिण्डान् पर्वणि निर्वपेत् ॥२०
वासमावर्त्तनां केचिदुदगन्तं प्रचक्षते।
सर्वां गौतमशाण्डिल्यौ शाण्डिल्यायन एव च ॥२१
आवृत्य प्राणमायम्य पितृन् ध्यायन् यथार्थतः।
जपंस्तेनैव चावृत्य ततः प्राणं प्रमोचयेत् ॥२२
शाकञ्च फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं पत्न्यपि वा पचेत्।
यस्तु शाकादिको होमः कार्योऽपूपाष्टकावृतः ॥२३
अन्वाष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगोतमौ।
वार्कषण्डिश्च सर्वासु कौत्सो मेनेऽष्टकासु च ॥२४
स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्याद्यद्यानुकल्पितम्।
श्रपयेत्तं सवत्सायास्तरुण्यागोः पयस्तथा ॥२५

इति सप्तदशः खण्डः।

॥ अष्टादशः खण्डः ॥

अथ विवाहाग्निहोमविधानवर्णनम्।

सायमादि प्रातरन्तमेकं कर्म प्रचक्षते।
दर्शान्तं पौर्णमासाद्यमेकमेव मनीषिणः ॥१

ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेर्दर्शः पौर्णमासोऽपि वाग्रिमः।
य आयाति स होतव्यः स एवादिरिति श्रुतिः ॥२
ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः कुर्यात् सायं होमादनन्तरम्।
वैश्वदेवन्तु पाकान्ते बलिकर्मसमन्वितम् ॥३
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चादभिरूपान् स्वशक्तितः।
यजमानस्ततोऽश्नीयादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥४
वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत सायंप्रातस्त्वतन्द्रितः।
चतुर्थीकर्म कृत्वैतदेतच्छाट्यायनेर्मतम् ॥५
ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः (सायंहोमात्यये) प्रातर्हुत्वा तां सायमाहुतिम्।
प्रातर्होमस्तदैव स्यादेष एवोत्तरो विधिः ॥६
पौर्णमासात्यये हव्यं होता वा यदहर्भवेत्।
तदहर्ज्जुहुयादेवममावास्यात्ययेऽपि च ॥७
अहूयमानेऽनश्नंश्चेन्नयेत् कालं समाहितः।
सम्पन्ने तु यथा तत्र हूयते तदिहोच्यते ॥८
आहुताः परिसंख्याय पात्रे कृत्वाहुतीः सकृत्।
मन्त्रेण विधिवद् हुत्वाधिकमेवापरा अपि ॥९
यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत्।
चतस्रस्तत्र विज्ञेयाः स्त्रीपाणिग्रहणे यथा ॥१०
अपि वाज्ञातमित्येषा प्राजापत्यापि चाहुतिः।
होतव्या त्रिविकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ॥११
यद्यग्निरग्निनान्येन सम्भवेदाहितः क्वचित्।
अग्नये विविचय इति जुहुयाद्वा घृताहुतिम् ॥१२

अग्नयेऽप्सुमते चैव जुहुयाद्द्वैघृतेन चेत्।
अग्नये शुचये चैव जुहुयाद्विद नग्निना ॥१३
गृहदाहाग्निनाग्निस्तु यष्टव्यः क्षामवान् द्विजैः।
दावाग्निना च संसर्गो हृदयं यदि तप्यते ॥१४
द्विर्भूतो यदि संसृज्येत् संसृष्टमुपशामयेत्।
असंसृष्टं जागरये गिरिशमेवमुक्तवान् ॥१५
न स्वेऽग्नावन्यहोमः स्यान्मुक्त्वैकां समिदाहुतिम्।
स्वगर्भ(स्त्रभग:)सत्क्रियार्थाश्च यावन्नासौ प्रजायते ॥१६
अग्निस्तु नामधेयादौ होमे सर्वत्र लौकिकः।
न हि पित्रा समानीतः पुत्रस्य भवति क्वचित् ॥१७
यस्याग्नावन्यहोमः स्यात् स वैश्वानरदैवतम्।
चरुं निरूप्य जुहुयात् प्रायश्चित्तं तु तस्य तत् ॥१८
परेणाग्नौ हुते स्वार्थं परस्याग्नौ हुते स्वयम्।
पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च ॥१९
अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा।
भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥२०
स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्मसु।
पिण्डानोद्वहनात्तेषां तदभावे तु तत्क्रमात् ॥२१
भूतप्रवाचने पत्नी यद्यसन्निहिता भवेत्।
रजोरोगादिना तत्र कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥२२
महानसेऽन्नं या कुर्यात् सवर्णां तां प्रवाचयेत्।
प्रणवाद्यपि वा कुर्यात् कात्यायनवचो यथा ॥२३

याज्ञवास्तुनि मुष्ट्याश्च स्तम्बे दर्भवटौ तथा ।
दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥

इत्यष्टादशः खण्ड ।

॥ एकोनविंशतिः खण्डः ॥

अथ सकर्तव्यता स्त्रीधर्मवर्णनम्

निःक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यार्त्विजं तथा ।
प्रवसेत् कार्यवान् विप्रो मृषैव न चिरं क्वचित् ॥१
मनसा नैत्यकं कर्म प्रवसन्नप्यतन्द्रितः ।
उपविश्य शुचिः सर्वं यथाकालमनुद्रवेत् ॥२
पत्न्या चाप्यवियोगिन्या शुश्रूष्योऽग्निर्विनीतया ।
सौभाग्यवित्तावैधव्यकामया भर्तृभक्तया ॥३
या वा स्याद्वीरसूरासामाज्ञासम्पादिनी प्रिया ।
दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥४
दिनत्रयेण वा कर्म यथा ज्यैष्ठं स्वशक्तितः ।
विभज्य सह वा कुर्युर्यथाज्ञान(मशाठ्यवत्)श्च शास्त्रवत् ॥५
स्त्रीणां सौभाग्यतो ज्यैष्ठं विद्ययैव द्विजन्मनाम् ।
नहि ख्यात्या न तपसा भर्त्ता तुष्यति योषिताम् ॥६
भर्त्तुरादेशवर्त्तिन्या यथोमा बहुभिर्व्रतैः ।
अग्निश्च तोषितोऽमुत्र सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ॥७

विनयावनताऽपि स्त्री भर्त्तुर्या दुर्भगा भवेत्।
अमुत्रोमाग्निभतॄणामवज्ञातिकृता तथा ॥८
श्रोत्रियं सुभगां गाञ्च साग्निमग्निचितिं तथा।
प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥९
पापिष्ठं दुर्भगामन्त्यं नग्नमुत्कृत्तनासिकम्।
प्रातरुत्थाय यः पश्येत् स कालरुपयुज्यते ॥१०
पतिमुल्लङ्घ्य मोहात् स्त्री कं कं न नरकं व्रजेत्।
कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किं किं दुःखं न विन्दति ॥११
पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्न लोकान् समश्नुते।
दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥१२
सदारोऽन्यान् पुनर्दारान् कथञ्चित् कारणान्तरात्।
य इच्छेदग्निमान् कर्तुं क्व होमोऽस्य विधीयते ॥१३
स्वेऽग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन।
न ह्याहिताग्नेः स्वं कर्म लौकिकेऽग्नौ विधीयते ॥१४
षडाहुतिकमन्येन जुहुयाद् ध्रुवदर्शनात्।
न ह्यात्मनोऽर्थं स्यात्तावद्यावन्न परिणीयते ॥१५
पुरस्तात् त्रिविकल्पं यत् प्रायश्चित्तमुदाहृतम्।
तत्षडाहुतिकं शिष्टैर्यज्ञविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥१६

एकोनविंशातितमः खण्डः

इति कात्यायन(वा-गोभिले)विरचिते कर्मप्रदीपे द्वितीयः प्रपाठकः।

॥ अथ विंशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयादिस्त्रीकृतेसतिवैदिकाग्निवर्णनम् ।

असमक्षन्तु दम्पत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना ।
द्वयोरप्यसमक्षं हि भवेद् हुतमनर्थकम् ॥१

विहायाग्निं सभार्यश्चेत् सीमामुल्लङ्घ्य गच्छति ।
होमकालात्यये तस्य पुनराधानमिष्यते ॥२

अरण्योः क्षयनाशाग्निदाहेष्वग्निं समाहितः ।
पालयेदुपशान्तेऽस्मिन् पुनराधानमिष्यते ॥३

ज्येष्ठा चेद्बहुभार्यस्य अतिचारेण गच्छति ।
पुनराधानमत्रैक इच्छन्ति न तु गौतमः ॥४

दाहयित्वाग्निभिर्भार्यां सदृशीं पूर्वसंस्थिताम् ।
पात्रैश्चाथाग्निमादध्यात् कृतदारोऽविलम्बितः ॥५

एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वसारिणीम् ।
दाहयित्वाग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥६

द्वितीयाञ्चैव यः पत्नीं दहेद्वैतानिकाग्निभिः ।
जीवत्यां प्रथमायान्तु ब्रह्मघ्नेन समं हि तत् ॥७

मृतायान्तु द्वितीयायां योऽग्निहोत्रं समुत्सृजेत् ।
ब्रह्मोज्झं तं विजानीयाद् यश्च कामात् समुत्सृजेत् ॥८

मृतायामपि भर्य्यायां वैदिकाग्निं न हि त्यजेत् ।
उपाधिनापि तत् कर्म यावज्जीवं समापयेत् ॥६

रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् ।
ईजे यज्ञैर्बहुविधैः सह भ्रातृभिरच्युतः ॥१०

यो दहेदग्निहोत्रेण स्वेन भार्य्यां कथञ्चन ।
सा स्त्री सम्पद्यते तेन भार्य्या वास्य पुमान् भवेत् ॥११

भार्य्या मरणमापन्ना देशान्तरगतापि वा ।
अधिकारी भवेत्पुत्रो महापातकिनि द्विजे ॥१२

मान्या चेन्म्रियते पूर्वं भार्य्या पतिविमानिता ।
त्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति ॥१३

पूर्वैव योनिः पूर्वावृत् पुनराधानकर्मणि ।
विशेषोऽत्राग्न्युपस्थानमाज्याहुत्यष्टकं तथा ॥१४

कृत्वा व्याहृतिहोमान्तमुपतिष्ठेत पावकम् ।
अध्यायः केवलाग्नेयः कस्तेजामिरमान्सः ॥१५

अग्निमीले अग्न आयाह्यग्न आयाहि वीतये ।
तिस्रोऽग्निर्ज्योतिरित्यग्निं दूतमग्ने मृडेति च ॥१६

इत्यष्टावाहुतीर्हुत्वा यथाविध्यनुपूर्वशः ।
पूर्णाहुत्यादिकं सर्वमन्यत् पूर्ववदाचरेत् ॥१७

अरण्योरल्पमप्यङ्गं यावत्तिष्ठति पूर्वयोः ।
न तावत् पुनराधानमन्यारण्योर्विधीयते ॥१८

विनष्टं स्रुक् स्रुवं न्युब्जं प्रत्यक्स्थलमुदर्चिषि ।
प्रत्यगग्रञ्च मुषलं प्रहरेज्जातवेदसि ॥१९

इति विंशः खण्डः ।

॥ अथैकविंशः खण्डः ॥

अथ मृतदाहसंस्कारवर्णनम् ।

स्वयं होमासमर्थस्य समीपमुपसर्पणम् ।
तत्राप्यसक्तस्य सतः शयनाच्चोपवेशनम् ॥१

हुतायां सायमाहुत्यांदुर्बलश्चेद् गृही भवेत् ।
प्रातर्होमस्तदैव स्याज्जीवेच्चेच्छः पुन र्न वा ॥२

दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् ।
दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्यां निवेशयेत् ॥३

घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य सवस्त्रमुपवीतिनम् ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषितम् ॥४

हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु ।
मुखस्तथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः ॥५

आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम् ।
एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धं मर्द्धपथ्युत्सृजेद्भुवि ॥६

ऊर्द्ध्वमादहनं प्राप्त आसीनो दक्षिणामुखः ।
सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पिण्डदानवत् ॥७

अथ पुत्रादिनाप्लुत्य कुर्याद्दारुचयं महत् ।
भूप्रदेशे शुचौ देशे पश्चाच्चित्यादिलक्षणे ॥८

तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे ।
आज्यपूर्णां स्रुचं दद्याद् दक्षिणाग्रां नसि स्रुवम् ॥९

पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम् ।
पार्श्वयोः शूर्पचमसे सव्यदक्षिणयोः क्रमात् ॥१०

मुषलेन सह न्युब्जमन्तरूर्वोरुलूखलम्।
चत्रौवीलीकमत्रैवमनश्नुनयनोविभीः ॥११
अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः।
अथाग्निं सव्यजान्वक्तो दद्याद्दक्षिणतः शनैः ॥१२
अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति यजुरीरयन् ॥१३
एवं गृहपतिर्दग्धः सर्वं तरति दुष्कृतम्।
यश्चैनं दाहयेत् सोऽपि प्रजां प्राप्नोत्यनिन्दिताम् ॥१४
यथा स्वायुधधृक् पान्थो ह्यरण्यान्यपि निर्भयः।
अतिक्रम्यात्मनोऽभीष्टं स्थानमिष्टांश्च विन्दति ॥१५
एवमेषोऽग्निमान् यज्ञपात्रायुधविभूषितः।
लोकानन्यानतिक्रम्य परं ब्रह्मैव विन्दति ॥१६

इत्यैकविंशः खण्डः

॥ अथ द्वाविंशः खण्डः ॥

अथ दाहसंस्कारवर्णनम्।

अथानवे(पे)क्षयेत्पापः सर्व एव शवस्पृशः।
स्नात्वा सचैलमाचम्य दद्युरस्योदकं स्थले ॥१
गोत्रनामानुवादान्ते तर्पयामीत्यनन्तरम्।
दक्षिणाग्रान् कुशान् कृत्वा सतिलन्तु पृथक् पृथक् ॥२
एवं कृतोदकान् सम्यक् सर्वान् शाद्वलसंस्थितान्।
आप्लुत्य पुनराचान्तान् वदेयुस्तेऽनुयायिनः ॥३

मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन् प्राणधर्मणि ।
धर्मं कुरुत यत्नेन यो वः सह गमिष्यति ॥४

मानुष्ये कदलीस्तम्भे निःसारे सारमार्गणम् ।
यः करोति स संमूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥५

गन्त्री वसुमती नाशमुदधिर्दैवतानि च ।
फेनप्रख्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति ॥६

पञ्चधा सम्भृतः कायो यदि पञ्चत्वमागतः ।
कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥७

सर्वेऽक्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥८

श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः ।
अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः प्रयत्नतः ॥९

एवमुक्त्वा व्रजेयुस्ते गृहांल्लघुपुरःसराः ।
स्नानाग्निस्पर्शनाज्याशैः शुध्येयुरितरे कृतैः ॥१०

इति द्वाविंशः खण्डः ।

॥ अथ त्रयोविंशः खण्डः ॥

अथ विदेशस्थमृतपुरुषाणांदाहसंस्कारवर्णनम् ।

एवमेवाहिताग्नेषु पात्रन्यासादिकं भवेत् ।
कृष्णाजिनादिकश्चात्र विशेषः सूत्रचोदितः ॥१

विदेशमरणेऽस्थीनि ह्याहृत्याभ्यज्य सर्पिषा ।
दाहयेदूर्णयाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥२

अस्थ्नामलाभे पर्णानि सकलान्युक्तयावृता ।
भर्जयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥३
महापातकसंयुक्तो दैवात् स्यादग्निमान् यदि ।
पुत्रादिः पालयेदग्निं युक्त आदोष संक्षयात् ॥४
प्रायश्चित्तं न (ततः) कुर्याद्यः कुर्वन् वा म्रियते यदि ।
गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमश्व(न्यश्ये)स्येत् सपरिच्छदम् ॥५
सादयेदुभयं वाप्सु ह्यग्नोग्निरभवद्यतः ।
पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव वा क्षिपेत् ॥६
अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता ।
अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ।
अग्निनैव दहेद्भार्यां स्वतन्त्रां पतितां न चेत् ।
तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत् पृथगन्तिके ॥८
अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थ्नां सञ्चयनं भवेत् ।
यस्तत्र विधिरादिष्ट ऋषिभिः सोऽधुनोच्यते ॥९
स्नानान्तं पूर्ववत् कृत्वा गव्येन पयसा ततः ।
सञ्चयास्थीनि सर्वाणि प्राचीनावीत्यभाषयन् ॥१०
शमीपलाशशाखाभ्यामुद्धृत्योद्धृत्य भस्मतः ।
आज्येनाभ्यज्य गव्येन सेचयेद् गन्धवारिणा ॥११
मृत्पात्रसंपुटं कृत्वा सूत्रेण परिवेष्ट्य च ।
श्वभ्रं खात्वा शुचौ भूमौ निखनेद्दक्षिणामुखः ॥१२
पूरयित्वावटं पङ्कपिण्डशैवालसंयुतम् ।
दत्वोपरि समं शेषं कुर्यात् पूर्वाह्णकर्मणा ॥१३

एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते।
स्त्रीणामिवाग्निदानं स्यादथातोऽनुक्तमुच्यते ॥१४

इति त्रयोविंशः खण्डः।

॥ चतुर्विंशः खण्डः ॥

सूतकेकर्मत्यागः षोडशश्राद्धविधानवर्णनञ्च।

सूतके कर्मणां त्यागः सन्ध्यादीनां विधीयते।
होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्ने नापि वा फलैः ॥१
अकृतं हावयेत् स्मार्ते तदभावे कृताकृतम्।
कृतं वा हावयेदन्नमन्वारम्भविधानतः ॥२
कृतमोदनशक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम्।
व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥३
सूतके च प्रवासे वा चाशक्तौ श्राद्धभोजने।
एवमादिनिमित्तेषु हावयेदिति योजयेत् ॥४
न त्यजेत् सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित्।
न दीक्षण्यात् परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥५
पितर्य्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित्।
आशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणः ॥६
श्राद्धमग्निमतः कार्य्यं दाहादेकादशेऽहनि।
प्रत्याब्दिकं तु कुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ॥७
द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा।
सपिण्डीकरणञ्चैव एतद्वै श्राद्धषोडशम् ॥८

एकाहेन तु षण्मासा यदा स्यु रपि वा त्रिभिः।
न्यूनाः संवत्सराश्चैव स्यातां षाण्मासिके तथा॥९

यानि पञ्चदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणि तु।
एकस्मिन्नह्नि देयानि सपुत्रस्यैव सर्वदा॥१०

न योषायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित्।
न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाग्रजः॥११

एकादशेऽह्नि निर्वर्त्य अर्वाग्दर्शाद्‌ यथाविधि।
प्रकुर्वीताग्निमान् पुत्रो मातापित्रोः सपिण्डताम्॥१२

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं स दद्यात् प्रतिमासिकम्।
एकोद्दिष्टेन विधिना दद्यादित्याह गौतमः॥१३

कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम्।
प्रत्याब्दिकञ्च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः॥१४

अर्घेऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने।
तन्त्रस्य तु निवृत्तिः स्यात् स्वधावाचन एव च॥१५

ब्रह्मदण्डादियुक्तानां येषां नास्त्यग्निसत्क्रिया।
श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो न भवन्तीह ते क्वचित्॥१६

इति चतुर्विंशः खण्डः।

॥ पञ्चविंशः खण्डः॥

नवयज्ञेनविना नवान्नभोजने प्रायश्चित्तवर्णनम्।

मन्त्राम्नायेऽग्न इत्येतत् पञ्चकं लाघवार्थिभिः।
पठ्यते तत्प्रयोगे स्यान्मन्त्राणामेव विंशतिः॥१

अग्नेः स्थाने वायुचन्द्रसूर्य्याबहुवदूह्य च।
समस्य पञ्चमीसूत्रे चतुश्चतुरितिश्रुतेः ॥२
प्रथमे पञ्चके पापी लक्ष्मीरिति पदं भवेत्।
अपि पञ्चसु मन्त्रेषु इति यज्ञविदो विदुः ॥३
द्वितीये तु पतिघ्नी स्यादपुत्रेति तृतीयके।
चतुर्थे त्वपसव्येति इदमाहुतिविंशकम् ॥४
धृतिहोमे न प्रयुञ्ज्याद्योनामसु तथाष्टसु।
चतुर्थ्यामघ्न्य इत्येतद्गोनामसु हि हूयते ॥५
लताग्रपल्लवो बुध्नः शुङ्गेति परिकीर्त्यते।
पतिव्रता व्रतवती ब्रह्मबन्धु स्तथाऽश्रुतः ॥६
शिलाटु नीलमित्युक्तं ग्रथ्नः स्तवक उच्यते।
कपुष्णिकाभितः केशान् मूर्द्ध्नि पश्चात् कपुच्छलम् ॥७
श्वाविच्छलाका शलली तथा वीरतरः शरः।
तिलतण्डुलसम्पक्कः कृषरः सोऽभिधीयते ॥८
नामधेये मुनिवसुपिशाचाबहुवत् सदा।
यक्षाश्च पितरो देवा यष्टव्यास्तिथिदेवताः ॥९
आग्नेयाद्येऽथ सार्पाद्ये विशाखाद्ये तथैव च।
आषाढाद्ये धनिष्ठाद्ये अश्विन्याद्ये तथैव च ॥१०
द्वन्द्वान्येतानि बहुवद्दक्षाणां जुहुयात् सदा।
द्वन्द्वद्वयं विवक्षेद्यमवशिष्टान्यथैकवत् ॥११
देवतास्वपि हूयन्ते बहुवत् (सर्प्यपि त्रयः)सार्वपित्तयः।
देवाश्च वसवश्चैव द्विवद्देवाश्विनौ सदा ॥१२

ब्रह्मचारी समादिष्टो गुरुणा व्रतकर्मणि।
बाढमोमिति वा ब्रूयात्तत्तथैवानुपालयेत् ॥१३
सशिखं वपनं कार्यमास्नानाद्ब्रह्मचारिणा।
आशरीरविमोक्षाय ब्रह्मच ं न चेद्भवेत् ॥१४
वपनं नास्य कर्तव्यमर्वागौदानकव्रतात्।
व्रतिनो वत्सरं यावत्षण्मासानिति गौतमः ॥
न गात्रोत्सादनं कुर्यादनापदि कदाचन।
जलक्रीडामलङ्कारान् व्रती दण्ड इवाप्लुवेत् ॥१५
देवतानां विपर्यास जुहोतिषु कथं भवेत्।
सर्वं प्रायश्चित्तं हुत्वा क्रमेण जुहुयात् पुनः ॥१६
संस्कारा अतिपद्येरन् स्वकालाच्चेत् कथञ्चन।
हुत्वैतदेव कर्तव्या ये तूपनयनादधः ॥१७
अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नं योत्यकामतः।
वैश्वानरश्चरुस्तस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥१८

इति पञ्चविंशतिखण्डः

———

॥ षड्विंशः खण्डः ॥

नवयज्ञकालाभिधानवर्णनम्।

चरुः समशनीयो यस्तथा गोयज्ञकर्मणि।
वृषभोत्सर्ज्जने चैव अश्वयज्ञे तथैव च ॥१
श्रावण्यां वा प्रदोषे यः कृष्यारम्भे तथैव च।
कथमेतेषु निर्वापाः कथञ्चैव जुहोतयः ॥२
देवता सङ्ख्या ग्राह्या निर्व्वापांस्तु पृथक् पृथक्।
तूष्णीं द्विरेव गृह्णीयाद्धोमश्चापि पृथक् पृथक् ॥३

यावता होमनिर्वृत्तिर्भवेद्या यत्र कीर्तिता ।
शेषं चैव भवेत् किञ्चित्तावन्तं निर्वपेच्चरुम् ॥४

चरौ समशनीये तु पितृयज्ञे चरौ तथा ।
होतव्यं मेक्षणेनान्य उपस्तीर्णाभिघारितम् ॥५

कालः कात्यायनेनोक्तो विधिश्चैव समासतः ।
वृषोत्सर्गे यतो नाऽत्र गोभिलेन तु भाषितः ॥६

पारिभाषिक एव स्यात् कालो गोवाजियज्ञयोः ।
अन्यस्मादुपदेशात्तु स्वस्तरारोहणस्य च ॥७

अथवा मार्गपाल्येऽह्नि कालो गोयज्ञकर्मणः ।
नीराजनेऽह्नि वाश्वानामिति तन्त्रान्तरे विधिः ॥८

शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते ।
धान्यपाकवशादन्ये श्यामाकोवनिनः स्मृतः ॥९

आश्वयुज्यां तथा कृष्यां वास्तुकर्मणि याज्ञिकाः ।
यज्ञार्थतत्त्ववेत्तारो होममेवं प्रचक्षते ॥१०

द्वे पञ्च द्वे क्रमेणैता हविराहुतयः स्मृताः ।
शेषा आज्येन होतव्या इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥११

पयोयदाज्यसंयुक्तं तत् पृषातकमुच्यते ।
दध्येके तदुपासाद्य कर्तव्यः पायसश्चरुः ॥१२

व्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः ।
यवाश्चौषधयः सप्त विपदं घ्नन्ति धारिताः ॥१३

संस्काराः पुरुषस्यैते स्मर्य्यन्ते गौतमादिभिः ।
अतोऽष्टकादयः कार्याः सर्वे कालक्रमोदिताः ॥१४

सकृदप्यष्टकादीनि कुर्यात् कर्माणि यो द्विजः।
स पंक्तिपावनो भूत्वा लोकान् प्रैति घृतश्च्युतः ॥१५
एकाहमपि कर्मस्थो योऽग्निशुश्रूषकः शुचिः।
नयत्यत्र तदेवास्य शताहं दिवि जायते ॥१६
यस्त्वाधायाग्निमाशास्य देवादीन्नैभिरिष्टवान्।
निराकर्तामरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः ॥१७

इति षड्विंशः खण्डः।

॥ अथ सप्तविंशः खण्डः ॥

अथ प्रायश्चित्तवर्णनम्।

यच्छ्राद्धं कर्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत्।
आमावास्यं द्वितीयं यदन्वाहार्य्यं तदुच्यते ॥१
एकसाध्येष्ववर्हिःषु न स्यात् परिसमूहनम्।
नोदगासानञ्चैव क्षिप्रहोमाहि ते मताः ॥२
अभावे व्रीहियवयोर्दध्ना वा पयसापि वा।
तदभावे यवाग्वा वा जुहुयादुदकेन वा ॥३
रौद्रन्तु राक्षसं पित्र्यमासुरं चाभिचारिकम्।
उक्त्वा मन्त्रं स्पृशेदाप आलभ्यात्मानमेव च ॥४
यजनीयेऽह्नि सोमश्चेद्वारुण्यां दिशि दृश्यते।
तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दण्डं दद्यात् द्विजातये ॥५

लवणं मधु मांसञ्च क्षारांशो येन हूयते।
उपवासे न भुञ्जीत नोक्तरात्रौ न किञ्चन ॥६
स्वकाले सायमाहुत्या अप्राप्तौ होतृहव्ययोः।
प्राक्प्रातराहुतेः कालः प्रायश्चित्ते हुते सति ॥७
प्राक्सायमाहुतेः प्रातर्होमकालानतिक्रमः।
प्राक्पौर्णमासाद् दर्शस्य प्राग्दर्शादितरस्य तु ॥८
वैश्वदेवे त्वतिक्रान्ते अहोरात्रमभोजनम्।
प्रायश्चित्तमथो हुत्वा पुनः सन्तनुयाद् व्रतम् ॥९
होमद्वयात्यये दर्शपौर्णमासात्यये तथा।
पुनरेवाग्निमादध्यादिति भार्गवशासनम् ॥१०
अनृचो माणवो ज्ञेय एणः कृष्णमृगः स्मृतः।
रुरुर्गौरमृगः प्रोक्तस्तम्बलः शोण उच्यते ॥११
केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः।
ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥१२
ऋजवस्ते तु सर्वे स्यु व्रगाः सौम्यदर्शनाः।
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनग्निदूषिताः ॥१३
गौर्विशिष्टतमा विप्रैर्वेदेष्वपि निगद्यते।
न ततोऽन्यद्वरं यस्मात्तस्माद्गौर्वर उच्यते ॥१४
येषां व्रतानामन्तेषु दक्षिणा न विधीयते।
वरस्तत्र भवेद्दानमपि वाच्छादयेद् गुरुम् ॥१५
अस्थानोच्छ्वासविच्छेदघोषणाध्यापनादिकम्।
प्रामाणिकं श्रुतौ यत् स्याद्यातयामत्वकारि तत् ॥१६

प्रत्यब्दं यदुपाकर्म सोत्सर्गं विधिवद् द्विजैः।
क्रियते छन्दसां तेन पुनराप्यायनं भवेत् ॥१७
अयातयामैश्छन्दोभिर्यत् कर्म क्रियते द्विजैः।
क्रीडमानैरपि सदा तत्तेषां सिद्धिकारकम् ॥१८
गायत्रीञ्च सगायत्रां वार्हस्पत्यमिति त्रिकम्।
शिष्येभ्योऽनूच्य विधिवदुपाकुर्यात्ततः श्रुतिम् ॥१९
छन्दसामेकविंशानां संहितायां यथाक्रमम्।
न च्छन्दस्काभिरेवाभिर्राद्याभिर्होम इष्यते ॥२०
पर्वभिश्चैव गानेषु ब्राह्मणेषूत्तरादिभिः।
अङ्गेषु चर्चामन्त्रेषु इति षष्टिर्जुहोतयः ॥२१

इति सप्तविंशतिः खण्डः।

॥ अथाष्टाविंशतिः खण्डः ॥

अथ प्रायश्चित्तवर्णनमुपाकर्मणः फलनिरूपणवर्णनम्।

अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भ्रष्टाधाना भवन्ति ते।
भ्रष्टास्तु व्रीहयो लाजा घटाः षण्डिक उच्यते ॥१
नाधीयीत रहस्यानि सोत्तराणि विचक्षणः।
नचोपनिषदश्चैव षण्मासान् दक्षिणायनात् ॥२
उपाकृत्योदगयने ततोऽधीयीत धर्मवित्।
उत्सर्गश्चैक एवैषां नैष्ट्यं प्रौष्ठपदेऽपि वा ॥३

प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अजातव्यञ्जना लोम्नी न तया सह संविशेत् ।
अयुगूः काकवन्ध्याया जातां तां न विवाहयेत् ।।४
संसक्तपदविन्यासस्त्रिपदः प्रक्रमः स्मृतः ।
स्मार्त्ते कर्मणि सर्वत्र श्रौते त्वध्वर्युणोदितः ।।५
यस्यां दिशि बलिं दद्यात्तामेवाभिमुखो बलिम् ।
श्रवणाकर्मणि भवेन्यश्च कर्म न सर्वदा ।।६
बलिशेषस्य हवनमग्निप्रणयनन्तथा ।
प्रत्यहं न भवेयातामुल्मुकन्तु भवेत् सदा ।।७
वृषान्तकप्रेक्षणयोर्नवस्य हविषस्तथा ।
शिष्टस्य प्राशने मन्त्रस्तत्र सर्वेऽधिकारिणः ।।८
ब्राह्मणानामसान्निध्ये स्वयमेव पृषातकम् ।
अवेक्षेद्धविषः शेषं नवयज्ञेऽपि भक्षयेत् ।।९
सफला बदरीशाखा फलवत्यभिधीयते ।
धना विधिकताशङ्काः स्मृता जातशिलास्तु ताः ।।१०
नष्टो विनष्टो मणिकः शिलानाशे तथैव च ।
तदैवाऽऽहृत्य संस्कार्यो न क्षिपेदाग्रहायणीम् ।।११
श्रवणाकर्म लुप्तञ्चेत् कथञ्चित् सूतकादिना ।
आग्रहायणिकं कुर्याद्बलिवर्जमशेषतः ।।१२
ऊर्द्ध्वं स्वस्तरशायी स्यान्मासमर्द्धमथापि वा ।
सप्तरात्रं त्रिरात्रं वा एकां वा सद्य एव वा ।।१३
नोर्द्ध्वं मन्त्रप्रयोगः स्यान्नाग्न्यगारं नियम्यते ।
नाहतास्तरणञ्चैव न पार्श्वञ्चापि दक्षिणम् ।।१४

दृढश्चेदाग्रहायण्यामावृत्तावपि कर्मणः ।
कुम्भौ मन्त्रवदासिञ्चेत् प्रतिकुम्भमृचं पठेत् ॥१५

अल्पानां यो विघातः स्यात् स बाधोबहुभिः स्मृतः ।
प्राणसम्मित इत्यादि वाशिष्ठं बाधितं यथा ॥१६

विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसाम् ।
तुल्यप्रमाणकत्वे तु न्याय एवं प्रकीर्त्तितः ॥१७

त्रैयम्बकं करतलमपूपामण्डकाः स्मृताः ।
पालाशा गोलकाश्चैव लोहचूर्णञ्च चीवरम् ॥१८

स्पृशन्ननामिकाग्रेण क्वचिदालोकयन्नपि ।
अनुमन्त्रणीयं सर्वत्र सदैवमनुमन्त्रयेत् ॥१९

इत्यष्टविंशतिः खण्डः ।

॥ अथैकोनत्रिंशः खण्डः ॥

अथ श्राद्धवर्णनम् ।

क्षालनं दर्भकूर्चेन सर्वत्र स्रोतसां पशोः ।
तूष्णीमिच्छाक्रमेण स्याद्वपार्थे पार्णदारुणी ॥१

सप्त तावन्मूर्द्धन्यानि तथा स्तनचतुष्टयम् ।
नाभिः श्रोणिरपानञ्च गोस्रोतांसि चतुर्दश ॥२

क्षुरोमांसावदानार्थः कृत्स्ना स्विष्ट कृदावृता ।
वपामादाय जुहुयात्तत्र मन्त्रं समापयेत् ॥३

हृज्जिह्वा क्रोड़मस्थीनि यकृद्वृक्कौ गुदं स्तनाः ।
श्रोणिस्कन्धसदापार्श्वे पश्वङ्गानि प्रचक्षते ॥४
एकादशानामङ्गानामवदानानि सङ्ख्यया ।
पार्श्वस्य वृक्कसक्थ्नोश्च द्वित्वादाहुश्चतुर्दश ॥५
चरितार्था श्रुतिः कार्या यस्मादप्यनुकल्पतः ।
अतोह्यार्च्चेन होमः स्याच्छागपक्षे चरावपि ॥६
अवदानानि यावन्ति क्रियेरन् प्रस्तरेपशोः ।
तावतः पायसान् पिण्डान् पश्वभावेऽपि कारयेत् ॥७
औदनव्यञ्जनार्थन्तु पश्वभावेऽपि पायसम् ।
सद्रवं श्रपयेत्तद्वदन्वष्टक्येऽपि कर्मणि ॥८
प्राधान्यं पिण्डदानस्य केचिदाहुर्मनीषिणः ।
गयादौ पिण्डमात्रस्य दीयमानत्वदर्शनात् ॥९
भोजनस्य प्रधानत्वं वदन्त्यन्ये महर्षयः ।
ब्राह्मणस्य परीक्षायां महा(यज्ञ)यत्नप्रदर्शनात् ॥१०
आमश्राद्धविधानस्य विना पिण्डैः क्रियाविधिः ।
तदालभ्याप्यनध्यायविधानश्रवणादपि ॥११
विद्वन्मतमुपादाय ममाप्येतद्धृदि स्थितम् ।
प्राधान्यमुभयोर्यस्मात्तस्मादेष समुच्चयः ॥१२
प्राचीनावीतिना कार्यं पित्र्येषु प्रोक्षणं पशोः ।
दक्षिणोद्वासनान्तञ्च चरोर्निर्वपणादिकम् ॥१३
सन्नपश्वावदानानां प्रधानार्थो न हीतरः ।
प्रधानं हवनञ्चैव शेषं प्रकृतिवद्भवेत् ॥१४

द्वीपमुन्नतमाख्यातं शादा चैवेष्टका स्मृता।
कीलिनं सजलं प्रोक्तं दूरखातोदको मरुः ॥१५
द्वारगवाक्षः सन्दर्भैः कर्द्दमभित्यन्तकोण वा।
वेधैश्वानष्टं वास्तुघोरं विद्वन्मनाक्रान्तमार्गैश्च (?)॥१६
बशङ्कमाविति ब्रीहीञ्छेषश्चेति यवांस्तथा।
असावित्यत्र नामोक्त्वा जुहुयात् क्षिप्रहोमवत् ॥१७
साक्षतं सुमनोयुक्तमुदकं दधिसंयुतम्।
अर्घ्यं दधिमधुभ्याञ्च मधुपर्को विधीयते ॥१८
कांस्येनैवार्हणीयस्य निनयेदर्घ्यमञ्जलौ।
कांस्यापिधानं कांस्यस्थं मधुपर्कं समर्पयेत् ॥१९

इति कात्यायनविरचिते (गोभिलप्रोक्ते)कर्मप्रदीपे तृतीयः प्रपाठकः।
इत्यैकोनत्रिंशः खण्डः।

समाप्ता चेयं कात्यायनस्मृतिरितिलेख्यंनास्त्यत्र
तस्मादयंग्रन्थः समाप्तोनवेत्यत्रसंदेहः।

ॐ तत्सत्।

॥ अथ ॥

—॥ आपस्तम्बस्मृतिः ॥—

श्रीगणेशाय नमः ।

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ गोरोधनादिविषये-गोहत्यायां च प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

आपस्तम्बं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम् ।
दूषितानां हितार्थाय वर्णानामनुपूर्वशः ॥१

परेषां परिवादेषु निवृत्तमृषिसत्तमम् ।
विविक्तदेश आसीनमात्मविद्यापरायणम् ॥२

अनन्यमनसं शान्तं सत्वस्थं योगवित्तमम् ।
आपस्तम्बमृषिं सर्वे समेत्य मुनयोऽब्रुवन् ॥३

भगवन् ! मानवाः सर्वेऽसन्मार्गेऽपिस्थिता यदा ।
चरेयुर्धर्मकार्याणां तेषां ब्रूहि विनिष्कृतिम् ॥४

यतोऽवश्यं गृहस्थेन गवादिपरिपालनम् ।
कृषिकर्मादि चापत्सु (वपने) द्विजामन्त्रणमेव च ॥५

देयञ्चानाथकेऽवश्यं विप्रादीनाञ्च भेषजम्।
बालानां स्तन्यपानादिकार्यञ्च परिपालनम् ॥६

एवं कृते कथञ्चित् स्यात् प्रमादो यद्यकामतः।
गवादीनां ततोऽस्माकं भगवन्! ब्रूहि निष्कृतिम् ॥७

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा प्रणिपातादधोमुखः।
दृष्ट्वा ऋषीनुवाचेदमापस्तम्बः सुनिश्चितम् ॥८

बालानां स्तन्यपानादिकार्ये दोषो न विद्यते।
विपत्तावपि विप्राणामामन्त्रणचिकित्सने ॥९

गवादीनां प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तं रुजा(तृषा)दिषु।
केचिदाहुर्न दोषोऽत्र देहधारणभेषजे ॥१०

औषधं लवणञ्चैव स्नेहपुष्ट्यन्नभोजनम्।
प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥११

अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पन्तु दापयेत्।
अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते ॥१२

त्र्यहं निरशनात् पादः पादश्चायाचितं त्र्यहम्।
पादः सायं त्र्यहं पादः प्रातर्भोज्यं तथा त्र्यहम् ॥१३

प्रातः सायं दिनार्द्धञ्च पादोनं सायवर्जितम् ॥१४

प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत्।
अयाचितन्तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य च ॥१५

पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत्।
योजने पादहीनञ्च चरेत् सर्वं निपातने ॥१६

घण्टाभरणदोषेण गौस्तु यत्र विपद्यते ।
चरेदर्द्धं व्रतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि तत् ॥१७
दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने ।
स्तम्भशृङ्खलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत् ॥१८
पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा बलात् ।
निपातयन्ति ये गास्तु तेषां सर्वं विधीयते ॥१६
प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियश्चरेत् ।
कृच्छ्रार्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२०
द्वौ मासौ दापयेद् वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत् ।
द्वौ मासावेकवेलायां शेषकाले यथारुचि ॥२१
दशरात्रार्द्धमासेन गौस्तु यत्र विपद्यते ।
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२२
हलमष्टगवं धर्मं षड्गवं जीवितार्थिनाम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवञ्च जिघांसिनाम् ॥२३
अतिवाहातिदोहाभ्यां नासिकाभेदने तथा ।
नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ॥२४
न नारिकेलबालाभ्यां न मुञ्जेन न चर्म्मणा ।
एभिर्गास्तु न बध्नीयाद् बद्ध्वा परवशोभवेत् ॥२५
कुशैः काशैश्च बध्नीयाद् वृषभं दक्षिणामुखम् ।
पादलग्नाग्निदोषेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥२६
व्यापन्नानां बहूनान्तु रोधने बन्धनेऽपि च ।
भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत् ॥२७

शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलस्य च कर्त्तने।
सप्तरात्रं पिबेद् दुग्धं यावत्स्वस्था पुनर्भवेत् ॥२८

गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं भक्षयेद् द्विजः।
एतद्विमिश्रितं चैव मुक्तश्चोशनसा स्वयम् ॥२६

देवद्रोण्यां विहारेषु कूपेष्वायतनेषु च।
एषु गोषु विपन्नासु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३०

एका पादात्तु बहुभिर्दैवाद्व्यापादिता क्वचित्।
पादं पादन्तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥३१

यन्त्रणे गोश्चिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने।
यत्ने कृते विपत्तिश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३२

सरोमं प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रु(धारणम)कर्त्तनम्।
तृतीये तु शिखा धार्य्या सशिखन्तु निपातने ॥३३

सर्व्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम्।
एवमेव तु नारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम् ॥३४

इत्यापस्तम्बीये धर्म्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ शुद्ध्यशुद्धिविवेकवर्णनम्।

कारुहस्तगतं पुण्यं यच्च ग्रामा(पात्रा)द्विनिःसृतम्।
स्त्रीबालवृद्धाचरितं प्रत्यक्षादृष्टमेव च ॥१

प्रपास्वरण्येषु जलेऽथ नीरे द्रोण्यां जलं यच्च विनिःसृतं भवेत्।
श्वपाकचाण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पञ्चगव्येन शुद्धिः ॥२

न दुष्येत् सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥२
आत्मशय्या च वस्त्रञ्च जायापत्यं कमण्डलुः।
आत्मनः शुचिरेतानि परेषामशुचीनि तु ॥४
अन्यैस्तु खानिताः कूपारतड़ागानि तथैव च।
एषु स्नात्वा च पीत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५
उच्छिष्टमशुचित्वञ्च यच्च विष्ठानुलेपनम्।
सर्वं शुध्यति तोयेन तत्तोयं केन शुध्यति ॥५
सूर्य्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेन च।
गवां मूत्रपुरीषेण तत्तोयं तेन शुध्यति ॥७
अस्थिचर्म्मादियुक्तन्तु खराश्वोष्ट्रोपदूषितम्।
उद्धरेदुदकं सर्व्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥८
कूपो मूत्रपुरीषेण ष्ठीवनेनापि दूषितः।
श्वशृगालखरोष्ट्रैश्च क्रव्यादैश्च जुगुप्सितः ॥६
उद्धृत्यैव च तत्तोयं सप्तपिण्डान् समुद्धरेत्।
पञ्चगव्यं मृदा पूतं कूपे तच्छोधनं स्मृतम् ॥१०
वापीकूपतड़ागानां दूषितानाञ्च शोधनम्।
कुम्भानां शतमुद्धृत्य पञ्चगव्यं ततः क्षिपेत् ॥११
यश्च कूपात् पिबेत्तोयं ब्राह्मणः शवदूषितात्।
कथं तत्र विशुद्धिः स्यादिति मे संशयो भवेत् ॥१२

अक्लिन्नेनाप्यभिन्नेन शवेन परिदूषिते।
पीत्वा कूपे ह्यहोरात्रं पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१३
क्लिन्ने भिन्ने शवे चैव तत्रस्थं यदि तत् पिबेत्।
शुद्धिश्चान्द्रायणं तस्य तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥१४

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः।

....

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

गृहेऽविज्ञातस्यान्त्यजातेर्निवेशने-बालादिविषये च प्रायश्चित्तम्।

अन्त्यजातिमविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि।
सम्यग् ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥१
चान्द्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम्।
प्राजापत्यन्तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः ॥२
यैर्भुक्तं तत्र पक्वान्नं कृच्छ्रं तेषां प्रदापयेत्।
तेषामपि च यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादं प्रदापयेत् ॥३
कूपैकपानैर्दुष्टानां स्पर्शने शवदूषणम्।
तेषामेकोपवासेन पञ्चगव्येन शोधनम् ॥४
बालो वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वाऽपि (वायु) पीडिता।
तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां प्रहरद्वयम् ॥५
अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालोवाप्यूनषोडशः।
प्रायश्चित्तार्द्ध मर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च ॥५

न्यूनकादशवर्षस्य पञ्चवर्षाधिकस्य च ।
चरेद् गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥७
अथवा क्रियमाणेषु येषामार्त्तिः प्रदृश्यते ।
शेषसम्पादनाच्छुद्धिर्विपत्तिर्न भवेद्यथा ॥८
क्षुधा व्याधितकायानां प्राणो येषां विपद्यते ।
ये न रक्षन्ति भक्तेन तेषां तत्किल्विषं भवेत् ॥९
पूर्णेऽपि कालनियमे न शुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना ।
अपूर्णेष्वपि कालेषु शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ॥१०
समाप्तमिति नो वाच्यं त्रिषु वर्णेषु कर्हिचित् ।
विप्रसम्पादनं कार्यमुत्पन्ने प्राणसंशये ॥११
सम्पादयन्ति यद्विप्राः स्नानतीर्थं फलञ्च तत् ।
सम्यक् कर्त्तुरपापं स्याद्व्रती च फलमाप्नुयात् ॥१२

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ।

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ चाण्डालकूपजलपानादौ-पानादिषूदक्यादिसंस्पर्शे च प्रायश्चित्तं

चाण्डालकूपभाण्डेषु योऽज्ञानात् पिबते जलम् ।
प्रायश्चित्तं कथं तस्य वर्णे वर्णे विधीयते ॥१
चरेत् सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यन्तु भूमिपः ।
तदर्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२

भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा।
प्रमादात् स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुर्याद्विशोधनम् ॥४

गायत्र्यष्टसहस्रन्तु द्रुपदां वा शतं जपेत्।
जपं त्रिरात्रमनश्नन् पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः।
प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्याद्भुक्त्वोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥६

पानमैथुनसम्पर्के तथा मूत्रपुरीषयोः।
सम्पर्कं यदि गच्छेत्तु उदक्या चान्त्यजैस्तथा ॥७

एतैरेव यदा स्पृष्टः प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।
भोजने च त्रिरात्रं स्यात् पाने तु त्र्यहमेव च ॥८

मैथुने पादकृच्छ्रं स्यात्तथा मूत्रपुरीषयोः।
दिनमेकं तथा मूत्रे पुरीषे तु दिनत्रयम ॥९

एकाहं तत्र निर्दिष्टं दन्तधावनभक्षणे ॥१०

वृक्षारूढे तु चाण्डाले द्विजस्तत्रैव तिष्ठति।
फलानि भक्षयेत्तस्य कथं शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥११

ब्राह्मणान् समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत्।
एकरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१२

येन केनचिदुच्छिष्टो अमेध्यं स्पृशति द्विजः।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१३

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ वैश्यान्त्यजश्वकाकोच्छिष्टभोजनेप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन ।
अनभ्युक्ष्य पिवेत्तोयं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१

ब्राह्मणस्तु त्रिरात्रेण पञ्चगव्येन शुध्यति ।
क्षत्रियस्तु द्विरात्रेण पञ्चगव्येन शुध्यति ॥२

चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं न वै भवेत् ।
व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते ॥३

पञ्चगव्यं न दातव्यं तस्य मन्त्रविवर्जनात् ।
ख्यापयित्वा द्विजानान्तु शूद्रो दानेन शुध्यति ॥४

ब्राह्मणस्य यदोच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ।
अहोरात्रन्तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुध्यति ॥५

उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुङ्क्ते ज्ञानाद् द्विजो यदि ।
शङ्खपुष्पीपयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥६

ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ।
न तत्र दोषं मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः ॥७

उच्चिष्टमितरस्त्रीणामश्नीयात् पिवतेऽपिवा ।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्याद्भगवानङ्गिरा ब्रवीत् ॥८

अन्त्यानां भुक्तशेषन्तु भक्षयित्वा द्विजातयः ।
चान्द्रायणं तदर्द्धार्द्धं ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥९

विण्मूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्।
श्वकाकोच्छिष्टभोगे च प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥१०
उच्छिष्टः स्पृशते विप्रो यदि कश्चिदकामतः।
शुनः कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभाण्डं तथैव च ॥११
पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यदमेध्यं कदाचन।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१२
वैश्येन च यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन।
स्नानं जपञ्च त्रैकाल्यं दिनस्यान्ते विशुध्यति ॥१३
विप्रोविप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन।
स्नात्वाचम्य विशुद्धः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥१४

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ नीलीवस्त्रधारणे नीलीभक्षणे च प्रायश्चित्तम्।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीवस्त्रस्य यो विधिः।
स्त्रीणां क्रीडार्थसम्भोगे शयनीये न दुष्यति ॥१
पालने विक्रये चैव तद्वृत्तेरुपजीवने।
पतितस्तु भवेद्विप्र स्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥२
स्नानं दानं तपोहोमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
पञ्चयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात् ॥३

नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोऽङ्गेषु धारयेत् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥४

रोमकूपैर्यदा गच्छेद्रसो नील्यास्तु कर्हिचित् ।
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥५

नीलीदारु यदा भिन्द्याद् ब्राह्मणस्य शरीरकम् ।
शोणितं दृश्यते तत्र द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥६

नीलीमध्ये यदा गच्छेत् प्रमादाद् ब्राह्मणः क्वचित् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥७

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपनीयते ।
अभोज्यं तद्द्विजातीनां भुक्त्वा चन्द्रायणं चरेत् ॥८

भक्षयेद् यस्य नीलीन्तु प्रमादाद् ब्राह्मणः क्वचित् ।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥९

यावत्यां वापिता नीली तावती चाशुचिर्मही ।
प्रमाणं द्वादशाब्दानि अत ऊर्द्ध्वं शुचिर्भवेत् ॥१०

इत्यापस्तम्बीये धर्म्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ।

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

अन्त्यजादिस्पर्शे रजस्वलायाः, विवाहादिषु कन्याया रजोदर्शने प्रायश्चित्तम् ।

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते ।
वृत्ते रजसि गम्या स्त्री नानिवृत्ते कथञ्चन ॥१

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते।
अशुद्धा स्तु न तेनेह तासां वैकारिकं हि तत् ॥२
साध्वाचारा न सा तावद्रजो यावत् प्रवर्तते।
वृत्ते रजसि साध्वी स्याद् गृहकर्म्मणि चेन्द्रिये ॥३
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ॥४
अन्त्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला।
अहानि तान्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥५
त्रिरात्रमुपवासः स्यात् पञ्चगव्यं विशोधनम्।
निशां प्राप्य तु तां योनिं प्रजाकारञ्च कारयेत् ॥६
रजस्वलां त्यजेत् स्पृष्टां शुना च श्वपचेन च।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥७
प्रथमेऽहनि षड्रात्रं द्वितीये तु त्र्यहन्तथा।
तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात् ॥८
विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते तथा।
रजस्वला भवेत् कन्या संस्कारस्तु कथं भवेत् ॥९
स्नापयित्वा तदा कन्यामन्यैर्वस्त्रैरलङ्कृताम्।
पुनः प्रत्याहुतिं हुत्वा शेषं कर्म्म समाचरेत् ॥१०
रजस्वला तु संस्पृष्टा प्लवकुक्कुटवायसैः।
सा त्रिरात्रोपवासेन पञ्चगव्येन शुध्यति ॥११
उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टा कदाचित् स्त्री रजस्वला।
कृच्छ्रेण शुद्धते विप्रस्तथा दानेन शुध्यति ॥१२

एकशाखासमारूढ़ा चाण्डाला वा रजस्वला ।
ब्राह्मणेन समं तत्र सवासाः स्नानमाचरेत् ॥१३

रजस्वलायाः संस्पर्श कथञ्चिज्जायते शुना ।
रजोदिनात्तु यच्छेषस्तदुपोष्य विशुध्यति ॥१४

अशक्ता चोपवासे तु स्नानं पश्चात् समाचरेत् ।
तत्राप्यशक्ता चैकेन पञ्चगव्यं पिबेत्ततः ॥१५

उच्छिष्टस्तु यदा विप्रः स्पृशेन्मद्यं रजस्वलाम् ।
मद्यं स्पृष्ट्वा चरेत्कृच्छ्रं तदर्द्धन्तु रजस्वलाम् ॥१६

उदक्यां सूतिकां विप्र उच्छिष्टः स्पृशते यदि ।
कृच्छ्रार्द्धन्तु चरेद्विप्रः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥१७

चाण्डालैः श्वपचैर्वापि आत्रेयी स्पृशते यदि ।
शेषाहात् कालकृच्छ्रेन पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१८

उदक्या ब्राह्मणी शूद्रामुदक्यां स्पृशते यदि ।
अहोरात्रोषिता भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१६

एवञ्च क्षत्रियां वैश्यां ब्राह्मणी चेद्रजस्वलाम् ।
सचेलप्लवनं कृत्वा दिनस्यान्ते घृतं पिबेत् ॥२०

सवर्णेषु तु नारीणां सद्यः स्नानं विधीयते ।
एवमेव विशुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥२१

इत्यापस्तम्बीये धर्म्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ।

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

सुरादिदूषितकांस्यशुद्धिविधानवर्णनम्।

भस्मना शुध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते।
सुराविण्मूत्रसंस्पृष्टं शुध्यते तापलेखनैः ॥११
गवाघ्रातानि कांस्यानि शुद्रोच्छिष्टानि यानि तु।
दशभिः क्षारैः शुध्यन्ति श्वकाकोपहतानि च ॥२
शौचं सुवर्णनारीणां वायुसूर्य्येन्दुरश्मिभिः ॥३
रेतस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकन्तु प्रदुष्यति।
अद्भिर्मृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुध्यति ॥
शुद्धमन्नमविप्रस्य पञ्चरात्रेण जीर्य्यति।
अन्नं व्यञ्जनसंयुक्तमर्द्धमासेन जीर्य्यति ॥५
पयस्तु दधि मासेन षणमासेन घृतं तथा।
सम्वत्सरेण तैलन्तु कोष्ठे जीर्य्यति वा नवा
भुञ्जते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम्।
इह जन्मनि शूद्रत्वं जायन्ते ते मृताः शुनि ॥७
शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैव सहासनम्।
शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥८
आहित्याग्निस्तु योविप्रः शूद्रान्नान्न निवर्तते।
तथा तस्य प्रणश्यन्ति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽग्नयः ॥६
शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा ह्यन्याच्छुक्रस्य सम्भवः ॥१०

शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः।
स भवेच्छूकरो ग्राम्यो मृतः श्वा वाथ जायते ॥११

ब्राह्मणस्य सदा भुङ्क्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि।
वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन ॥१२

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम्।
वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥१३

वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः।
अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥१४

व्यवहारानुरूपेण धर्मेण च्छलवर्जितम्।
क्षत्रियस्य पयस्तेन भूतानां यच्च पालनम् ॥१५

स्वकर्म्मणा च वृषभैरनुसृत्याद्यशक्तितः।
खलयज्ञातिथित्वेन वैश्यान्नन्तेन संस्कृतम् ॥१६

अज्ञानतिमिरान्धस्य मद्यपानरतस्य च।
रुधिरं तेन शूद्रान्नं विधिमन्त्रविवर्जितम् ॥१७

आममांसं मधु घृतं धानाः क्षीरं तथैव च।
गुडं तक्रं समं ग्राह्यं निवृत्तेनापि शूद्रतः ॥१८

शाकं मांसं मृणालानि तुम्बुरुः शक्तवस्तिलाः।
रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या हि सर्वतः ॥१९

आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि।
मनस्तापेन शुध्येत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥२०

द्रव्यपाणिश्च शूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेन कर्हिचित्।
तद्द्विजेन न भोक्तव्यमापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥२१

इत्यापस्तम्बीये धर्म्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः।

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

अपेयपानेऽभक्ष्यभक्षणे च प्रायश्चित्तवर्णनम्।

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित् स्रवते गुदम्।
उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१

पूर्वं शौचन्तु निर्वर्त्य ततः पश्चादुपस्पृशेत्।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥२

अशित्वा सर्वमेवान्नमकृत्वा शौचमात्मनः।
मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रन्तु यवान् पीत्वा विशुध्यति ॥३

प्रसृतं यवशस्येन पलमेकन्तु सर्पिषा।
पलानि पञ्च गोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥४

अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणाञ्च भक्षणे।
रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥५

पद्मोदुम्बरबिल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशकाः।
एतेषामुदकं पीत्वा षड्रात्रेण विशुध्यति ॥६

ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलादिषु।
अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वं चिकीर्षतः ॥७

चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि वा।
जातकर्मादिभिः सर्वैः पुनः संस्कारभागिनः।
तेषां सान्तपनं कृच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा ॥८

यद्वेष्टितं कालवलाकचिल्लैरमेध्यलिप्तञ्च भवेच्छरीरम्।
श्रोत्रे मुखे च प्रविशेच्च सम्यक् स्नानेन लेपोपहतस्य शुद्धिः ॥९

ऊर्द्ध्वं नाभेः करौ मुक्त्वा यदङ्गमुपहन्यते ।
ऊर्द्ध्वं स्नानमधः शौचं मार्जनेनैव शुध्यति ॥१०

उपानहावमेध्यं वा यस्य संस्पृशते मुखम् ।
मृत्तिकाशोधनं स्नानं पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥११

दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु ।
षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥१२

उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्ता च समुपस्थितः ।
अपीतवत् समुत्सृष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ॥१३

अन्ने भोजनसम्पन्ने मक्षिकाकेशदूषिते ।
अनन्तरं स्पृशेदापस्तच्चान्नं भस्मना स्पृशेत् ॥१४

शुष्कमांसमयं चान्नं शूद्रान्नं वाप्यकामतः ।
भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेद्विप्रो ज्ञानात् कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥१५

अभुक्ते मुच्यते यश्च भुञ्जन् यश्चापि मुच्यते ।
भोक्ता च भोजकश्चैव पङ्क्त्या गच्छति दुष्कृतम् ॥१६

यश्च भुङ्क्ते तु भुक्तं वा दुष्टं वाऽपि विशेषतः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१७

उदके चोदकस्थस्तु स्थलस्थश्च स्थले शुचिः ।
पादौ स्थाप्योभयत्रैव आचम्योभयतः शुचिः ॥१८

उत्तीर्य्याचम्य उदकादवतीर्य्य उपस्पृशेत् ।
एवन्तु श्रेयसा युक्तो वरुणेनाभिपूज्यते ॥१९

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ ।
स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् ॥२०

जन्मप्रभृतिसंस्कारे श्मशानान्ते च भोजनम्।
असपिण्डैर्न कर्त्तव्यं चूडाकार्ये विशेषतः ॥२१
याजकान्नं नवश्राद्धं सग्रहे चैव भोजनम्।
स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२२
ब्रह्मौदने (ऽवसाने) च श्राद्धे च सीमन्तोन्नयने तथा।
अन्नश्राद्धे मृतश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२३
अप्रजा या तु नारी स्यान्नाश्नीयादेव तद्गृहे।
अथ भुञ्जीत मोहाद् यः पूयसं नरकं व्रजेत् ॥२४
अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः।
रौरवे बहुवर्षाणि पुरीषं मूत्रमश्नुते ॥२५
स्त्रीधनानि च ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः।
स्वर्णं यानानि वस्त्राणि ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥२६
राजान्नं तेजआदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्।
असंस्कृतन्तु योभुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् ॥२७
मृतके सूतके चैव गृहीते शशिभास्करे।
हस्तिच्छायान्तु यो भुङ्क्ते पापः स पुरुषो भवेत् ॥२८
पुनर्भूः पुनरेता च रेतोधा कामचारिणी।
आसां प्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२९
मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः।
विशेषाद्भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥३०
रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम्।
भुक्त्वैषां ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिं चान्द्रायणेन तु ॥३१

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदाचिदुपजायते।
सवर्णेन तदोत्थाय उपस्पृश्य शुचिर्भवेत्।
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥३२

ब्राह्मणस्य सदाकालं शूद्रे प्रेषणकारिणः।
भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः ॥३३

अनूदकेष्वरण्येषु चौरव्याघ्राकुले पथि।
कृत्वा मूत्रं पुरीषञ्च द्रव्यहस्तः कथं शुचिः ॥३४

भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथार्थतः।
उत्सङ्गे गृह्य पक्वान्नमुपस्पृश्य ततः शुचिः ॥३५

मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः।
मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रन्तु गव्यं पीत्वा विशुध्यति ॥३७

उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः।
चान्द्रायणेन शुध्येतब्राह्मणानांच भोजनैः ॥३७

भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा।
प्रमादाद् यदि संस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥३८

स्नात्वा त्रिषवणं नित्यं ब्रह्मचारी धराशयः।
स त्रिरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥३९

चाण्डालेन तु संस्पृष्टो यश्चापः पिबति द्विजः।
अहोरात्रोषितो भूत्वा त्रिषवणेन शुध्यति ॥४०

सायं प्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्य तं विदुः।
सायं प्रातस्तथैवैकं दिनद्वयमयाचितम् ॥४१

दिनद्वयञ्च नाश्नीयात् कृच्छ्रार्द्धं तद्विधीयते।
प्रायश्चित्तं लघु ह्येतत्पापेषु तु यथाऽहृतः ॥४२

कृष्णाजिनतिलग्राही हस्त्यश्वानाञ्च विक्रयी ।
प्रेतनिर्यातकश्चैव न भूयः पुरुषोभवेत् ।।४३

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ।

।। अथ दशमोऽध्यायः ।।

अथ मोक्षाधिकारिणामभिधानवर्णनम् ।

आचान्तोऽप्यशुचिस्तावद् यावन्नोद्ध्रियते जलम् ।
उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद् यावद्भूमिर्न लिप्यते ।।१
भूमावपि च लिप्तायां तावत् स्यादशुचिः पुमान् ।
आसनादुत्थितस्तमाद् यावन्नाऽऽक्रमते महीम् ।।२
न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते ।
आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ।।३
न तथाऽसिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः ।
यथा क्रोधो हि जन्तूनां शरीरस्थो विनाशकः ।।४
क्षमा गुणो हि जन्तूनामिहामूत्रसुखप्रदः ।
अरिर्वानित्यसंक्रुद्धो यथाऽऽत्मादुरधिष्ठितः ।
एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ।।५
न शक्तिशास्त्राभिरतस्य मोक्षो नचैव रम्यावसथप्रियस्य ।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य ।।६

मोक्षो भवेत् प्रीतिनिवर्त्तकस्य अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यक् ।
मोक्षो भवेन्नित्यमहिंसकस्य स्वाध्याययोगागतमानसस्य ॥७

क्रोधयुक्तो यद् यजते यज्जुहोति यदर्च्चति ।
सर्वं हरति तत्तस्य आमकुम्भइवोदकम् ॥८

अपमानात्तपोवृद्धिः सम्मानात्तपसः क्षयः ।
अर्चितः पूजतो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति ॥९

आप्यायते यथा धेनुस्तृणैरमृतसम्भवैः ।
एवं जपश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः ॥१०

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ट्रवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥११

रजकव्याधशैलूषवेणचर्मोपजीविनाम ।
यो भुङ्क्ते भुक्तमेतेषां प्राजापत्यं विशोधनम् ॥१२

अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
शुद्धिं चान्द्रायणं कृत्वा अथर्वोक्तं तथैव च ॥१३

अग्निहोत्रं त्यजेद् यस्तु स नरोवीरहा भवेत् ।
तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चान्द्रायणादृते ॥१४

विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।
सद्यः शुद्धिं विजानीयात् पूर्वं सङ्कल्पितं चरेत् ॥१५

देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकरेषु च ।
कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाशौचं मृतसूतके ॥१६

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।

समाप्ताचेयमापस्तम्बस्मृतिः ।

ॐ तत्सत् ।

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

॥ अथ ॥

॥ लघुशङ्खस्मृतिः ॥

—❋❋❋—

श्रीगणेशाय नमः ।

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथेष्टापूर्तकर्मणोः फलाभिधानवर्णनम् ।

इष्टापूर्तौ तु कर्तव्यौ ब्राह्मणेन विशेषतः ।
इष्टेन लभते स्वर्गं मोक्षं पूर्तेन विन्दति ॥१

एकाहमपि कौन्तेय भूमिष्टमुदकं कुरु ।
कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्वितृषा भवेत् ॥२

भूमिदानेन यो लोका गोदानेन च कीर्तिताः ।
तांल्लोकान्प्राप्नुयुर्मर्त्याः पादपानां प्ररोहणे ॥३

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥४

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव धारणम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥५

इष्टापूतो (र्ते) द्विजातीनां सामान्यो (न्ये) धर्मसाधने ।
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥६

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य च ।
तावद्वर्षसहस्राणिस्वर्गलोके महीयते ॥७

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलाञ्जलिम् ।
असंस्कृतमृतानां च स्थले दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥८

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज (ज्य) ते वृषः ।
मुच्यते प्रेतलोकाच्च स्वर्गलोकं स गच्छति ॥९

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥१०

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे तु पाण्डुरः ।
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स वै नीलवृषः स्मृतः ॥११

नवश्राद्धं त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ।
पतन्ति पुरुषास्तस्य यो भुङ्क्तेऽनापदि द्विजः ॥१२

यस्यैतानि न कुर्वीत एकोद्दिष्टानि षोडश ।
प्रेततो न (त्वात्र) विमुच्येत कृतैः श्राद्धशतैरपि ॥१३

एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते द्विजः ।
अमूलं तद्विजानीयात्स मातृपितृघातकः ॥१४

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतः ।
प्रतिमासं यथा तस्य प्रतिसंवत्सरं तथा ॥१५

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्रोपदीयते।
तत्र तत्र त्रयं कुर्याद्वर्जयित्वा मृतेऽहनि ॥१६

अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षे तथा यदि।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः ॥१७

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते।
प्राप्ते चैका दशाहिने पार्वणं तु विधीयते ॥१८

मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः।
पितामहीसह (ह्यादिभि)स्तस्याः सपिण्डीकरणं स्मृतम् ॥१६

कर्तव्यं प्रत्युप(तु प्रमी) तायाः सपिण्डीकरणं स्त्रियाः।
मृताऽ(भर्त्रा ऽ)पि हि न कर्तव्यं चरुमन्त्राहुतिव्रतैः ॥२०

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः।
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः ॥२१

अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरः पङ्क्तिदूषणैः।
अदोषं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ॥२२

यानि यस्य पवित्राणि कुक्षौ तिष्ठन्ति भारत।
तानि तस्यैव पूज्यानि न शरीराणि देहिनाम् ॥२३

अग्नौकरणशेषं तु पितृपात्रे प्रदापयेत्।
प्रतिपद्य पितॄणां च न दद्याद्वैश्वदेविके ॥२४

मृण्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धं भोजयते द्विजः।
अन्नदाताऽपहर्ता च भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥२५

हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनादयः।
दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुङ्क्ते च किल्विषम् ॥२६

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ।
भोक्ता विष्ठासमं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥२७

श्राद्धं कृत्वेतरश्राद्धे यस्तु भुङ्क्तेऽतिविह्वलः ।
पतन्ति पितरस्तस्य तं मासं रेतपायिनः ॥२८

पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् ।
दानं प्रतिग्रहो होमः श्राद्धं भुक्त्वाऽष्ट वर्जयेत् ॥२९

व्याममात्रं समुत्सृज्य पिण्डांस्तत्र प्रदापयेत् ।
यत्र संस्पर्शनं वाऽपि प्राप्नुवन्ति न विन्दवः ॥३०

अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ।
तेभ्यश्चापि प्रकर्तव्यमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥३१

मातुः श्राद्धं तु पूर्वस्मात्पितॄणां तदनन्तरम् ।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥३२

दशकृत्वः पिवेच्चापः सावित्र्याः श्राद्धभुग्द्विजः ।
ततः सन्ध्यामुपासीत शुध्यते तदनन्तरम् ॥३३

चान्द्रायणं नवश्राद्धं पराको मासिकेन तु ।
पक्षत्रयेऽपि कृच्छ्रः स्यादेकाहं पुनराब्दिके ।
अत ऊर्ध्वं न दोपः स्याच्छङ्खस्य वचनं त(य)था ॥३४

सर्वविप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः ।
आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥३५

उदकं पिण्डदानं च विप्रेभ्यो यच्च दीयते ।
नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे प्रलीयते ॥३६

नारायणवलिः कार्यो लोकग्रहभयान्नरैः ।
तथा यस्य भवेच्छ्रेयो नान्यथा वाऽब्रवीन्मनुः ॥३७
गोभूहिरण्यहरणे क्षेत्रापणगृहस्य च ।
यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥३८
उद्यताः सह धावन्त एककार्येष्ववस्थिताः ।
यद्येकोऽपि हनेत्तत्र सर्वे ते ब्रह्मघातकाः ॥३९
बहूनामेककार्येषु यद्येको मर्मघातकः ।
सर्वे ते शुद्धिमि(मृ)च्छन्ति स एको ब्रह्मघातकः ॥४०
महापातकसंस्पर्शे स्नानमेव विधीयते ।
संस्पृष्टस्तु यदा भुङ्क्ते कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥४१
चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं वापीकूपगतं जलम् ।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुध्यति । ४२
चाण्डालघटमध्यस्थं यस्तोयं पिबति द्विजः ।
तत्क्षणात्क्षय(क्षिप)ते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥४३
यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति ।
प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्(च्छ्रं) सांतपनं स्मृतम् ॥४४
चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु क्षत्त्रियः ।
तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥४५
यस्य चाण्डालि(ली) संयोगो भवेत्कश्चि(त्कचि)दकामतः ।
तस्य सांतपनं कृच्छ्रं स्मृतं शुद्ध्यर्थमात्मनः ॥४६
चाण्डालोदकसंस्पृष्टः स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥४७

आजानु स्नानमात्रं स्यादानाभेश्च विशोधनम् ।
अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्याच्छरीरस्पर्शने मलम् ॥४८
रजस्वला तु संस्पृष्टा श्वानचाण्डालवायसैः ।
तावत्तिष्ठेन्निराहारः(रा) स्नात्वा कालेन शुध्यति ॥४९
अस्थिभङ्गं गवां कृत्वा चाण्डालस्य च च्छेदनम् ।
पातनं चैव शृङ्गस्य मासार्धं व्याप(याव)कं चरेत् ॥५०
यवसस्त्रावबोटव्यो यावद्रोहेत तद्गृहे (?) ।
तद्वर्णां च सुगां दत्वा ततः पापात्प्रमुच्यते ॥५१
हले वा शकटे चैव दुर्बलं यो नियोजयेत् ।
प्रत्यवाये समुत्पन्ने ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥५२
अतिवाह्यातिदोहाभ्यां नासिकाभेदने तथा ।
नदीपर्वतसंरोधे पादोनं व्रतमाचरेत् ॥५३
एकं च बहुभिः कैश्चिद्दैवाद्व्यापादितं क्वचित् ।
कृच्छ्रपादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥५४
एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ।
योक्त्रे च पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ॥५५
रोमाणि प्रथमे पादे द्वितीये च (चा) श्मघातनम् ।
तृतीयं(ये)तु शिखा धार्या सशिखं तु निपातने ॥५६
केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ।
द्विगुणव्रते समादिष्टे द्विगुणे(णा)दक्षिणा भवेत् ॥५७
राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ।
अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥५८

अन्येषां नखकर्णानां बाहोर्निर्मोचने तथा ।
सायं संगोपनार्थाय न दुष्येद्रोधबन्धयोः ॥५९
यन्त्रिते गोचिकित्साया मूढगर्भाविमोचने ।
यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥६०
औषधं स्नेहमाहारं दत्तं गोब्राह्मणाय च ।
यदि कश्चि(काचि)द्विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥६१
स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ।
कुर्वन्त्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥६२
बालस्त्वन्तर्दशाहे तु प्रेतत्वं यदि गच्छति ।
सद्य एव विशुद्धिः स्यान्नाशौचं नैव सूनकम् ॥६३
आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रं तु व्रतादेशा दशरात्रमतः परम् ॥६४
अहस्त्व दत्तकन्याया वालेषु च विशोधनम् ।
कुर्वन्नैवाशनौ यात मातुलश्रोत्रिये यथा ॥६५
ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् ।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा ॥६६
आममांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसंभवाः ।
म्लेच्छभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः ॥६७
दिवा कपित्थच्छायासु रात्रौ दधिशमीषु च ।
धात्रीफलेषु सप्तम्यामलक्ष्मीर्वसते सदा ॥६८
स(शू)र्पवातनखाग्रान्तकेशबन्ध[प]टोदकम् ।
मार्जनीरेणुसंस्पर्शो हन्ति पुण्यं दिवाकृतम् ॥६९

अर्धवासास्तु यः कुर्याज्जपहोमक्रिया द्विजः।
तत्सर्वं राक्षसं विद्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम् ॥७०

यत्र यत्र च संकीर्णं पश्यत्यात्मन्यसंशयम्।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्यावर्तनं तथा ॥७१

इति लघुशङ्खस्मृतिः।

ॐ तत्सत्।

॥ अथ ॥

-॥ शङ्खस्मृतिः ॥-

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ ब्राह्मणादीनां कर्मवर्णनम्।

स्वम्भुवे नमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे।
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शङ्खः शास्त्रमथाकरोत् ॥१

यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रियाम्।
प्रतिग्रहश्चाध्ययनं विप्रः कर्माणि कारयेत् ॥२

दानमध्ययनञ्चैव यजनञ्च यथाविधि।
क्षत्रियस्य तु वैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम् ॥३
क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम्।
कृषिगो(गौ)रक्ष(क्ष्य)वाणिज्यं वैश्यस्य (विशश्च) परिकीर्तितम् ॥४
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानि चाप्यथ।
क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ॥५
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
तेषां जन्म द्वितीयन्तु विज्ञेयं मौञ्जिबन्धनम् ॥६
आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा।
ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव मौञ्जिबन्धनजन्मनि ॥७
वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विचक्षणैः।
यावद्वेदेन जायन्ते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥८

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

ब्राह्मणादीनां संस्कारवर्णनम्।

गर्भस्य स्फुटताज्ञाने निषेकः परिकीर्तितः।
तत(पुरा)स्तु स्पन्दनात् कार्यं पुंसवनं विचक्षणैः ॥१

षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तो जाते वै जातकर्म च ।
अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते ।
नामधेयञ्च कर्तव्यं वर्णानाञ्च समाक्षरम् ।
माङ्गल्यं ब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्य बलान्वितम् ॥२
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ।
शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ॥३
धनान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं चान्त्यजन्मनः ।
चतुर्थे मासि कर्तव्यमादित्यस्य प्रदर्शनम् ॥४
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ।
गर्भाष्टमेऽब्दे कर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥५
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ।
षोडशाब्दस्तु विप्रस्य द्वाविंशः क्षत्रियस्य तु ॥६
विंशतिः सचतुष्का च वैश्यस्य परिकीर्तिता ।
नाभिभाषेत सावित्रीमत ऊर्ध्वं निवर्तयेत् ॥७
विज्ञातव्यास्त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्याः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥८
मौञ्जीबन्धो द्विजानान्तु क्रमान्मौञ्जी प्रकीर्तिता ।
मार्गवैयाघ्रवास्तानि कर्माणि ब्रह्मचारिणाम् ॥९
पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ।
कर्णकेशललाटैस्तु (केशदेशललाटस्य) तुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ॥१०
अवक्राः सत्वचः सर्वे नाग्निदग्धास्तथैव च ।
यज्ञो(वस्त्रो,पवीतं कर्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ॥११

आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ।
भैक्षस्य वरणं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥१२

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

ब्रह्मचर्याद्याचारवर्णनम् ।

स गुरुर्यः क्रिया कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।
उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ।
भृतकाध्यापको यस्तु उपाध्यायः स उच्यते ॥१
माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयाः सदा नृणाम् ।
क्रियास्तथाऽफलाः सर्वा यस्यैतेऽनादृतास्त्रयः ।
प्रयतः कल्यमुत्थाय स्नातो हुतहुताशनः ।
कुर्वीत प्रयतोभूत्वा (भक्त्या) गुरूणामभिवादनम् ॥२
अनुज्ञातश्च गुरुणा ततोऽध्ययनमाचरेत् ।
कृत्वा ब्रह्मांजलिं पश्यन गुरोर्वदनमानतः ॥३
ब्रह्मावसाने प्रारम्भे प्रणवञ्च प्रकीर्तयेत् ।
अनध्यायेष्वध्ययनं वर्जयेच्च प्रयत्नतः ॥४
चतुर्दशीं पञ्चदशीमष्टमीं राहुसूतकम् ।
उल्कापातं महीकम्पमाशौचं ग्रामविप्लवम् ॥५

इन्द्रप्रया(णं)गं सुरतं घनसंघातनिस्वनम् ।
वाद्यकोलाहलं युद्धमनध्यायान् विवर्जयेत् ॥६

नाधीयीताभियुक्तोऽपि (यानगोनचनौगतः) प्रयत्नान्न च वेगतः ।
देवायतनवल्मीकश्मशानशवसन्निधौ ।
भैक्षचर्य्यान्तथा कुर्याद् ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥७

गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः प्राश्नीयात् प्राङ्मुखः शुचिः ।
हितं प्रियं गुरोः कुर्यादहङ्कारविवर्जितः ॥८

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां पूजयित्वा हुताशनम् ।
अभिवाद्य गुरुं पश्चाद् गुरोर्वचनकृद्भवेत् ॥६

गुरोः पूर्वं समुत्तिष्ठेच्छयीत चरमं तथा ।
मधुमांसाञ्जनं श्राद्धं गीतं नृत्यञ्च वर्जयेत् ॥१०

हिंसापवादवादांश्च (परापवादं च) स्त्रीलीलां च विशेषतः ।
मेखलामजिनं दण्डं धारयेच्च प्रयत्नतः ।
अधःशायी भवेन्नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥११

एवं कृत्य(व्रत)न्तु कुर्वीत वेदस्वीकरणं बुधः ।
गुरवे च धनं दत्त्वा (स्नायीततदनुज्ञया)स्नायाच्च तदनन्तरम् ॥१२

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ।

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

विवाहसंस्कारवर्णनम्।

विन्देत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम्।
मातृतः पञ्चमीञ्चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ॥१

ब्राह्मो दैवस्तथैवाऽऽर्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥२

एते धर्मास्तु चत्वारः पूर्वं विप्रे प्रकीर्तिताः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव क्षत्त्रियस्य प्रशस्यते ॥३

अ(सं)प्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः।
यज्ञेषु ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ॥४
प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः।
आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः ॥५
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात्।
तिस्रस्तु भार्य्या विप्रस्य द्वे भार्य्ये क्षत्रियस्य तु ॥६
एकैव भार्य्या वैश्यस्य तथा शूद्रस्य कीर्तिता।
ब्राह्मणी क्षत्त्रिया वैश्या ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिताः ॥७
क्षत्त्रिया चैव वैश्या च क्षत्त्रियस्य विधीयते।
वैश्यैव भार्य्या वैश्यस्य शूद्रा शूद्रस्य कीर्तिता ॥८
आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्य्या द्विजन्मना।
तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥६
तपस्वी य(ज्ञ)शशीलश्च सर्व धर्मभृतां वरः।

ध्रुवं शूद्रत्वमाप्नोति शूद्रश्राद्धे त्रयोदशे ॥१०

नीयते तु सपिण्डत्वं येषां (शूद्रः) श्राद्धं कुलोद्(भवः)गतम् ।
सर्वे शूद्रत्वमायान्ति यदि स्वर्गजितास्तु ते ॥११

सपिण्डीकरणं कार्यं कुलजस्य तथा ध्रुवम् ।
श्राद्धं द्वादशकं कृत्वा श्राद्धे प्राप्ते त्रयोदशे ॥१२

सपिण्डीकरणे चार्हे न च शूद्र(कथंचन)स्तथार्हति ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्य्यां विवर्जयेत् ॥१३

पाणिग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात् क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ॥१४

सा भार्य्या या (गृहं रक्षा)वहेदग्निं सा भार्य्या या पतिव्रता ।
सा भार्य्या या पतिप्राणा सा भार्य्या या प्रजावती ॥१४

लालनीया सदा भार्य्या ताड़नीया तथैव च ।
लालिता ताड़िता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥१५

इती शाङ्खीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

पंचमहायज्ञाः गृहाश्रमिणांप्रशंसा—अतिथिवर्णनम् ।

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च तस्य पापस्य शान्तये ॥१

पञ्चयज्ञविधानञ्च गृही नित्यं न हापयेत् ।
पञ्चयज्ञविधानेन तत्पापं तस्य नश्यति ॥२

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च ।
ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पञ्च यज्ञाः प्रकीर्त्तिताः ॥३

होमो दैवोवलिर्भौतः पित्र्यः पिण्डक्रियास्मृतः ।
स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥४

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः ।
गृहस्थस्य प्रसादेन जीवन्त्येते यथाविधि ॥५

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
दाता चैव गृहस्थः स्यात्तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥६

यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा ।
अतिथिस्तद्वदेवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ॥७

न व्रतैर्नोपवासैश्च (न च यज्ञैः पृथग्विधैः) धर्मेण विविधेन च ।
नारी(राजा)स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पति(परिपालनात्)पूजनात् ॥८

न स्नानेन न होमेन नैवाग्नि(परिचर्यया,तर्पणात् ।
ब्रह्मचारी दिवं याति स याति गुरुपूजनात् ॥९

नाग्नि(अति)शुश्रूषया क्षान्त्या स्नानेन विविधेन च ।
वानप्रस्थो दिवं याति याति भोजनवर्जनात् ॥१०

न भैक्षै(दण्डै)र्न च मौनेन शून्यागाराश्रयेण च ।
योगी (यतिः) सिद्धिमवाप्नोति (योगेनाऽऽप्नोत्यनुत्तमाम्)
यथा मैथुनवर्जनात् ॥११

न यज्ञैर्दक्षिणाभिश्च वह्निशुश्रूषया न च।
गृही स्वर्गमवाप्नोति तथा चातिथिपूजनात् १२
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गृहस्थोऽतिथिमागतम्।
आहारशयनाद्येन विधिवत् परि(प्रति)पूजयेत्॥१३
सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि।
दर्शञ्च पौर्णमासञ्च जुहुयाच्च यथाविधि॥१४
यज्ञैर्वा (यजेत)पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च।
त्रैवार्षिकाधिकान्नेन पिबेत् सोममतन्द्रितः॥१५
इष्टिं वैश्वानरीं कुर्य्यात्तथा चाल्पधनो द्विजः।
न भिक्षेत धनं शूद्रात् सर्व्वं दद्या(द्भिक्षितम्)दभीप्सितम्॥१६
वृत्तिन्तु न त्यजेद्विद्वानृत्विजं पूर्वमेव तु।
कर्मणा जन्मना शुद्धं (विधया च वृणीततम्)विद्यात् पात्रं वलीततम्॥१७
एतैरेव गुणैर्युक्तं धर्मार्जितधनं तथा।
याजयेत्तु (याजयीत) सदा विप्रो ग्राह्यस्तस्मात् प्रतिग्रहः॥१८

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

॥ षष्ठोऽध्यायः॥

अथ वानप्रस्थधर्मनिरूपणंसन्यासधर्मप्रकरणञ्च।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदाऽरण्यं समाश्रयेत्॥१

पुत्रेषु दारान्निक्षिप्य तया वाऽनुगतो वनम्।
अग्नीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमाहरेत् ॥२

यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत् पितृदेवताः।
तेनैव पूजयेन्नित्यमतिथिं समुपागतम् ॥३

ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः।
स्वाध्यायञ्च सदा कुर्य्याज्जटाश्च बिभृयात्तथा ॥४

तपसा शोषयेन्नित्यं स्वयञ्चैव कलेवरम्।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते ग्रीष्मे पञ्चतपास्तथा ॥५

प्रावृष्याकाशशायी स्यान्नक्ताशी च सदा भवेत्।
चतुर्थकालिको वास्यात् स्यात्षष्ठकालिक एव वा ॥६

कृच्छ्रैर्वाऽपि नयेत् कालं ब्रह्मचर्य्यञ्च पालयेत्।
एवं नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥७

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः।

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथप्राणायामलक्षणंधारणध्यानयोगनिरूपणवर्णनम्।

कृत्वेष्टिं विधिवत् पश्चात् सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥१

विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवजने।
अतीते पादसम्पाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥२

सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्यं(क्षं) भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ।
न व्यथेत तथाऽलाभे यथा लब्धेन वर्तयेत् ।
नाऽऽस्वादयेत्तथैवान्नं नाश्नीयात् कस्यचिद्गृहे ॥३

मृन्मयालाबुपात्राणि यतीनान्तु विनिर्दिशेत् ।
तेषां सम्मार्जनाच्छुद्धिरद्भिश्चैव प्रकीर्तिता ॥४

कौपीनाच्छादनं वासो विभृयादसख(व्यथ)श्चरन् ।
शून्यागारनिकेतः स्याद्यत्र सायं गृहो मुनिः ॥५

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥६

चन्दनैर्लिप्यतेऽङ्गं वा भस्मचूर्णैर्विगर्हितैः ।
कल्याणमप्यकल्याणं तयोरेव न संश्रयेत् ॥७

सर्वभूतहितो मैत्रः समलोष्ट्राश्मकाञ्चनः ।
ध्यानयोगरतो नित्यं भिक्षुर्यायात् (प्राप्नोति)परां गतिम् ॥८

जन्मना यस्तु निर्विण्णो मन्यते (मरणेन) च तथैव च ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥९

अशुचित्वं शरीरस्य प्रियस्य च विपर्य्ययः ।
गर्भवासे च वसतिस्तस्मान्मुच्येत नान्यथा ॥१०

जगदेतन्निराक्रन्दं नतु सारमनर्थकम् ।
भोक्तव्यमिति नि(र्दिष्टो)र्विण्णो मुच्यते नात्र संशयः ॥११

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारैरसत्सङ्गान् ध्यानेनानैश्वरान् गुणान् ॥१२

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥१३

मनसः संयमस्तज्ज्ञैर्धारणेति निगद्यते।
संहारश्चेन्द्रियाणाञ्च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ॥१४
हृदयस्थस्य योगेन देवदेवस्य दर्शनम्।
ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्षामि सर्वस्माद्योगतः शुभम् ॥१५
हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
हृदि ज्योतींषि (सूर्यश्च)भूयश्च हृदि सर्वं प्रतिष्टितम् ॥१६
स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवञ्चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यान्तु विष्णुं पश्येद्धृदिस्थितम् ॥१७
हृद्यर्कश्चन्द्रमाः सूर्य्यः सोमो मध्ये हुताशनः।
तेजोमध्ये स्थितं तत्त्वं तत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥१८
अणोरणीयान् महतो महीया नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तेजोमयं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥१९
वासुदेवस्तमोऽन्धानां प्रत्यक्षो नैव जायते।
अज्ञानपटसंवीतैरिन्द्रियैर्विपयेप्सुभिः ॥२०
एष वै पुरुषोविष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः।
एष धाता विधाता च पुराणोनिष्कलः शिवः ॥२१
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
मन्त्रैर्विदित्वा न बिभेति मृत्योर्नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय ॥२२
पृथिव्यापस्तथा तेजोवायुराकाशमेव च।
पञ्चेमानि विजानीयान्महाभूतानि पण्डितः ॥२३
चक्षुः श्रोत्रे स्पर्शनञ्च रसना घ्राणमेव च।
बुद्धीन्द्रियाणि जानीयात् पञ्चमानि शरीरके ॥२४

शब्दो रूपं तथा स्पर्शो रसो गन्धस्तथैव च ।
इन्द्रियस्थान् विजानीयात् पञ्चैव विषयान् बुधः ॥२५
हस्तौ पादावुपस्थञ्च जिह्वा पायुस्तथैव च ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव नित्यं (मस्मिन्) सति शरीरके ॥२६
मनो बुद्धिस्तथैवाऽऽत्मा व्यक्ताव्यक्तं तथैव च ।
इन्द्रियेभ्यः पराणीह चत्वारि प्रवराणि च ॥
चतुर्विंशत्यथैतानि तत्त्वानि कथितानि च ।
तथाऽऽत्मानं तद्व्यतीतं पुरुषं पञ्चविंशकम् ।
तन्तु ज्ञात्वा विमुच्यन्ते ये जनाः साधुवृत्तयः ॥२८
इदन्तु परमं शुद्ध(गुह्य)मेतदक्षरमुत्तमम् ।
अशब्दरसमस्पर्शमरूपं गन्धवर्जितम् ॥२९
निर्दुःखमसुखं शुद्धं तद्विष्णोः परमं पदम् ।
अजं निरञ्जनं शान्तमव्यक्तं ध्रुवमक्षरम् ।
अनादिनिधनं ब्रह्म तद्विष्णोः परमं पदम् ।
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहबन्धनः ॥३०
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
बालाग्रशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा ॥३१
तस्यापि शतशो भागाज्जीवः सूक्ष्म उदाहृतः ॥३२
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा तथा परः ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्नं परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥३३

एषु सर्वेषु भूतेषु तिष्ठत्यविरलः सदा।
दृश्यते त्वग्र्यया बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥३४

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

अथनित्यनैमित्तिकादिस्नानानां लक्षणवर्णनम्।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम्।
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥१
अस्नातः पुनरानर्हो जप्याग्निहवनादिषु।
प्रात स्नानं तदर्थं च नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥२
चण्डालशवयूपाद्यं स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम्।
स्नानानर्हस्तु यः स्नाति स्नानं नैमित्तिकं च तत् ॥३
पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम्।
तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥४
जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवताः पितॄन्।
स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियाङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ॥५
मलापकर्षणार्थं तु स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्।
मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥६
सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च।
क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र महाक्रिया ॥७
तत्र काम्यं तु कर्तव्यं यथावद्विधिचोदितम्।
नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ॥८

तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ।
स्नानं तु वह्नितप्तेन तथैव परवारिणा ॥६

शरीरशुद्धिर्विज्ञेया न तु स्नानफलं लभेत् ।
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति तीर्थस्नानात्फलं लभेत् ॥१०

सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ।
स्नानमेव क्रिया तस्मात्स्नानात्पुण्यफलं स्मृतम् ॥११

तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेण स्नानं तीर्थे समाचरेत् ।
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलं न तु ॥१२

सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा नृणाम् ।
परस्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः ॥१३

सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः ।
नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाह्नवी तु विशेषतः ॥१४

यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥१५

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥१६

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ।

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

अथ क्रियास्नानविधिवर्णनम् ।

क्रियास्नानं प्रवक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ।
मृद्भिरद्भिश्च कर्तव्यं शौचमादौ यथाविधि ॥१

जले निमग्न उन्मज्य उपस्पृश्य यथाविधि ।

जलस्याऽऽवाहनं कुर्यात्तत्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ।

तीर्थ(जल)स्यावाहनं कुर्य्यात् तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२

प्रपद्ये वरुणं देवमम्भसां पतिमूर्ज्जितम् ।

याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥३

तीर्थमावाहयिष्यामि सर्व्वाघविनिषूदनम् ।

सान्निध्यमस्मिन् स्तोये च क्रियतां (भजत्वं) मदनुग्रहात् ॥

रुद्रान् प्रपद्ये वरदान् सर्व्वानप्सु पदस्तथा ।

सर्व्वानप्सु सदश्चैव प्रपद्ये प्रयतः स्थितः ॥५

देवमंशुमदं (देवमप्सुषदं)वह्नि प्रपद्येऽघनिषूदनम् ।

आपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरणं तथा ॥६

रुद्राश्चाग्निश्च सर्पश्च वरुणस्त्वाप एव च ।

शमयन्त्वाशु मे पापं माञ्च रक्षन्तु सर्वशः ॥७

इत्येव मुक्त्वा कर्तव्य स्ततः संमार्जनं जले ।

आपो हिष्ठेति तिसृभिर्यथावदनुपूर्वशः ।

हिरण्यवर्णेति (वदेदग्निश्च)तिसृभिर्ज्जगतीति चतसृभिः ।

शं नो देवीति तथा शं न आप स्तथैव च ॥८

इदमापः प्रवहते (घृतञ्च) तथा मन्त्र मुदीरयेत् ।

एवं सम्मार्जनं कृत्वा च्छन्दआर्षञ्च देवताः ॥६

एवं मन्त्रान्समुच्चार्य च्छन्दांसि ऋषिदेवताः ।

अघमर्षणसूक्तञ्च प्रपठेत् प्रयतः सदा ।

छन्दोऽनुष्टुप् च तस्यैव ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥१०

देवता भाववृत्तश्च पापक्षये प्रकीर्तितः ॥११

ततोऽम्भसि निमग्नः स्यात्त्रिः पठेदघमर्षणम् ।
प्रपद्यान्मूर्द्धनि तथा महाव्याहृतिभिर्जलम् ॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सवपापप्रणाशनम् ॥१३

अनेन विधिना स्नात्वा स्नातवान् धौतवाससा ।
परिवर्जि(र्ति)तवासास्तु (तीर्थतीरमुपस्पृशेत)तीर्थनामानि संजपेत् ॥१४

उदकस्याप्रदानात्तु स्नानशाटीं न पीड़येत् ।
अनेन विधिना स्नातस्तीर्थस्य फलमश्नुते ॥१५

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ।

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

अथाचमनविधिवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुभामाचमनक्रियाम् ।
कायं कनिष्ठिकामूले तीर्थमुक्तं मनीषिभिः ॥१

अङ्गुष्ठमूले च तथा प्राजापत्यं विचक्षणैः ।
अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दि[दै]व्यं पित्र्यं तर्जनिमूलकम्[के] ॥२

प्राजापत्येन तीर्थेन त्रिः प्राश्नीयाज्जलं द्विजः ।
द्विः प्रमृज्य मुखं पश्चात्खान्यद्भिः समुपस्पृशेत् ॥३

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः।
तालुगाभिस्तथा वैश्यः शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः॥४
अन्तजानुः शुचौ देशे प्राङ्मुखः सुसमाहितः।
उदङ्मुखो वा प्रयतो दिशश्चानवलोकयम्॥५
अद्भिः समुद्धृताभिस्तु हीनाभिः फेनबुद्बुदैः।
वह्निना चाप्यतप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत्॥६
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम्।
अङ्गुष्ठमध्यायोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः॥७
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु श्रवणौ समुपस्पृशेत्।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेत्स्कन्धद्वयं ततः॥८
सर्वासामेव योगेन नाभिं च हृदयं तथा।
संस्पृशेच्च तथा मूर्ध्नि एष आचमने विधिः॥९
त्रिः प्राश्नीयाद्यदम्भस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम॥१०
गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात्।
नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये॥११
स्पृष्टे लोचनयुग्मे तु प्रीयेते शशिभास्करौ।
कर्णयुग्मे तथा स्पृष्टे प्रीयेते अनिलानलौ॥१२
स्कन्धयोः स्पर्शनादस्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः।
मूर्ध्नः संस्पर्शनादस्य प्रीतस्तु पुरुषो भवेत्॥१३
विना यज्ञोपवीतेन तथा मुक्तशिखो द्विजः।
अप्रक्षालितपादस्तु आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्॥१४

बहिर्जानुरुपस्पृश्य एकहस्तार्पितैर्जलैः ।
सोपानत्क(समलाभि)स्तथा तिष्ठन्नैव शुद्धिमवाप्नुयात् ॥१५
आचम्य च पुराप्रोक्तं तीर्थसंमार्जनं तु यत् ।
उपस्पृशेत्ततः पश्चान्मन्त्रेणानेन धर्मतः ॥१६
अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥१७
आचम्य च ततः पश्चादादित्याभिमुखो जलम् ।
उदु त्यं जातवेदसमिति मन्त्रेण निक्षिपेत् ॥१८
एष एव विधिः प्रोक्तः संध्ययोश्च द्विजातिषु ।
पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेदासीनः पश्चिमां स्तथा ॥१९
ततो जपेत्पवित्राणि पवित्रं वाऽथ शक्तितः ।
ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥२०
सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम् ।
येषां जपैश्च होमैश्च पूयन्ते मानवाः सदा ॥२१

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।

॥ अथ एकादशोऽध्यायः ॥

अथाघमर्षणविधिवर्णनम् ।

अघमर्षणं देवकृतं शुद्धवत्यस्तरत्समाः ।
कूष्माण्ड्यः पावमान्यश्च सावित्र्यश्च तथैव च ॥१

त्र्य [त्रि] भिष्टुं द्रुपदा चैव स्तोमानि व्याहृतिस्तथा।
भारुण्डानि च सामानि गायत्री चौशनं [त्र्यौशनसं] तथा ॥२
पुरुषव्रतं च भाषं च तथा सोमव्रतानि च।
अब्लिङ्गं बार्हस्पत्यं च वाक्सूत्रममृतं तथा ॥३
शतरुद्रीयमथर्वशिरस्त्रिसुपर्णं महाव्रतम्।
गोसूक्तमश्वसूक्तं च इन्द्रसूक्तं च सामनी ॥४
त्रीण्याज्यदोहानि रथंतरं च अग्निव्रतं वामदेवव्रतं च।
एतानि गीतानि पुनन्ति जन्तूञ्जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत् ॥५

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः।

॥ द्वादशोऽध्यायः ॥

अथ गायत्रीजपविधिवर्णनम्।

इति वेदपवित्राण्यभिहितानि, एभ्यः सावित्री विशिष्यते ॥१
नास्त्यघमर्षणात्परमन्तर्जले ॥२
न सावित्र्या समं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् ॥३
कुशमध्यामासीनः कुशोत्तरीयवान्कुशपवित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वाऽक्षमालामुपादाय देवताध्यायी जपं कुर्यात् ॥४
सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्माक्षरुद्राक्षपुत्रजीवकानामन्यतमेनाऽऽदाय मालां कुर्यात् ॥५
कुशग्रन्थिं कृत्वा वामहस्तोपयमैर्वा गणयेत् ॥६

आदौ देवता ऋषिच्छन्दः स्मरेत् ॥७

ततः सप्रणवां सव्याहृतिकामादावन्ते च शिरसा गायत्रीमावर्तयेत्

अथास्याः सविता देवता, ऋषिर्विश्वामित्रो गायत्री छन्दः ॥९

ॐकारः प्रणवाख्यः ॥१०

ॐ भूः। ॐ भुवः। ॐ स्वः। ॐ महः। ॐ जनः। ॐ तपः।

ॐ सत्यमिति व्याहृतयः ॥११

ओमापो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति शिरः ॥१२

भवन्ति चात्र श्लोकाः ॥१३

सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ॥१४
शतं जप्त्वा तु सा देवी दिनपापप्रणाशिनी।
सहस्रं जप्त्वा तु तथा पातकेभ्यः समुद्धरेत् ॥१५
दशसहस्रं जप्त्वा तु सर्वकल्मषनाशिनी।
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥१६
सुरापश्च विशुध्येत लक्षजाप्यान्न संशयः।
प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः ॥१७
अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते।
सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश ॥१८
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः।
हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी ॥१९
सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्सला।
शान्तिकामस्तु जुहुयात्सावित्रीमक्षतैः शुचिः ॥२०

हन्तुकामोऽपमृत्युं च घृतेन जुहुयात्तथा।
श्रीकामस्तु तथा पद्मैर्बिल्वैः काञ्चनकामुकः ॥२१
ब्रह्मवर्चसकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा।
घृतप्लुतैस्तिलैर्वह्निं जुहुयात्सुसमाहितः ॥२२
गायत्र्ययुतहोमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
पापात्मा लक्षहोमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥२३
अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ।
गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥२४
गायत्र्या परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥२५
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ।
गायत्रीजाप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ॥२६
तस्मिन्न तिष्ठते पापमब्बिन्दुरिव पुष्करे ॥२७
जपे[प्ये]नैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥२८
उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ।
नोच्चैर्जपं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥२९
सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ।
गायत्रीजप्यनिरतो मोक्षोपायं च विन्दति ॥३०
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ।
गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥३१

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ।

॥ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

अथ तर्पणविधिवर्णनम् ।

स्नातः कृतजप्यस्तदनु प्राङ्मुखो
दिव्येन तीर्थेन देवानुदकेन तर्पयेत् ॥१
अथ तर्पणविधिः ॥२
ॐ भगवन्तं शेषं तर्पयामि ॥३
कालाग्निरुद्रं तु ततो रुक्मभौमं तथैव च ।
श्वेतभौमं ततः प्रोक्तं पातालानां च सप्तकम् ॥४
जम्बूद्वीपं ततः प्रोक्तं शाकद्वीपं ततः परम् ।
गोमेदपुष्करे तद्वच्छाकाख्यं च ततः परम् ॥५
शार्वरं ततः स्वधामानं ततो हिरण्यरोमाणं
ततः कल्पस्थायिनो लोकांस्तर्पयेत् ॥६
लवणोदकं ततः क्षीरोदं ततो घृतोदं तत इक्षूदं ततः
स्वादूदं तत इति सप्तसमुद्रकं प्रत्यृचं पुरुषसूक्तेनोदका-
ञ्जलीन्दद्यात्, पुष्पाणि च तथा भक्त्या ॥७
अथ कृतापसव्योदक्षिणामुखोऽन्तर्जानुः पित्र्येण
पितृणां यथाश्राद्धं प्रकाममुदकं दद्यात् ॥८
सौवर्णेन पात्रेण राजतेनौदुम्बरेण खड्गपात्रेणान्य
पात्रेण वोदकं पितृतीर्थं स्पृशन्दद्यात् ॥९
पित्रे पितामहाय प्रपितामहाय मात्रे पितामह्यै
प्रपितामह्यै मातामहाय [?] प्रमातामहाय मात्रे [?]
मातामह्यै प्रमातामह्यै सप्तमात्पुरुषात्पितृपक्षे यावतां नाम

जानीयात्पितृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा गुरूणां मातृपक्षाणां तर्पणं कुर्यात् ॥१०

मातृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा संबन्धिबान्धवानां कुर्यात्, तेषां कृत्वा सुहृदां कुर्यात् ॥११

भवन्ति चात्र श्लोकाः ॥१२

विना रौप्यसुवर्णेन विना ताम्रतिलेन च ।
विना दर्भैश्च मन्त्रैश्च पितृणां नोपतिष्ठते ॥१३

सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण च ।
दत्तमक्षय्यतां याति पितृणां तु तिलोदकम् ॥१४

हेम्ना तु सह यद्दत्तं क्षीरेण मधुना सह ।
तदप्यक्षय्यतां याति पितृणां तु तिलोदकम् ॥१५

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृणां प्रीतिमाहवन् ॥१६

स्नातः संतर्पणं कृत्वा पितृणां तु तिलाम्भसा ।
पितृयज्ञमवाप्नोति प्रीणाति च पितृंस्तथा ॥१७

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ।

॥ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

अथ श्राद्धे ब्राह्मणपरीक्षावर्णनम् ।

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम् ॥१

ब्राह्मणा ये विकर्मस्था बैडालव्रतिकास्तथा ।
ऊनाङ्गा अतिरिक्ताङ्गा ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूषकाः ॥२
गुरूणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये ।
गुरूणां त्यागिनश्चैव ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूषकाः ॥३
अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविवर्जिताः ।
शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणा पङ्क्तिदूषकाः ॥४
षडङ्गवित्त्रिसुपर्णो बह्वृचो ज्येष्ठसामगः ।
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निर्ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥५
ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ।
ब्रह्मदेयापतिर्यश्च ब्राह्मणाः पङ्क्ति पावनाः ॥६
ऋग्यजुःपारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः ।
अथर्वाङ्गिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥७
नित्यं योगरतो विद्वान्समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
ध्यानशीलो यतिर्विद्वान्ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥८
द्वौदैवे प्राङ्मुखौ त्रीन्वा पित्र्ये चोदङ्मुखांस्तथा ।
भोजयेद्द्विविधान्विप्रानेकैकमुभयत्र वा ॥९
भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पङ्क्तिपावनम् ।
दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चाद्वह्नौ तु तत्क्षिपेत् ॥१०
उच्छिष्टसंनिधौ कार्यं पिण्डनिर्वपणं बुधैः ।
अभावे च तथाकार्यमग्निकार्यं यथाविधि ॥११
श्राद्धं कृत्वा प्रयत्नेन त्वराक्रोधविवर्जितः ।
उष्णमन्नं द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥१२

अन्यत्र पुष्पमूलेभ्यः पीठकेभ्यश्च पण्डितः ।
भोजयेद्द्विविधान्विप्रान्गन्धमाल्यसमुज्ज्वलान् ॥१३
यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव वा ।
अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिण्डमूले कदाचन ॥१४
उग्रगन्धान्यगन्धानि चैत्यवृक्षभवानि च ।
पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥१५
तोयोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ।
ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं कार्पासमथवा नवम् ॥१६
दशां विवर्जयेत्प्राज्ञो यद्यप्यहतवस्त्रजाम् ।
घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ॥१७
धूपार्थं गुग्गुलुं दद्याद् घृतयुक्तं मधूत्कटम् ।
चन्दनं च तथा दद्यात्पिष्ट्वा च कुङ्कुमं शुभम् ॥१८
भूतृणं सुरसं शिग्रुं पालकं सिन्धुकं तथा ।
कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥१९
पिप्पलीं मरिचं चैव तथा वै पिण्डमूलकम् ।
कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं तु विवर्जयेत् ॥२०
राजमाषान्मसूरांश्च कोद्रवान्कोरदूषकान् ।
लोहितान्वृक्षनिर्यासान् श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥२१
आम्रमामलकीमिक्षुं मृद्वीकादधिदाडिमान् ।
विदार्यश्चैव रम्भाद्या दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नतः ॥२२
धानालाजे मधुयुते सक्तून्शर्करया सह ।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृङ्गाटकबिसेतकान् ॥२३

भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या स्वाचान्तान्दत्तदक्षिणान् ।
अभिवाद्य पुनर्विप्राननुव्रज्य विसर्जयेत् ॥२४
निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे मैथुनं सेवते द्विजः ।
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा ॥२५
कालशाकं सशल्कांश्च मांसं वाध्रीणसस्य च ।
खड्गमांसं तथाऽनन्तं यमः प्रोवाच धर्मवित् ॥२६
यद्ददाति गयाक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा ।
प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥२७
गङ्गायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्याममरकण्टके ।
नर्मदायां गयातीरे सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥२८
वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुङ्गे महालये ।
सप्तवेण्यृषि कूपे च तदप्यक्षय्यमुच्यते ॥२९
म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां च विशेषतः ।
न श्राद्धमाचरेत्प्राज्ञो म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥३०
हस्तिच्छायासु यद्दत्तं यद्दत्तं राहुदर्शने ।
विषुवत्ययने चैव सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥३१
प्रोष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ।
प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन वा ॥३२
प्रजां पुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा ।
नृणां श्राद्धैः सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥३३

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ।

॥ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथ जननमरणाशौचवर्णनम् ।

जनने मरणे चैव सपिण्डानां द्विजोत्तमः ।
त्र्यहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निवेदसमन्वितः ॥१
सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।
नामधारकविप्रस्तु दशाहेन विशुध्यति ॥२
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुध्यति ।
मासेन तु तथा शूद्रः शुद्धिमाप्नोति नान्तरा ॥३
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति ।
अजातदन्तबाले तु सद्यः शौचं विधीयते ॥४
अहोरात्रात्तथा शुद्धिर्बाले त्वकृतचूडके ।
तथैवानुपनीते तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ॥५
अनूढानां तु कन्यायां तथैव शूद्रजन्मनाम् ।
अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् ॥६
मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बान्धवाः ।
शुद्धिं समभिगच्छेयुर्नात्र कार्या विचारणा ॥७
पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति ॥८
हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात्प्रसवं व्रजेत् ।
प्रसवे मरणे तज्जमाशौचं नोपशाम्यति ॥९

समानं खल्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ।
असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥१०
देशान्तरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवौ ।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥११
अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
तथा संवत्सरेऽतीते स्नान एव विशुध्यति ॥१२
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।
परपूर्वासु च स्त्रीषु त्र्यहाच्छुद्धिरिहेष्यते ॥१३
मातामहे व्यतीते तु आचार्ये च तथा मृते ।
गृहे दत्तासु कन्यासु मृतासु च त्र्यहस्तथा ॥१४
निवासराजनि प्रेते जाते दौहित्रके गृहे ।
आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च ॥१५
मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ।
सब्रह्मचारिण्येकाहमनूचाने तथा मृते ॥१६
एकरात्रं त्रिरात्रं च षड्रात्रं मासमेव च ।
शूद्रे सपिण्डे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥१७
त्रिरात्रमथ षड्रात्रं पक्षं मासं तथैव च ।
वैश्ये सपिण्डे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥१८
सपिण्डे क्षत्त्रिये शुद्धिः षड्रात्रं ब्राह्मणस्य तु ।
वर्णानां परिशिष्टानां द्वादशाहं विनिर्दिशेत् ॥१९
सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व एवाविशेषतः ।
दशरात्रेण शुध्येयुरित्याह भगवान्यमः ॥२०

भृग्वग्न्यनशनाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् ।
पतितानां च नाशौचं शस्त्रविद्युद्धताश्च ये ॥२१
यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः ।
नाशौचभाजः कथिता राजाज्ञाकारिणश्च ये ॥२२
यस्तु भुङ्क्ते पराशौचे वर्णी सोऽप्यशुचिर्भवेत् ।
अशौचशुद्धौ शुद्धिश्च तस्याप्युक्ता मनीषिभिः ॥२३
पराशौचे नरो भुक्त्वा कृमियोनौ प्रजायते ।
भुक्त्वाऽन्नं म्रियते यस्य तस्य योनौ प्रजायते ॥२४
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ।
प्रेतपिण्डक्रियावर्जमाशौचे विनिवर्तते ॥२५

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रे पञ्चदशोऽध्यायः ।

॥ अथ षोडशोऽध्यायः ॥

अथद्रव्यशुद्धिः मृण्मयादिपात्रशुद्धिवर्णनम् ।

मृण्मयं भाजनं सर्वं पुनः पाकेन शुध्यति ।
मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैश्च ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ॥१
संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम् ।
एतैरेव तथा स्पृष्टं ताम्रसौवर्णराजतम् ॥२
शुध्यत्यावर्तितं पश्चादन्यथा केवलाम्भसा ।
आम्लोदकेन ताम्रस्य सीसस्य त्रपुणस्तथा ॥३

क्षारेण शुद्धिः कांस(स्य)स्य लोहस्य च विनिर्दिशेत् ।
मुक्तामणिप्रवालानां शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥४
अब्जानां चैव भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ।
शाकवर्जं मूलफलविदलानां तथैव च ॥५
मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
उष्णाम्भसा तथा शुद्धिं सस्नेहानां विनिर्दिशेत् ॥६
शयनासनयानानां स्फ्यशूर्पशकटस्य च ।
शुद्धिः संप्रोक्षणाद्यज्ञे कटमि (टाग्नी)न्धनयोस्तथा ॥७
मार्जनाद्वेश्मनां शुद्धिः क्षितेः शोधस्तु तत्क्षणात् ।
संमार्जितेन तोयेन वाससां शुद्धिरिष्यते ॥
बहूनां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्धान्यादीनां विनिर्दिशेत् ।
प्रोक्षणात्संहतानां च दारवाणां च तत्क्षणात् ॥६
सिद्धार्थकानां कल्केन शृङ्गदन्तमयस्य च ।
गोवालैः फलपात्राणामस्थ्नां शृङ्गवतां तथा ॥१०
निर्यासानां गुडानां च लवणानां तथैव च ।
कुसुम्भकुङ्कुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा ॥११
प्रोक्षणात्कथिता शुद्धिरित्याह भगवान्यमः ।
भूमिष्ठमुदकं शुद्धं शुचि तोयं शिलागतम् ॥१२
वर्णगन्धरसैर्दुष्टैर्वर्जितं यदि तद्भवेत् ।
शुद्धं नदीगतं तोयं सर्वदैव तथाऽऽकरः ॥१३
शुद्धं प्रसारितं पण्यं शुद्धे चाजाश्वयोर्मुखे ।
मुखवर्जं तु गौः शुद्धा मार्जारश्चाऽऽक्रमे शुचिः ॥१४

शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमण्डलुः ।
आत्मनः कथितं शुद्धं न शुद्धं हि परस्य च ॥१५

नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनां मुखम् ।
रात्रौ प्रस्रवणे वृक्षे मृगयायां सदा शुचि ॥१६

शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला ।
दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुध्यति ॥१७

रथ्याकर्दमतोयेन ष्ठीवनाद्येन वाऽप्यथ ।
नाभेरूर्ध्वं नरः स्पृष्टः सद्यः स्नानेन शुध्यति ॥१८

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा स्नात्वा भोक्तुमनास्तथा ।
भुक्त्वा क्षुत्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चाम्भोऽवगाह्य च ॥१९

रथ्यां वाऽऽक्रम्य वाऽऽचामेद्वासो विपरिधाय च ।
कृत्वा मूत्रपुरीषं च लेपगन्धापहं द्विजः ॥२०

उद्धृतेनाम्भसा शौचं मृदा चैव समाचरेत् ।
मेहने मृत्तिकाः सप्त लिङ्गे द्वे परिकीर्तिते ॥२१

एकस्मिन्विंशतिर्हस्ते द्वयोर्ज्ञेयाश्चतुर्दश ।
तिस्रस्तु मृत्तिका देयाः कृत्वा नखविशोधनम् ॥२२

तिस्रस्तु पादयोर्ज्ञेयाः शौचकामस्य सर्वदा ।
शौचमेतद्गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥२३

त्रिगुणं च वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ।
मृत्तिका च विनिर्दिष्टा त्रिपर्वाऽऽपूर्यते यथा ॥२४

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ।

॥ अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

अथ क्षत्रियादिवधे-गवाद्यपहारे-व्रतवर्णनम् ।

नित्यं त्रिषवणस्नायी कृत्वा पर्णकुटीं वने ।
अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥१
ग्रामं विशेच्च भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयन् ।
एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते ॥२
हेमस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
व्रतेनैतेन शुध्यन्ते महापातकिनस्त्विमे ॥३
यागस्थं क्षत्त्रियं हत्वा वैश्यं हत्वा च याजकम् ।
एतदेव व्रतं कुर्यादात्रेयीविनिषूदकः ॥४
कूटसाक्ष्यं तथैवोक्त्वा निक्षेपमपहृत्य च ।
एतदेव व्रतं कुर्यात्त्यक्त्वा च शरणागतम् ॥५
आहिताग्नेः स्त्रियं हत्वा मित्रं हत्वा तथैव च ।
हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥६
वनस्थं च द्विजं हत्वा पार्थिवं च कृतागसम् ।
एतदेव व्रतं कुर्याद् द्विगुणं च विशुद्धये ॥७
क्षत्त्रियस्य च पादोनं वधेऽर्धं वैश्यघातने ।
अर्धमेव सदा कुर्यात्स्त्रीवधे पुरुषस्तथा ॥८
पादं तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा ।
गोवधे च तथा कुर्यात्परदारगतस्तथा ॥९

पशून्हत्वा तथा ग्राम्यान्मासं कृत्वा विचक्षणः ।
आरण्यानां बधे तद्वत्तदर्धं तु विधीयते ॥१०
हत्वा द्विजं तथा सर्पजलेशयबिलेशयान् ।
सप्तरात्रं तथा कुर्याद् व्रतं ब्रह्महणस्तथा ॥११
अनस्थ्नां शकटं हत्वा सास्थ्नां दशशतं तथा ।
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्पूर्णं संवत्सरं नरः ॥१२
यस्य यस्य च वर्णस्य वृत्तिच्छेदं समाचरेत् ।
तस्य तस्य वधे प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥१३
अपहृत्ये तु वर्णानां भुवं प्राप्य प्रमादतः ।
प्रायश्चित्तं वधे प्रोक्तं ब्राह्मणानुमतं चरेत् ॥१४
गोजाश्वस्यापहरणे मणीनां रजतस्य च ।
जलापहरणे चैव कुर्यात्संवत्सरव्रतम् ॥१५
तिलानां धान्यवस्त्राणां मद्यानामामिषस्य च ।
संवत्सरार्धं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥१६
तृणेक्षुकाष्ठतक्राणां रसानाम्प्रहारकः ।
मासमेकं व्रतं कुर्याद् गन्धानां सर्पिषां तथा ॥१७
लवणानां गुडानां च मूलानां कुसुमस्य च ।
मासार्धं तु व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥१८
लौहानां वैदलानां च सूत्राणां चर्मणां तथा ।
एकरात्रव्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥१९
भुक्त्वा पलाण्डुं लशुनं मद्यं च कवकानि च ।
नारं मलं तथा मांसं विड्वराहं खरं तथा ॥२०

गौधेरकुञ्जरोष्ट्रं च सर्वपञ्चनखं तथा ।
क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥२१
भक्ष्याः पञ्चनखास्त्वेते गोधाकच्छपशल्लकाः ।
खड्गश्च शशकश्चैव तान्हत्वा च चरेद्व्रतम् ॥२२
हंसं मद्गुं बकं काकं काकोलं खञ्जरीटकम् ।
मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान्बलाकं शुकसारिके ॥२३
चक्रवाकं प्लवं कोकं मण्डूकं भुजगं तथा ।
मासमेकं व्रतं कुर्यादेतच्चैव न भक्षयेत् ॥२४
राजीवान्सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्च तथैव च ।
पाठीनरोहितौ भक्ष्यौ मत्स्येषु परिकीर्तितौ ॥२५
जलेचरांश्च जलजान्मुखाग्रनखविष्किरान् ।
रक्तपादाञ्जालपादान्सप्ताहं व्रतमाचरेत् ॥२६
तित्तिरं च मयूरं च लावकं च कपिञ्जलम् ।
वार्ध्रीणसं वर्तकं च भक्ष्यानाह यमस्तथा ॥२७
भुक्त्वा चोभयतोदन्तं तथैकशफदंष्ट्रिणः ।
तथा भुक्त्वा तु मांसं वै मासार्धं व्रतमाचरेत् ॥२८
स्वयं मृतं वृथा मांसं माहिषं त्वाजमेव च ।
गोश्च क्षीरं विवत्सायाः संधिन्याश्च तथा पयः ॥२९
संधिन्यमेध्यं भक्षित्वा पक्षं तु व्रतमाचरेत् ।
क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ॥३०
सप्तरात्रं व्रतं कुर्याद्यदेतत्परिकीर्तितम् ।
लोहितान्वृक्षनिर्यासान्व्रश्चनप्रभवांस्तथा ॥३१

केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं च यत्।
गुडयुक्तं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रं च व्रती भवेत् ॥३२
दधि भक्ष्यं च शुक्त्रे(क्ते)षु यच्चान्यद्दधिसंभवम्।
गुडशुक्तं तु भक्ष्यं स्यात्ससपिष्कमिति स्थितिः ॥३३
यवगोधूमजाः सर्वे विकाराः पयसश्च ये।
राजवाडवकुल्यं च भक्ष्यं पर्युषितं भवेत् ॥३४
सजीवपक्कमांसं च सर्वं यत्नेन वर्जयेत्।
संवत्सरं व्रतं कुर्यात्प्राश्यैताञ्ज्ञानतस्तु तान् ॥३५
शूद्रान्नं ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा रङ्गावतारिणः।
चिकित्सकस्य क्षुद्रस्य तथा स्त्रीमृगजीविनः ॥३६
ष(प)ण्डस्य कुलटायाश्च तथा दन्धनचारिणः।
बद्धस्य चैव चोरस्य अवीरायाः स्त्रियस्तथा ॥३७
चर्मकारस्य वेणस्य क्लीवस्य पतितस्य च।
रुक्मकारस्य धूर्तस्य तथा वार्धुषिकस्य च ॥३८
कदर्यस्य नृशंसस्य वेश्यायाः कितवस्य च।
गणान्नं भूमिपालान्नमन्नं चैव श्वजीविनाम् ॥३९
मौष्ठिकान्नं सूतिकान्नं भुक्त्वा मासं व्रतं चरेत्।
शूद्रस्य सततं भुक्त्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत् ॥४०
वैश्यस्य तु तया भुक्त्वा त्रीन्मासान्व्रतमाचरेत्।
क्षत्त्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौमासौ व्रतमाचरेत् ॥४१
ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रतं चरेत्।
अपः सुराभाजनस्थाः पीत्वा पक्षं व्रतं चरेत् ॥४२

मद्यभाण्डगताः पीत्वा सप्तरात्रं व्रतं चरेत् ।
शूद्रोच्छिष्टाशने मासं पक्षमेकं तथा विशः ॥४३
क्षत्रियस्य तु सप्ताहं ब्राह्मणस्य तथा दिनम् ।
अग्रश्राद्धाशने विद्वान्मासमेकं व्रती भवेत् ॥४४
परिवित्तिः परिवेत्ता च यया च परिविन्दति ।
व्रतं संवत्सरं कुर्युर्दातृयाजकपञ्चमाः ॥४५
काकोच्छिष्टं गवाऽऽघ्रातं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत् ।
दूषितं केशकीटैश्च मूषिकालाङ्गलेन च ॥४६
मक्षिकामशकेनापि त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ।
वृथा कृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः॥ ४७
भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ।
नील्या चैव क्षतो विप्रः शुना दष्टस्तथैव च ४८
त्रिरात्रं तु व्रतं कुयात्पुंश्चलीदशनक्षतः ।
पादप्रतापनं कृत्वा वह्निं कृत्वा तथाऽप्यधः ॥४६
कुशैः प्रमृज्य पादौ च दिनमेकं व्रती भवेत् ।
नीलीवस्त्रं परी (रि) धाय भुक्त्वा स्नानार्हणस्तथा ॥५०
त्रिरात्रं च व्रतं कुर्याच्छित्त्वा गुल्मलतास्तथा ।
अध्यास्य शयनं यानमासनं पादुके तथा ॥५१
पलाशस्य द्विजश्रेष्ठस्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ।
वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदूषिते ।
भुक्त्वाऽन्नं ब्राह्मणः पश्चात्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥५२

सर्वत्र जीवनं रक्षेज्जीवन्पापमपोहति।
व्रतैः कृच्छ्रैश्च दानैश्च इत्याह भगवान्यमः ॥६४
शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः।
शरीरात्स्रवते धर्मः पर्वतात्सलिलं यथा ॥६५
आलोच्य धर्मशास्त्राणि समेत्य ब्राह्मणैः सह।
प्रायश्चित्तं द्विजो दद्यात्स्वेच्छया न कथंचन ॥६६

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥

॥ अथाष्टादशोऽध्यायः ॥

अघमर्षण, पराक, कृच्छ, अतिकृच्छ्र, सान्तापनादिव्रतम्।

त्र्यहं त्रिषवणस्नायी स्नाने स्नानेऽघमर्षणम्।
निमग्नस्त्रिः पठेदप्सु न भुञ्जीत दिनत्रयम् ॥१
वीरासनं च तिष्ठेत गां दद्याच्च पयस्विनीम्।
अघमर्षणमित्येतद्व्रतं सर्वाघनाशनम् ॥२
त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहमद्यादयाचितम्।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्व्रतम् ॥३
त्र्यहमुष्णं पिबेत्तोयं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत्।
त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षस्त्र्यहं भवेत् ॥४
तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमुदाहृतम्।
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥५
विधिनोदकसिद्धानि मासमश्नीत यत्नतः।
स कृत्वा सोदकान्मासं कृच्छ्रं वारुणमुच्यते ॥६

बिल्वैरामलकैर्वाऽपि पद्माक्षैरथवा शुभैः ।
मासेन लोकेऽतिकृच्छ्रः कथ्यते बुद्धिसत्तमैः ॥७
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥८
एतैस्तु त्र्यहमभ्यस्तं महासांतपनं स्मृतम् ।
पिण्याकं [क] वामतक्राम्बुसक्तूनां [?] प्रतिवासरम् ॥९
उपवासान्तराभ्यासात्तुलापुरुष उच्यते ।
गोपुरीषाशनो भूत्वा मासं नित्यं समाहितः ॥१०
व्रतं तु यावकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ।
ग्रासं चन्द्रकलावृद्ध्या प्राश्नीयाद्वर्धयन्सदा ॥११
ह्रासयेच्च कलाहानौ व्रतं चान्द्रायणं चरेत् ।
मुण्डस्त्रिषवणस्नायी अधः शायी जितेन्द्रियः ॥१२
स्त्रीशूद्रपतितानां च वर्जयेत्परिभाषणम् ।
पवित्राणि जपेच्छक्त्या जुहुयाच्चैव शक्तितः १३
अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा ।
पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः संतारिता नराः ॥१४
गतपापादिकं यान्ति नात्र कार्या विचारणा ।
शङ्खप्रोक्तमिदं शास्त्रं योऽधीते बुद्धिमान्नरः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥१६

इति शाङ्खे धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥

समाप्तेयं शङ्खस्मृतिः ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

॥ अथ ॥

* लिखितस्मृतिः *

——:❀::❀:——

अथेष्टापूर्तकर्म, वृषोत्सर्गफल, गयापिण्डदान, षोड़श श्राद्धानि वर्णनम् ।

इष्टापूर्ते तु कर्तव्ये ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ।
इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥१
एकाहमपि कर्तव्यं भूमिष्ठमुदकं शुभम् ।
कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्वितृषी (षा) भवेत् ॥२
भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिताः ।
तांल्लोकान्प्राप्नुयान्मर्त्यः पादपानां प्ररोपणे ॥३
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥४
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥५
इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्यो धर्म उच्यते ।
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥६

यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥७

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलाञ्जलीन् ।
असंस्कृतमृतानां च स्थले दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥८

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ।
मुच्यते प्रेतलोकात्तु पितृलोकं स गच्छति ॥९

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥१०

वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि ।
हसन्ति तस्य भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥११

गयाशिरे तु यत्किंचिन्नाम्ना पिण्डं तु निर्वपेत् ।
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ॥१२

आत्मनो वा परस्यापि गयाकूपे यतस्ततः ।
यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥१३

लोहितो यस्तु वर्णेन शङ्खवर्णखुरः स्मृतः ।
लाङ्गूलशिरसोश्चैव स वै नीलवृषः स्मृतः ॥१४

नवश्राद्धं त्रिपक्षं च द्वादशैव तु मासिकम् ।
षण्मासौ(से) चाऽऽब्दिकं चैव श्राद्धान्येतानि षोडश ॥१५

यस्यैतानि न कुर्वीत एकोद्दिष्टानि षोडश ।
पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥१६

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ।
मातापित्रोः पृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥१७

वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मात्रापित्रोस्तु संततम्।
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥१८

संक्रान्तावुपरागे च सर्वोत्सवमहालये।
निर्वाप्यास्तु त्रयः पिण्डा एकतस्तु क्षयेऽहनि ॥१९

एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते द्विजः।
अकृतं तद्विजानीयात्स मातृ [ता]पितृघातकः ॥२०

अमावास्या[यां तु] क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथ वा यदि।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः ॥२१

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते।
अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ॥२२

यस्य संवत्सरादर्वाक्सपिण्डीकरणं स्मृतम्।
प्रत्यहं तत्सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजः।
पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः ॥२३

पितामह्याऽपि तत्तस्मिन्सत्येवं तु क्षयेऽहनि।
तस्यां सत्यां प्रकर्तव्यं तस्याः श्वश्रेति निश्चितम् ॥२४

विवाहे चैव निर्वृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु।
एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥२५

स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी उद्वाहात्सप्तमे पदे।
भर्तृगोत्रेण कर्तव्यं [न्या] दानं पिण्डोदकक्रियाः ॥२६

द्विमातुः पिण्डदानं तु पिण्डे पिण्डे द्विनामतः।
षण्णां देयास्त्रयः पिण्डा एवं दाता न मुह्यति ॥२७

अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः ।
अदूष्यं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ॥२८

अग्नौकरणशेषं तु विश्वेदेवादि हूयते ।
अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ॥२९

यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥३०

अजस्य दक्षिणे कर्णे पाणौ विप्रस्य दक्षिणे ।
रजते च सुवर्णे च नित्यं वसति पावकः ॥३१

यत्र यत्र प्रदातव्यं श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम् ।
तत्र मातामहानां च कर्तव्यमुभयं सदा ॥३२

अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ।
एभ्य एव प्रदातव्यमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥३३

यस्मिन्राशिगते सूर्ये विपत्तिः स्याद्द्विजन्मनः ।
तस्मिन्नहनि कर्तव्यं दानं पिण्डोदकक्रिया ॥३४

वर्षवृद्ध्याभिषेकादि कर्तव्यमधिके न तु ।
अधिमासे तु पूर्वं स्याच्छ्राद्धं संवत्सरादपि ॥३५

स एव हेयोद्दिष्टस्य येन केन तु कर्मणा ।
अभिघातान्तरं कार्यं तत्रैवाहः कृतं भवेत् ॥३६

शालाग्नौ पच्यते ह्यन्नं लौकिके वाथ संशयः ।
यस्मिन्नेव पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते ॥३७

वैदिके लौकिके वाऽपि नित्यं हुत्वा ह्यतन्द्रितः ।
वदिके स्वर्गमाप्नोति लौकिके हन्ति किल्विषम् ॥३८

अग्नौव्याहृतिभिः पूर्वं हुत्वा मन्त्रैस्तु शाकलैः ।
संविभागं तु भूतेभ्यस्ततोऽश्नीयादनग्निमान् ।।३९

उच्छेषणं तु नोत्तिष्ठेद्यावद्विप्रविसर्जनम् ।
ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ।।४०

दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्रा ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।
नैते निर्माल्यतां यान्ति नियोक्तव्याः पुनः पुनः ।।४१

पानमाचमनं कुर्यात्कुशपाणिः सदा द्विजः ।
भुक्त्वाऽप्यु(नो)च्छिष्टतां याति एष एव विधिः स्मृतः ।।४२

पान आचमने चैव तर्पणे दैविके सदा ।
कुशहस्तो न दुष्येत यथा पाणिस्तथा कुशः ।।४३

वामपाणौ कुशं कृत्वा दक्षिणेन उपस्पृशेत् ।
आच [चा] मन्ति च ये मूढा रुधिरेणाऽऽचमन्ति ते ।।४४

नीवीमध्येषु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रेषु ये कृताः ।
पवित्रांस्तान्विजानीयाद्यथा कायस्तथा कुशाः ।।४५

पिण्डे कृतास्तु ये दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ।
मूत्रोच्छिष्टपुरीषं च तेषां त्यागो विधीयते ।।४६

दैवपूर्वं तु यच्छ्राद्धमदैवं चापि यद्भवेत् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तत्र कुर्याच्छ्राद्धं तु पैतृकम् ।।४७

मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनन्तरम् ।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ।।४८

क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धुरिलोचनौ ।
पुरूरवार्द्रवाश्चैव विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ।।४९

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ।
ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥५०

इष्टिश्राद्ध क्रतुर्दक्षो वसुः सभ्यश्च वैदिके ।
कालः कामोऽग्निकार्येषु काम्येषु धुरिलोचनौ ॥५१
पुरूरवार्द्रवश्चैव पार्वणेषु नियोजयेत् ॥५२

यस्यास्तु न भवेद् भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥५३

अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥५४

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ।
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः ॥५५

मृण्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धे यो भोजयेत्पितॄन् ।
अन्नदाता पुरोधाश्च भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥५६

अलाभे मृण्मयं दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ।
घृतेन प्रोक्षणं कुर्यान्मृदः पात्रं पवित्रकम् ॥५७

श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे यस्तु भुञ्जीत विह्वलः ।
पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥५८

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं योऽधिगच्छति ।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांसुभोजनाः ॥५९

पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् ।
दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभुक्त्वष्ट वर्जयेत् ॥६०

भुञ्जानस्य वर्णनम्।

अध्वगामी भवेदश्वः पुनर्भोक्ता च वायसः।
कर्मकृज्जायते दासः स्त्रीसङ्गेन च सूकरः ॥६१
दशकृत्वः पिबेदा (त्वा) पः सावित्र्या चाभिमन्त्रिताः।
ततः संध्यामुपासीत शुध्येत तदनन्तरम् ॥६२
आर्द्रवासास्तु यत्कुर्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम्।
तत्सर्वं निष्फलं कुर्याज्जपहोमप्रतिग्रहम् ॥६३
चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा।
पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥६४
ऊनाब्दिके त्रिरात्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके।
शावे मासस्तु भुक्त्वा वा पादकृच्छ्रो विधीयते ॥६५
सर्पविप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः।
आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥६६
गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम्।
तं स्पर्शयन्ति ये विप्रा गोजाश्वाश्च भवन्ति ते ॥६७
अग्निदाता तथा चान्ये पाशच्छेदकराश्च ये।
तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्ति मनुराह प्रजापतिः ॥६८
त्र्यहमुष्णं पिबेदा [त्वा] पस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥६९
गोभूहिरण्यहरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च।
यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥७०
उद्यताः सह धावन्ते सर्वे ये शस्त्रपाणयः।
यद्येकोऽपि हनेत्तत्र सर्वे ते ब्रह्मघातकाः ॥७१

बहूनां शस्त्रघातानां यद्येको मर्मघातकः ।
सर्वे ते शुद्धिमि [मृ]च्छन्ति स एको ब्रह्मघातकः ॥७२
पतितान्नं यदा भुङ्क्ते भुङ्क्ते चाण्डालवेश्मनि ।
स मासार्द्धं चरेद्वारि मासं कामकृतेन तु ॥७३
यो येन पतितेनैव संसर्गं याति मानवः ।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्तत्स(त्संस)र्गविशुद्धये ॥७४
ब्रह्महा (ह) पातकिस्पर्शे स्नानं येन विधीयते ।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥७५
ब्रह्महा च सुरापायी तथैव गुरुतल्पगः ।
महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥७६
स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ।
कुर्वन्त्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥७७
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टो ब्राह्मणस्तु कदाचन ।
तत्क्षणात्कुरुते स्नानमाचमेन शुचिर्भवेत् ॥७८
कुब्जवामनष(ष)ण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च ।
जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥७९
क्लीबे देशान्तरस्थे पतिते प्रव्रजितेऽपि वा ।
योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥८०
पूरणे कूपवापीनां वृक्षच्छेदनपातने ।
विक्रीणीते अपि ह्यश्वं गोवधं तस्य निर्दिशेत् ॥८१
पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रु केवलम् ।
तृतीये तु शिखावर्जं शिखाछेदश्चतुर्थके ॥८२

चण्डालोदकसंस्पर्शे स्नानं येन विधीयते ।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥८३
चण्डालघटभाण्डस्थं यत्तोयं पिबते द्विजः ।
तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥८४
यदि न क्षिपते तोयं शरीरे तस्य जीर्यति ।
प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥८५
चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु क्षत्रियः ।
तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रे तु दापयेत् ॥८६
रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानसूकरवायसैः ।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥८७
आजानुतः स्नानमात्रमानाभेस्तु विशेषतः ।
अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यान्मदिरास्पर्शने मतम् ॥८८
बालश्चैव दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति ।
सद्य एव विशुध्येत नाशौचं नोदकक्रिया ॥८९
शावसूतक उत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् ।
शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥९०
षष्ठेन शुध्येतैकाहं पञ्चमे त्व(त्र्य) हमेव तु ।
चतुर्थे सप्तरात्रं स्यात्त्रिपुरुषं दशमेऽहनि ॥९१
मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः ।
आदाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥९२
आममांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसंभवाः ।
अन्त्यभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः ॥९३

मार्जनीरजमेष (षा)ण्डं स्नानवस्त्रघटोदकम् ।
नवाम्भसि तथा चैव हन्ति पुण्यं दिवाकृतम् ॥६४

दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधिशमीषु च ।
धात्रीफलेषु सर्वत्र अलक्ष्मीर्वसते सदा ॥६५

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥६६

इति लिखितर्षिप्रोक्तं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ।

समाप्तेयं लिखितस्मृतिः ।

....

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

॥ अथ ॥

—॥ शङ्खलिखितस्मृतिः ॥—

......०००......

श्रीगणेशाय नमः ।

—:※::※:—

अथ वैश्वदेवमकृत्वैव भुञ्जानस्य काकयोनिवर्णनम् ।

वासुदेवं नमस्कृत्य शङ्खस्य लिखितस्य च ।
धर्मशास्त्रं प्रवक्ष्यामि दध्नि चैव घृतं यथा ॥१

वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन विवर्जिताः।
सर्वे ते वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदा अपि द्विजाः॥२
अकृते वैश्वदेवे तु ये भुञ्जन्ति द्विजातयः।
वृथा ते तेन पाकेन काकयोनिं व्रजन्ति वै॥३
अन्नं व्याहृतिभिर्हुत्वा तथा मन्त्रैस्तु शाकलैः।
अन्नं विभज्य भूतेभ्यस्ततोऽश्नीयादनग्निमान्॥४
यो दद्यादवलिक्लेशः सांनाय्यं वा निवर्तते।
दृष्टो वाऽदृष्टपूर्वो वा स यज्ञः सार्वकामिकः॥५
इष्टो वा यदि वा मूर्खो द्वेष्यः पण्डित एव वा।
प्राप्तस्तु वैश्वदेवान्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः॥६
दातारः किं विचारेण गुणवान्निर्गुणी भवेत्।
समं वर्षति पर्जन्यः सस्यादपि तृणादपि॥७
यान्ग्रासान्क्षुधितो भुङ्क्ते ते ग्रासाः क्रतुभिः समाः।
ग्रासे तु हयमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥८
अद्भिश्चाऽऽसनवाक्यैश्च फलैः पुष्पैर्मनोरमैः।
तृणैरञ्जलिभिश्चैव देवांस्तृप्येत्पुनः पितॄन्॥९
पितॄनभ्यर्चयेद्यस्तु तस्य नास्ति सुसंयमः।
इदं तु परमं गुह्यं व्याख्यातमनुपूर्वशः॥१०
स्वल्पग्रन्थप्रभूतार्थं शङ्खेन लिखितेन च।
यथा हि मृण्मयं पात्रं दुष्टं दोषशतैरपि॥११
पुनर्दाहेन शुध्येत धर्मशास्त्रैस्तथा द्विजाः।
धर्मशास्त्रप्रदीपोऽयं धार्यः पथानुदेशिकः॥१२

निष्यन्दं सर्वशास्त्राणां व्याधीनामिव भेषजम् ॥१३

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ।
अपचस्य तु भुक्त्वाऽन्नं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१४

पराम्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति ।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्तते ॥१५

अन्नात्तेजो मनः प्राणाश्चक्षुः श्रोत्रं यशो बलम् ।
धृतिं श्रुतिं तथा शुक्रं परान्नं वर्जयेद् बुधः ॥१६

परान्नं परवस्त्रं च परयानं परस्त्रियः ।
परवेश्मनि वासश्च शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥१७

आहिताग्निस्तु यो विप्रो मत्स्यमांसानि भोजयेत् ।
कालरूपी कृष्णसर्पो जायते ब्रह्मराक्षसः ॥१८

आहिताग्निस्तु यो विप्रः शूद्रान्नानि च भुञ्जते ।
पञ्च तस्य प्रणश्यन्ति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽग्नयः ॥१९

एतदर्थं विशेषेण ब्राह्मणान्पालयेन्नृपः ॥२०

प्रत्यूषे च प्रदोषे च यदधीये(यी)त ब्राह्मणः ।
तेन राष्ट्रं च राज्यं च वर्धते ब्रह्मतेजसा ॥२१

अग्रं वृक्षस्य राजानो मूलं वृक्षस्य ब्राह्मणाः ।
तस्मान्मूलं न हिंसीयान्मूलादग्रं प्ररोहति ॥२२

फलं वृक्षस्य राजानः पुष्पं वृक्षस्य ब्राह्मणाः ।
तस्मात्पुष्पं न हिंसीयात्पुष्पात्संजायते फलम् ॥२३

गावो भूमिः कलत्रं च ब्रह्मस्वहरणं तथा ।
यस्तु न त्रायते राजा तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥२४

दुर्बलानामनाथानां बालवृद्धतपस्विनाम् ।
अन्यायैः परिभूतानां सर्वेषां पार्थिवो गतिः ॥२५

राजा पिता च माता राजा च परमो गुरुः ।
राजा च सर्वभूतानां परित्राता गुरुर्मतः ॥२६

दावाग्निदग्धानां राजा पूर्णमिवाम्भसां ॥२७

पक्षिणां बलमाकाशं मत्स्यानामुदकं बलम् ।
दुर्बलस्य बलं राजा बालस्य रुदितं बलम् ॥२८

बलं मूर्खस्य मौनत्वं तस्करस्यानृतं बलम् ।
एते राजबलाः सर्वे यत्नेन परिरक्षिताः ॥२९

दहत्यग्निस्तेजसा च सूर्यो दहति रश्मिना ।
राजा दहति दण्डेन विप्रो दहति मन्युना ॥३०

मन्युप्रहरणा विप्राश्चक्रप्रहरणो हरिः ।
चक्रात्तीक्ष्णतरो मन्युस्तस्माद्विप्रान्न कोपयेत् ॥३१

अग्निदग्धं प्ररोहेत सूर्यदग्धं तथैव च ।
दण्ड्यस्तु संप्ररोहेत ब्रह्मशापहतो हतः ॥३२

इति शङ्खलिखितस्मृतिधर्मशास्त्रं समाप्तम् ।

ॐ तत्सत् ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

अथ

॥ वसिष्ठस्मृतिः ॥

—:※:—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

—०—

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ धर्मजिज्ञासा, धर्माचरणस्यफलं, धर्मलक्षणं, आर्यावर्त्तं, पंचमहापातकवर्णनम् ।

अथातः पुरुषनिःश्रेयसार्थं धर्मजिज्ञासा ॥१

ज्ञात्वा चानुतिष्ठन्धार्मिकः प्रशस्यतमो भवति लोके, प्रेत्य च स्वर्गं लोकं समश्नुते ॥२

श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः ॥३

तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् ॥४

शिष्टः पुनरकामात्मा ॥५

अगृह्यमाणकारणो धर्मः ॥६

आर्यावर्तः प्रागादर्शात्प्रत्यक्कालकवनादुदक्पारियात्राद्-

क्षिणेन हिमवत उत्तरेण च विन्ध्यस्य ॥७
तस्मिन्देशे ये धर्मा ये चाऽऽचारास्ते सर्वत्र प्रत्येतव्याः ॥८
न त्वन्ये प्रतिलोमकल्पधर्माणः ॥६
एतदार्यावर्तमित्याचक्षते ॥१०
गङ्गायमुनयोरन्तरेऽप्येके ॥११
यावद्वा कृष्णमृगो विचरति तावद्ब्रह्मवर्चसमित्यन्ये ॥१२
अथापि भाल्लविनो निदाने गाथामुदाहरन्ति ॥१३
पश्चात्सिन्धुर्विहरिणी सूर्यस्योदयनं पुरः।
यावत्कृष्णोऽभिधावति तावद्वै ब्रह्मवर्चसम् ॥१४
त्रैविद्यवृद्धा यं ब्रूयुर्धर्मं धर्मविदो जनाः।
पवने पावने चैव स धर्मो नात्र संशय इति ॥१५
देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान्श्रुत्यभावादब्रवीन्मनुः ॥१६
सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्तः कुनखी श्यावदन्तः परिवित्तिः
परिवेत्ताऽग्रेदिधिषूपतिर्वीरहा ब्रह्मोज्झ इत्येनस्विनः ॥१७
पञ्च महापातकान्याचक्षते ॥१८
गुरुतल्पसुरापानं भ्रूणहत्या ब्राह्मणसुवर्णापहरणं-
पतितसंयोगश्च ॥१६ ब्राह्मेण वा यौनेन वा ॥२०
अथाप्युदाहरन्ति ॥२१
संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन्।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनादिति ॥२२
योऽग्नीनपविध्येद्गुरुं च यः प्रतिजध्नुयान्नास्तिको-
नास्तिकवृत्तिः सोमं च विक्रीणीयादित्युपपातकानि ॥२३

तिस्रो ब्राह्मणस्य भार्या वर्णानुपूर्व्येण,

द्वे राजन्यस्य, एकैका वैश्यशूद्रयोः ॥२४

शूद्रामप्येके, मन्त्रवर्जं तद्वत् ॥२५ तथा न कुर्यात् ॥२६

अतो हि ध्रुवः कुलापकर्षः प्रेत्य चास्वर्गः ॥२७

षड् विवाहाः ॥२८

ब्राह्मो दैव आर्षो गान्धर्वः क्षात्त्रो मानुषश्चेति ॥२९

इच्छत उदकपूर्वं यां दद्यात्स ब्राह्मः ॥३०

यज्ञतन्त्रे वितत ऋत्विजे कर्म कुर्वते कन्यां दद्यादलं-

कृत्य यं दैवमित्याचक्षते ॥३१ गोमिथुनेन चाऽऽर्षः ॥३२

सकामां कामयमानः सदृशीं यो निमु(रु)ह्यात्स गान्धर्वः ३३

यां बलेन सहसा प्रमथ्य हरन्ति स क्षात्त्रः ॥३४

पणित्वा धनक्रीतां स मानुषः ॥३५

तस्माद् दुहितृमतेऽधिरथं शतं देयमितीह क्रयो विज्ञायते ३६

या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरतीति ह चातुर्मास्येषु ॥३७

अथाप्युदाहरन्ति—३८

विद्या प्रनष्टा पुनरभ्युपैति जातिप्रणाशे त्विह सर्वनाशः।

कुलापदेशेन हयोऽपि पूज्यस्तस्मात्कुलीनां स्त्रियमुद्वहन्ति इति ॥३९

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् ॥४०

तेषां ब्राह्मणो धर्मान्प्रब्रूयात् ॥४१

तं राजा चानुशिष्यात् ॥४२

राजा तु धर्मेणानुशासयत्षष्ठं षष्ठं धनस्य हरेत् ॥४३

अन्यत्र ब्राह्मणात् ॥४४

इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं भजतीति ह ब्राह्मणो वेदमाद्यं करोति,
ब्राह्मण आपद उद्धरति तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः ।।४५
सोमोऽस्य राजा भवतीति ह प्रेत्य चाऽऽभ्युदयिकमिति
ह विज्ञायते ।।४६

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ ब्राह्मणादीनां प्रधानकर्मणि-पातित्यहेतवः कृषिधर्मनिरूपणम् ।

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः ।।१
त्रयो वर्णा द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः ।।२
तेषां मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जीबन्धने ।।३
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ।।४
वेदप्रदानात्पितेत्याचार्यमाचक्षते ।।५
अथाप्युदाहरन्ति ।।६
द्वयमु वै ह पुरुषस्य रेतो ब्राह्मणस्योर्ध्वं नाभेरर्वाचीन-
मन्यद्यद्यदूर्ध्वं नाभेस्तेनास्यानौरसी प्रजा जायते ।।७
यदुपनयति जनन्यां जनयति यत्साधू करोति ।।८
अथ यदर्वाचीनं नाभेस्तेनेहास्यौरसी प्रजा जायते ।।९
तस्माच्छ्रोत्रियमनूचानमप्रजोऽसीति न वदन्तीति ।।१०
हारीतोऽप्युदाहरति ।।११

न ह्यस्य विद्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात्।
वृत्त्या शूद्रसमो ज्ञेयो यावद्वेदे न जायत इति ॥१२
अन्यत्रोदककर्मस्वधापितृसंयुक्तेभ्यः ॥१३
विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मां शेवधिस्तेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय न मां ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्॥
यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्।
यस्तेन द्रुह्येत्कतमच्च नाह तस्मै मां ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन् १५
य आतृणत्त्यवितथेन कर्मणा बहुदुःखं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन्।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कतमच्च नाह ॥१६
अध्यापिता ये गुरुं नाऽऽद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा-
कर्मणा वा।
यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् १७
दहत्यग्निर्यथा कक्षं ब्रह्मपृष्ठमनादृतम्।
न ब्रह्म तस्मै प्रब्रूयाच्छक्यं मानमकुर्वत इति ॥१८
षट्कर्माणि ब्राह्मणस्य ॥१९
स्वाध्यायाध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति ॥
त्रीणि राजन्यस्य ॥२१
अध्ययनं यजनं दानं च शस्त्रेण च प्रजापालनंस्वधर्मस्तेन जीवेत् ॥२२
एतान्येव त्रीणि वैश्यस्य, कृषिर्वाणिज्यं पाशुपाल्यं कुसीदं च
एतेषां परिचर्या शूद्रस्य ॥२४
अनियता वृत्तिः ॥२५
अनियतकेशवेशाः सर्वेषां मुक्तशिखावर्जम् ॥२६

अजीवन्तः स्वधर्मेणानन्तरां पापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेरन् ॥२७

न तु कदाचिज्ज्यायसीम् ॥२८

वैश्यजीविकामास्थाय पण्येन जीवतोऽश्मलवण मणिशाण-
कौशेयक्षौमाजिनानि च तान्तवं रक्तं सर्वं च कृतान्नं पुष्प-
फलमूलानि च गन्धरसा उदकं चौषधीनां रसः सोमश्च
शस्त्रं च क्षीरं विषं मासं च सविकारमयस्त्रपु जतु सीसं च ॥२९

अथाप्युदाहरन्ति ॥३०

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् इति ॥३१

ग्राम्यपशूनामेकशफाः केशिनश्च सर्वे चाऽऽरण्याः पशवो-
वयांसि दंष्ट्रिणश्च ॥३२

धान्यानां तिलानाहुः ॥३३ अथाप्युदाहरन्ति ॥३४

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ।
कृमिभूतः स विष्ठायां पितृभिः सह मज्जति इति ॥३५

कामं वा स्वयं कृष्योत्पाद्य तिलान्विक्रीणीरन् ॥३६

तस्मात्साण्डाभ्यां सनस्योताभ्यां प्राक्प्रातराशात्कर्षी स्यात् ३७

निदाघेऽपः प्रच्छच्छेत् ॥३८

नानिपीडयल्लाङ्गलं प्रवीरवत्सुशेवं सोमपित्सरु तदुद्वपति-
गामवि चाजानश्वानश्वतरखरोष्ट्रांश्च प्रफर्व्यं च
पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहनमिति ॥३९

लाङ्गलं प्रवीरवद्वीरवत्सुमनुष्यवदनड्वत्सुशेवं-
कल्याणनासिकं कल्याणी ह्यस्य ।

नासिका नासिकयोद्वपति दूरेऽपविध्यति, सोमपित्सरु सोमो ह्यस्य प्राप्नोति, सत्सरु तदुद्वति, गां चाविं चाजानश्वानश्वतरखरोष्ट्रांश्च प्रफर्व्यं च पीवरीं दर्शनीयां कल्याणीं च प्रथमयुवतीम् ॥४०

कथं हि लाङ्गलमुद्वपेदन्यत्र धान्यविक्रयात् ॥४१

रसा रसैर्महतो हीनतो वा निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ॥४२

तिलतण्डुलपक्वान्नं विद्यान्मनुष्याश्च विहिताः परिवर्तकेन ॥४३

ब्राह्मणराजन्यौ वार्धुषान्नंनाद्यातात् ॥४४

अथाप्युदाहरन्ति ॥४५

समर्घं धान्यमुद्धृत्य महार्घं यः प्रयच्छति ।
स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥
ब्रह्महत्यां च वृद्धिं च तुलया समतोलयत् ।
अतिष्ठद्भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिः समकम्पत इति ॥४६

कामं वा परिलुप्तकृत्याय पापीयसे दद्याताम् ॥४७

द्विगुणं हिरण्यं त्रिगुणं धान्यम् ॥४८

धान्येनैव रसा व्याख्याताः ॥४९

पुष्पमूलफलानि च ॥५०

तुलाधृतमष्टगुणम् ॥५१ अथाप्युदाहरन्ति ॥५२

राजानुमतभावेन द्रव्यवृद्धिं विनाशयेत् ॥५३

पुना राजाऽभिषेकेण द्रव्यवृद्धिं च वर्जयेत् ।
द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चमं च शतं स्मृतम् ॥५४

मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ।

वसिष्ठवचनप्रोक्तां वृद्धिं वार्धुषिके श्रृणु ।
पञ्च माषास्तु विंशत्या एवं धर्मो न हीयते ॥५५

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथाश्रोत्रियादीनांशूद्रसधर्मत्वमाततायिवधवर्णनम् ।

अश्रोत्रिया अननुवाक्या अनग्नयो वा शूद्रसधर्माणो भवन्ति ॥१
मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥२
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥३
नानृग्ब्राह्मणो भवति न वणिङ्न कुशीलवः ।
न शूद्रप्रेषणं कुर्वन्न स्तेनो न चिकित्सकः ॥४
अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥५
चत्वारोऽपि त्रयो वाऽपि यद् ब्रूयुर्वेदपारगाः ।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥६
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥७
यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतन्द्रियम् ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृनधिगच्छति ॥८

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि नित्यशः ।
अश्रोत्रियाय दत्तं हि पितॄन्नैति न देवताः ॥९

यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चैव बहुश्रुतः ।
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥१०

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥११

यत्र काष्ठमयो हस्ती यश्च चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥१२

विद्वद्भोज्यान्यविद्वांसो येषु राष्ट्रेपु भुञ्जते ।
तान्यनावृष्टिमृच्छन्ति महद्वा जायते भयम्, इति ॥१३

अप्रज्ञायमानं वित्तं योऽधिगच्छेद्राजा-
तद्धरेदधिगन्त्रे षष्ठमंशं प्रदाय ॥१४

ब्राह्मणश्चेदधिगच्छेत्षट्कर्मसु वर्तमानो न राजा हरेत् ॥१५

आततायिनं हत्वा नात्र प्राणच्छेत्तुः किंचित्किल्विषमाहुः ॥१६

षड्विधा ह्याततायिनः ॥१७

अथाप्युदाहरन्ति ॥१८

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ॥१९

आततायिनमायान्तमपि वेदान्तपारगम् ।
जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥२०

स्वाध्यायिनं कुले जातं यो हन्यादाततायिनम् ।
न तेन भ्रूणहा स स्यान्मन्युस्तंमृत्युमृच्छति ॥२१

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णवांश्चतुर्मेधा वाजसनेयी षडङ्ग-विद्ब्रह्मदेयानुसंतानश्छन्दोगो ज्येष्ठसामगो मन्त्रब्राह्मणविद्यः स्वधर्मानधीते यस्य दशपुरुषं मातृपितृवंशः श्रोत्रियो विज्ञायते विद्वांसः स्नातकाश्चैते पङ्क्तिपावना भवन्ति ॥२२

चातुर्विद्यं विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपाठकः।
आश्रमस्थास्त्रयो मुख्याः परिषत्स्याद्दशावरा ॥२३

उपनीय तु यः कृत्स्नं वेदमध्यापयेत्स आचार्यः ॥२४

यस्त्वेकदेशं स उपाध्यायो यश्च वेदाङ्गानि ॥२५

आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीयाताम् ॥२६

क्षत्त्रियस्य तु तन्नित्यमेव रक्षणाधिकारात् ॥२७

प्राग्वोदग्वाऽऽसीनः प्रक्षाल्य पादौ पाणी-
चाऽऽमणिबन्धनात् ॥२८

अङ्गुष्ठमूलस्योत्तरतो रेखा ब्राह्मं तीर्थं तेन त्रिराचामेदशब्दवद्भिः-
(दोषावद्भिः) परिमृज्यात् ॥२९

खान्यद्भिः संस्पृशेत् ॥३०

मूर्धन्यपो निनयेत् ॥३१

सव्ये च प्रणौ, व्रजंस्तिष्ठञ्शयानः प्रणतो वा नऽऽचामेत् ॥३२

हृदयङ्गमाभिरद्भिरबुद्बुदाभिरफेनाभिर्ब्राह्मणः
कण्ठगाभिः क्षत्त्रियः शुचिः ॥३३

वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु स्त्रीशूद्रं स्पृष्टाभिरेव च ॥३४

पुत्रदारादयोऽपि गोस्तर्पणाः स्युः ॥३५

न वर्णगन्धरसदुष्टाभिर्याश्च स्युरशुभागमाः ॥३६

न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्त्यनङ्गश्लिष्टाः ॥३७

सुप्त्वा भुक्त्वा पीत्वा क्षुत्वा रुदित्वा स्नात्वा चाऽऽचान्तः पुनराचामेत् ॥३८

वासश्च परिधायौष्ठौ च संस्पृश्य यत्रालोमकौ न श्मश्रुगतो लेपः ॥३९

दन्तवद्दन्तसक्तेषु यच्चा(प्य)न्तर्मुखे भवेत्।
आचान्तस्यावशिष्टं स्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥४०

परानथाऽऽचामयतः पादौ या विप्रुषो गताः।
भूम्यास्तास्तु समाः प्रोक्तास्ताभिर्नोच्छिष्टभाग्भवेत् ॥४१

प्रचरन्नभ्यवहार्येषूच्छिष्टं यदि संस्पृशेत्।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचान्तः प्रचरेत्पुनः ॥४२

यद्यन्मीमांस्यं स्यात्तत्तदद्भिः संस्पृशेत् ॥४३

श्वहताश्च मृगा वन्याः पातितं च खगः फलम्।
बालैरनुपरिक्रान्तं स्त्रीभिराचरितं च यत् ॥४४

प्रसारितं च यत्पण्यं ये दोषाः स्त्रीमुखेषु च।
मशकैर्मक्षिकाभिश्च निलीयोनो (यैवो)पहन्यते ॥४५

क्षितिस्थाश्चैव या आपो गवां तृप्तिकराश्च याः।
परिसंख्याय तान्सर्वाञ्छुचीनाह प्रजापतिः। इति ॥४६

लेपगन्धापकर्षणे शौचममेध्यलिप्तस्याद्भिर्मृदा च ॥४७

तैजसमृण्मयदारवतान्तवानां भस्मपरिमार्जन-प्रदाहतक्षणनिर्णेजनानि ॥४८

तैजसवदुपलमणीनां मणिवच्छङ्खशुक्तीनां दारुवदस्थ्नां रज्जविदलचर्मणां चैलवच्छौचम् ॥४९

गोवालैः फलमयानां गौरसर्षपकल्केन क्षौमजानाम् ॥५०
भूम्यास्तु संमार्जनप्रोक्षणोपलेपनोल्लेखनैर्यथास्थानं
दोषविशेषात्प्रायत्यमुपति ॥५१
अथाप्युदाहरन्ति ॥५२
खननाद्दहनाद्वर्षाद्गोभिराक्रमणादपि ।
चतुर्भिःशुध्यते भूमिः पञ्चमाच्चोपलेपनात् । इति ॥५३
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति ।
भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ॥५४
मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः ।
संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम् ॥५५
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥५६
अद्भिरेव काञ्चनं पूयते, तथा राजतम् ॥५७
अङ्गुलिकनिष्ठिकामूले दैवं तीर्थम् ॥५८
अङ्गुल्यग्रे मानुषम् ॥५६ पाणिमध्य आग्नेयम् ॥६०
प्रदेशिन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा पित्र्यम् ॥६१
रोच(न्त)त इति सायं प्रातरग्नीन्य(न)भिपूजयेत् ॥६२
स्वदितमिति पित्र्येषु ॥६३ संपन्नमित्याभ्युदयिकेषु ॥६४

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

अथ मधुपर्कादिषु पशुहिंसनवर्णनम्।

प्रकृतिविशिष्टं चातुर्वर्ण्यं संस्कारविशेषाच्च ॥१

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत,
इति निगमो भवति ॥२

गायत्र्या छन्दसा ब्राह्मणमसृजत्त्रिष्टुभा राजन्यं, जगत्या वैश्यं, न केनचिच्छन्दसा शूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायते ॥३

सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसा प्रजननं च ॥४

पितृदेवतातिथिपूजायां पशुं हिंस्यात् ॥५

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैव च पशुं हिंस्यान्नान्यथेत्यब्रवीन्मनुः ॥६

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्माद्यागे वधोऽवधः ॥७

अथापि ब्राह्मणाय वा राजन्याय वाऽभ्यागताय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेदेवमस्याऽऽतिथ्यं कुर्वन्तीति ॥८

उदकक्रियामशौचं च द्विवर्षात्प्रभृति मृत उभयं कुर्यात् ॥९

दन्तजननादित्येके ॥१०

शरीरमग्निना संयोज्यानवेक्ष्यमाणा अपोऽभ्यवयन्ति ॥११

सव्येतराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वन्ति ॥१२

अयुग्मा दक्षिणामुखाः ॥१३

पितॄणां वा एषा दिक्, या दक्षिणा ॥१४

गृहान्व्रजित्वा प्रस्तारे त्र्यहमनश्नन्त आसीरन् ॥१५

अशक्तौ क्रीतोत्पन्नेन वर्तेरन्दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥१६

मरणात्प्रभृति दिवसगणना सपिण्डता तु सप्तपुरुषं विज्ञायते ॥

अप्रत्तानां स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते ॥१८

प्रत्तानामितरे कुर्वीरंस्तांश्च(?) तेषां जननेऽप्येवमेव निपुणां शुद्धिमिच्छतां मातापित्रोर्बीजनिमित्तत्वात् ॥१६

अथाप्युदाहरन्ति ॥२०

नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति ।
रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते, इति ॥२१

तच्चेदन्तः पुनरापतेच्छेषेण शुध्येरन् ॥२२

रात्रिशेषे द्वाभ्यां, प्रभाते तिसृभिर्ब्राह्मणो दशरात्रेण पञ्चदश-रात्रेण भूमिपो विंशतिरात्रेण वैश्यः शूद्रो मासेन शुध्यति ॥२३

अत्राप्युदाहरन्ति ॥२४

आशौचे यस्तु शूद्रस्य सूतके वाऽपि भुक्तवान् ।
स गच्छेन्नरकं घोरं तिर्यग्योनिषु जायते, इति ॥२५
अनिर्दशाहे पक्वान्नं नियोगाद्यस्तु भुक्तवान् ।
कृमिर्भूत्वा स देहान्ते तद्विष्ठा मुपजीवति ॥२६

द्वादश मासान्द्वादशार्धमासान्वाऽनश्नन्संहितामधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥२७

ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रमाशौचं सद्यः शौचमिति गौतमः ॥२८

देशान्तरस्थे प्रेत ऊर्ध्वं दशाहाच्छ्रुत्वैकरात्रमाशौचम् ॥२०

आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियेत पुनः संस्कारं कृत्वा-शववच्छौचमिति गौतमः ॥३०

यूपचि(य)तिश्मशानरजस्वलासूतिकाशुचीनुपस्पृश्य सशिरा अभ्युपेयादप इति ॥३१

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

अथात्रेयीधर्मवर्णनम् ।

अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधाना ॥१

अनग्निकाऽनुदक्या वा अनृतमिति विज्ञायते ॥२

अथाप्युदाहरन्ति ॥३

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥४

तस्या भर्तुरभिचार उक्तः प्रायश्चित्तरहस्येषु ॥५

मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥६

त्रिरात्रं रजस्वलाऽशुचिर्भवति, सा नाञ्ज्यान्नाभ्यञ्ज्यान्नाप्सु स्नायात्, अधः शयीत, दिवा न स्वप्यात्, नाग्निं स्पृशेत्, न रज्जुं सृजेत्, न दन्तान्धावयेत्, न मांसमश्नीयात्, न ग्रहान्निरीक्षेत, न हसेन्न किंचिदाचरेत्, अखर्वेण पात्रेण पिबेत्, अञ्जलिना वा पिबेत्, लोहितायसेन वा ॥७

विज्ञायते हीन्द्रस्त्रि-शीर्षाणं त्वाष्ट्रं हत्वा पाप्मगृहीतो महत्तमाधर्मसंबद्धोऽहमित्येवमात्मानममन्यत, तं सर्वाणि भूतान्यभ्याक्रोशन्, भ्रूणहन्भ्रूणहन्भ्रूणहन्निति, स स्त्रिय उपाधावत्, अस्यै मे ब्रह्महत्यायै तृतीयं भागं प्रतिगृह्णीतेति गत्वैवमुवाच, ता अब्रुवन्, किं नोऽभूदिति, सोऽब्रवीद्वरं वृणीध्वमिति, ता अब्रुवन्नृतौ प्रजां विन्दामह इति, कामं मा विजानीमो संभवाम इति, यथेच्छया आप्रसवकालात्पुरुषेण-सहमैथुनभावेन सम्भवाम इति चैषोस्माकं वरस्तथेन्द्रेणो-क्तास्ताः प्रतिजगृहुस्तृतीयं भ्रूणहत्यायाः ॥८

सैषा भ्रूणहत्या मासि मास्याविर्भवति ॥९

तस्माद्रजस्वलान्नं नाश्नीयात् ॥१०

अतश्च भ्रूणहत्याया एवैषा रूपं प्रतिमुच्याऽऽस्ते कञ्चुकमिव ॥

तदाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥१२

अञ्जनाभ्यञ्जनमेवास्या न प्रतिग्राह्यम् ।

तद्धि स्त्रिया अन्नमिति ॥१३

तस्मात्तस्यास्तत्र न च मन्यन्ते ॥१४

आचारायाश्च योषित इति सेयमुपयाति ॥१५

उदक्यास्त्वासते येषां ये च केचिदनग्नयः ।
कुलं चाश्रोत्रियं येषां सर्वे ते शूद्रधर्मिण इति ॥१६
गृहस्थाः श्रोत्रियाः पापाः सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ।

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथाचारप्रशंसा, हीनाचारस्य निन्दावर्णनम् ।

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ।
हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह विनश्यति ॥१
नैनं तपांसि न ब्रह्म नाग्निहोत्रं न दक्षिणाः ।
हीनाचारमितो भ्रष्टं तारयन्ति कथंचन ॥२
आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥३
आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडङ्गास्त्वखिलाः सयज्ञाः ।
कां प्रीतिमुत्पादयितुं समर्था अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥४
नैनं छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम् ।
द्वेप्य(अ)क्षरे सम्यगधीयमाने पुनाति तद्ब्रह्म यथावदिष्टम् ॥५
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥६
आचारात्फलते धर्ममाचारात्फलते धनम् ।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥७

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥८

आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः ।
वाग्बुद्धिकार्याणि तपस्तथैव धनायुषी गुप्ततमे तु कार्ये ॥९

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
रात्रौ कुर्याद्दक्षिणास्य एवं ह्यायुर्न हीयते ॥१०

प्रत्यग्निं प्रति सूर्यं च प्रति गां प्रति च द्विजम् ।
प्रति सोमोदकं संध्यां प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥११

न नद्यां मेहनं कार्यं न भस्मनि न गोमये ।
न वा कृष्टे न मार्गे च नोप्ते क्षेत्रे न शाद्वले ॥१२

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥१३

उद्धृताभिरद्भिः कार्यं कुर्यात्स्नानमनुद्धृताभिरपि ॥१४

आहरेन्मृत्तिकां विप्रः कूलात्ससिकतां तथा ।
अन्तर्जले देवगृहे वल्मीके मूषकस्थले ।
कृतशौचावशिष्टा च न ग्राह्याः पञ्च मृत्तिकाः ॥१५

एका लिङ्गे करे तिस्र उभाभ्यां द्वे तु मृत्तिके ।
पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥१६

एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ।
वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां च चतुर्गुणम् ॥१७

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश ।
द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ॥१८

अनड्वान्ब्रह्मचारी च आहिताग्निश्च ते त्रयः।
भुञ्जाना एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम् ॥१६

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम्।
विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥२०

ये शान्तदान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधान्निवृत्ताः।
प्रतिग्रहे संकुचिताग्रहस्तास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥२१

नास्तिकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः।
चत्वारः कर्मचाण्डाला जन्मतश्चापि पञ्चमः ॥२२

दीर्घवैरमसूया च असत्यं ब्रह्मदूषणम्।
पैशुन्यं निर्दयत्वं च जानीयाच्छूद्रलक्षणम् ॥२३

किंचिद्वेदमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम्।
पात्राणामपि तत्पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥२४

शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गो ह्यधीयानोऽपि नित्यशः।
जुह्वन्वाऽपि जपन्वाऽपि गतिमूर्ध्वां न विन्दति ॥२५

शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः।
स भवेत्सूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥२६

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा न च स्वर्गार्हको भवेत् ॥२७

स्वाध्यायोत्थं योनिमन्तं प्रशान्तं वैतानस्थं पापभीरुं बहुज्ञम्।
स्त्रीषु क्षान्तं धार्मिकं गोशरण्यं व्रतैः क्षान्तं तादृशं पात्रमाहुः ॥

आम(ताम्र)पात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु।
विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं रसाश्च ते ॥२६

एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमश्वं महीं तिलान् ।
अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मी भवति दारुवत् ॥३०
नाङ्गनखवादनं कुर्यान्नखैश्च भोजनादौ ॥३१
न चापोऽञ्जलिना पिबेत् ॥३२
न पादेन पाणिना वा जलमभिहन्यान्न जलेन जलम् ॥३३
नेष्टकाभिः फलानि पातयेत् ॥३४
न फलेन फलं न कल्को न कुहको भवेत् ॥३५
न म्लेच्छभाषां शिक्षेत् ॥३६
अथाप्युदाहरन्ति ॥३७
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत् ।
न चाङ्गचपलो विप्र इति शिष्टस्य गोचरः ॥३८
पारम्पर्यागतो येषां वेदः सपरिबृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥३९
यन्न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मण इति, ॥४०

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ।

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ ब्रह्मचारिधर्मवर्णनम् ।

चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारी(रि) गृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः ॥१

तेषां वेदमधीत्य वेदौ वा वेदान्वाऽविशीर्णब्रह्मचर्यो-
यमिच्छेत्तमावसेत् ॥२
ब्रह्मचार्याचार्यं परिचरेत् ॥३ आ शरीरविमोक्षात् ॥४
आचार्ये प्रमीतेऽग्निं परिचरेत् ॥५
विज्ञायते हि तवाग्निराचार्य इति ॥६
संयतवाक्चतुर्थषष्ठाष्टमकालभोजी भैक्षमाचरेत् ॥७
गुर्वधीनो जटी(टि)लः शिखाजटो वा गुरुं गच्छन्तमनुगच्छेत् ॥
आसीनं च तिष्ठञ्छयानं चाऽऽसीन उपासीत ॥९
आहूताध्यायी सर्वं लब्धं निवेद्य तदनुज्ञया भुञ्जीत ॥१०
खट्वाशयनदन्तप्रक्षालनाञ्जनाभ्यञ्जनोपानच्छत्रवर्जी
तिष्ठेदहनि रात्रावासीत ॥११
त्रिःकृत्वोऽभ्युपेयादपोऽभ्युपेयादप इति ॥१२

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

अथाष्टमोऽध्यायः।

गृहस्थधर्मवर्णनम्।

गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणाऽनुज्ञातः स्नात्वाऽसमानार्षा-
मस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विन्देत ॥१
(न) पञ्चमीं मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुभ्यः ॥२
वैवाह्यमग्निमिन्धीत ॥३ सायमागतमतिथिं नावरुन्ध्यात् ॥४

नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥५

यस्य नाश्नाति वासार्थी ब्राह्मणो गृहमागतः ।
सुकृतं तस्य यत्किंचित्सर्वमादाय गच्छति ॥६
एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥७
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सांगतिकं तथा ।
काले प्राप्ते अकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥८

श्रद्धाशीलोऽस्पृहयालुरलमग्न्याधेयाय नानाहिताग्निः स्यात् ॥९

अलं च सोमपानाय नासोमयाजी स्यात् ॥१०

युक्तः स्वाध्याये प्रजनने यज्ञे च ॥११

गृहेष्वभ्यागतं प्रत्युत्थानासनशयनवाक्सूनृतानसूयाभिर्मानयेत् ॥१२

यथाशक्ति चान्नेन सर्वभूतानि ॥१३

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ॥१४
यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम् ॥१५
यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।
एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षवः ॥१६

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी ।
ऋतौ च गच्छन्विधिवच्च जुह्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥१७

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ।

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

वानप्रस्थधर्मवर्णनम्।

वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा ग्रामं च न प्रविशेत् ॥१

न फालकृष्टमधितिष्ठेत् ॥२

अकृष्टं मूलफलं संचिन्वीत, ऊर्ध्वरेताः क्षमाशयः ॥३

मूलफलभैक्षेणाऽऽश्रमागतमतिथिमभ्यर्चयेत् ॥४

दद्यादेव न प्रतिगृह्णीयात् ॥५

त्रिषवणमुदकमुपस्पृशेत् ॥६

श्रावणकेनाग्निमाधायाऽऽहिताग्निः स्याद्वृक्षमूलिकः ॥७

ऊर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्योऽनग्निरनिकेतः ॥८

दद्याद्देवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत्स्वर्गमानन्त्यमानन्त्यम् ॥९

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे नवमोध्यायः।

अथ दशमोऽध्यायः।

अथ यतिधर्मवर्णनम्।

परिव्राजकः सर्वभूताभयदक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत ॥१

अथाप्युदाहरन्ति ॥२

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो मुनिः।
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु विद्यते ॥३
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यस्तु निवर्तते।
हन्ति जातानजातांश्च द्रव्याणि प्रतिगृह्य च ॥४

संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् ।
वेदसंन्यसनाच्छूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ॥५

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
उपवासात्परं भैक्षं दया दानाद्विशिष्यते ॥६

मुण्डोऽममोऽपरिग्रहः सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्ष्यं (क्षं) विधूमे सन्न मुसले ॥७

एकशाटीपरिवृतोऽजिनेन वा गोप्रलूनैस्तृणैर्वेष्टितशरीरः स्थण्डिलशाय्यनित्यां वसतिं वसेत्, ग्रामान्ते देवगृहे शून्यागारे वृक्षमूले वा मनसा ज्ञानमधीयानः ॥८

अरण्यनित्यो न ग्राम्यपशूनां संदर्शने विहरेत् ॥९

अथाप्युदाहरन्ति ॥१०

अरण्यनित्यस्य जितेन्द्रियस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ।
अध्यात्मचिन्तागतमानसस्य ध्रुवा ह्यनावृत्तिरुपेक्षकस्य इति ॥११

अव्यक्तलिङ्गो व्यक्ताचारः, अनुन्मत्त उन्मत्तवेषः ॥१२

अथाप्युदाहरन्ति ॥१३

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चापि लोकग्रहणे रतस्य ।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न चापि रम्यावसथप्रियस्य ॥१४

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।
अनुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥१५

अलाभे न विषादी स्याल्लाभश्चैनं न हर्षयेत् ।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥१६

न कुड्यां नोदके सङ्गे न चैले न त्रिपुष्करे ।
नागारे नाऽऽसने नान्ने (नान्ते) यस्य वै मोक्षवित्तमः । इति ॥१७

ब्राह्मणकुले वा यल्लभेत तद्भुञ्जीत,
सायं प्रातर्मधुमांसपरिवर्जम् ॥१८

यतीन्साधून्वा गृहस्थान्सायं प्रातश्च तृप्येत् ॥१९

ग्रामे वा वसेत् ॥२०

अजिह्मोऽशरणोऽसंकुसुको न चेन्द्रियसंयोगं कुर्वीत केनचित् ॥

उपेक्षकः सर्वभूतानां हिंसानुग्रहपरिहारेण ॥२२

पैशुन्यमत्सराभिमानाहंकाराश्रद्धानार्जवात्मस्तवपरगर्हादम्भ-लोभमोहक्रोधासूयाविवर्जनं सर्वाश्रमिणां धर्म इष्टः ॥२३

यज्ञोपवीत्युदककमण्डलुहस्तः शुचिर्ब्राह्मणो वृषलान्नपानवर्जी न हीयते ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकादिति ॥२४

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।

अथैकादशोऽध्यायः ।

अथ वैश्वदेवातिथिश्राद्धादीनां वर्णनम् ।

षडर्हा भवन्ति, ऋत्विग्विवाह्यराजा(ज)पितृव्यस्नातक-मातुलाश्च ॥१

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य सायं प्रातर्गृह्याग्नौ जुहुयात् ॥२

गृहदेवताभ्यो बलिं हरेत् ॥३

श्रोत्रियायाऽऽगताय भागं दत्त्वा ब्रह्मचारिणे वाऽनन्तरं पितृभ्यो दद्यात् ॥४

ततोऽतिथिं भोजयेत् , श्रेयांसं श्रेयांसमानुपूर्व्येण, स्वगृह्याणां कुमारबालवृद्धतरुणप्रभूतींस्ततोऽपरान्गृह्यान् ॥५

श्वचण्डालपतितवायसेभ्यो भूमौ निर्वपेत् ॥६

शूद्रायोच्छिष्टमनुच्छिष्टं वा दद्यात् ॥७

शेषं दंपती भुञ्जीयाताम् ॥८

सर्वोपयोगेन पुनः पाकः ॥९

यदि निरुप्ते वैश्वदेवेऽतिथिरागच्छेद्विशेषेणास्मा अन्नं कारयेत् ॥१०

विज्ञायते हि ॥११

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहं तस्मादप आनयन्त्यन्नं वर्षाभ्यस्तां हि शान्ति जना विदुरिति ॥१२

तं भोजयित्वोपासीताऽऽसीमान्तमनुव्रजेत् , अ(आऽ)नुज्ञानाद्वा ॥१३

अपरक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात्पूर्वेद्युर्ब्राह्मणान्संनिपात्य यतीन्गृहस्थान्साधून्वा परिणतवयसोऽविकर्मस्थाञ्छ्रोत्रियान-शिष्यानन्तेवासी(सि)नः शिष्यानपि गुणवतो भोजयेत् ॥१४

विलग्नशुक्लक्लीबान्धश्यावदन्तकुष्ठिकुनखिवजम् ॥१५

अथाप्युदाहरन्ति ॥१६

अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः ।
अदूष्यं तं यमः प्राहः पङ्क्तिपावन एव सः ॥१७

श्राद्धे नोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्या दिनक्षयात् ।
श्च्योतन्ते हि सुधाधारास्ताः पिबन्त्यकृतोदकाः ॥१८

उच्छिष्टं न प्रमृज्यात्तु यावन्नास्तमितो रविः ।
क्षीरधारास्ततो यान्ति अक्षय्याः पङ्क्तिभागिनः ॥१६

प्राक्संस्कारप्रमीतानां स्ववंश्यनामिति श्रुतिः ।
भागधेयं मनुः प्राह उच्छिष्टोच्छेषणे उभे ॥२०

उच्छेषणं भूमिगतं विकिरं लेपनोदकम् ।
अन्नं प्रेतेषु विसृजेदप्रजानामनायुषाम् ॥२१

उभयोः शाखयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्नं निवेदितम् ।
तदनन्तरं प्रतीक्षन्ते ह्यसुरा दुष्टचेतसः ॥२२

तस्मादशून्यहस्तेन कुर्यादन्नमुपागतम् ।
भो(भा)जनं वा समालभ्य तिष्ठतोच्छेषणे उभे ॥२३

द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥२४

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदम् ।
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥२५

अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेद पारगम् ।
श्रुतशीलोपसंपन्नं सर्वालक्षणवर्जितम् ॥२६

यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् ।
अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य तु ॥२७

देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तयेत् ।
प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥२८

(अग्रे-कुतपकालः, उपनयनकालः, दण्डादिधारणविधिश्च)

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ।
तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥२६
हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरो यावदतर्पिताः
पितृभिस्तर्पितैः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥३०
नियुक्तस्तु यदा श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत् ।
यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥३१
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ।
त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥३२
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दी भवति भास्करः ।
स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥३३
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति ।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं रेतसो भुजः ॥३४
यस्ततो जायते गर्भो दत्त्वा भुक्त्वा च पैतृकम् ।
न स विद्यां समाप्नोति क्षीणायुश्चैव जायते ॥३५
पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
उपासते सुतं जातं शकुन्ता इव पिप्पलम् ॥३६
मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन वा ।
एष नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च ॥३७
संतानवर्धनं पुत्रमुद्यतं पितृकर्मणि ।
देवब्राह्मणसंपन्नमभिनन्दन्ति पूर्वजाः ॥३८
तन्वन्ति पितरस्तस्य सुकृष्टैरिव कर्षकाः ।
यद्गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ॥३६

श्रावण्याग्रहायण्योश्चान्वष्टक्यां च पितृभ्यो दद्यात्,
द्रव्यदेशब्राह्मणसंनिधाने वा न कालनियमः ॥४०

अवश्यं च ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, दर्शपूर्णमासाग्रयणेष्टि-
चातुर्मास्यपशुसोमैश्च यजेत नैयमिकं ह्येतदृणसंस्तुतं च ॥४१

विज्ञायते हि त्रिभिरृणैरृणवान्ब्राह्मणो जायत इति ॥४२

यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यो, ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्य इत्येष
वाऽनृणो यज्वा यः पुत्री ब्रह्मचर्यवानिति ॥४३

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत, गर्भादेकादशेषु राजन्यं,
गर्भाद्द्वादशेषु वैश्यम् ॥४४

पालाशो बैल्वो वा दण्डो ब्राह्मणस्य, नैयग्रोधः क्षत्त्रियस्य वा
औदुम्बरो वा वैश्यस्य ॥४५

[केशसंमितो ब्राह्मणस्य, ललाटसंमितः क्षत्त्रियस्य, घ्राणसंमितो
वैश्यस्य ॥४६

मौञ्जी ब्राह्मणस्य, धनुर्ज्या क्षत्त्रियस्य, शणतान्तवी वैश्यस्य]४७

कृष्णाजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य, रौरवं क्षत्त्रियस्य, गव्यं व (ब)
स्तजिनं वा वैश्यस्य ॥४८

शुक्लमहतं वासो ब्राह्मणस्य, माञ्जिष्ठं क्षत्त्रियस्य, हारिद्रं
कौशेयं वैश्यस्य, सर्वेषां वा तान्तवमरक्तम् ॥४९

भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षां याचेत, भवन्मध्यां राजन्यो,
भवदन्त्यां वैश्यः ॥५०

आ षोडशाद्ब्राह्मणस्य नातीतः कालः ॥५१

आ द्वाविंशात्क्षत्त्रियस्य ॥५२

आ चतुर्विंशाद्वैश्यस्य ॥५३

अत उर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥५४

नैतानुपनयेन्नाध्यापयेन्न याजयेन्नैभिर्विवाहयेयुः ॥५५

पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत् ॥५६

द्वौ मासौ यावकेन वर्तयेत्, मासं पयसा, अर्धमासमामि-
क्षयाऽष्टरात्रं घृतेन, षड्रात्रमयाचितेन, त्रिरात्रमब्भक्षोऽहो-
रात्रमुपवसेत् ॥५७

अश्वमेधावभृथं गच्छेत् ॥५८

व्रात्यस्तोमेन वा यजेद्वा यजेदिति ॥५९

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः।

॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

अथ स्नातकव्रतं, वस्त्रादिधारण विधि वर्णनम्।

अथातः स्नातकव्रतानि ॥१

स न कंचिद्याचेतान्यत्र राजान्तेवासिभ्यः ॥२

क्षुधा परीतस्तु किंचिदेव याचेत, कृतमकृतं वा क्षेत्रं
गामजाविकमन्ततो हिरण्यं धान्यमन्नं वा, न तु
स्नातकः क्षुधाऽवसीदेदित्युपदेशः ॥३

न मलिनवाससा सह संवसेत, न रजस्वलया,
नायोग्यया, न कुलं कुलं स्यात् ॥४

वत्सन्तीं विततां नातिक्रामेत् ॥५

नोद्यन्तमादित्यं पश्येत् ॥६

नास्तमयन्तम् ॥७

नाप्सु मूत्रपुरीषे कुर्यात् ॥८

न निष्ठीवेत् ॥९

परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यात् ॥१०

उदङ्मुखश्चाहनि, नक्तं दक्षिणामुखः।
संध्यामासीतोत्तरामुदाहरन्ति ॥११

स्नातकानां तु नित्यं स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम्।
यज्ञोपवीते द्वे यष्टिः सोदकश्च कमण्डलुः ॥१२

अप्सु पाणौ च काष्ठे च कथितं पावके शुचिः।
तस्मादुदकपाणिभ्यां परिमृज्यात्कमण्डलुम् ॥१३

पर्यग्निकरणं त्वेतन्मनुराह प्रजापतिः।
कृत्वा चावश्यकर्माणि आचामेच्छौचवित्तमः। इति ॥१४

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत ॥१५

तूष्णीं साङ्गुष्ठं कृत्स्नग्रासं ग्रसेत ॥१६

न च मुखशब्दं कुर्यात् ॥१७

ऋतुकालगामी स्यात्पर्ववर्जं स्वदारेषु ॥१८

अतिर्यगुपेयात् ॥१९

(तीर्थमुपेयात्)।

अथाप्युदाहरन्ति ॥२०

यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये कुर्वीत मैथुनम्।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं रेतसो भुजः ॥२१

या स्यादनित्यचारेण रतिः साधर्मसंश्रिता ॥२२

अपि च काठके विज्ञायते ॥२३

अपि नः श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयीरन्निति स्त्रीणामिन्द्रदत्तो वर इति ॥२४

न वृक्षमारोहेत् ॥२५

न कूपमवरोहेत् ॥२६

नाग्निं मुखेनोपधमेत् ॥२७

नाग्निं ब्राह्मणं चान्तरेण व्यपेयात् ॥२८

नाग्न्योर्न ब्राह्मणयोर [न] नुज्ञाप्य वा, भार्यया सह-नाश्नीयादवीर्यवदपत्यं भवतीति वाजसनेयके विज्ञायते ॥२६

नेन्द्रधनुर्नाम्ना निर्दिशेत् ॥३०

मणिधनुरिति ब्रूयात् ॥३१

पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत् ॥३२

नोत्सङ्गे भक्षयेन्न संध्या [यां] भुञ्जीत ॥३३

वैणवं दण्डं धारयेद्रुक्मकुण्डले च ॥३४

न बहिर्मालां धारयेदन्यत्र रुक्ममय्याः ॥३५

सभाः समवायांश्च वर्जयेत् ३६

अथाप्युदाहरन्ति ॥३७

अप्रामण्यं च वेदनामार्षाणां चैव कुत्सनम् ।
अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः । इति ॥३८

नावृतो यज्ञं गच्छेत् ॥३६

यदि व्रजेत्प्रदक्षिणं पुनराव्रजेत् ॥४०

अधिवृक्षसूर्यमध्वानं न प्रतिपद्येत ।।४१

नावं च सांशयिकीं नाधिरोहेत [तु] ।।४२

बाहुभ्यां न नदीं तरेत् ।।४३

उत्थायापररात्रमधीत्य न पुनः प्रति संविशेत् ।।४४

प्राजापत्ये मुहूर्ते ब्राह्मणः कांश्चिन्नियमाननुतिष्ठेदनु-
तिष्ठेदिति ।।४५

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ।।

।। अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।।

अथोपाकर्मविधिः, वेदाध्ययनस्यानध्यायनिरूपणम् ।

अथातः स्वाध्यायोपाकर्म श्रावण्यां पौर्णमास्यां प्रोष्ठपद्यां वाऽग्निमुपसमाधाय कृताधानो जुहोति देवेभ्य ऋषिभ्यश्छन्दोभ्यश्चेति ।।१

ब्राह्मणान्स्वस्तिवाच्य दधि प्राश्य ततोऽध्यायानुपाकुर्वीरन् ।।२

अर्धपञ्चममासानर्धषष्ठान्वाऽत ऊर्ध्वं शुक्लपक्षेष्वधीयीत, कामं तु वेदाङ्गानि ।।३ तस्यानध्यायाः ।।४

संध्यास्तमिते संध्यास्वन्तःशवदिवाकीर्त्येषु नगरेषु कामं गोमयपर्युषिते परिलिखिते वा श्मशानान्ते शयानस्य श्राद्धिकस्य ।।५

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥६

फलान्यपस्तिलान्भक्षा इति ॥७

धावतः पूतिगन्धप्रभृतावीरिणे, वृक्षमारूढस्य नावि सेनायां च भुक्त्वा चाऽऽर्द्रपाणेर्वाणशब्दे चतुर्दश्याममावास्यायामष्टम्यामष्टकासु प्रसारितपादोपस्थकृतस्थोपाश्रितस्य च गुरुसमीपे मैथुनव्यपेतायां वाससा मैथुनव्यपेतेनानिर्णिक्तेन ग्रामान्ते छर्दितस्य मूत्रितस्योच्चारितस्य ऋग्यजुषां च सामशब्दे वाऽजीर्णे निर्घाते भूमिचलने चन्द्रसूर्योपरागे दिङ्नादपर्वतनादकम्पप्रपातेषूपलरुधिरपांशुवर्षेष्वाकालिकम् ॥८

उल्काविद्युत्समासे त्रिरात्रम् ॥९

उल्काविद्युत्सज्योतिषम् ॥१०

अपर्तावाकालिकमाचार्ये प्रेते त्रिरात्रमाचार्यपुत्रशिष्य भार्यास्वहोरात्रम् ॥११

ऋत्विग्योनिसंबन्धेषु च गुरोः पादोपसंग्रहणं कार्यम् ॥१२

ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलाननवरवयसः प्रत्युत्थायाभिवदेत् ॥१३

ये चैव पादग्राह्यास्तेषां भार्या गुरोश्च मातापितरौ यो विद्यादभिवन्दितुमहमयं भो इति ब्रूयाद्यश्च न विद्यात्प्रत्यभिवादमामन्त्रिते स्वरोऽन्त्यः प्लवते संध्यक्षरमप्रगृह्यमायावभावं चाऽऽपद्यते यथा भो भाविति ॥१४

पतितः पिता परित्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ॥१५

अत्राप्युदाहरन्ति ॥१६

उपाध्यायाद्दशाऽऽचार्य आचार्याणां शतं पिता ।

पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते

भार्याः पुत्राश्च शिष्याश्च संदुष्टाः पापकर्मभिः ।

परिभाष्य परित्याज्याः पतितो योऽन्यथा त्यजेत् ॥१८

ऋत्विगाचार्यावयाजकानध्यापकौ हेयावन्यत्र हानात्पतति ॥१६

पतितोत्पन्नः पतितो भवतीत्याहुरन्यत्र स्त्रियाः ॥२०

सा हि परगामिनी तामरिक्थामुपेयात् ॥२१

गुरोर्गुरौ संनिहिते गुरुवद्वृत्तिरिष्यते ।

गुरुवद्गुरुपुत्रस्य वर्तितव्यमिति श्रुतिः ॥२२

शस्त्रं विषं सुरा चाप्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य ॥२३

विद्यावित्तवयःसंबन्धकर्म च मान्यम् ॥२४

पूर्वः पूर्वो गरीयान्स्थविरबालातुरभारिकस्त्रीचक्रीवतां

पन्थाः समागमे परस्मै देयः ॥२५

राजस्नातकयोः समागमे राज्ञा स्नातकाय देयः ॥२६

सर्वैरेव च वध्वा ऊह्यमानायै ॥२७

तृणभूम्यग्न्युदकवाक्सूनृतनासूयाः सतां गृहे नोच्छिद्यन्ते

कदाचन कदाचनेति ॥२८

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ।

॥ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

अथ चिकित्सकादीनामन्नभोजनेनिषेधवर्णनम् ।

अथातो भोज्याभोज्यं च वर्णयिष्यामः ॥१

चिकित्सकमृगयुपुंश्चलीदण्डिकस्तेनाभिशस्तषण्ढपतिता-
नामन्नमभोज्यम् ॥२

कदर्यदीक्षितबद्धातुरसोमविक्रयितक्षकरजकशौण्डिकसूचक-
वार्धुषिकचर्मावकृत्तानां, शूद्रस्य चास्त्रभृतश्चोपपत्ते(ते)र्यश्चो-
पपत्ति(तिं) मन्यते, यश्च गृहान्दहेत्, यश्च वधार्हं
नोपहन्यात्को भक्ष्यत इति ॥३

वाचाऽभिघुष्टं गणान्नं गणिकान्नं चेति ॥४

अथाप्युदाहरन्ति ॥५

नाश्नन्ति श्ववतो देवा नाश्नन्ति वृषलीपतेः ।
भार्याजितस्य नाश्नन्ति यस्य चोपपतिर्गृहे, इति ॥६

एधोदकयवसकुशलाजाभ्युद्यतयानावसथशफरीप्रियङ्गुस्रग्गन्ध-
मधुमांसानीत्येतेषां प्रतिगृह्णीयात् ॥७

अथाप्युदाहरन्ति ॥२

गुर्वर्थं दारमुज्जिहीषन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः, इति ॥६

न मृगयोरिषुचारिण परिवर्जमन्नम् ॥१०

विज्ञायते ह्यगस्त्यो वर्षसाहस्त्रिके सत्रे मृगयां चकार,
तस्याऽऽसंस्तु रसमयाः पुरोडाशा मृगपक्षिणां प्रशस्तानाम् ॥११

अपि ह्यत्र प्राजापत्याञ्छ्लोकानुदाहरन्ति ॥१२

उद्यतामाहृतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम्।
भोज्यां प्रजापतिर्मेने अपि दुष्कृतकारिणः ॥१३

श्रद्दधानस्य भोक्तव्यं चोरस्यापि विशेषतः।
न त्वेव बहुयाज्यस्य यश्चोपनयते बहून् ॥१४

न तस्य पितरोऽश्नन्ति दश वर्षाणि पञ्च च।
न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥१५

चिकित्सकस्य मृगयोः शल्यहस्तस्य पापिनः।
ष(प)ण्डस्य कुलटायाश्च उद्यताऽपि न गृह्यते, इति ॥१६

उच्छिष्टमगुरोरभोज्यं, स्वमुच्छिष्टोपहतं च ॥१७

यदशनं केशकीटोपहतं च ॥१८

कामं तु केशकीटानुद्धृत्याद्भिः प्रोक्ष्य भस्मनाऽवकीर्य वाचा प्रशस्तमुपभुञ्जीत ॥१९

अपि ह्यत्र प्राजापत्याञ्छ्लोकानुदाहरन्ति ॥२०

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणा(ना)मकल्पयन्।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥२१

देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च।
काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विसर्जयेत् ॥२२

तस्मादन्नमपोद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति।
द्रवाणां प्लावनेनैव घनानां प्रोक्षणेन तु।
मार्जारमुखसंस्पृष्टं शुचि एव हि तद्भवेत् ॥२३

अन्नं पर्युषितं भावदुष्टं सकृल्लेखं पुनः सिद्धमाममांसं
पक्वं च कामं तु दध्ना घृतेन वाऽभिघारितमुपयुञ्जीत ॥२४
अपि ह्यत्र प्राजापत्याञ्श्लोकानुदाहरन्ति ॥२५

हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनानि च।
दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम् ॥२६
प्रदद्यान्न तु हस्तेन नाऽऽयासेन कदाचन, इति ॥२७

लशुनपलाण्डुकेमुकगृञ्जनश्लेष्मातकवृक्षनिर्यासलोहित-
व्रश्चनश्वकाकावलीढशूद्रोच्छिष्टभोजनेषु कृच्छ्रातिकृच्छ्
इतरेऽप्यन्यत्र मधुमांसफलविकर्षेष्वग्राम्यपशाव(शु)विषयः २८
संधिनीक्षीरमवत्साक्षीरं गोमहिष्यजानामनिर्दशाहानामन्त-
र्नाब्युदकमपूपधानाकरम्भसक्तुवटकतैलपायसशाकानि
शुक्तानि वर्जयेत्, अन्यांश्च क्षीरयवपिष्टविकारान् ॥२६
श्वाविच्छल्लकशशकच्छपगोधाः पञ्चनखानां भक्ष्याः ॥३०
अनुष्ट्रा पशूनामन्यतोदन्ताश्च मत्स्यानां वा चेटगवयशिशु-
मारनक्रकुलीरा विकृतरूपाः ॥३१ सर्पशीर्षाश्च ॥३२
गौरगवयशरभाश्चानुदिष्टाः ॥३३
तथा धेन्वनडुहौ मेध्यौ वाजसनेयके विज्ञायेते ॥३४
खड्गे तु विवदन्त्य(न्तेऽ)ग्राम्यसूकरे च ॥३५
शकुनानां च विघुविष्किरजालपादाः ॥३६
कलविङ्कप्लवहंसचक्रवाकभासवायसपारावतकुक्कुटसारङ्ग-
पाण्डुकपोतक्रौञ्चक्रकरकङ्कगृध्रश्येनबकबलाकमद्गुटिट्टिभ-
मान्धालनक्तंचरदार्वाघाटचटकरैलातहारीतखञ्जरीटग्राम्य-

कुक्कुटशुकसारिकाकोकिलक्रव्यादा ग्रामचारिणश्चग्राम-
चारिणश्चेति ॥३७

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

दत्तकप्रकरणवर्णनम् ।

शोणितशुक्रसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकः ॥१

तस्य प्रदानविक्रयत्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः ॥२

न त्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा ॥३

स हि संतानाय पूर्वेषाम् ॥४

न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद् भर्तुः ॥५

पुत्रं प्रतिग्रहीष्यन्बन्धूनाहूय राजनि चाऽऽवेद्य निवे-
शनस्य मध्ये व्याहृतिभिर्हुत्वा दूरेबान्धवं बन्धु-
संनिकृष्टमेव प्रतिगृह्णीयात् ॥६

संदेहे चोत्पन्ने दूरे बान्धवं शूद्रमिव स्थापयेत् ॥७

विज्ञायते ह्येकेन हूंस्त्रायत इति ॥८

तस्मिंश्चेत्प्रतिगृहीत औरसः पुत्र उत्पद्येत, चतुर्थ-
भागभागी स्याद्दत्तकः ॥९

यदि नाऽऽभ्युदयिकेषु युक्तः स्याद्वेदविप्लविनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान्दर्भांल्लोहितान्वोपस्तीर्य पूर्णपात्रमस्मै निनयेत् ॥१०

निनेतारं चास्य प्रकीर्णकेशान् ज्ञातयोऽन्वालभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन धर्मयेयुस्तद्धर्माणस्तं धर्मयन्तः ॥११

पतितानां तु चरितव्रतानां प्रत्युद्धारः ॥१२

अथाप्युदाहरन्ति ॥१३

अग्रेऽभ्युद्धरतां गच्छेत्क्रीडन्निव हसन्निव ।
पश्चात्पातयतां गच्छेच्छोचन्निव रुदन्निव, इति ॥१४

आचार्यमातृपितृहन्तारस्तत्प्रसादाद्भयाद्वा, एषा (तेषां) प्रत्यापत्तिः ॥१५

पूर्णाब्दात्प्रवृत्ताद्वा काञ्चनं पात्रं माहेयं वा पूरयित्वाऽऽपोहिष्ठेति मन्त्रेणाद्भिरभिषिञ्चति ॥१६

सर्व एवाभिषिक्तस्य प्रत्युद्धारः (प्रत्युद्धीर) पुत्रजन्मना व्याख्यातो व्याख्यात इति ॥१७

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पञ्चदशोऽध्यायः ।

॥ अथ षोडशोऽध्यायः ॥

व्यवहारविधिवर्णनम्।

तत्रादौ राजमन्त्रिणो धर्माः।

अथ व्यवहाराः ॥१
राजमन्त्री सदःकार्याणि कुर्यात् ॥२
द्वयोर्विवदमानयोर्न पक्षान्तरं गच्छेत् ॥३
यथासनमपराधो ह्यन्ते नापराधः (?) ॥४
समः सर्वेषु भूतेषु यथासनमपराधो (?) ह्याद्यवर्णयो-
र्विद्यान्ततः (विधानतः) ॥५
संपन्नं च रक्षयेद्राजा बालधनान्यप्राप्तव्यवहाराणां
प्राप्तकाले तु तद्वत् ॥६
लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्।
धनस्वीकरणं पूर्वं धनी धनमवाप्नुयात्, इति ॥७
मार्गक्षेत्रयोर्विसर्गे तथा परिवर्तनेन तरुण(ऋण)गृहे-
ष्वर्थान्तरेषु त्रिपादमात्रम् ॥८
गृहक्षेत्रविरोधे सामन्तप्रत्ययः ॥९
सामन्तविरोधे लेख्यप्रत्ययः ॥१०
प्रत्यभिलेख्यविरोधे ग्रामनगरवृद्धश्रेणीप्रत्ययः ॥११
अथाप्युदाहरन्ति ॥१२
पैतृकं (य एकं) क्रीतमाधेयमन्वाधेयं प्रतिग्रहम्।
यज्ञादुपगमो वेणिस्तथा धूमशिखाऽष्टमी, इति ॥१३
तत्र भुक्तानुभुक्तदशावर्षम् ॥१४

अन्यथाऽप्युदाहरन्ति ॥१५

आधिः सीमा बालधनो निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ।

राजस्वं श्रोत्रियद्रव्यं न संभोगेन हीयते ॥१६

प्रहीणद्रव्याणि राजगामीनि भवन्ति ॥१७

ततोऽन्यथा राजा मन्त्रिभिः सह नागरैश्च कार्याणि कुर्यात् ॥१८

वेधसो वा राजा श्रेयान्गृध्रपरिवारं स्यात् ॥१९

गृध्रपरिवारं वा राजा श्रेयान् ॥२०

गृध्र परिवारं स्यान्न गृध्रो गृध्रपरिवारं स्यात्परिवाराद्धि

दोषाः प्रादुर्भवन्ति स्तेयहारविनाशनं तस्मापूर्वमेव

परिवारं पृच्छेत् ॥२१

अथ साक्षिणः ॥२२

श्रोत्रियो रूपवाञ्छीलवान्पुण्यवान्सत्यवान्साक्षिणः

सर्वेषु सर्व एव वा ॥२३

स्त्रीणां तु साक्षिणः स्त्रिय कुर्याद्द्विजानां सदृशा द्विजाः ।

शूद्राणां सन्तः शूद्राश्च, अन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥२४

अथाप्युदाहरन्ति ॥२५

प्रतिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ।

दण्डशुल्कावशिष्टं च न पुत्रो दातुमर्हति, इति ॥२६

ब्रूहि साक्षिन्यथातत्त्वं लम्बन्ते पितरस्तव ।

तव वाक्यमुदीक्षाणा उत्पतन्ति पतन्ति च ॥२७

नग्नो मुण्डः कपाली च भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ।

अन्धः शत्रुकुले गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥२८

पञ्च कन्यानृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥२९
व्यवहारे मृते दारे प्रायश्चित्तं कुलस्त्रियः।
तेषां पूर्वपरिच्छेदाच्छिद्यन्तेऽत्रापवादिभिः ॥३०
उद्वाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे।
विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेयुः पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥३१
स्वजनस्यार्थे यदि वाऽर्थहेतोः पक्षाश्रयेणैव वदन्ति कार्यम्।
ते शब्दवंशस्य कुलस्य पूर्वान्स्वर्गस्थितांस्तानपि पातयन्ति,
अपि पातयन्ति ॥३२

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः।

॥ अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

पुत्रिणां प्रशंसावर्णनम्।

ऋणमस्मिन्संनयति अमृतत्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ॥१
अनन्ताः पुत्रिणां लोका नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते ॥२
प्रजाः सन्त्वपुत्रिण इत्यभिशापः ॥३
प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्यामित्यपि निगमो भवति ॥४
पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणाऽऽनन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याऽऽप्नोति विष्टपम्, इति ॥५

क्षेत्रिणः पुत्रो जनयितुः पुत्र इति विवदन्ते ॥६

तत्रोभयथाऽप्युदाहरन्ति ॥७

यद्यन्यो गोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम्।

गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्यन्दितमार्षभम्, इति ॥८

अप्रमत्ता रक्षत तन्तुमेतं मा वः क्षेत्रे पर(रे)वीजानिअवाप्सुः।

न जनयितुः पुत्रो भवति स्वं (सं) पराये मोघं वेत्ता

कुरुते तन्तुमेतमिति ॥६

बहूनामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्नरः।

सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रवन्त इति श्रुतिः ॥१०

बह्वीनामेकपत्नीनामेका पुत्रवती यदि।

सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रवत्य इति श्रुतिः ॥११

द्वादश इत्येव पुत्राः पुराणदृष्टाः ॥१२

स्वयमुत्पादितः स्वक्षेत्रे संस्कृतायां प्रथमः ॥१३

तदलाभे नियुक्तायां क्षेत्रजो द्वितीयः ॥१४

तृतीयः पुत्रिका विज्ञायते ॥१५

अभ्रातृका पुंसः पितॄनभ्येति प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम् ॥१६

तत्र श्लोकः ॥१७

अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्।

अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥१८

पौनर्भवश्चतुर्थः ॥१६

या कौमारं भर्तारमुत्सृज्यान्यैः सह चरित्वा तस्यैव

कुटुम्बमाश्रयति सा पुनर्भूर्भवति ॥२०

या च क्लीबं पतितमुन्मत्तं वा भर्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति ॥२१

कानीनः पञ्चमः ॥२२

या पितृगृहेऽसंस्कृता कामादुत्पादयेत्, मातामहस्य पुत्रो भवतीत्याहुः ॥२३

अथाप्युदाहरन्ति ॥२४

अप्रत्ता दुहिता यस्य पुत्रं विन्देत तुल्यतः।
पुत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम्, इति ॥२५

गृहे च गूढोत्पन्नः षष्ठः ॥२६

इत्येते दायादा बान्धवास्त्रातारो महतो भयादित्याहुः ॥२७

अथादायादबन्धूनां सहोढ एव प्रथमो, या गर्भिणी संस्क्रियते तस्यां जातः सहोढः पुत्रो भवति ॥२८

दत्तको द्वितीयो, यं मातापितरौ दद्याताम् ॥२९

क्रीतस्तृतीयस्तच्छुनःशेपेन व्याख्यातम् ॥३०

हरिश्चन्द्रो ह वै राजा सोऽजीगर्तस्य सोयवसेः पुत्रं चिक्राय ॥३१

स्वयमुपागतश्चतुर्थः, तच्छुनःशेपेन व्याख्यातम् ॥

शुनःशेपो वै यूपेन नियुक्तो देवतास्तुष्टाव, तस्येह देवताः पाशं विमुमुचुः तमृत्विज ऊचुममैवायं पुत्रोऽस्त्विति, तान्ह न संपेदे, ते संपादयामासुरेष एव यं कामयेत तस्य पुत्रोऽस्त्विति, तस्य ह विश्वामित्रो होताऽऽसीत्तस्य पुत्रत्वमियाय ॥३३

अपविद्धः पञ्चमो यं मातापितृभ्यामपास्तं प्रतिगृह्णीयात् ३४

(विवाहात्प्राक् कन्यायाः रजोदर्शने पितुर्दोषः)

शूद्रापुत्र एव षष्ठो भवतीत्याहुः ॥३५

इत्येतेऽदायादा बान्धवाः ॥३६

अथाप्युदाहरन्ति ॥३७

यस्य पूर्वेषां (वर्णानां) षण्णां न कश्चिद्दायादः स्यादेते तस्य दायं हरेरन्निति ॥३८

अथ भ्रातॄणां दायविभागः ॥३९

द्व्यंशं ज्येष्ठो हरेत्, गवाश्वस्य चानुदशमम् ॥४०

अजावयो गृहं च कनिष्ठस्य ॥४१

कार्ष्णायसं गृहोपकरणानि च मध्यमस्य ॥४२

मातुः पारिणेयं स्त्रियो विभजेरन् ॥४३

यदि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यासु पुत्राः स्युस्त्र्यंशं ब्राह्मण्याः पुत्रो हरेद्द्व्यंशं राजन्यायाः पुत्रः सममितरे विभजेरन् ॥४४

येन चैषां स्वयमुत्पादितं स्याद्द्व्यंशमेव हरेत् ॥४५

अनंशास्त्वाश्रमान्तरगताः ॥४६

क्लीबोन्मत्तपतिताश्च ॥४७

भरणं क्लीबोन्मत्तानाम् ॥४८

प्रेतपत्नी षण्मासान्व्रतचारिण्यक्षारलवणं भुञ्जानाऽधः शयीतोर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्यः स्नात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्त्वा विद्याकर्मगुरुयोनिसंबन्धान्संनिपात्य पिता भ्राता वा नियोगं कारयेत्तपसे ॥४९

न सोन्मत्तामवशां व्याधितां वा नियुञ्ज्यात् ॥५०

ज्यायसीमपि षोडश वर्षाणि, न चेदामयावी स्यात् ॥५१

प्राजापत्ये मुहूर्ते पाणिग्राहवदुपचरेत् ॥५२

अन्यत्र संप्रहास्यवाक्पारुष्यदण्डपारुष्याच्च ॥५३

ग्रासाच्छादनस्नानानुलेपनेषु प्राग्गामिनी स्यात् ॥५४

अनियुक्तायामुत्पन्न उत्पादयितुः पुत्रो भवतीत्याहुः ॥५५

स्याच्चेन्नियोगिनो रिक्थम् ॥५६

लोभान्नास्ति नियोगः ॥५७

प्रायश्चित्तं वाऽप्यपदिश्य नियुञ्ज्यादित्येके ॥५८

कुमार्यृतुमती त्रीणि वर्षाण्युपासीतोर्ध्वं त्रिभ्यो वर्षेभ्यः पतिं विन्देत्तुल्यम् ॥५९

अथाप्युदाहरन्ति ॥६०

पितुः प्रमादात्तु यदाह कन्या वयः प्रमाणं समतीत्य दीयते।
सा हन्ति दातारमुदीक्षमाणा कालातिरिक्ता गुरुदक्षिणेव ॥६१

प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात्पिता।
ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यां दोषः पितरमृच्छति ॥६२

यावच्च कन्यामृतवः स्पृशन्ति तुल्यैः सकामामभियाच्यमानाम्।
भ्रूणानि तावन्ति हतानि ताभ्यां मातापितृभ्यामिति धर्मवादः

अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेताऽऽदौ वरो यदि।
न च मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥६४

बलाच्चेत्प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥६५

प्राणिग्रहे मृते बाला केवलं मन्त्रसंस्कृता ।
सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति, ॥६६

प्रोषितपत्नी पञ्च वर्षाण्युपासीतोर्ध्वं पञ्चभ्यो वर्षेभ्यो भर्तृसकाशं गच्छेत् ॥६७

यदि धर्मार्थाभ्यां प्रवासं प्रत्यनुकामा न स्याद्यथा प्रेत एवं वर्तितव्यं स्यात् ॥६८

एवं ब्राह्मणी पञ्च प्रजाताऽप्रजाता चत्वारि, राजन्या प्रजाता पञ्चाप्रजाता त्रीणि, वैश्या प्रजाता चत्वार्य-प्रजाता द्वे, शूद्रा प्रजाता त्रीण्यप्रजातैकम् ॥६९

अत ऊर्ध्वं समानोदकपिण्डजन्मर्षिगोत्राणां पूर्वः पूर्वो गरीयान् ॥७०

न तु खलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात् ॥७१

यस्य पूर्वेषां षण्णां न कश्चिद्दायादः स्यात्सपिण्डाः पुत्र-स्थानीया वा तस्य धनं विभजेरन् ॥७२

तेषामलाभ आचार्यान्तेवासिनौ हरेयाताम् ॥७३

तयोरलाभे राजा हरेत् ॥७४

न तु ब्राह्मस्य राजा हरेत् ॥७५

ब्रह्मस्वं तु विषं घोरम् ॥७६

न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ।
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम्, इति ॥७७

त्रैविद्यसाधुभ्यः संप्रयच्छेत्संप्रयच्छेदिति ॥७८

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ।

॥ अथाष्टादशोऽध्यायः ॥

चाण्डालादिजात्यन्तरनिरूपणम्।

शूद्रेण ब्राह्मण्यामुत्पन्नश्चण्डालो भवतीत्याहू राजन्यायां वैणो वैश्यायामन्त्यावसायी ॥१

वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रामको भवतीत्याहुः,
राजन्यायां पुल्कसः ॥२

राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः सूतो भवतीत्याहुः ॥३

अथाप्युदाहरन्ति ॥४

छिन्नोत्पन्नास्तु ये केचित्प्रातिलोम्यगुणाश्रिताः।
गुणाचारपरिभ्रंशात्कर्मभिस्तान्विजानीयुः, इति ॥५

एकान्तरद्व्यन्तरत्र्यन्तरानुजाता ब्राह्मणक्षत्त्रियवैश्यै-
रम्बष्ठोग्रनिषादा भवन्ति ॥६

शूद्रायां पारशवः पारयन्नेव जीवन्नैव शवो भवतीत्याहुः ॥७

शव इति मृताख्या ॥८

एके वै तच्छ्मशानं ये शूद्रास्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम् ॥९

अथापि यमगीताञ्छ्लोकानुदाहरन्ति ॥१०

श्मशानमेतत्प्रत्यक्षं ये शूद्राः पापचारिणः।
तस्माच्छूद्रसमीपे तु नाध्येतव्यं कदाचन ॥११

न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम्।
न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥१२

यश्चास्योपदिशेद्धर्मं यश्चास्य व्रतमादिशेत्।
सोऽसंवृतं तमो घोरं सह तेन प्रपद्यते, इति ॥१३

व्रणद्वारे कृमिर्यस्य संभवेत कदाचन ।
प्राजापत्येन शुध्येत हिरण्यं गौर्वासो दक्षिणा, इति ॥१४

नाग्निं चित्वा रामामुपेयात् ॥१५

कृष्णवर्णा या रामा रमणायैव न धर्माय न धर्मायेति ॥१६

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ।

....

॥ अथैकोनविंशोऽध्यायः ॥

अथ राजधर्माभिधानवर्णनम् ।

स्वधर्मो राज्ञः पालनं भूतानां तस्यानुष्ठानात्सिद्धिः ॥१

भयकारुण्यहानं जरामयं(र्यं) वै तत्सत्रमाहुर्विद्वांस्तस्माद्-
गार्हस्थ्यानैयमिकेषु पुरोहितं दध्यात् ॥२

विज्ञायते ॥३

ब्रह्मपुरोहितं राष्ट्रमृध्नोतीति ॥४

उभयस्य पालनादसामर्थ्याच्च देशधर्मजातिकुलधर्मान्सर्वा-
नेवैताननुप्रविश्य राजा चतुरो वर्णान्स्वधर्मे स्थापयेत् ॥५

तेष्वपचरत्सु दण्डं धारयेत् ॥६

दण्डस्तु देशकालधर्मवयोविद्यास्थानविशेषैर्हिंसाक्रोशयोः
कल्प्य आगमाद्दृष्टान्ताच्च ॥७

पुष्पफलोपगान्पादपान्न हिंस्यात्कर्षणकरणार्थं चोपहन्यात् ॥८

गार्हस्थ्याङ्गानां च मानोन्माने रक्षिते स्याताम् ॥९

अधिष्ठानान्ननीहारः स्वार्थानां,
मानमूल्यमात्रं नैहारिकं स्यात् ॥१०
महामह्योः स्थानात्पथः स्यात्(?) ॥११
संयाने दशवाहवाहिनी द्विगुणकारिणी स्यात् ॥१२
प्रत्येकं प्रयास्यः पुनान्(?) ॥१३
पुंसां शतावराध्यँ चाऽऽहवयेदव्यर्थाः स्त्रियः स्युः ॥१४
कराष्ठीलामाषः शरमध्यापः पादः कार्षापणाः-
स्युर्निरुदकस्तरोमोष्योऽकरः श्रोत्रियोराजपुमाननाथप्रव्रजित-
बालवृद्धतरुणप्रजाताः प्राग्गामिकाः कुमार्यो मृतपत्न्यश्च ॥१५
बाहुभ्यामुत्तरञ्छतगुणं दद्यात् ॥१६
नदीकक्षवनदाहशैलोपभोगा निष्कराःस्युस्तदुपजीविनो
वा दद्युः ॥१७
प्रतिमासमुद्वाहकरं त्वागमयेद्राजनि च प्रेते दद्यात्प्रासङ्गिकम् ॥
एतेन मातृवृत्तिर्व्याख्याता ॥१६
राजमहिष्याः पितृव्यमातुलान्राजा बिभृयात्तद्बन्धूंश्चान्यांश्च ॥
राजपत्न्यो ग्रासाच्छादनं लभेरन् ॥२१
अनिच्छन्त्यो वा प्रव्रजेरन् ॥२२
क्लीबोन्मत्तान्राजा बिभृयात्, तद्गामित्वाद्रिक्थस्य ॥२३
शुल्के चापि मानवं श्लोकमुदाहरन्ति ॥२४
न भिन्नकार्षापणमस्ति शुल्के न शिल्पवृत्तौ न शिशौ न दूते।
न भैक्षलब्धे न हृतावशेषे न श्रोत्रिये प्रव्रजिते न यज्ञे, इति ॥२५
स्तेनोऽनुप्रवेशान्न दुष्यते शस्त्रधारी सहोढो व्रणसंपन्नो

व्यपदिष्टस्त्वकेषां दण्ड्योत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत्त्रिरात्रं पुरोहितः ॥२६

कृच्छ्रमदण्ड्यदण्डने पुरोहितस्त्रिरात्रं राजा ॥२७

अथात्युदाहरन्ति ॥२८

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्याऽपचारिणी ।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्विषम् ॥२६

राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥३०

एनो राजानमृच्छति उत्सृजन्तं सकिल्बिषम् ।
तं चेद्घातयते राजा हन्ति धर्मेण दुष्कृतम्, इति ॥३१

राज्ञामत्ययिके कार्ये सद्यः शौचं विधीयते ।
तथाऽनात्ययिके नित्यं काल एवात्र कारणम्, इति ॥३२

यमगीतं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥३३

नात्र दोषोऽस्ति राज्ञां वै व्रती(ति) नां न च (मंत्रिणां) सत्रिणाम् ।
ऐन्द्रस्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा, इति ॥३४

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ।

॥ अथ विंशोऽध्यायः ॥

अथ प्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम् ।

अनभिसंधिकृते प्रायश्चित्तमपराधे ॥१

अभिसंधिकृतेऽप्येके ॥२

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः, इति ॥३

तत्र च सूर्याभ्युदितः सन्नहस्तिष्ठेत् ॥४

सावित्रीं च जपेत् ॥५

एवं सूर्याभिनिर्मुक्तो रात्रावासीत ॥६

कुनखी श्यावदन्तस्तु कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् ॥७

परिवित्तिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत,
तां चैवोपयच्छेत् ॥८

अथ परिविविदानः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्त्वा
पुनर्निर्वि(वि)शेत, तामेवोपयच्छेत् ॥९

अग्रेदिधिषूपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत-
तां चैवोपयच्छेत् ॥१०

दिधिषूपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्त्वा
पुनर्निविशेत् (त) ॥११

वीरहणं परस्ताद्वक्ष्यामः ॥१२

ब्रह्मघ्नः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपयुञ्जीत
वेदमाचार्यात् ॥१३

गुरुतल्पगः सवृषणं शिश्नमुत्कृत्याञ्जलावाधाय दक्षिणामुखो गच्छेत् ॥१४

यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेदाप्रलयम् ॥१५

निष्कालको वा घृताभ्यक्तस्तप्तां सूर्मीं परिष्वजेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते ॥१६

आचार्यपुत्रशिष्यभार्यासु चैवम् ॥१७

योनिषु च गुर्वीं सखीं गुरुसखीमपपात्रां पतितां च गत्वा कृच्छ्राब्दपादं चरेत् ॥१८

एतदेवचाण्डालपतितान्नभोजनेषु, ततः पुनरुपनयनं, वपनादीनां तु निवृत्तिः ॥१९

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥२०

वपनं मेखला दण्डो भैक्षचर्या व्रतानि च ।
एतानि तु निवर्तन्ते पुनः संस्कारकर्मणि, इति ॥२१

मत्या मद्यपाने त्वसुरायाः सुरायाश्चाज्ञाने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ घृतं प्राश्य पुनः संस्कारश्च ॥२२

मूत्रशकृच्छुक्राभ्यवहारेषु चैवम् ॥२३

मद्यभाण्डे स्थिता आ(अ)पो यदि कश्चिद्द्विजः पिबेत् ।
पद्मोदुम्बरबिल्वपलाशानामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥

अभ्यासे तु सुराया अग्निवर्णां तां द्विजः
पिबेन्मरणात्पूतो भवतीति ॥२५

भ्रूणहनं वक्ष्यामो ब्राह्मणं हत्वा भ्रूणहा भवत्यविज्ञातं गर्भमविज्ञाता हि गर्भाः पुमांसो भवन्ति ॥ ॥२६

तस्मात्पुंस्कृत्याऽऽजुह्वतीति, भ्रूणहाऽग्निमुपसमाधाय जुहुयादेताः ॥२७

लोमानि मृत्युर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युं वासय, इति प्रथमाम् ॥२८

त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय, इति द्वितीयाम् ॥२९

लोहितं मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय, इति तृतीयाम् ॥

मांसं मृत्योर्जुहोमि मांसेन मृत्युं वासय, इति चतुर्थीम् ॥३१

स्नावानि मृत्योर्जुहोमि स्नावभिर्मृत्युं वासय, इति पञ्चमीम् ३२

मेदो मृत्योर्जुहोमि मेदसा मृत्युं वासय, इति षष्ठीम् ॥३३

अस्थीनि मृत्योर्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युं वासय, इति सप्तमीम् ॥

मज्जानं मृत्योर्जुहोमि मज्जा(ज्ज)भिर्मृत्युं वाशय, इत्यष्टमीमिति॥

राजार्थे ब्राह्मणार्थे वा सङ्ग्रामेऽभिमुखमात्मानं घातयेत्त्रिरजितो वाऽपराद्धः पूतो भवतीति ॥३६

विज्ञायते हि ॥३७

निरुक्तं ह्येनः कनीयो भवतीति ॥३८

अथाऽऽप्युदाहरन्ति ॥३९

पतितं पतितेत्युक्त्वा चौरं चौरेति वा पुनः।
वचनात्तुल्यदोषः स्यान्मिथ्या द्विर्दोषतां व्रजेत्, इति ॥४०

एवं राजन्यं हत्वाऽष्टौ वर्षाणि चरेत्, षड्वैश्यं, त्रीणि शूद्रं,

ब्राह्मणीं चाऽऽत्रेयीं हत्वा सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ ॥४१

आत्रेयीं वक्ष्यामो रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीमाहुः ॥४२

अत्र ह्येष्यदपत्यं भवतीति ॥४३

अनात्रेयीं राजन्यहिंसायां राजन्यां वैश्यहिंसायां वैश्यां शूद्रहिंसायां शूद्रां हत्वा संवत्सरम् ॥४४

ब्राह्मणसुवर्णहरणे प्रकीर्य केशान्राजानमभिधावेत्स्तेनोऽस्मि भोः शास्तु मां भवानिति ।
तस्मै राजौदुम्बरं शस्त्रं दद्यात्तेनाऽऽत्मानं प्रमापयेन्मरणात्पूतो भवतीतिविज्ञायते ।।४५

निष्कालको वा घृताक्तो गोमयाग्निना पादप्रभृत्यात्मान-मभिदाहयेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते ।।४६

अथाप्युदाहरन्ति ।।४७

पुराकालात्प्रमीतानां पापा(आनाकविधि)द्विविधकर्मणाम् ।
पुनरापन्नदेहानामङ्गं भवति तच्छृणु ।।४८
स्तेनः कुनखी भवति श्वित्री भवति ब्रह्महा ।
सुरापः श्यावदन्तस्तु दुश्चर्मा गुरुतल्पग, इति ।।४९

पतितसंप्रयोगं च ब्राह्मेण वा यौनेन वा यास्तेभ्यः सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परित्यागस्तैश्च न संवसेदुदीचीं दिशं गत्वाऽनश्नन्संहिताध्ययनमधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ।।५०

अथाऽप्युदाहरन्ति ।।५१

शरीरपरितापेन तपसाऽध्ययनेन च ।
मुच्यते पापकृत्पापाद्दानाच्चापि प्रमुच्यते, इति
विज्ञायते विज्ञायत इति ।।५२

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे विंशोऽध्यायः ।

।। अथैकविंशोऽध्यायः ।।

ब्राह्मणीगमने शूद्रवैश्यक्षत्रियाणां प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्वीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येत् ।।१
ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषा समभ्यज्य नग्नां कृष्णं खरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूता भवतीति विज्ञायते ।।२
वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमधिगच्छेल्लोहितदर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्येत् ।।३
ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाऽभ्यज्य नग्नां गौरं खरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूता भवतीति विज्ञायते ।।४
राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रैर्वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येत्, ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषा समभ्यज्य नग्नां श्वेतं खरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूता भवतीति विज्ञायते ।।५
एवं वैश्यो राजन्यायां शूद्रश्च राजन्यावैश्ययोः ।।६
मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरौदनं वा भुञ्जानाऽधः शयीतोर्ध्वं त्रिरात्रादप्सु निमग्नायाः सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ।।७
वाक्संबन्ध एतदेव मासं चरित्वोर्ध्वं मासादप्सु निमग्नायाः सावित्र्याश्चतुर्भिरष्टशतैः शिरोभिर्जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ।।८

व्यवाये तु संवत्सरं घृतपटं धारयेत् ॥६

गोमयगर्ते कुशप्रस्तरे वा शयीतोर्ध्वं संवत्सरादप्सु निमग्नायाः सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ॥१०

व्यवाये तीर्थगमने धर्मेभ्यस्तु निवर्तते ।

चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या ॥११

पतिघ्नी च विशेषेण जुङ्गितोपगता च या ॥१२

या ब्राह्मणी सुरापी न तां देवाः पतिलोकं नयन्ति ।

इहैव सा चरति क्षीणपुण्याऽप्सु लुग्भवति शुक्तिका वा ॥१३

ब्राह्मणक्षत्त्रियविशां स्त्रियः शूद्रेण संगताः ।

अप्रजाता विशुध्यन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः ।

प्रतिलोमं चरेयुस्ताः कृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम् ॥१४

पतिव्रतानां गृहमेधिनीनां सत्यव्रतानां च शुचिव्रतानाम् ।

तासां तु लोकाः पतिभिः समाना गोमायुलोका व्यभिचारिणीनाम्

पतत्यर्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ।

पतितार्धशरीरस्य निष्कृति र्न विधीयते ॥१६

ब्राह्मणश्चेदप्रेक्षापूर्वं ब्राह्मणदारानभिगच्छेदनिवृत्तधर्मकर्मणः

कृच्छ्रो निवृत्तधर्मकर्मणोऽतिकृच्छ्रः ॥१७

एवं राजन्यवैश्ययोः ॥१८

गां चेद्धन्यात्तस्याश्चर्मणाऽऽर्द्रेण परिवेष्टितः षण्मासान्कृच्छ्र(च्छ्रं)

तप्तकृच्छ्रं वा तिष्ठेत् ॥१६ तयोर्विधिः ॥२०

त्र्यहं दिवा भुङ्क्ते नक्तमश्नाति वै त्र्यहम् ।
त्र्यहमयाचितव्रतस्त्र्यहं न भुङ्क्त इति कृच्छ्रः ॥२१

त्र्यहमुष्णं पिबेदा(बा) पस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ॥२२

इति तप्तकृच्छ्रः ॥२३

ऋषभवेहतौ च दद्यात् ॥२४

अथाप्युदाहरन्ति ॥२५

त्रय एव पुरा रोगा ईर्ष्या अनशनं जरा ।
पृषद्ध्रस्तनयं हत्वा अष्टानवतिमाहरेत् ॥२६

इति श्वमार्जारनकुलसर्पदर्दुरमूषकान्हत्वा कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत्किंचिद्दद्यात् ॥२७

अनस्थिमतां तु सत्त्वानां गोमात्रं राशिं हत्वा कृच्छ्रं द्वादश रात्रं चरेत्किंचिद्दद्यात् ॥२८

अस्थिमतां त्वेकैकम् ॥२९

योऽग्नीनपविध्येत्कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनराधानं कारयेत् ॥३०

गुरोश्चालीकनिर्बन्धः सचैलं स्नातो गुरुं प्रसादयेत्प्रसादात् पूतो भवतीति विज्ञायते ॥३१

नास्तिकः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वाविरमेन्नास्तिक्यात् ॥३२

नास्तिकवृत्तिस्त्वतिकृच्छ्रम् ॥३३

एतेन सोमविक्रयी व्याख्यातः ॥३४

वानप्रस्थो दीक्षाभेदे कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा महाकक्षे(क्षं) वर्धयेत् ॥३५

भिक्षुकैर्वा (को वा)नप्रस्थवल्लोभवृद्धिवर्जं स्वशास्त्रसंस्कारश्च स्वशास्त्रसंस्कारश्चेति ॥३६

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकविंशोऽध्यायः।

॥ द्वाविंशोऽध्यायः ॥

अथायाज्ययाजनादि प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अथ खल्वयं पुरुषो मिथ्या व्याकरोत्ययाज्यं वा याजयति अप्रतिग्राह्यं वा प्रतिगृह्णाति अनन्नं वाऽश्नाति अनाचरणीय-मेवाऽऽचरति तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति मीमांसन्ते, न कुर्यादित्याहुर्न हि कर्म क्षीयत इति, कुर्यादित्येव तस्मा-च्छ्रुतिनिदर्शनात्तरति सर्वं पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्व-मेधेन यजत, इति ॥१

वाचाऽभिशस्तो गोसवेनाग्निष्टुता यजेत ॥२

तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानमुपनिषदो वेदादयो वेदान्ताः सर्वच्छन्दः संहिता मधून्यघमर्षणमथर्वशिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनि(न)रौहिणे सामनी कूष्माण्डानि पावमान्यः सावित्री चेति पावनानि ॥३

अथाप्युदाहरन्ति ।।४

वैश्वानरीं व्रातपतीं पवित्रेष्टिं तथैव च ।

सकृद्दतौ प्रयुञ्जानः पुनाति दशपूरुषम्, इति ।।५

उपवासन्यायेन पयोव्रतता फलभक्षता प्रसृतयावको हिरण्यप्राशनं सोमपानमिति मेध्यानि ।।६

सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्रवन्त्यः पुण्या ह्रदास्तीर्थान्यृषिनिवासगोष्ठपरिष्कन्धा इति देशाः ।।७

संवत्सरो मासश्चतुर्विंशत्यहो द्वादशाहः षडहस्त्र्यहोऽहोरात्र इति कालाः ।।८

एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन्, एनःसु गुरुषु गुरूणि लघुषु लघूनि ।।९

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चितिः सर्वप्रायश्चित्तिरिति ।।१०

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः ।

।। अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।।

अथ ब्रह्मचारिणः स्त्रीगमने प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

ब्रह्मचारी चेत्स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौ रक्षोदैवतं गर्दभं पशुमालभेत, नैर्ऋतं वा चरुं निर्वपेत्, तस्य जुहुयात्कामाय स्वाहा, कामकामाय स्वाहा, निर्ऋत्यै स्वाहा, रक्षोदेवताभ्यः स्वाहेति ।।१

एतदेव रेतसः प्रयत्नोत्सर्गे दिवा स्वप्ने व्रतान्तरेषु वा समावर्तनात्तिर्यग्योनिव्यवाये ॥२

शुक्लमृषभं दद्यात् ॥३

गां गत्वा शूद्रावधेन दोषो व्याख्यातः ॥४

ब्रह्मचारिणः शवकर्मणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोः ॥५

स चेद्व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भैषजार्थं सर्वं प्राश्नीयात्॥

गुरुप्रयुक्तश्चेन्म्रियेत त्रीन्कृच्छ्रांश्चरेद्गुरुः ॥७

ब्रह्मचारी चेन्मांसमश्नीयादुच्छिष्टभोजनीयं कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥८

श्राद्धसूतकभोजनेषु चैवम् ॥६

अकामतोपनतं मधु वाजसनेयके न दुष्यतीति विज्ञायते ॥१०

य आत्मत्याग्यभिशस्तो भवति सपिण्डानां प्रेतकर्मच्छेदः ॥११

काष्ठजललोष्टजलपाषाणशस्त्रविषरज्जुभिर्य आत्मानमवसादयति, स आत्महा भवति ॥१२

अथाप्युदाहरन्ति ॥१३

य आत्मत्यागिनः कुर्यात्स्नेहात्प्रेतक्रियां द्विजः ।
स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम् , इति ॥१४

चान्द्रायणं परस्ताद्वक्ष्यामः ॥१५

आत्महननाध्यवसाये त्रिरात्रम् ॥१६

जीवन्नात्मत्यागी कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् , त्रिरात्रं ह्युपवसेन्नित्यं स्निग्धेन वाससा प्राणानात्मनि चाऽऽयम्य त्रिः पठेदघमर्षणमिति ॥१७

अपि वैतेन कल्पेन गायत्रीं परिवर्तयेत् ।
अपि वाऽग्निमुपसमाधाय कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम् ॥१८

यच्चान्यन्महापातकेभ्यः सर्वमेतेन पूयत इत्यथाप्याचामेत् ॥१९

अग्निश्च मा मन्युश्चेति प्रातर्मनसा पापं ध्यात्वोंपूर्वाः सत्यान्ता व्याहृतीर्जपेदघमर्षणं वा पठेत् ॥२०

मानुषास्थि स्निग्धं स्पृष्ट्वा त्रिरात्रमाशौचमस्निग्धे त्वहोरात्रम् ॥२१

शवानुगमने चैवम् ॥२२

अधीयानानामन्तरागमने त्वहोरात्रमभोजनम् , त्रिरात्रम-भोजनम् , त्रिरात्रमभिषेको विवासश्चान्योन्येन ॥२३

श्वमार्जारनकुलशीघ्रगाणामहोरात्रम् ॥२४

श्वकुक्कुटग्राम्यसूकरकङ्कगृध्रभासपारावतमानुषकाकोलूक-मांसादने सप्तरात्रमुपासो निष्पुरीषभावो घृतप्राशः पुनः संस्कारश्च ॥२५

ब्राह्मणस्तु शुना दष्टो नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य ततः शुचिः, इति ॥२६

कालोऽग्निर्मनसः शुद्धिरुदकार्कावलोकनम् ।
अविज्ञानं च भूतानां षड्विधा शुद्धिरिष्यते, इति ॥२७

श्वाचाण्डालपतितोपस्पर्शने सचैलं स्नातः सद्यः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥२८

पतितचाण्डालशववहने त्रिरात्रं वाग्यता अनश्नन्त आसीरन्, सहस्रं परमं वा तदभ्यसन्तः, पूता भवन्तीति विज्ञायते ॥२९

एतेनैव गर्हिताध्यापकयाजका व्याख्याताः दक्षिणात्यागाच्च पूता भवन्तीति विज्ञायते ॥३०

एतेनैवाभिशस्तो व्याख्यातः ॥३१

अथापरं भ्रूणहत्यायां द्वादशरात्रमब्भक्षो द्वादशरात्रमुपवसेत् ॥

ब्राह्मणमनृतेनाभिशं(श)स्य पतनीयेनोपपतनीयेन वा मासमब्भक्षः शुद्धवतीरावर्तयेत् ॥३३

अश्वमेधावभृथे वा गच्छेत् ॥३४

एतेनैव चाण्डालीव्यवायो व्याख्यातः ॥३५

अथापरः कृच्छ्रविधिः साधारणो व्यूढः ॥३६

अहः प्रातरहर्नक्तमहरेकमयाचितम् ।
अहः पराकं तत्रैकमेवं चतुरहौ परौ ॥३७

अनुग्रहार्थं विप्राणां मनुर्धर्मभृतां वरः ।
बालवृद्धातुरेष्वेवं शिशुकृच्छ्रमुवाच ह ॥३८

अथ चान्द्रायणविधिः ॥३९

मासस्य कृष्णपक्षादौ ग्रासानद्याच्चतुर्दश ।
ग्रासापचयभोजी स्यात्पक्षशेषं समापयेत् ॥४०

एवं हि शुक्लपक्षादौ ग्रासमेकं तु भक्षयेत् ।
ग्रासोपचयभोजी स्यात्पक्षशेषं समापयेत् ॥४१

अत्रैव गायेत्सामानि अपि वा व्याहृतीर्जपेत् ।
एष चान्द्रायणो मासः पवित्रमृषिसंस्तुतः ॥४२

अनादिष्टेषु सर्वेषु प्रायश्चित्तं विधीयते विधीयत इति ॥४३

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ।

॥ अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

अथ कृच्छ्रातिकृच्छ्रविधिवर्णनम् ।

अथातिकृच्छ्रः—॥१

त्र्यहं प्रातस्तथा सायमयाचितं पराक इति कृच्छ्रः ॥२

यावत्सकृदाददीत तावदश्नीयात्पूर्ववत्सोऽतिकृच्छ्रः ॥३

अब्भक्षः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ॥४

कृच्छ्राणां व्रतरूपाणि—॥५

श्मश्रुकेशान्वापयेद्भ्रुवोऽक्षिलोमशिखावर्जं नखान्निकृत्यैक-वासा अनिन्दितभोजी सकृद्भैक्षमनिन्दितं त्रिषवणमुदको-पस्पर्शी दण्डी कमण्डलुः स्त्रीशूद्रसंभाषणवर्जी स्थानासनशीलो-ऽहस्तिष्ठेद्रात्रावासीतेत्याह भगवान्वसिष्ठः ॥६

स तद्यदेतद्धर्मशास्त्रं नापुत्राय नाशिष्याय नासंवत्सरोषिताय दद्यात् ॥७

सहस्रं दक्षिणा ऋषभैकादश गुरुप्रसादो वा गुरुप्रसादो वेति ॥८

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

॥ अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

रहस्यप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अविख्यापितदोषाणां पापानां महतां तथा ।
सर्वेषां चोपपापानां शुद्धिं वक्ष्याम्यशेषतः ॥१

अहिताग्नेर्विनीतस्य वृद्धस्य विदुषोऽपि वा ।
रहस्योक्तं प्रायश्चित्तं पूर्वोक्त मितरे जनाः ॥२

प्राणायामैः पवित्रैश्च दानैर्होमैर्जपैस्तथा ।
नित्ययुक्ताः प्रमुच्यन्ते पातकेभ्यो न संशयः ॥३

प्राणायामान्पवित्राणि व्याहृतीः प्रणवं तथा ।
पवित्रपाणिरासीनो ब्रह्म नैत्यकमभ्यसेत् ॥४

आवर्तयेत्सदा युक्तः प्राणायामान्पुनः पुनः ।
आलोमाग्रान्नखाग्राच्च तपस्तप्यतु उत्तमम् ॥५

निरोधाज्जायते वायुर्वायोरग्निर्हि जायते ।
तापेनाऽऽपोऽथ जायन्ते ततोऽन्तः शुध्यते त्रिभिः ॥६

न तां तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्यया ।
गतिं गन्तुं द्विजाः शक्ता योगात्संप्राप्नुवन्ति याम् ॥७

योगात्संप्राप्यते ज्ञानं योगो धर्मस्य लक्षणम् ।
योगः परं तपो नित्यं तस्माद्युक्तः सदा भवेत् ॥८

प्रणवे नित्ययुक्तः स्याद्व्याहृतीषु च सप्तसु ।
त्रिपदायां च गायत्र्यां न भयं विद्यते क्वचित् ॥९

प्रणवाद्यास्तथा वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः ।
वाङ्मयं प्रणवः सर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत् ॥१०

एकाक्षरं परं ब्रह्म पावनं परमं स्मृतम् ।
सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते ॥११

अभ्यासोदशसाहस्रः सावित्र्याः शोधनं महत् ॥१२

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते स उच्यत इति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पञ्चविंशोऽध्यायः ।

—:—

॥ अथ षड्विंशोऽध्यायः ॥

अथ साधारणपापक्षयोपायाभिधानवर्णनम् ।

प्राणायामान्धारयेत्त्रीन्यो यथाविध्यतन्द्रितः ।
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥१

कर्मणा मनसा वाचा यदह्ना कृतमैनसम् ।
आसीनः पश्चिमां संध्यां प्राणायामैर्व्यपोहति ॥२

कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्र्या कृतमैनसम् ।
उत्तिष्ठन्पूर्वसंध्यां तु प्राणायामैर्व्यपोहति ॥३

प्राणायामैर्य आत्मानं संयम्याऽऽस्ते पुनः पुनः ।
संदध्याच्चाधिकैर्वाऽपि द्विगुणैर्वा परं तु यः ॥४

सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥५

जप्त्वा कौत्समपेत्येतद्वासिष्ठं चेत्यृचं प्रति ।
सावित्रं शुद्धवत्यश्च शुरापोऽपि विशुध्यति ॥६

सकृज्जप्त्वाऽस्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च ।
सुवर्णमपहृत्यापि क्षणाद्भवति निर्मलः ॥७

हविष्यन्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च
सूक्तं च पौरुषं जप्त्वा मुच्यते गुरुतल्पगः ॥८
अपिवाऽप्सु निमज्जानस्त्रिर्जपेदघमर्षणम् ।
यथाश्वमेधावभृथस्तादृशं मनुरब्रवीत् ॥९
आरम्भयज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥१०
ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥११
जप्येनैव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संसयः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥१२
जापिनां होमिनां चैव ध्यायिनां तीर्थवासिनाम् ।
न परिवसन्ति पापानि ये च स्नाताः शिरोव्रतैः ॥१३
यथाऽग्निर्वायुना धूतो हविषा चैव दीप्यते ।
एवं जप्यपरो नित्यं ब्राह्मणः संप्रहीष्यते ॥१४
स्वाध्यायाध्यायिनां नित्यं नित्यं च प्रयतात्मनाम् ।
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥१५
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।
शुद्धिकामः प्रयुञ्जीत सर्वपापेष्वपि स्थितः ॥१६
क्षत्त्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः ।
धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपैर्होमैर्द्विजोत्तमः ॥१७
यथाऽश्वा रथहीनाः स्यू रथो वाऽश्वैर्विना यथा ।
एवं तपस्त्वविद्यस्य विद्या वाऽप्यतपस्विनः ॥१८

यथाऽन्नं मधुसंयुक्तं मधु वाऽन्नेन संयुतम् ।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं महत् ॥१६

विद्यातपोभ्यां संयुक्तं ब्राह्मणं जपनैत्यकम् ।
सदाऽपि पापकर्माणमेनो न प्रतियुज्यत, एनो न प्रतियुज्यत । इति ॥२०

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षड्विंशोऽध्यायः ॥

॥ सप्तविंशोऽध्यायः ॥

अथ वेदाध्ययन प्रशंसावर्णनम् ।

यद्यकार्यशतं साग्रं कृतं वेदश्च धार्यते ।
सर्वं तत्तस्य वेदाग्निर्दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥१

यथा बातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ।
तथा दहति वेदाग्निः कर्मजं दोषमात्मनः ॥२

हत्वाऽपि स इमांल्लोकान्भुञ्जानोऽपि यतस्ततः ।
ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किंचन ॥३

न वेदबलमाश्रित्य पापकर्मरतिर्भवेत् ।
अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दह्यते कर्म नेतरत् ॥४

तपस्तप्यति योऽरण्ये मुनिर्मूलफलाशनः ।
ऋचमेकां च योऽधीते तच्च तानि च तत्समम् ॥५

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥६

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाक्रमः ।
नाशयत्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥७

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्त्या प्राप्नोति परमां गतिम् ॥८

याजनाध्यापनाद्यौनात्तथैवासत्प्रतिग्रहात् ।
विप्रेषु न भवेद्दोषो ज्वलनार्कसमो हि सः ॥६

शङ्कास्थाने समुत्पन्ने अभोज्याभोज्यसंज्ञके ।
आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥१०

अक्षारलवणां रूक्षां पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ।
त्रिरात्रं शङ्खपुष्पं(ष्पीं) च ब्राह्मणः पयसा सह ॥११

पालाशबिल्वपत्राणि कुशान्पद्मानुदुम्बरान् ।
काथयित्वा पिबेदापस्त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥१२

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् ॥१३

गोमूत्रं गोमयं चैव क्षीरं दधि घृतं तथा ।
पञ्चरात्रं तदाहारः पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१४

यवान्विधिनोपयुञ्जानः प्रत्यक्षेणैव शुध्यति ।
विशुद्धभावे शुद्धाः स्युरशुद्धे तु सरागिणः ॥१५

हविष्यान्प्रातराशांस्त्रीन्सायमाशांस्तथैव च ।
अयाचितं तथैव स्यादुपवासत्रयं भवेत् ॥१६

अथ चेत्त्वरते कर्तुं दिवसं मारुताशनः।
रात्रौ जलाशये व्युष्टः प्राजापत्येन तत्समम् ॥१७

सावित्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वोत्थिते रवौ।
मुच्यते पातकैः सर्वैर्यदि नो ब्रह्महा भवेत् ॥१८

यो वै स्तेनः सुरापो वा भ्रूणहा गुरुतल्पगः।
धर्मशास्त्रमधीत्यैव मुच्यते सर्वपातकैः ॥१६

दुरितानां दुरिष्टानां पापानां महतां तथा।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥२०

एकैकं वर्धयेत्पिण्डं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्।
अमावास्यां न भुञ्जीत एवं चान्द्रायणो विधिरेवं चान्द्रायणो विधिरिति ॥२१

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथाष्टविंशोऽध्यायः ॥

स्वयं विप्रतिपन्नादीनां दूषितस्त्रीणां त्यागाभावकथम्।

न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा।
नापोऽऽपो मूत्रपुरीषेण नाग्निर्दहनकर्मणा ॥१

स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रवासिता।
बलात्कारोपभुक्ता वा चोरहस्तगताऽपि वा ॥२

न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते ।
पुष्पकालमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति ॥३
स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित् ।
मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥४
पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः ।
गच्छन्ति मानुषान्पश्चान्नैता दुष्यन्ति धर्मतः ॥५
तासां सोमोऽदद(दा) च्छौचं गन्धर्वः शिक्षितां गिरम् ।
अग्निश्च सर्वभक्षत्वं तस्मान्निष्कल्मषाः स्त्रियः ॥६
त्रीणि स्त्रियः(याः) पातकानि लोके धर्मविदो विदुः ।
भर्तुर्वधो भ्रूणहत्या स्वस्य गर्भस्य पातनम् ॥७
वत्सः प्रस्रवणे मेध्यः शकुनिः फलपातने ।
स्त्रियश्च रतिसंसर्गे श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥८
अजाश्वा मुखतो मेध्या गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः ।
ब्राह्मणाः पादतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः ॥९
सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम् ।
येषां जपैश्च होमैश्च पूयन्ते नात्र संशयः ॥१०
अघमर्षणं देवकृतं शुद्धवत्यस्तरत्समाः ।
कूष्माण्डानि पावमान्यो दुर्गा सावित्रिरेव च (?) ॥११
अभीषङ्गाः पदस्तोमाः सामानि व्याहृतिस्तथा (?) ।
भारुण्डानि च सामानि गायत्रं रैवतं तथा ॥१२
पुरुषव्रतं न्यासं च तथा देवव्रतानि च ।
अब्लिङ्गं वार्हस्पत्यं च वाक्सूक्तं मध्वृचस्तथा ॥१३

शतरुद्रियमथर्वशिरस्त्रिसुपर्णं महाव्रतम् ।
गोसूक्तं चाश्वसूक्तं च शुद्धः शुद्धेति सामनी ॥१४
त्रीण्याज्यदोहानि रथंतरं च अग्नेर्व्रतं वामदेव्यं बृहच्च ।
एतानि जप्तानि पुनन्ति जन्तूञ्जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत् ॥१५
अग्नेरपत्यं पथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।
तासामनन्तं फलमश्नुवीत यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात् ॥१६
उपरुन्धन्ति दातारं गौरश्वः कनकं क्षितिः ।
अश्रोत्रियस्य विप्रस्य हस्तं दृष्ट्वा निराकृतेः ॥१७
वैशाख्यां पौर्णमास्यां च ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा ।
तिलान्क्षौद्रेण संयुक्तान्कृष्णान्वा यदि वेतरान् ॥१८
प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्तते ।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥१६
सुवर्णनाभं कृत्वा तु सखुरं कृष्णमार्गणम् ।
तिलैः प्रच्छाद्य यो दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२१
ससुवर्णगुहा तेन सशैलवनकानना ।
चतुर्वक्त्रा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥२१
कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी ।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतमिति
सर्वं तरति दुष्कृतमिति ॥२२

इति वासिष्ठे, धर्मशास्त्रेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥

....

॥ अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ दानादीनां फलनिरूपणम् ।

दानेन सर्वकामानवाप्नोति ॥१

चिरजीवित्वं ब्रह्मचारी रूपवान् ॥२

अहिंस्युपपद्यते स्वर्गम् ॥३

अग्निप्रवेशाद्ब्रह्मलोकः ॥४ मौनात्सौभाग्यम् ॥५

नागाधिपतिरुदकवासात् ॥६ नीरुजः क्षीणकोशः ॥७

तोयदः सर्वकामसमृद्धः ॥८ अन्नप्रदाता सुचक्षुः ॥९

स्मृतिमान्मेधावी सर्वतोऽभयदाता ॥१०

गोप्रयुक्ते सर्वतीर्थोपस्पर्शनम् ॥११

शय्यासनदानादन्तःपुराधिपत्यम् ॥१२

छत्रदानाद्गृहलाभः ॥१३ गृहप्रदो नगरमाप्नोति ॥१४

उपानत्प्रदाता यानमासादयति ॥१५

अथाप्युदाहरन्ति—॥१६

यत्किंचित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षि(र्शि)तः ।
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥१७

विप्रायाऽऽचमनार्थं तु दद्यात्पूर्णं कमण्डलुम् ।
प्रेत्य तृप्तिं परां प्राप्य सोमपो जायते पुनः ॥१८

अनडुहां सहस्राणां दानानां धुर्यवाहिनाम् ।
सुपात्रे विधिदत्तानां कन्यादानेन तत्समम् ॥१९

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।
आदिदानं हिरण्यानां विद्यादानं ततोऽधिकम् ॥२०
आत्यन्तिकफलप्रदं मोक्षसंसारमोचनम् ।
योगिनां संमतं विद्वानाचारमनुवर्तते ॥२१
श्रद्दधानः शुचिर्दान्तो धारयेच्छृणुयादपि ।
विहाय सर्वपापानि नाकपृष्ठे महीयत, इति
नाकपृष्ठे महीयत, इति ॥२२

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ प्राणाग्निहोत्रविधिवर्णनम् ।

धर्मं चरत माऽधर्मं सत्यं वदत नानृतम् ।
दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं परं पश्यत माऽपरम् ॥१
ब्राह्मणो भवत्यग्निरग्निर्वै ब्राह्मण इति श्रुतेः ॥२
तत्त्वकथम् ॥३ तत्र सदो ब्राह्मणस्य शरीरं वेदिः संकल्पो यज्ञः पशुरात्मा रशना बुद्धिः सदो मुखमाहवनीयं नाभ्यामुदरोऽग्निर्गार्हपत्यः प्राणोऽध्वर्युरपानो होता व्यानो ब्रह्मा समान उद्गाताऽऽत्मेन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि य एवं विद्वानिन्द्रियैरिद्रियार्थं जुहोतीति ॥४ अपि च काठके विज्ञायते ॥५

अथाप्युदाहरन्ति—॥६

पाति त्राति च दातारमात्मानं चैव किल्विषात् ।
वेदेन्धनसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ॥७

न स्कन्दते न व्यथते नैनमध्यापयेच्च यत् ।
वरिष्ठमग्निहोत्रात्तु ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥८

ध्यानाग्निः सत्योपचयनं क्षान्त्या पुष्टिश्रवं त्रिः पुरोडाशमहिंसा च संतोषो यूपः कृच्छ्रं भूतेभ्योऽभयदाक्षिण्यं स्मृतिं कृत्वा क्रतुं मानसं याति क्षयं बुधः ॥६

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
जीवनाशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति ॥१०

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
याऽसौ प्राणान्तिको व्याधिस्तां तृष्णां त्यजतः सुखमिति ।।११

नमोऽस्तु मित्रावरुणयोरुर्वश्यात्मजाय शतयातवे वसिष्ठाय वसिष्ठायेति ॥१२

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रिंशोऽध्यायः ॥

समाप्ताचेयं वशिष्ठस्मृतिः ।

ॐ तत्सत् ।

—◆◆◆—

॥ अथ ॥

॥ औशनस संहिता ॥
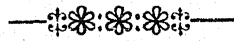
श्रीगणेशाय नमः ।

अथानुलोमप्रतिलोमजात्यन्तराणांनिरूपणवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि जातिवृत्तिविधानकम् ।
अनुलोमविधानञ्च प्रतिलोमबिधिं तथा ॥१

सान्तरालकसंयुक्तं सर्वं संक्षिप्य चोच्यते ।
नृपाद् ब्राह्मणकन्यायां विवाहेषु समन्वयात् ॥२

जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रतिलोमविधिर्द्विजः ।
वेदानर्हस्तथा चैषां धर्माणामनुबोधकः ॥३

सूताद्विप्र प्रसूतायां सूतो वेणुक उच्यते ।
नृपायामेव तस्यैव जातो यश्चर्मकारकः ॥४

ब्राह्मण्यां क्षत्रियाच्चौर्याद्रथकारः प्रजायते ।
वृत्तञ्च शूद्रवृत्तस्य द्विजत्वं प्रतिषिध्यते ॥५

यानानां ये च वोढ़ारस्तेषाञ्च परिचारकाः।
शूद्रवृत्त्या तु जीवन्ति न क्षात्रं धर्ममाचरेत् ॥६
ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातोमागध उच्यते।
वन्दित्वं ब्राह्मणानाञ्च क्षत्रियाणां विशेषतः ॥७
प्रशंसावृत्तिको जीवेद्वैश्यप्रेष्यकरस्तथा।
ब्राह्मण्यां शूद्रसंसर्गाज्जातश्चाण्डाल उच्यते ॥८
सीसमाभरणं तस्य कार्ष्णायसमथापि वा।
वर्ध्रीं कण्ठे समाबध्य झल्लरीं कक्षतोऽपि वा ॥६
मल्लापकर्षणं ग्रामे पूर्वाह्णे परिशुद्धिकम्।
नापराह्णे प्रविष्टोऽपि वहिर्ग्रामाच्च नैर्ऋते ॥१०
पिण्डीभूता भवन्त्यत्र नोचेद् बध्या विशेषतः।
चाण्डालाद्वैश्यकन्यायां जातः श्वप च उच्यते ॥११
श्वमांसभक्षणं तेषां श्वान एव च तद्बलम्।
नृपायां वैश्यसंसर्गादायोगव इति स्मृतः ॥१२
तन्तुवाया भवन्त्येव वसुकांस्योपजीविनः।
शीलिकाः केचिदत्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मिते ॥१३
आयोगवेन विप्रायां जातास्ताम्रोपजीविनः।
तस्यैव नृपकन्यायां जातः सूनिक उच्यते ॥१४
सूनिकस्य नृपायान्तु जाता उद्बन्धकाः स्मृताः।
निर्णेजयेयुर्वस्त्राणि अस्पृश्याश्च भवन्त्यतः ॥१५
नृपायां वैश्यतश्चौर्यात् पुलिन्दः परिकीर्तितः।
पशुवृत्तिर्भवेत्तस्य हन्युस्तान् दुष्टसत्वकान् ॥१६

नृपायां शूद्रसंसर्गाज्जातः पुक्कश उच्यते ।
सुरावृत्तिं समारुह्य मधुविक्रयकर्मणा ॥१७
कृतकानां सुराणाञ्च विक्रेता याचको भवेत् ।
पुक्कशाद्वैश्यकन्यायां जातो रजक उच्यते ॥१८
नृपायां शूद्रतश्चौर्याज्जातो रञ्जक उच्यते ।
वैश्यायां रञ्जकाज्जातो नर्त्तको गायको भवेत् ॥१९
वैश्यायां शूद्रसंसर्गाज्जातो वैदेहिकः स्मृतः ।
अजानां पालनं कुर्यान्महिषीणां गवामपि ॥२०
दधिक्षीराज्यतक्राणां विक्रयाज्जीवनं भवेत् ।
वैदेहिकात्तु विप्रायां जाताश्चर्मोपजीविनः ॥२१
नृपायामेव तस्यैव सूचिकः पाचकः स्मृतः ।
वैश्यायां शूद्रतश्चौर्याजातश्चक्री च उच्यते ॥२२
तैलपिष्टकजीवी तु लवणं भावयन् पुनः ।
विधिना ब्राह्मणः प्राप्य नृपायान्तु समन्त्रकम् ॥२३
जातः सुवर्ण इत्युक्तः सानुलोमद्विजः स्मृतः ।
अथ वर्णक्रियां कुर्वन्नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम् ॥२४
अश्वं रथं हस्तिनं वा वाहयेद्वा नृपाज्ञया ।
सैनापत्यञ्च भैषज्यं कुर्याज्जीवेत्तु वृत्तिषु ॥२५
नृपायां विप्रतश्चौर्यात् संजातो यो भिषक् स्मृतः ।
अभिषिक्तनृपस्याज्ञां परिपाल्येत्तु वैद्यकम् ॥२६
आयुर्वेदमथाष्टाङ्गं तन्त्रोक्तं धर्ममाचरेत् ।
ज्यौतिषं गणितं वाऽपि कायिकीं वृत्तिमाचरेत् ॥२७

नृपायां विधिना विप्राज्जातो नृप इति स्मृतः ।
नृपायां नृपसंसर्गात् प्रमादाद् गूढजातकः ॥२८
सोऽपि क्षत्त्रिय एव स्यादभिषेके च वर्जितः ।
अभिषेकं विना प्राप्य गोज इत्यभिधायकः ॥२९
सर्वन्तु राजवृत्तस्य शस्यते प(ट्ट)दवन्दनम् ।
पुनर्भूकरणे राज्ञां नृपकानीन एव च ॥३०
वैश्यायां विधिना विप्राज्जातो ह्यम्वष्ठ उच्यते ।
कृष्याजीवो भवेत्तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः ॥३१
ध्वजिनी जीविका वाऽपि अम्बष्ठाः शस्त्रजीविनः ।
वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात् कुम्भकारः स उच्यते ॥३२
कुलालवृत्त्या जीवेत नापिता वा भवन्त्यतः ।
सूतके प्रेतके वाऽपि दीक्षाकालेऽथ वापनम् ॥३३
नाभेरूर्द्ध्वं तु वपनं तस्मान्नापित उच्यते ।
कायस्थ इति जीवेत्तु विचरेच्च इतस्ततः ॥३४
काकाल्लौल्यं यमात् क्रौर्यं स्थपतेरथ कृन्तनम् ।
आद्याक्षराणि संगृह्य कायस्थ इति कीर्तितः ॥३५
शूद्रायां विधिना विप्राज्जातः पारशवोमतः ।
भद्रकादीन् समाश्रित्य जीवेयुः पूजकाः स्मृताः ॥३६
शिवाद्यागमविद्याद्यैस्तथामण्ड(र्द)लवृत्तिभिः ।
तस्यां वै चौरसो वृत्तो निषादो जात उच्यते ॥३७
वने दुष्टमृगान् हत्वा जीवनं मांसविक्रयम् ।
नृपाज्जातोऽथ वैश्यायां गृह्यायां विधिना सुतः ॥३८

वैश्यवृत्या तु जीवेत क्षात्त्रधर्मं न चाचरेत्।
तस्यां तस्यैव चौरेण मणिकारः प्रजायते ॥३६
मणीनां राजतां कुर्यान्मुक्तानां वेधनक्रियाम्।
प्रवालानाञ्च सूत्रित्वं शाखानां बलयक्रियाम् ॥४०
शूद्रस्य विप्रसंसर्गाज्जात उग्र इति स्मृतः।
नृपस्य दण्डधारः स्याद्दण्डं दण्ड्येषु सञ्चरेत् ॥४१
तस्यैव चौरसंवृत्या जातः शुण्डिक उच्यते।
जातदुष्टान् समारोप्य शुण्डाकर्मणि योजयेत् ॥४२
शूद्रायां वैश्यसंसर्गाद्विधिना सूचकः स्मृतः।
सूचकाद्विप्रकन्यायां जातस्तक्षक उच्यते ॥४३
शिल्पकर्माणि चान्यानि प्रासादलक्षणं तथा।
नृपायामेव तस्यैव जातो यो मत्स्यबाधकः ॥४४
शूद्रायां वैश्यतश्चौर्यात् कटकार इति स्मृतः।
वशिष्ठशापात्त्रेतायां केचित् पारशवास्तथा ॥४५
वैखानसेन केचित्तु केचिद्भागवतेन च।
वेदशाखावलम्वास्ते भविष्यन्ति कलौ युगे ॥४६
कटकारास्ततः पश्चान्नारायणगणाः स्मृताः।
शाखा वैखानसेनोक्ता तन्त्रमार्गविधिक्रियाः ॥४७
निषेकाद्याः श्मशानान्ताः क्रियाः पूजाङ्गसूचिकाः।
पञ्चरात्रेण वा प्राप्तं प्रोक्तं धर्मं समाचरेत् ॥४८
शूद्रादेव तु शूद्रायां जातः शूद्र इति स्मृतः।
द्विजशुश्रूषणपरः पाकयज्ञपरान्वितः ॥४६

सच्छूद्रं तं विजानीयादसच्छूद्रस्ततोऽन्यथा।
चौर्यात् काकवचो ज्ञेयश्चाश्वानां तृणवाहकः ॥५०
एतत् संक्षेपतः प्रोक्तं जातिवृत्तिविभागशः।
जात्यन्तराणि दृश्यन्ते संकल्पादित एव तु ॥५१

इत्यौशनसं धर्मशास्त्रं समाप्तम्।

शुक्र (औशनस) संहिता समाप्ता।

॥ अथ ॥

॥ औशनसस्मृतिः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ ब्रह्मचारिणां क्रमागतकर्तव्य वर्णनम्।

शौनकाद्याश्च मुनय औशनं भार्गवं मुनिम्।
नत्वा पप्रच्छुरखिलं धर्मशास्त्रविनिर्णयम् ॥१

ऋषीणां शृण्वतां पूर्वमुशना धर्मतत्त्ववित् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं पापनाशनम् ॥२
सुसमाधिहृदो यूयं शृणुध्वङ्गदतो मम ।
भार्गवं पितरं नत्वा उशनं धर्ममब्रवीत् ॥३
कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमः ।
गर्भाष्टमे व्यष्टमे वा स्वसूत्रोक्त विधानतः ॥४
दण्डे च मेखलासूत्रे कृष्णाजिनधरो मुनिः ।
भिक्षाहारो गुरुहिते वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥५
कार्पासमुपवीतात् सन्निर्मितं ब्रह्मणा पुरा ।
ब्राह्मणानान्त्र्यवित् सूत्रं कौशिवादाव्रमेव वा ॥६
सदोपवीती चैव स्यात् सदा बद्धशिखो द्विजः ।
अन्वथा यत्कृतं कर्म तद्भवत्या यथाक्रमम् ॥७
वसेदविकृतं वासः कार्पासं वा कशायकम् ।
तदेव परिधानीयं शुक्लमत्स्यद्रुमुत्तमम् ॥८
उत्तरीयं समाख्यातं वासः कृष्णाजिनं शुभम् ।
अभावे भव्यमजिनं रौरवं वा विधीयते ॥६
उपवीतं वामबाहुं सव्यं वाहु समन्वितम् ।
उपवीतं भवेन्नित्यन्निवीतं कर्णलम्बनम् ॥१०
सव्यबाहुं समुद्धृत्य दक्षिणेन धृता द्विजाः ।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि धारयेत् ॥११
अग्न्यगारे गवाङ्गोष्ठे होमे जप्ये तथैव च ।
स्वाध्यायभोजने नित्यं ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ ॥१२

उपासने गुरूणाञ्च सन्ध्ययोरुभयोरपि ।
उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेषः सनातनः ॥१३

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
मुञ्ज्यभावे कुशानाहु र्ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः ॥१४

धारयेद्वैल्वपालाशौ दण्डौ केशान्तगो द्विजः ।
यज्ञाख्यवृक्षजं वाथ सौम्यं वृषणमेव च ॥१५

सायं प्रातर्द्विजः सन्ध्यामुपासीत समाहितः ।
कामाल्लोभाद्भयान्मोहात् कदा न पतितो भवेत् ॥१६

अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सायं प्रातः प्रसन्नधीः ।
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ॥१७

देवाभ्यर्चान्ततः कुर्यात् पुष्पैः पत्रेण चाम्बुभिः ।
अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धे ष्टधर्मतः ॥१८

असावहम्भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम् ।
आयुरारोग्यवान् वित्तं द्रव्याद्यपरिवर्जितः ॥१९

आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्राभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरस्ततः ॥२०

यो न चेत्यभिवादस्य द्विजः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥२१

सव्येन पाणिना कार्यं उपसंग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणम् ॥२२

लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथाध्यात्मिकमेव वा ।
आददीत यतो ज्ञानं तत्पूर्वमभिवादयेत् ॥२३

नोदकं धारयेद्भैक्षं पुष्पाणि समिधस्तथा।
एवं विधानि चान्यानि न देवार्थेषु किञ्चन ॥२४
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रियश्चाप्यनामयम् ॥२५
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रकारोग्यमेव च।
उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः ॥२६
मातुलश्वशुरभ्रातृमातामहपितामहौ।
वर्णकाश्च पितृव्यश्च पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥२७
माता मातामही गुर्वी पितृमातृस्वसादयः।
श्वश्रु पितामही ज्येष्ठा ज्ञातव्या गुरवः स्त्रियः ॥२८
इत्युक्त्वा गुरवः सर्वे मातृतः पितृतस्तथा।
अनुवर्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः ॥२९
गुरुं दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलिः।
न तै रुपवसेत्सार्द्धं विवादेनार्थकारणात् ॥३०
जीवितार्थमपि द्वेषं गुरुभिर्नैव भाषणम्।
उदितोऽपि गणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यधः ॥३१
गुणानामपि सर्वेषां पूजाः पञ्च विशेषतः।
तेषामाद्यस्त्रियः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता ॥३२
यो हि वासयति दिवा येन सद्योपदिश्यते।
ज्येष्ठो भ्राता च भर्त्ता च पञ्च ते गुरवस्तथा ॥३३
आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः।
पूजनीयाः प्रयत्नेन पञ्चैते भूतिमिच्छता ॥३४

यावत् पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारणम् ।
तावत् सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात्तत्परायणः ।
पिता माता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि ॥३५
स पुत्रः सकलं कर्म्म प्राप्नुयात्तेन कर्म्मणा ।
नास्ति मातृसमं दैवं नास्ति पितृसमो गुरुः ॥३६
तयोः प्रत्युपकारोऽपि न हि कश्चन विद्यते ।
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्य्यात्कर्म्मणा मनसा गिरा ।
न ताभ्या मननुज्ञातो धर्म्ममेकं समाचरेत् ॥३७
वर्जयित्वा मुक्तिफलं नित्यनैमित्तिकं तथा ।
धर्म्मसारः समुद्दिष्टः प्रेत्यानन्दफलप्रदः ॥३८
सम्यगाचारवक्तारं विसृष्टस्तदनुज्ञया ।
शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य चापद्यते दिवि ॥३९
यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूढोऽवमन्यते ।
तेन दोषेण संप्रेत्य निरयं सम्प्रयच्छति ॥४०
पुंसाश्चात्मनि वेषेण पूज्यो भर्त्ता च सम्मतः ।
यानि दातरि लोकेऽस्मिन्नुपकारोऽपि गौरवम् ॥४१
ये नरा भर्तृ पिण्डार्थं स्वान् प्राणान् सन्त्यजन्ति हि ।
तेषामेव परान् लोकानुवा च भगवान् भृगुः ॥४२
मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरान् ऋत्विजान् गुरून् ।
असावयमिति ब्रूयात्प्रत्युक्ताय यवीयसः ॥४३
आचार्य्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ।
भोःशब्दपूर्वकं चैनमभिभाषेत धर्म्मवित् ॥४४

अभिवाद्याश्च पूर्वन्तु शिरसावघशर्म च ।
ब्राह्मणक्षत्त्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा ॥४५
नाभिवाद्यास्तु विप्राणां क्षत्त्रियाद्याः कथञ्चन ।
ज्ञानकर्म्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः ॥४६
ब्राह्मणाः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्य्यादिति स्थितिः ।
सवर्णेऽप्यसवर्णानां कार्य्यमेवाभिवादनम् ॥४७
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥४८
विद्या कर्म्म वयो बन्धुर्वित्तं भवति यस्य वै ।
मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूणि च ॥४९
पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भवेत्तु गुणवान् हि यः ।
यत्र स्यात्सोऽत्र मानार्हः क्षुद्रोऽपि स भवेद् यदि ॥ ५०
पिण्डादेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः स्त्रियै राज्ञेऽस्य चक्षुषे ।
वृद्धाय भावहीनाय रोगिणे दुर्बलाय च ॥५१
भिक्षामाहृत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया ॥५२
भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ।
भवन्मध्यन्तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥५३
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं तथा ।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या तु नैनं विमानयेत् ।
सजातीयगृहेष्वेवं सर्ववर्णिकमेव वा ।
भैक्षस्याचरणं प्रोक्तं पतितादिषु वर्जितम् ॥५४

वेदयज्ञादिहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्म्मसु ।
ब्रह्मचारी चरेद्भैक्षं गृहस्थः प्रयतोऽन्वहम् ॥५५
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ।
अभावेऽप्यथ गेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥५६
सर्वं वापि चरेद् ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे ।
नियम्य प्रयतो वाचं दिशश्चानवलोकयन् ॥५७
समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदर्थमिहाज्ञया ।
भुञ्जीत प्रयतो नित्यं वाग्यतो नान्यमानसः ॥५८
भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं कामनाशीर्भवेद् व्रती ।
भैक्षेण वृत्तिनो वृत्तिरुपवाससमं स्मृता ॥५६
पूजयेदशनं नित्यमद्यादन्नमकुत्सयन् ।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वतः ॥६०
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं कुत्सभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥६१
प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत दक्षिणामुख एव वा ।
नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिपूर्व्वं सनातने ॥६२
प्रक्ष्याल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत् ।
शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वान्ते द्विरुपस्पृशेत् ॥६३
मण्डलं पूर्वतः कृत्वा तत्र स्थाप्याथ भोजयेत् ।
स्वप्राणाहुतिपर्यन्तं मौनमेव विधीयते ॥५४

इत्यौशनसस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ।

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ ब्रह्मचारिप्रकरणे शौचाचारवर्णनम् ।

भुक्त्वा पीत्वा च स्नात्वा च तथा रथ्योपसर्पणे ।
ओष्ठावलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ॥१
रेतोमूत्रपूरीषाणामुत्सर्गेणानृतभाषणे ।
तथा चाध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ॥२
चत्वरं वा श्मशानं वा समागम्य द्विजोत्तमः ।
सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्ते चाचमेत् पुनः ॥३
चण्डालम्लेच्छसम्भाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।
उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यं वापि तथाविधम् ॥४
अश्रुपाते तथाचामे अहितस्य तथैव च ।
भोजयेत् सन्ध्ययोः स्नात्वा पीत्वा मूत्रपुरीषयोः ॥५
आचान्तोऽप्याचमेत् स्पृष्ट्वा सकृत् सकृदथान्यतः ।
अग्नेर्गवामयालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयत एव वा ॥६
नृणामथाश्मनः स्पर्शे नीवीं विपरिधाय च ।
उपस्पृशेज्जलं शुद्धं तृणं वा भूमिमेव वा ॥७
कोशानां चात्मनः स्पर्शे वाससां क्षालितस्य च ।
अनुष्णाभिरफेनाभिरदुष्टाभिश्च सर्वशः ॥८
शौचे च सुखमासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
शिरः प्रावृत्य कर्णं वा मुक्तकच्छशिखोऽपिवा ॥९

अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ।
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी वाऽऽचमेद् बुधः ॥१०

न चैव वर्षधाराभिर्न तिष्ठन्न धृतोदकैः ।
नैकहस्तार्पितजलैर्विना शूद्रेण वा पुनः ॥११

न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुरथापि वा ।
न जल्पन्न हसन् प्रेक्षमाणश्च प्रह्व एव वा ।
नावीक्षमाणाद्भिर्नोष्णाद्भिन्नफेनादथापि वा ॥१२

शूद्राशुचिकरैर्मुक्तैनक्षाराभिस्थैव च ।
न चैवाङ्गुलिभिः शब्दमकुर्वन्नान्यमानसः ॥१३

न वर्णरसदुष्टाभिर्नचैव प्रदरोदकैः ।
न प्राणिजनिताभिर्वा न बहिः कल्सेव वा ॥१४

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कणाभिः क्षत्रियः शुचिः ।
प्राशिताभिस्तथा वैश्यः (स्त्री) शूद्रः संस्पर्शनैस्ततः ॥१५

अङ्गुष्ठमूलान्तरतो रेखायां ब्रह्म उच्यते ।
अन्तराङ्गुष्ठदेशिन्यो पितॄणां तीर्थमुत्तमम् ॥१६

कनिष्ठो मूलतः पश्चात्प्राजापत्यं प्रचक्षते ।
अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दैवं तथैवार्षं प्रकीर्तितम् ।
मूले स्याद्दैवमार्षं स्यादाग्नेयं मध्यतः स्मृतम् ॥१७

तदेव सौमिकं तीर्थमेतज्ज्ञात्वा न मुह्यति ।
ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ।
कायेन वा दैवतेन न तु पित्र्येण वा द्विजाः ! ॥१८

त्रिः प्राश्नीयादपः पूर्वं ब्राह्मणः प्रयतः स्मृतः।
संवृत्ताङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत् ॥१९

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटं ततः ॥२०

कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत्।
सर्वासामथ योगेन हृदयन्तु तलेन वा ॥२१

संस्पृशेद्वै शिरस्तद्वदङ्गुष्ठेनाथवा द्वयम्।
त्रिः प्राश्नीयादेवमेव प्रीतास्तेनास्य देवताः ॥२२

ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च सम्भवन्त्यनुशुश्रुमः।
गङ्गा च यमुना चैव प्रीयते परिमार्जनात् ॥२३

प्रसंस्पर्शाल्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्करौ।
नासत्यौ चैव प्रीयेते स्पृष्टं नासापुटद्वयम् ॥२४

कर्णयोः स्पृष्टयोस्तद्वत्प्रीयेते चानलानिलौ।
संस्पृष्टे हृदये चास्याः प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥२५

मूर्ध्नि संस्पर्शनादेव प्रीतस्तु पुरुषो भवेत्।
नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्यं विप्रयोगं नयन्ति याः ॥२६

अन्तवदन्तसलिलजिह्वास्पर्शो शुचिर्भवेत्।
स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परम् ॥२७

भूमिगैस्ते समाज्ञेयाः न तैरप्रयतो भवेत्।
मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे ॥२८

फलमूलेक्षुदण्डे च न दोषो भार्गवोऽब्रवीत्।
प्रचरंश्चान्नपानेषु यदुच्छिष्टो भवेद् द्विजः ॥२९

भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्य प्रोक्षयेत्तु यत् ।
तैजसं वै समादाय भवेदुच्छेषणात्ततः ॥३०
अनिधाय च तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ।
वस्त्रादीनां विकल्पत्वात् स्पृष्ट्वा च देवमेव हि ॥३१
आरभ्यानुद्के रात्रौ चोरो वाप्याकले पथि ।
कृत्वा मूत्रपुरीषं वा द्रव्यहस्तेन दुष्यति ॥३२
निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः ।
अथ कुर्यात् शकृन्मूत्रे रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥३३
अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पर्णैर्लोष्ट्रतृणेन वा ।
प्रतिचीनशिराः कुर्यात् कृच्छ्रमूत्रविसर्जने ॥३४
छायाकूपनदीगोष्ठे चैत्याम्भः पथि भस्मसु ।
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रेण समाचरेत् ॥३५
न गोमये न कुड्ये वा न गोष्ठे नैव शाद्वले ।
न तिष्ठन् वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके ॥३६
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ।
न च सर्वेषु गर्तेषु न च गच्छन् समाचरेत् ॥३७
तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च ।
न क्षेत्रे न बिले चापि न तीर्थे च चतुष्पथे ॥३८
नोद्यानोपसमीपे वा नोषरे न पराशुचौ ।
न चोपानत्कपादौ च छत्री वर्णान्तरीक्षके ॥३९
न चैवाभिमुखः स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयो र्गवाम् ।
न देवदेवालययो र्नापामपि कदाचन ॥४०

नदीज्योतींषि वीक्षित्वा तद्वाह्याभिमुखोऽपि वा।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनिलं प्रतिसोमं तथैव च ॥४१

आहृत्य मृत्तिकां कुर्यात् लेपगण्डापकर्षणम्।
कुर्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः ॥४२

नाहरेन्मृत्तिकां विप्रः पांशुलां नच कर्दमात्।
न मार्गान्नोषराद्देशाच्छौचाविष्टोऽपरस्य च ॥४३

न देवायतनात् कुड्याद् ग्रामान्न तु कदाचन।
उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः ॥४४

तारव्याहृतिगायत्र्या वर्णानामेरणैः क्रमात्।
तन्मंत्रितं पिबेद्यस्तु मन्त्राचमनमीरितम् ॥४५

गायत्र्या चमनेनाथ श्रुत्याचमनमीरितम्।

इत्यौशनसस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः।

—०—

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ ब्रह्मचारिप्रकरणेऽनेकप्रकरणवर्णनम्।

एवं देहादिभिर्युक्तः शौचाचारसमन्वितः।
आहूत्याऽध्ययनं कुर्याद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१

नित्यमुद्यतपाणिश्च सन्ध्याचारसमन्वितः।
आस्यतामिति चोक्तश्च नासीताभिमुखं गुरोः ॥२

प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत् ।
आसीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ।
न च शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥३
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ।
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ॥४
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितम् ॥५
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वाऽपि प्रवर्त्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं परितोऽन्यतः ॥६
दूरस्थो नार्चयेदेवान्न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियः ।
न चैवास्योत्तरं ब्रूयान्न तेनासीत सन्निधौ ॥७
उदकुम्भं कुशान् पुष्पं समिधोऽप्याहरेत्सदा ।
मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वै समाचरेत् ॥८
नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि ।
आक्रामेदासनं तस्य छायामपि कदाचन ॥९
ये दन्तकाष्ठादीन् लब्ध्वा न चास्यै विनिवेदयेत् ।
अनापृच्छ्य न गन्तव्यन्नत्वप्रियहिते रतः ॥१०
न पादौ स्थापयेदस्य सन्निधाने कदाचन ।
जृम्भितं हसितं चैव क्षपकं प्रावरणं तथा ॥११
वर्जयेत् सन्निधौ नित्यं नखस्फोटनमेव च ।
यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः ।
आसनादौ गुरोः कूर्चे फलके वा समाहितः ॥१२

आसने शयने पाने न च तिष्ठेत्कथञ्चन।
धावन्तमनुधावेत गच्छन्त मनुगच्छति ॥१३
गजोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च।
नासीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलतलेषु च ॥१४
जितेन्द्रियः स्यात् सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः।
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम् ॥१५
गण्डमाल्यां रसं कन्यां सूक्ष्मप्राणिविहिंसनम्।
अभ्यङ्गश्चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च ॥१६
कामं क्रोधं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्त्तनम्।
द्यूतं जनपरीवादं स्त्रीप्रेक्षालापनं तथा ॥१७
परोपतापपैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान् ॥१८
आहरेद्यावदन्यानि भैक्षश्चाहरहश्चरेत्।
तथैव लवणं सर्वं भक्ष्यं पर्युषितं नयेत् ॥१९
अनन्यदर्शी सततं भवेद्गीतादिनिःस्पृहः।
नादर्शञ्चैव वीक्षेत न चरेद्दन्तधावनम् ॥२०
एकान्तमशुचिः स्त्रीभिः शूद्राद्यैरभिभाषणम्।
गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं न प्रयुञ्जीत कामतः ॥२१
मलापकर्षणं स्नानन्नाचरेद् वै कदाचन।
नचातिसृष्टो गुरुणा स्वान् गुरूनभिवादयेत् ॥२२
विद्यागुरुष्वेतदेव नित्यवृत्तिः स्वयोनिषु।
प्रतिषेधत्सु वा धर्मं हितं चोपदिशन् स्वयम् ॥२३

श्रेयः सुगुरुवद्वृत्ति र्नित्यमेवं समाचरेत् ।
गुरुपत्नीषु पुत्रेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥२४

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मसु ।
अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥२५

उत्सादनं वै गात्राणां स्नानं चोच्छिष्टभोजने ।
न कुर्याद् गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च ॥२६

गुरुवत्प्रतिपूज्याश्च सवर्णा गुरुयोषितः ।
असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥२७

अभ्यञ्जनं स्नापनञ्च गात्रोत्सादनमेव च ।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानाञ्च प्रशोधनम् ॥२८

गुरुपत्नी च युवती नाभिवाद्येह पादयोः ।
कुर्वीत वदनं भूम्यामसावहमिति ब्रुवन् ॥२९

विप्रस्य पादग्रहणमन्वहञ्चाभिवादनम् ।
गुरुदारेषु कुर्वीत सदा धर्ममनुस्मरन् ॥३०

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूश्चापि पितृष्वसा ।
संपूज्या गुरुपत्नी च समास्ता गुरुभार्यया ॥३१

भ्रातृभार्योपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धयोषितः ।
पितुर्भगिन्या मातुश्च जायायाञ्च स्वसर्यपि ॥३२

मातृवद् वृत्तिमातिष्ठेन्माता तेभ्यो गरीयसी ।
एवमाचारसम्पन्नमात्मवन्तं सदा हितम् ॥३३

वेदं धर्मं पुराणञ्च तथा तत्त्वानि नित्यशः ।
सम्वत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञान मनिर्दिशेत् ॥३४

हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वत्सरे गुरुः।
आचार्यपुत्रशुश्रूषु र्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः॥३५
शक्तो गुर्वीह्यमेधावी नाध्याप्यो दशधर्मतः।
कृतज्ञश्च तथा द्रोही मेधावी शुभकृन्नरः॥३६
प्राप्य विप्रोऽप्यविधिवत् षडध्यात्मा द्विजोत्तमैः।
एतेषु ब्राह्मणो दानमन्यत्र न यथोदितम्॥३७
आचम्य संयतो नित्यमधीयीत उदङ् मुखः।
उपसंगृह्य तत्पादौ वीक्ष्यमाणो गुरोर्मुखम्॥३८
अधीष्व भो ! इति ब्रूयात् विरामोऽस्त्विवति वाचयेत्।
प्राक्कुशेषु समासीनः पवित्रैरवपावितः॥३९
प्राणायामै स्त्रिभिः पूर्वं तथा चोङ्कारमर्हति।
ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादन्ते च विधिवद्द्विजः॥४०
कुर्यादध्ययनं नित्यं ब्रह्माञ्जलिकृतस्थितिः।
सर्वेषामेव भूतानां वेदश्चक्षुः सनातनः॥४१
अधीते विधिवन्नित्यं ब्रह्मण्याच्च्यवतेऽन्यथा।
योऽधीयीत ऋचो नित्यं क्षीराहुत्या स देवताः॥४२
प्रीणाति तर्पयन्त्येनं कामैस्तृप्ताः सदैव हि।
यज्ञं योऽधीते सततं दध्ना प्रीणाति देवता॥४३
सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम्।
अथर्वाङ्गिरसो नित्यमध्यात् प्रीणाति देवता॥४४
धर्माङ्गानि पुराणानि मीमांसैस्तृप्यते सुरान्।
अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमाश्रितः॥४५

गायत्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ।
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशापराम् ॥४६
गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपश्च त्रिः प्रकीर्त्तितः ।
गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलया तुलयन् प्रभुः ॥४७
एकतश्चतुरो वेदान् गायत्रीं च तथैकतः ।
ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम् ॥४८
ततोऽधीयीत एकाग्रं श्रिया परमयान्वितः ।
अध्यापयेत्तु एकाग्रं गायत्री परया तु या ॥४६
पुराकल्पे समुत्पन्ना भूर्भुवः स्वर्गनामतः ।
महाव्याहृतयस्तिस्रः सर्वाशुभनिबर्हणाः ॥५०
प्रधानं पुरुषः कालो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
सत्त्वं रजस्तमस्तिस्रः कामा व्याहृतयस्त्रयः ॥५१
ओङ्कारस्तत्परं ब्रह्म गायत्री स्यात्तदक्षरम् ।
एवं मन्त्रो महायोगः साक्षात्सार उदाहृतः ॥५२
योऽधीतेऽहन्यमाने तां गायत्रीं वेदमातरम् ।
विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमाङ्गतिम् ॥५३
न गायत्र्याः परं जप्यमेतद्विज्ञानमुच्यते ।
श्रवणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः ! ॥५४
आषाढ्यां प्रौष्ठपद्यां वा वेदोपक्रमणं स्मृतम् ।
उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान्विप्रोऽर्थपञ्चमान् ॥५५
अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः ।
पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजाः ! ॥५६

माघे वा मासि संप्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि।
छन्दांस्यूर्ध्वमधीयीत शुक्लपक्षे तु वै द्विजाः! ॥५७
वेदाङ्गानि पुराणं वा कृष्णपक्षे तु मानवः।
इमन्नित्यमनध्यायानधीयानो विसर्जयेत् ॥५८
अध्यापनञ्च कुर्वाणो अध्येस्यन्नपि यत्नतः।
कर्माधुरे दिवारात्रौ दिवावासं समूहने ॥५९
विद्युत्स्तनितवर्षासु महोल्कानाञ्च पातने।
आकस्मिकमनध्यायमेतेष्वेव प्रजापतिः ॥६०
एता न स्युर्दिता नाद्यान्यदप्राग्दुष्कृतादिषु।
तदा विन्द्यादनर्थाय मन्यते जाग्रदर्शने ॥६१
निर्घाते वाऽथ चलने ज्योतिषां चोपसर्पणे।
एतानकालिकान् विन्द्यादनर्थायागतावपि ॥६२
प्राग्दुष्कृतेष्वग्निषु च विद्युत्स्तनितनिस्वने।
सद्यो हि स्यादनध्यायमनृतं मुनिरब्रवीत् ॥६३
निध्याय एवं स्याद् ग्रामेऽरण्येषु नगरेषु च।
कर्मनैपुण्यगामानां पूतिगन्धे च नित्यशः ॥६४
अन्त्यानां सङ्गते ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ।
अनध्यायो निन्द्यमाने समवाये जनस्य च ॥६५
उदये मध्यरात्रौ च विण्मूत्रे च विसर्जयेत्।
उच्छिष्टश्राद्धभुक् चैव मनसा न विचिन्तयेत् ॥६६
प्रतिगृह्य द्विजो विद्यादेकोद्दिष्टस्य केतनम्।
तदाह कीर्त्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥६७

धावकोऽनुलिप्तस्य स्नेहोगाधस्य तिष्ठति ।
विप्रस्याविदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्त्तयेत् ॥६८

शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा वै वावसत्थिकाम् ।
नाधीयीतामिषञ्जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥६९

नीहारैर्बाणशब्दैश्च सन्ध्ययोरुभयोरपि ।
अमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषु च ॥७०

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ।
अष्टकासु च कुर्वीत मतिमान् तासु रात्रिषु ॥७१

मार्गशीर्षे तथा पौषे माघे मासे तथैव च ।
तिस्रोऽष्टकाः समाख्याता कृष्णे पक्षे च सूरिभिः ॥७२

श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च ।
कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः ॥७३

समानविद्येऽनुमृते तथा सब्रह्मचारिणि ।
आचार्ये संस्थिते वाऽपि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ॥७४

छिद्रेष्वेतेषु विप्राणामनध्यायाः प्रकीर्तिताः ।
हिंसन्ति राक्षसास्ते च तस्मादेतान् विसर्जयेत् ॥७५

नैत्यके नास्त्यनध्यायः सन्ध्योपासन एव च ।
उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि ॥७६

एकार्चमथवैकं वा यजुः सामाथवा पुनः ।
अष्टकायाः स्वधीयत मारुते चापि वापदि ॥७७

अनध्यायो विनाशे च नेतिहासपुराणयोः ।
निधर्म्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतान् विसर्जयेत् ॥७८

एष धर्मः समासेन कीर्तितो ब्रह्मचारिणः।
ब्रह्मणाभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ॥७९
योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः।
स वै मूढो न सम्भाष्यो वेदवाह्यो द्विजातिभिः ॥८०
न वेदपाठमात्रेण सन्तुष्टो वै द्विजोत्तमः।
पाठमात्रावसानस्तु पङ्के गौरिव सीदति ॥८१
योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदान्तं न विचारयेत्।
स सान्वयः शूद्रकल्पः स पाद्यं न प्रपद्यते ॥८२
यदि वा ऽत्यन्तिकं वासं कर्तुमिच्छति वै गुरौ।
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ॥८३
गत्वा वनं वा विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्।
अधीयीत सदा नित्यं ब्रह्मविद्यां समाहितः ॥८४
सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदानां च विशेषतः।
अभ्यसेत्सततं वेदं भस्मस्नानपरायणः ॥८५
वेदं वेदौ तथा वेदाः वेदान्वै चतुरो द्विज !।
अधीत्य विधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः ॥८६
वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
अकुर्वाणः पतत्याशु निरयानतिभीषणान् ॥८७
अभ्यसेत्प्रयतो वेदं महायज्ञान्न हापयेत्।
कुर्याद् गृह्याणि कर्माणि सन्ध्योपासनमेव च ॥८८
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतकः।
सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥८९

सन्ध्यास्नानरतो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः ।
अनसूयो मृदुर्दान्तो गृहस्थः प्रत्यवर्तते ॥६०

उदानाय ततः कुर्यात्समानायेति पञ्चमम् ।
विज्ञाय तत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनि द्विजः ॥६१

शेषमन्नं यथाकामं भुञ्जीत व्यञ्जनैर्युतम् ।
ध्यात्वा तन्मानसे देवमात्मानं वै प्रजापतिम् ॥६२

अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पिबेत् ।
आचान्तः पुनराचामेदयं गौरिति भाषयेत् ॥६३

अधीत्य विधिवद्वेदानर्थं चैवोपलभ्य च ।
धर्म्मकायनिवृत्तिश्चेदेतद्विज्ञानमुच्यते ॥६४

यः स्वयं नियतो भूत्वा धर्मपाठं पठेद्द्विजः ।
अध्यापयेच्छ्रावयेद् वा ब्रह्मलोके महीयते ॥६५

प्रातःकृत्यं समाप्याथ वैश्वदेवपुरःसरम् ।
मध्याह्ने भोजयेद्विप्रान् सम्यक् भूतात्मभावनः ॥६६

प्राङ्मुखस्तानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ।
आसीनस्त्वासने शुद्धे भूमौ पादौ निधापयेत् ॥६७

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋणं भुङ्क्ते उदङ्मुखः ।
पश्चात् स भोजनं कुर्यात् भूमौ वा तन्निधापयेत् ॥६८

उपवासेन तत्तुल्यमित्येवम्भार्गवोऽब्रवीत् ।
उपलिप्य शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वै करौ ॥६९

आचान्तोऽक्रोधनो नक्तं पश्चात्तु भोजनं चरेत् ।
इह व्याहृतिभिस्त्वन्नं परिधायोदकेन तु ॥१००
परिषेचनमन्त्रेण परिषिच्य ततः परम् ।
चित्रगुप्तबलिं दत्त्वा तदन्नं परिषिच्य च ॥१०१
अमृतोपस्तरणमसीत्यापोशनक्रियां चरेत् ।
स्वाहाप्रणवसंयुक्तं प्राणायेत्याहुतिं ततः ॥१०२
अपानायाहुतिं हुत्वा व्यानाय तदनन्तरम् ।
उदानाय ततः कुर्यात्समानायेति पञ्चमम् ॥१०३
विज्ञाय तत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनि द्विजः ।
शेषमन्नं यथाकामं भुञ्जीत व्यञ्जनैर्युतम् ।
ध्यात्वा तन्मानसे देवमात्मानं वै प्रजापतिम् ॥१०४
अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पिबेत् ।
आचान्तः पुनराचामेदयं गौरिति मन्त्रतः ॥१०५
त्रिपदां वा त्रिरावृत्य सर्वपापप्रणाशनीम् ।
प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यालभेद्धृदयं ततः ॥१०६
आचम्याङ्गुष्ठमानीय पादाङ्गुष्ठेन दक्षिणम् ।
निःस्रावयेद्धस्तजलमूर्द्धहस्तः समाहितः ॥१०७
हुत्वानुमन्त्रणं कुर्यात् स्वधायामिति मन्त्रतः ।
अथोक्षणे स्वमात्मानं यो जपेद् ब्रह्मणेति च ॥१०८
सर्वेषामेव यागानामात्मयागः परः स्मृतः ।
अथ श्राद्धममावास्याप्राप्तं कार्य्यं द्विजोत्तमैः ॥१०९

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ।
अपराह्णे द्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेण तु ॥११०

प्रतिपत्प्रभृतिर्ह्यन्यास्तिथयः कृष्णपक्षके ।
चतुर्दशीं वर्जयित्वा पञ्चमीं ह्युत्तरोत्तराम् ॥१११

अमावस्याष्टकास्तिस्रः पौर्णमास्यादिषु त्रिषु ।
तिस्रश्चाप्यष्टकाः पुण्या मासि पञ्चदशी तथा ॥११२

त्रयोदशी मघा कृष्णावर्षासु त्वविशेषतः ।
नैमित्तिकं तु कर्तव्यं दिवसे चन्द्रसूर्य्ययोः

बालकानां च मरणे नारकी स्यात्ततोऽन्यथा ।
काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु ॥११४

अयने विषुवे चैव व्यतिपाते त्वनन्तकम् ।
संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि ॥११५

नक्षत्रतिथिवारेषु कार्य्यं काम्यं विशेषतः ।
स्वर्गं तु लभते कृत्वा कृत्तिकासु द्विजोत्तमाः ! ॥११६

द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तौ न कालं नियमं ततः ।
कर्मारम्भेषु सर्वेषु कुर्यादभ्युदयं ततः ॥११७

पुत्रजन्मादिषु श्राद्धं पार्वणं पावणं स्मृतम् ।
अहन्यहनि नित्यं स्यात् काम्ये नैमित्तिकं पुनः ॥११८

सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति ।
स तेन कम्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम् ॥११९

यदिस्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम् ।
तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सन्निधिम् ॥१२०

अपूपञ्च हिरण्यं च गामश्वं पृथिवीं तिलान्।
अविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मी भवति काष्ठवत्॥१२१
मासमारोहणं कुर्यात् भर्तृचित्यां पतिव्रता।
तन्मृताहनि संप्राप्ते पृथक् पिण्डे नियोजयेत्॥१२२
धर्म्मपिण्डोदकं श्राद्धं पार्वणं नग्नसंज्ञकम्।
अस्थिसञ्चयनं कर्म्म दशाहभवनं तथा॥१२३
और्ध्वं दशाहमुत्कर्षं शेषस्य यदि वा भवेत्।
पिण्डोदकं नवश्राद्धं पुनः कार्यं यथाविधि॥१२४
यद्यस्थिसञ्चयं कर्म्म दशाहमूर्ध्वभाक् भवेत्।
नष्टे वापहृतेऽस्थीनि दाहयेद्यदि वा पुनः॥१२५
कुर्यादहरहः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः।
साग्निकोऽग्निको वापि तीर्थे वेषविशेषतः॥१२६
उत्तानं वा विवर्त्तं वा पितृपात्रं यदा भवेत्।
अभोज्यं तद्भवेदन्नं क्रुद्धैः पितृगणैश्च तैः॥१२७
अन्नहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं तु यद्भवेत्।
सर्वमच्छिद्रमित्युक्त्वा ततो यत्नेन भोजयेत्॥१२८
एकोद्दिष्टन्तु विज्ञेयं वृद्धिश्राद्धं तु पार्वणम्।
एतत्पञ्चविधं श्राद्धं भृगुपुत्रेण सूचितम्॥१२९
यात्रायां षष्ठमाख्यातं तत्प्रयत्नेन पावनम्।
शुद्धयेत् सप्तमं श्राद्धं ब्रह्मणा परीकर्तितम्॥१३०
दैविकं चाष्टमं श्राद्धं यत् कृत्वा मुच्यते भयात्।
सन्ध्यारात्र्यो र्न कर्तव्यमहोरात्रमदर्शनात्॥१३१

देशानान्तु विशेषेण भवेत् पुण्यमनन्तकम् ।
गयायामक्षयं श्राद्धं प्रयागे मरणादिषु ॥१३२
गायन्ति गाथां ते सर्वे कीर्त्तयन्ति मनीषिणः ॥१३३
एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः ।
तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥१३४
गयां प्राप्यानुषङ्गेण यदि श्राद्धं समाचरेत् ।
तारिताः पितरस्तेन स याति परमाङ्गतिम् ॥१३५
वाराहपर्वते चैव गयां चैव विशेषतः ।
एवमादिष्वतीतेषु तुष्यन्ति पितरस्तदा ॥१३६
व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा ।
श्यामाकैश्च तु वै शाकैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः ॥१३७
गोधूमैश्च तिलैर्मुद्‌गैर्माषैः प्रीणयते पितॄन् ।
मृष्टान् फलरसानिक्षून् मृदुकान् सस्यदाड़िमान्
विदार्य्याश्च करण्डाश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत् ।
लाजां मधुयुतां दद्याद् दध्ना शर्करया सह ॥१३८
दद्यात् श्राद्धे प्रयत्नेन शृङ्गां गजशुकैर्वृकान् ।
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रिमासान् हरिणेन च ॥१३९
औरभ्रेणाथ चतुरः शाके नेह च पञ्च तु ।
षण्मासांश्छागमांसेन रौरवेण च वै नतु ॥१४०
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषाविकैः ।
शशर्णवृकयोर्मांसैर्मासानेकादशैव तु ॥१४१

सम्वत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन च।
सदैव सस्यमांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥१४२
कालशाकं महाशाकं खगलोहामिषं मधु।
अनन्तान्येव च कल्पन्ते मूलान्यन्यानि सर्वशः ॥१४३
कृत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहृत्य वै द्विजः।
दद्याच्छ्राद्धं प्रयत्नेन दत्तस्याक्षयमुच्यते ॥१४४
पिप्पलीक्रमुकं चैव तथा चैव मसूरकम्।
कश्मलालाबुवार्ताकान् मन्त्रणं सारसं तथा ॥१४५
कूटञ्च भद्रमूलञ्च तण्डुलीयकमेव च।
राजमाषांस्तथा क्षीरं माहिषञ्च विवर्जयेत् ॥१४६
कोद्रवान् कोविदारांश्च स्थलपाक्यामरीस्तथा।
वर्जयेत्सर्वयत्नेन श्राद्धकाले द्विजोत्तमः ॥१४७

इत्यौशनसस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः।

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

श्राद्धप्रकरणवर्णनम्।

स्नात्वा यथोक्तं सन्तर्प्य पितृदेवान् ऋषींस्तथा।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात् सौम्यमनाः शुचिः ॥१
पूर्वमेव निरीक्षेत ब्राह्मणान्वेदपारगान्।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने चातिथिः स्मृतः ॥२

ये सोमपाननिरता धर्मज्ञा सत्यवादिनः ।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः ॥३

पञ्चाग्निरप्यधीयानो यजुर्वेदविदोऽपि च ।
बह्वृचस्तु सुवर्णाश्च त्रिमधुर्वाथ वा भवेत् ॥४

त्रीनाचिकेन च्छन्दो वै ज्येष्ठसामगणोऽपि वा ।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्याय्या विशेषतः ॥५

अग्निहोत्रपरो विद्वान् पापविच्च षडङ्गवित् ।
गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः ॥६

अहिंसोपरता नित्यमप्रतिग्राहिणस्तथा ।
सत्रिणो दाननिरता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥७

असमानप्रवरगा असगोत्रास्तथैव च ।
असम्बन्धश्च विज्ञेयो ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥८

भोजयेद्योगिनं पूर्वं तत्त्वज्ञानरतं परम् ।
अलाभे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकं तु वा ॥६

तदलाभे गृहस्थस्तु मुमुक्षुः सङ्गवर्जितः ।
सर्वालाभे साधकं वा गृहस्थं मा विभोजयेत ॥१०

प्रकृतेगुणतत्त्वज्ञं योऽश्नातीह यतिं भवे ।
पलं वेदविदां तस्य सहस्रादतिरिच्यते ॥११

तस्माद्यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम् ।
भोजयेद्धव्यकव्येषु अलाभादिह च द्विजान् ॥१२

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ।
अनुकल्पः स्वयं ज्ञेय स्तदा सद्भिरनुच्छ्रितः ॥१३

मातामहं मातुलञ्च स्वस्रेयं श्वशुरं गुरुम्।
दौहित्रं विबुधं सर्वमग्निकल्पांश्च भोजयेत्॥१४
न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः।
पैशाचदक्षिणाहीनैर्वामुत्र फलसम्पदः॥१५
कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमतित्वरम्।
द्विषतां हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम्॥१६
तथानुचेद्धविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम्।
यावतो ग्रसते पिण्डान् हव्यकव्येषु मन्त्रवित्॥१७
ततोऽहि ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलानधोमुखान्।
अथ विद्यानुकूले हि युक्ताश्च स वृतोऽथवा॥१८
यत्रैते भुञ्जते हव्यं तद्भवेदासुरं द्विजाः!।
यश्च वेदश्च वेदी च विच्छेद्येत त्रिपूरुषम्॥१९
स वै दुर्ब्राह्मणो ज्ञेयः श्राद्धादौ न कदाचन।
शूद्रप्रेष्योद्धतो राज्ञो वृषलो ग्रामयाजकः॥२०
बधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धवः।
दत्त्वा तु वेदनात्यर्थं पतितान्मनुरब्रवीत्॥२१
वेदविक्रयिणश्चैते श्राद्धादिषु विगर्हिताः।
श्रुतिविक्रयिणो यत्र परपूर्वाः समुद्रगाः॥२२
असमानान् याजयन्ति पतितास्ते प्रकीर्तिताः।
असंस्तुताध्यापका ये भृतकान् पाठयन्ति ये॥२३
अधीयीत तथा वेदान् भृतकास्ते प्रकीर्तिताः।
वृद्धश्रावकनिर्गूढाः पञ्चरात्रविदो जनाः॥२४

कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डाश्चैव तद्विधाः।
यस्याश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः॥२५
न तस्या सद्भवेत् श्राद्धं प्रेत्यापि हि फलप्रदाः।
अनाश्रमी यो द्विजः स्यादाश्रमी स्यान्निरर्थकः॥२६
मिथ्याश्रमी च विप्रेन्द्रा विज्ञेयाः पङ्क्तिदूषकाः।
दुश्चर्मी कुनखी कुष्ठी श्वित्री च श्यावदन्तकः॥२७
क्रूरो वीजनकश्चैव स्तेनः क्लीबोऽथ नास्तिकः।
मद्यपी वृषली सक्तो वीरहा दीधिषूपतिः॥२८
आगारदाही कुण्डाशी सोमविक्रयिणो द्विजाः।
परिवेत्ता तथा हिंस्रः परिवेत्तिर्निराकृतिः॥२९
पौनर्भवः कुसीदी च तथा नक्षत्रदर्शकः।
गीतवादित्रशीलश्च व्याधितः काण एव च॥३०
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णी तथैव च।
कन्याद्रोही कुण्डगोली अभिशक्तोऽथ देवलः॥३१
मित्रध्रुक् पिशुनश्चैव नित्यं नार्या निकृन्तनः।
मातापितृगुरुत्यागी दारत्यागी तथैव च॥३२
अनपत्यः कूटसाक्षी पाचकोरगजीवकः।
समुद्रयायी कृतहा रथ्यासमयभेदकः॥३३
वेदनिन्दारतश्चैव देवनिन्दारतस्तथा।
द्विजनिन्दारतश्चैव ते वर्ज्याः श्राद्धकर्मसु॥३४
कृतघ्नः पिशुनः क्रूरो नास्तिको वेदनिन्दकः।
मित्रघ्नः पारदार्यश्च मिथ्यापण्डितदूषकः॥३५

बहुनात्र किमुक्तेन विहितान्येव कुर्वते।
निन्दितान्याचरन्ते ते वर्ज्याः श्राद्धे प्रयत्नतः ॥३६

इत्यौशनसस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः।

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

श्राद्धप्रकरणवर्णनम्।

गोमयेनोदकैः पूर्वं शोधयित्वा समाहितः।
सन्निपात्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः सन्निमन्त्रयेत् ॥१
श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिवक्ष्यति ॥२
असम्भवे परेद्युर्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतम्।
तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकाल उपस्थिते ॥३
अन्योन्यमनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः।
ब्राह्मणास्ते समायान्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः ॥४
वायुभूताश्च तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति पराङ्गतिम्।
आमन्त्रिताश्च ये विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते ॥५
वसेरन्नियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः।
अक्रोधनोऽत्वरो यत्र सत्यवादी समाहितः ॥६
भरमैथुनमध्वानं श्राद्धभुग्वर्जयेज्जपम्।
आमन्त्रितो ब्राह्मणो वै योऽन्यस्मै कुरुते क्षणम् ॥७

आमन्त्रयित्वा यो मोहादन्यं वा मन्त्रयेत् द्विजः ।
स तस्मादधिकः पापी विष्ठाकीटो हि जायते ॥८
श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽधिगच्छति ।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनिषु जायते ॥९
निमन्त्रितश्च यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः ।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांशुभोजनम् ॥१०
निमन्त्रितश्च यः श्राद्धे प्रकुर्यात्कलहं द्विजः ।
भवन्ति तस्य तन्मासं पितरो मलभोजनाः ॥११
तस्मान्निमन्त्रितः श्राद्धे नियतात्मा भवेद् द्विजः ।
अक्रोधनः शौचपरः कर्त्ता चैव जितेन्द्रियः ॥१२
शोभते दक्षिणां गत्वा दिशं दर्भात् समाहितः ।
समूलान्नाहरेद्वारि दक्षिणाग्रान् सुनिर्मलान् ॥१३
दक्षिणाप्रवणं स्निग्धं विभक्तशुभलक्षणम् ।
शुचि देशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत् ॥१४
नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ गिरिसानुषु ।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरस्तथा ॥१५
परस्य भूमिभागे तु पितॄणां वै न निर्वपेत् ।
स्वामित्वात् स विहन्येत मोहाद्यत्क्रियते नरैः ॥१६
अटव्यः पर्वताः पुण्या स्तीर्थान्यायतनानि च ।
सर्वाण्यस्वामिकान्याहु र्नहि तेषु परिग्रहः ॥१७
तिलांश्चावकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेद् द्विजः ।
असुरोपहतं सर्वं तिलैः शुध्यत्यजेन वा ॥१८

ततोऽन्नं बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनमव्ययम् ।
चोष्यं पेयं समृद्धं च यथा शक्त्युपकल्पयेत् ॥१९
ततो निवृत्ते मध्याह्ने लुप्तलोमनखान् द्विजान् ।
अभिगम्य यथामार्गं प्रयच्छेद्दन्तधावनम् ॥२०
तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम् ।
पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदेवं तु पूर्वकम् ॥२१
तत्र स्नात्वा निवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थानकृताञ्जलिः ।
पाद्यमाचमनीयं च संप्रच्छेद्यथाक्रमम् ॥२२
ये चात्र विवदेरन् वै विप्राः पूर्वं निमन्त्रिताः ।
प्राङ्मुखान्यासनान्येषां सदर्भोपहितानि च ॥२३
दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः ।
तेषूपवेशयेदेतान् ब्राह्मणान् देवकल्पकान् ॥२४
अस्यन्व्यमिति संकल्प्य त्वासिरंस्थे पृथक् पृथक् ।
द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ पित्र्ये त्रयश्चोदङ्मुखास्तथा ॥२५
एकैकं वा भवेत्तत्र एवं मातामहेष्वपि ।
सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम् ।
पञ्चैतान्विस्तरोहन्ति तस्मैनेहेत विस्तरम् ॥२६
अथवा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
श्रुतिशीलादिसम्पन्नमलक्षणविवर्जितम् ॥२७
प्रशस्तपात्रे चान्नन्तु सर्वस्मात् प्रयतात्मनः ।
देवतायतने चास्मै त्रिलोकात् सम्प्रवर्त्तते ॥२८

प्राश्येदग्नौ तदन्नन्तु दद्याच्च ब्रह्मचारिणे।
भिक्षुको ब्रह्मचारीव भोजनार्थमुपस्थितः ॥२६

उपविष्टेषु यच्छ्राद्धे काममन्तमपि भोजयेत्।
अतिथि र्यत्र नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रकाश्यते ॥३०

तस्मात् प्रयत्नात्तीर्थेषु पूज्या अतिथयो द्विजैः।
अतीर्य रमते श्राद्धे भुञ्जते ये द्विजातयः ॥३१

काकयोनिं व्रजन्त्येते दत्त्वा चैव न संशयः।
हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी वणिक्पुक्कसनासिकः ॥३२

कुक्कुटः शूकरश्वानो वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः।
वीभत्समशुचिं म्लेच्छं न स्पृशेच्च रजस्वलाम् ॥३३

नीलकाषायवसनं पाषण्डांश्च विवर्जयेत्।
यत् तत्र क्रियते कर्म पैतृकं ब्राह्मणान् प्रति ॥३४

तत्सर्वमेव कर्त्तव्यं वैश्वदेवस्य पूजनम्।
यथोपविष्टान् सर्वांस्तानलङ्कुर्याद्विभूषणैः ॥३५

या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेत्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्।
प्रदद्याद् गन्धमाल्यानि धूपादीनि च शक्तितः ॥३६

अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणां दक्षिणामुखः।
आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुधः ॥३७

आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायान्तु न स्ततः।
शन्नो देव्युदकं पात्रे तिलोऽसीति तिलांस्तथा ॥३८

क्षिप्त्वा चार्घ्यं तथा पूर्वं दत्त्वा हस्तेषु वै पुनः।
संस्रावांश्च ततः सर्वान् पात्रीकुर्यात् समाहितः ॥३६

पितृभिः सममेतेन ह्यर्घ्यपात्रं निधाय च।
अग्नौ करिष्येत्वादाय पृच्छेदन्नं घृतप्लुतम् ॥४०
कुरुष्वेति ह्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतवत्।
यज्ञोपवीतिना होमः कर्त्तव्यं कुशपाणिना ॥४१
प्राचीनावीतकः पित्र्यं वैश्वदेवं तु होमयेत्।
दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान् परिचरंस्तदा ॥४२
सोमाय वै पितृमते स्वधा नम इति ब्रुवन्।
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधेति जुहुयात्ततः ॥४३
अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्।
महादेवान्तिके वाथ गोष्ठे वा सुसमाहितः ॥४४
ततस्तैरभ्यनुज्ञातो कृत्वा देवप्रदक्षिणम्।
गोमयेनोपलिप्योर्व्यां कुर्यात् स्वस्यच दैवतम् ॥४५
मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणं चोन्नतं शुभम्।
त्रिरुल्लिखेत्तस्य मध्यं दर्भेणैकेन चैव हि ॥४६
ततः संस्तीर्य तत् स्थाने दर्भान् वै दक्षिणाग्रकान्।
त्रीन् पिण्डान्निर्वपेत्तत्र हविःशेषान् समाहितः ॥४७
दाप्यपिण्डां स्ततस्तत्र निमृज्याल्लेपभागिनाम्।
तेष्वदर्भेष्वथाचम्य त्रिराचम्य शनैरसून् ॥४८
उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः।
अवक्षिप्यावहन्यात्तान् पिण्डान् यथा समाहितः ॥४९
अथ पिण्डावशिष्टान्नं विधिना भोजयेद् द्विजम्।
षडप्यत्र नमस्कुर्यात् पितॄन् देवांश्च धर्मवित् ॥५०

श्राद्धभोजनकाले तु दीपो यदि विनश्यति।
पुनरन्नं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥५१
माषानपूपान्विविधान्दद्यात् सरसपायसम्।
सूपशाकफलानिष्टान् पयो दधि घृतं मधु ॥५२
अन्नञ्चैव यथाकामं विधिसम्भक्ष्यपेयकम्।
यद्यदिष्टं द्विजेन्द्राणां तत्तत् सर्वं निवेदयेत् ॥५३
धान्यांस्तिलाश्च विविधाः शर्करा विविधा स्तथा।
उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता ॥५४
अन्यत्र फलमूलेभ्यः पानकेभ्य स्तथैव च।
नाश्रूणि पातयेज्जातु न कुप्यान्नानृतं वदेत् ॥५५
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैनमवधूनयेत्।
क्रोधेनैव च यद्दत्तं यद् दत्तं त्वरया पुनः ॥५६
यातुधाना विलुम्पन्ति यच्च पापोपपादितम्।
स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत सन्निधौ तु द्विजन्मनाम् ॥५७
न च पश्येत काकादीन् पक्षिणस्तु न वारयेत्।
तद्रूपाः पितर स्तत्र समायान्ति बुभुत्सवः ॥५८
न दद्यात्तत्र हस्तेन प्रत्यक्षलवणं तथा।
नचायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः ॥५९
काञ्चनेन तु पात्रेण तथा त्वौदुम्बरेण च।
उत्तमाधिपतां याति खड्गेन तु विशेषतः ॥६०
पात्रे तु मृण्मये यो वै श्राद्धे भोजयते पितॄन्।
स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधसः ॥६१

न पङ्क्त्या विषमं दद्यात् न याचेत न वादयेत्।
याचितादपि चात्मानं नरकं याति भीषणम् ॥६२
भुञ्जीत वाग्यतो मृष्टं न ब्रूयात् प्रकृतान् गुणान्।
तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥६३
नाग्रासनोपविष्टस्तु भुञ्जीत प्रथमं द्विजः।
बहूनां पश्यतां सोऽज्ञः पङ्क्त्या हरति किल्विषम् ॥६४
न किञ्चिद्वर्जयेत् श्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तमः।
न मांसं प्रतिषेधेत न चान्यस्यान्नमीक्षयेत् ॥६५
यो नाश्नाति द्विजो मांसं नियुक्तः पितृकर्म्मणि।
स प्रेत्य पशुतां याति सन्ततामेकविंशतिम् ॥६६
स्वाध्यायं श्रावयेदेषां धर्म्मशास्त्राणि चैव हि।
इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पान् सुशोभनान् ॥६७
ततोऽन्नमुत्सृजेद् भुक्तेष्वग्रतो विकिरेद् भुवि।
पृष्ट्वा स्वदितमित्येव तृप्तानाचामयेत्ततः ॥६८
आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति।
स्वस्थाः स्मेति च तं ब्रूयुर्ब्राह्मणा स्तदनन्तरम् ॥६९
ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषन्तु वेदयेत्।
यथा ब्रूयात्तथा कुर्य्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥७०
पित्र्ये स्वदितमित्येवं वाच्यं गोष्ठेषु सूनृतम्।
सम्पन्नमित्याभ्युदये दैवेनोच्यत इत्यपि ॥७१
विसृज्य ब्राह्मणांस्तान् वै देवपूर्वन्तु वाग्यतः।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् याचतेऽदो वरान् पितॄन् ॥७२

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु देयञ्च नोऽस्त्विति ॥७३
पिण्डांस्तु भोज्यं विप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा।
प्रक्षिपेत्सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥७४
मध्यमं तं ततः पिण्डं दद्यात्पत्न्यै सुतार्थकः।
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिशेषेण भोजयेत् ॥७५
ज्ञातिष्वपि च तुष्टेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत्ततः।
पश्चात् स्वयं च पत्नीभिः शेषमन्नं समाचरेत् ॥७६
नोद्वीक्षेत तदुच्छिष्टं यावन्नास्तं गतोरविः ।
ब्रह्मचर्यं चरेतान्तु दम्पती रजनीं तु ताम् ॥७७
दत्त्वा श्राद्धं ततो भुक्त्वा सेवते यस्तु मैथुनम्।
महारौरवमासाद्य कीटयोनिं व्रजेत् पुनः ॥७८
शुचिरक्रोधनः शान्तः सत्यवादी समाहितः।
स्वाध्यायञ्च तथा ध्यानं कर्त्ता भोक्ता विसर्जयेत् ॥७९
श्राद्धं दत्त्वा परं श्राद्धं भुञ्जते ये द्विजातयः ।
महापातकिना तुल्या यान्ति ते नरकान् वहून् ॥८०
एष वोऽभिहितः सम्यक् श्राद्धकल्पः सनातनः।
आमं निवर्त्तयन्नित्यमुदासीनो न तत्त्वतः ॥८१
अनग्निरध्वगो वापि तथैव व्यसनान्वितः।
आमश्राद्धं द्विजः कुर्य्याद् वृषलस्तु सदैव हि ॥८२
आमश्राद्धं द्विजः कुर्य्याद्विधिज्ञः श्रद्धयान्वितः।
तेनाग्नौ करणं कुर्य्यात् पिण्डांस्तैरेव निर्वपेत् ॥८३

योहि तद् विधिना कुर्य्याच्छ्राद्धं संयतमानसः ।
व्यपेतकल्मषो नित्यं यात्यसौ वैष्णवं पदम् ॥८४
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्य्याद् द्विजोत्तमः ।
आराधितो भवेदीशस्तेन सम्यक् सनातनः ॥८५
अपिमूलफलैर्वापि प्रकुर्यान्निर्धनो द्विजः ।
तिलोदकैस्तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा द्विजोत्तमः ॥८६
न जीवत्पितृको दद्याद्धोमान्तं वा विधीयते ।
तेषां चापि समादद्यात्तेषां चैके प्रचक्षते ॥८७
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
यो यस्य म्रियते तस्मै देयं मान्यस्य ते न तु ॥८८
भोजयेद्वापि जीवन्तं यथाकामं तु भक्तितः ।
न जीवन्तमतिक्रम्य ददाति श्रयते श्रुतिः ॥८९
द्व्यामुष्यायणको दद्याद्बीजहेतुस्तथाहि सः ।
रिक्तया भार्य्यया दद्यान्नियोगोत्पादितो यदि ॥९०
अनियुक्तः सुतो यस्तु शुक्रतो जायते त्विह ।
प्रदद्याद्बीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु तदन्यथा ॥९१
द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्ताभ्यां क्षेत्रिणे बीजिने यथा ।
कीर्त्तयेदथ वैकस्मिन् बीजिनं क्षेत्रिणे ततः ॥९२
मृतेऽहनि तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टविधानतः :
आशौचत्वनिरीक्षाणः काम्यं कामयते पुनः ॥९३
पूर्व्वाह्णे चैव कर्त्तव्यं श्राद्धमभ्युदयार्थिना ।
दैवं तत्स र्वमेवं स्यान्न वै कार्य्या बहिः क्रिया ॥९४

दर्भाश्च परितः स्थाप्या स्तदा स भोजयेद् द्विजान् ।
नान्दीमुखाश्च पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत् ।
मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितॄणां तदनन्तरम् ॥
ततो मातामहानाञ्च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ।
दैवपूर्वं प्रदद्याद् वै न कुर्यादप्रदक्षिणम् ॥९६
प्राङ्मुखो निर्वपेत् पिण्डानुपवीती समाहितः ।
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु ॥९७
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्भूषणैरपि पूज्य च ।
पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः ॥९८
अकृत्वा मातृयागञ्च यःश्राद्धं परिवेषयेत् ।
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः ॥९९

इत्यौशनसस्मृतौ पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथाशौचप्रकरणवर्णनम् ।

दशाहं प्राहुराशौचं सपिण्डेषु विपश्चितः ।
मृतेऽथवाथ जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमाः ! ॥१
नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः ।
न कुर्यादहितं किञ्चित् स्वाध्यायं मनसापि च ॥२

शुचिरक्रोधनस्त्वन्यान् कालेऽग्नौ भोजयेद् द्विजान् ।
शुष्कान्नेन फलैर्वापि पितरं जुहुयात्तथा ॥३
न स्पृशेयुरिमानन्ये न भूतेभ्यः समाचरेत् ।
सूतके तु सपिण्डानां संस्पर्शो नैव दुष्यति ।
सूतके सूतकाञ्चैव वर्जयित्वा तृणं पुनः ॥४
अधीयानस्तथा यज्वा वेदविद्याऽपि यो भवेत् ।
चतुर्थे पञ्चमे वाह्नि संस्पर्शे कथितो बुधैः ॥५
स्पृश्यास्तु सर्वमेवैते स्नानात्तु दशमाहनि ॥६
दशाहं निर्गुणं प्रोक्तमाशौचं दासनिर्गुणे ।
एवं द्वित्रिगुणैर्युक्तं चतुश्चैकदिने शुचि ॥७
दशाहात्तु परं सम्यगधीयीत जुहोति च ।
चतुर्थे त्वस्य संस्पर्शो मनुराह प्रजापतिः ॥८
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च ।
ये एषां मरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम् ॥९
त्रिरात्रं दशरात्रं वा ब्राह्मणानामशौचकम् ।
प्राक्संस्कारात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतःपरम् ॥
जन्मद्विवर्षगे प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते ।
त्रिरात्रेण शुचिस्त्वन्यो यदिह्यात्यन्तनिर्गुणः ॥११
अदन्तजातमरणे मातापित्रोस्तदिष्यते ।
जातदन्ते त्रिरात्रं स्यादन्तः स्यात् यत्र निर्णयः ॥१२
आदन्तजन्मनः सद्य आचौलादेकरात्रकम् ।
त्रिरात्रमुपनयनाद्दशरात्रमुदाहृतम् ॥१३

जातमात्रस्य वा तस्य यदि स्यान्मरणं पितुः।
मातुश्च सूतकाति स्यात् पिताऽस्य स्पृश्य एव हि ॥१४
सद्यः शौचं सपिण्डानां कर्त्तव्यं सोदरस्य तु।
ऊर्ध्वं दशाहादेकाहं सोदरो यदि निर्गुणः ॥१५
अथोदूर्ध्वं दन्तजन्म स्यात् सपिण्डानामशौचकम्।
एकरात्रं निर्गुणानाञ्चौलादूदूर्ध्वं त्रिरात्रिकम् १६
आदन्तजातमरणं सम्भवेद्यदि सत्तमाः!।
एकरात्रं सपिण्डानां यदि चात्यन्तनिर्गुणः ॥१७
व्रतादेशात् सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च पाततः।
गर्भच्युतावहोरात्रं सपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे ॥१८
यथेष्टाचरणाद्ज्ञातौ त्रिरात्रादिति निर्णयः।
सूतके यदि सूतिश्च मरणे वा गतिर्भवेत् ॥१६
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहः शेषे द्विरात्रकम्।
मरणोत्पत्तियोगे तु मरणेन समाप्यते ॥२०
अर्द्ध वृतिमनाशौच मूर्ध्वमन्येन शुद्धयति।
देशान्तरगतः श्रुत्वा सूतकं शाव एव वा ॥२१
तावदप्रयतोऽन्ये वा यावच्छेषः समाप्यते।
अतीते सूतके प्रोक्तं सपिण्डानां त्रिरात्रकम् ॥२२
तथैव मरणे स्नानमूर्ध्वं संवत्सराद् व्रती।
वेदांश्च यस्त्वधीयानो न भवेत् वृत्तिकर्शितः ॥२३
सद्यः शौचं भवेत्तस्य सर्वावस्थासु सर्वदा।
स्त्रीणामसंस्कृतानान्तु प्रदानात् परतः पितुः ॥२४

सपिण्डानां त्रिरात्रं स्यात् संस्कारो भर्तुरेव च ।
अहस्त्वदत्तकन्यानामशौचं मरणे स्मृतम् ॥२५
द्विवर्ष जन्ममरणे सद्यः शौचमुदाहृतम् ।
आदन्तात् सोदरः सद्य आचौलादेकरात्रकम् ॥२६
आव्रतानां त्रिरात्रं स्याद्दशमन्तु ततः परम् ।
मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम् ॥२७
एकोदराणां विज्ञेयं सूतके चैतदेव हि ।
पक्षिणी योनिसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च ॥२८
एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणि ।
प्रेते राजनि सद्यस्तु यस्य स्याद्विषये स्थितः ॥२९
गृहे मृतासु दत्तासु कन्यकासु त्र्यहं पितुः ।
परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कुलजेषु च ॥३०
त्रिरात्रं स्यात्तथाचार्ये भार्यासु प्रत्यगासु च ।
आत्रार्यपुत्रपत्न्योश्च अहोरात्रमुदाहृतम् ॥३१
एकरात्रमुपाध्याये तथैव श्रोत्रियेषु च ।
एकरात्रं सपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च ॥३२
त्रिरात्रं श्वश्रुमरणे श्वशुरे तथैव च ।
सद्यः शौचं समुद्दिष्टं सगोत्रे संस्थिते सति ॥३३
शुध्येत् द्विजो दशाहेन द्वादशाहेन भूपतिः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥३४
क्षत्रविट् शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य सेवकाः ।
तेषामशेषं विप्रस्य दशाहात् शुद्धिरिष्यते ॥३५

राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु ।
षड्रात्रं वा त्रिरात्रं वाऽप्येकरात्रक्रमेण हि ॥३६
वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमेव तु ।
अर्द्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुङ्गवाः ! ॥३७
शूद्रक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वशौचमिष्यते ।
षड्रात्रं द्वादशाहञ्च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः ॥३८
अशौचं क्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेण द्विजपुङ्गवः ! ।
शूद्रविट्क्षत्रियाणान्तु ब्राह्मणे संस्थिते यदि ॥३६
दशरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलोद्भवः ।
असपिण्डं द्विजप्रेतं विप्रो निरस्तृत्य बन्धुवत् ॥४०
अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुध्यति ।
यदि निर्दहति क्षिप्रं प्रलोभात् क्रान्तमानसः ॥४१
दशाहेन द्विजः शुध्येत् द्वादशाहेन भूमिपः ।
अर्द्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति ॥४२
षड्रात्रेणाथवा सप्तत्रिरात्रेणाथवा पुनः ।
अनाथञ्चैव निर्बन्धुं ब्राह्मणं धनवर्जितम् ॥४३
स्नात्वा सम्प्राश्य तु घृतं शुध्यन्ति ब्राह्मणादयः ।
अपरश्चेत्परं वर्णमपरश्चापरो यदि ॥४४
एकाहात् क्षत्त्रिये शुद्धिर्वैश्ये तु स्यात् द्व्यहे सति ।
शूद्रेषु च त्र्यहं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः ॥४५
अनस्थिसञ्चिते शूद्रे रौति चेद् ब्राह्मणः स्वकैः ।
त्रिरात्रं स्यात्तथाऽशौचमेकाहं क्षत्रवैश्ययोः ॥४५

अन्यथा चैव स ज्योतिर्ब्राह्मणे स्नानमेव च।
अनस्थिसञ्चिते विप्रे ब्राह्मणो रौति चेत्तदा ॥४७

स्नानेनैव भवेच्छुद्धिः सचैलेन न संशयः।
यस्तैः सहान्नं कुर्याच्च यानादीनि तु चैव हि ॥४८

ब्राह्मणे वाऽपरे वाऽपि दशाहेन विशुध्यति।
य स्तेषामन्नमश्नाति स तु देवोऽपि कामतः ॥४९

तदाशौचनिवृत्तेषु स्नानं कृत्वा विशुध्यति।
यावत्तदन्नमश्नाति दुर्भिक्षाभिहतो नरः।
तावन्त्यहान्यशुद्धिः स्यात् प्रायश्चित्तं ततश्चरेत् ॥५०

दाहाद्यशौचं कर्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणाम्।
सपिण्डानां तु मरणे मरणादितरेषु च ॥५१

सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोर वेदने ॥५२

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
लेपभाजस्तु यश्चात्मा सापिण्ड्यं सप्तपौरुषम् ॥५३

ऊर्ध्वानाञ्चैव सापिण्ड्य माह देवः प्रजापतिः।
ये चैकजाता बहवो भिन्नयोनय एव च ॥५४

भिन्नवर्णास्तु सापिण्ड्यं भवेत्तेषां त्रिपूरुषम्।
कारवः शिल्पिनो वैद्यदासीदासास्तथैव च ॥५५
राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः।
दातारो नियमी चैव ब्रह्मविद् ब्रह्मचारिणी ॥५६

सत्रिणो व्रतिनस्तावत् सद्यः शौचमुदाहृतम् ।
राजा चैवाभिषिक्तश्च प्राणसत्रिण एव च ॥५७

यज्ञे विवाहकाले च देवयागे तथैव च ।
सद्यः शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे वाप्युपद्रवे ॥५८

विषाद्युपहतानाञ्च विद्युता पार्थिवैर्द्विजैः ।
सद्यः शौचं समाख्यातं सर्पादिमरणेऽपि च ॥५६

अग्निमेरुप्रपतने विषौघान्यपराशने ।
गोब्राह्मणान्ते सन्न्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥६०

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
नाशौचं विद्यते सद्भिः पतिते च तथा मृते ॥६१

इत्यौशनसस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ।

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ गृहस्थानां प्रेतकर्मविधि वर्णनम् ।

पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः ।
न चाश्रुपातः पिण्डे च कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥१

व्यापादयेत्तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः ।
सहितं तस्य नाशौचं नचस्यादुदकादिकम् ॥२

अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः ।
तस्याशौचं विधातव्यं कार्यञ्चैवोदकादिकम् ३

जाते कुमारे तदह आमं कुर्यात् प्रतिग्रहम्।
हिरण्यधान्यगोवासस्तिलान्नगुड़सर्पिषः ॥४
फलानीक्षुश्च शाकञ्च लवणं काष्ठमेव च।
तायं दधि घृतं तैलमौषधं क्षीरमेव च ॥५
आशौचिनो गृहात् ग्राह्यं शुष्कान्नञ्चैव नित्यशः।
अहिताग्निर्यथान्यायं दातव्यं त्रिभिरग्निभिः ॥६
अनाहिताग्निर्गृह्येण लौकिकेनेतरैर्द्विजैः।
देहाभावात् पलाशेन कृत्वा प्रतिकृतिं पुनः ॥७
दाहः कार्यो यथान्यायं सपिण्डैः श्रद्धयान्वितैः।
सकृत्प्रसिञ्चे दुदकं नाम गोत्रेण वाग्यतः ॥८
दशाहं बान्धवैः सार्द्धं सर्वे चैवार्द्रवाससः।
पिण्डं प्रतिदिनं दद्युः सायं प्रातर्यथाविधि ॥९
प्रेताय च गृहद्वारि चतुरो भोजयेद् द्विजान्।
द्वितीयेऽहनि कर्तव्यं क्षुरकर्म सबान्धवैः ॥१०
सर्वैरस्थ्नां सञ्चयनं ज्ञातिरेव भवेत्तथा।
त्रिपूर्वं भोजयेद्विप्रानयुग्मान् श्रद्धया शुचीन् ॥११
पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि।
अयुग्मान् भोजयेद्विप्रान् नवश्राद्धं तु तद्विदुः ॥१२
एकादशेह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः।
द्वादशे वाथ कर्तव्य मन्निदैस्त्वथवाऽहनि ॥१३
एकं पवित्र मेकं वा पिण्डमात्रं तथैव च।
एवं मृतेऽह्नि कर्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम् ॥१४

सपिण्डीकरणं प्रोक्तं पूर्णे सम्वत्सरे पुनः।
कुर्यात् चत्वारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्तमाः! ॥१५
प्रेतार्थं पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत्ततः।
ये समाना इति द्वाभ्यां पिण्डानप्येवमेव हि ॥१६
सपिण्डीकरणश्राद्धं दैवपूर्वं विधीयते।
पितॄनावाहयेत्तत्र पुनः प्रेतञ्च निर्दिशेत् ॥१७
ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषां स्यात् पृथक् क्रिया।
यस्तु कुर्यात् पृथक् पिण्डं पितृहा त्वभिजायते ॥१८
मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डशब्दं समाविशेत्।
दद्याच्चान्नं सोदकुम्भं प्रत्यहं प्रेतधर्मतः ॥१९
पार्वणेन विधानेन साम्वत्सरिकमिष्यते।
प्रतिसम्वत्सरं कार्यं विद्धिरेष सनातनः ॥२०
मातापित्रोः सुतैः कार्यं पिण्डदानादि किञ्चन।
पत्नी कुर्यात् सुताभावे पत्न्यभावे तु सोदरः ॥२१
एष वः कथितः सम्यक् गृहस्थानां यथाविधि।
स्त्रीणाञ्च भर्तृशुश्रूषा धर्मो नान्य इहेष्यते ॥२२
यः स्वधर्मपरो नित्यमीश्वरार्पितमानसः।
प्राप्नोति परमं स्थानं यदुक्तं वेदसम्मितम् ॥२३

इत्यौशनस्मृतौ सप्तमोऽध्यायः।

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

अथ प्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम्।

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च।
महापातकिनस्त्वेते यः स तैः सह सम्वसेत् ॥१
सम्वत्सरेण पतति संसर्गं कुरुते तु यः।
यो हि शय्यासने नित्यं वसन्वै पतितो भवेत् ॥२
याजनं योनिसम्बन्धं तथैवाध्ययनं द्विजः।
कृत्वा सद्यः पतेत् ज्ञानात् सहभोजनमेव च ॥३
अविज्ञायापि यो मोहात् कुर्यादध्ययनं द्विजः।
सम्वत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च ॥४
ब्रह्महा वा दशाब्दानि कुण्ठीकृत्वा वने वसेत्।
भैक्ष्यं चात्मविशुध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥५
ब्रह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्जयेत्।
विनिन्द्य च स्वमात्मानं ब्राह्मणञ्च स्वयं स्मरेत् ॥६
असङ्कराणि योग्यानि सप्तागाराणि संविशेत्।
विधूमे शनकैर्नित्यं व्याहारे भुक्तवर्जिते ॥७
कुर्यादनशनं वाद्यं भृगोः पतनमेव च।
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलं वा प्रविशेत् स्वयम् ॥८
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत्।
दीर्घमामयिनं विप्रं कृत्वा नामयिनं तथा ॥९

दत्त्वा चान्नं स विदुषे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
अश्वमेधावभृतके स्नात्वा यः शुध्यति द्विजः ॥१०
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदापयेत् ।
ब्रह्महा मुच्यते पापैर्दृष्ट्वा वा सेतुदर्शनम् ॥११
सुरापस्तु सुरां तप्तामग्निवर्णां पिबेत्तदा ।
निर्दग्धकायः स तदा मुच्यते च द्विजोत्तमः ॥१२
गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्द्रवमेव वा ।
पयो घृतं जलं वाऽथ मुच्यते पापकात्ततः ॥१३
जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वा नारायणं हरिम् ।
ब्रह्महत्याव्रतं चाथ चरेत्तत्पापशान्तये ॥१४
स्वर्णस्तेयी सकृद्विप्रो राजानमधिगम्य तु ।
स्वकर्म ख्यापयन् ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥१५
गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ।
स वै पापात्ततः स्तेनो ब्राह्मणस्तपसाथ वा ॥१६
करेणादाय मुसलं लगुडं वाऽथ घातिनम् ।
सश्चित्योभयतस्तीक्ष्णमायसं दण्डमेव च ॥१७
राजा न स्तेन मर्दीत मुक्तकेशेन धावता ।
अचक्षाणश्च तत्पापमेवं कर्माणि शाधि माम् ॥१८
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा ततः स्तेयाद्विमुच्यते ।
अशासित्वा च तं राजा स्तेयस्याप्नोति किल्बिषम् ॥१९
तपसा द्रुतमन्यस्य सुवर्णस्तेयजं फलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये सञ्चरेद् ब्रह्मणो व्रतम् ॥२०

स्नात्वाश्वमेधावभृथे पूतः स्यादथ वा द्विजः।
प्रदद्याच्चाथ विप्रेभ्यः स्वात्मतुल्यं हिरण्यकम् ॥२१
चरेद्वा वत्सरं कृत्स्नं ब्रह्मचर्यपरायणः।
ब्राह्मणः स्वर्णहारी च तत्पापस्यापनुत्तये ॥२२
गुरुभार्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः।
उपगूहेत् स्त्रियं तप्तां कान्तां कालायसीकृताम् ॥२३
स्वयं वा शिश्नवृषणे उत्कृत्यादथवाञ्जलौ।
आतिष्ठेद्दक्षिणामाशा मा निपातमजिह्मतः ॥२४
गुर्वर्थं बहवः शुध्यै चरेद् वा ब्रह्मणो व्रतम्।
शाखां कर्कटकोपेतां परिष्वज्याथ वत्सरे ॥२५
अधःशयीत निरतो मुच्यते गुरुतल्पगः।
कृच्छ्रञ्चाब्दञ्चरेद्विप्रश्चीरवासाः समाहितः ॥२६
अश्वमेधावभृतके स्नात्वा मुच्येद् द्विजोत्तमः।
कालेऽष्टके वा भुञ्जानो ब्रह्मचारी सदाव्रतः ॥१७
स्थानासनाद्यं विचरेद्धनोऽप्यु पयन्नतः।
अधःशायी त्रिभिर्वर्षैस्ततः शुध्येत पातकात् ॥१८
चान्द्रायणानि वा कुर्यात् पञ्च चत्वारि वा पुनः।
पतितैः सम्प्रयुक्ताना मयं गच्छति निष्कृतिम्।
पतितेन तु संस्पर्शं लोभेन कुरुते द्विजः ॥१९
सकृत् पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत्।
तप्तकृच्छ्रं चरेद्वाथ सम्वत्सरमतन्द्रितः ॥२०

षाण्मासिकेऽथ संसर्गे प्रायश्चित्तार्थमाचरेत्।
एभिः पूतै रथो हन्ति महापातकिनो मलम् ॥२१
पुण्यतीर्थाभिगमनात् पृथिव्यामथ निष्कृतिः।
ब्रह्महत्यां सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमम् ॥२२
कृत्वा चैवं महापापं ब्राह्मणः काममोहितः।
कुर्यादनशनं विप्रः पुण्यतीर्थे समाहितः ॥२३
जले वा प्रविशेदग्नौ ध्यात्वा देवं कपर्दिनम्।
न ह्यन्या दुष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिः कर्मवेदिभिः ॥२४

इत्यौशनसस्मृतौ अष्टमोऽध्यायः।

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

प्रायश्चित्तवर्णनम्।

गत्वा दुहितरं विप्रं स्वसारं सा स्नुषामपि।
प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं मतिपूर्वमिति स्थितिः ॥१
मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम्।
भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात् कृच्छ्रादिपूर्वकम् ॥२
चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसमाहितः।
पैतृष्वस्रेयीं गत्वा तु स्वस्त्रियां मातुरेव च ॥३
मातुलस्य सुतां वाऽपि गत्वा चान्द्रायणं चरेत्।
भार्यां सखीं समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च ॥४

अहोरात्रोषितो भूत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्।
उदक्यागमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥५

क्षत्त्रीमैथुनमासाद्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम्।
पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानजः।
मण्डूकं नकुलं काकं विड्वराहञ्च मूषिकम् ॥६

श्वानं हत्वा द्विजः कुर्यात् षोडशाख्यमहाव्रतम्।
पयः पिबेत्त्रिरात्रन्तु श्वानं हत्वा त्वतन्द्रितः ॥७

मार्जारं चाथ नकुलं योजनं वाऽध्वनो व्रजेत्।
कृच्छ्रं द्वादशमात्रन्तु कुर्यादश्ववधे द्विजः ॥८

अथ कृष्णायसीं दद्यात् सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः।
बलाकं रङ्कवं चैव मूषिकं कृतलम्भकम् ॥६

वराहन्तु तिलद्रोणं तिलाटञ्चैव तित्तिरिम्।
शुकं द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम् ॥१०

हत्वा हंसं बलाकञ्च बकटिट्टिभमेव च।
वानरञ्चैव भासञ्च स्वयं वा ब्राह्मणाय गाम् ॥११

क्रव्यादांस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात् पयस्विनीम्।
अक्रव्यादं वत्सतरमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥१२

जीविते चैव तृप्ताय दद्यादस्थिमतां वधे।
अस्थ्नाञ्चैव हि हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति ॥१३

फलदानन्तु विप्राणां छेदनादाहिकं शतम्।
गुल्मवल्लीलतानाञ्च वीरुधां फलमेव च ॥१४

पुष्पागमानाञ्च तथा घृतप्राशो विशोधनम् ।
चान्द्रायणं पराकञ्च कुर्य्यात् हत्वा प्रमादतः ॥१५

मतिपूर्वं बधे चास्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते ।
मनुष्याणाञ्च हरणं स्त्रीणां कृत्वा ग्रहस्य च ॥१६

वापीकूपजलानाञ्च शुध्येच्चान्द्रायणेन तु ।
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः ॥१७

चरेत् सन्तापनं कृच्छ्रं चरित्वाऽऽत्मविशुद्धये ।
धान्यादिधनचौर्य्यं च पञ्चगव्यविशोधनम् ॥१८

तृणकाष्ठद्रुमाणाञ्च पुष्पाणाञ्च बलस्य च ।
चेलचर्मामिषाणाञ्च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥१९

मणिप्रवालरत्नानां सुवर्णरजतस्य च ।
अयः कांस्योपलानाञ्च द्वादशाहमभोजनम् ॥२०

एतदेव व्रतं कुर्याद् द्विशफैकशफस्य च ।
पक्षिणामोषधीनाञ्च हरेच्चापि त्र्यहं पयः ॥२१

न मांसानां हतानान्तु दैवे चान्द्रायणं चरेत् ।
उपोष्य द्वादशाहं तु कुष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम् ॥२२

नकुलोलूकमार्जारं जग्ध्वा सान्तपनं चरेत् ।
श्वानं जग्ध्वाऽथ कृच्छ्रेण शुभक्षेण च शुध्यति ॥२३

प्रकुर्याच्चैव संस्कारं पूर्वेणैव विधानतः ।
शललञ्च बलाकञ्च हंसं कारण्डवं तथा ॥२४

चक्रवाकञ्च जग्ध्वा च द्वादशाहमभोजनम् ।
कपोतं टिट्टिभं भासं शुकं सारसमेव च ॥२५

जलौकं जालपातञ्च जग्ध्वा ह्येतद् व्रतञ्चरेत् ।
शिशुमारं तथा माषं मत्स्यं मांसं तथैव च ॥२६
जग्ध्वा चैव वराहञ्च एतदेव व्रतञ्चरेत् ।
कोकिलं चैव मत्स्यादं मण्डूकं भुजगं तथा ॥२७
गोमूत्रयावकाहारैर्मासेनैकेन शुध्यति ।
जलेचरांश्च जलजान्यातुधानविपाषितान् ॥२८
रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहं चैतदाचरेत् ।
मृतमांसं वृथा चैवमात्मार्थं वा यथाकृतम् ॥२६
भुक्त्वा मासञ्चरेदेतत्तत्पापस्यापनुत्तये ।
कपोतं कुञ्जरं शिग्रुं कुक्कुटं रजकां तथा ॥३०
प्राजापत्यं चरेज्जग्ध्वा तथा कुम्भीरमेव च ।
पलाण्डुं लशुनञ्चैव भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥३१
वार्ताकुं तण्डुलीयं च प्राजापत्येन शुध्यति ।
अश्मातकं तथोपेतं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥३२
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात्ककुभ्यां शशभक्षणे ।
अलाबुं गृञ्जनं चैव भुक्त्वाऽप्येतद् व्रतं चरेत् ॥३३
उदुम्बरञ्च कामेन तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ।
वृथा कृसरसंयावं पायसाऽपूपशष्कुलीन् ॥३४
भुक्त्वा चैवं व्रतं तत्र त्रिरात्रेण विशुध्यति ।
पीत्वा क्षीराण्यपेयानि ब्रह्मचारी विशेषतः ॥३५
गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विशुध्यति ।
अनिर्दशाया गोः क्षीरं माहिषं वार्क्षमेव च ॥३६

गर्भिण्या वा विवत्सायाः पीत्वा दुग्धमिदं चरेत्।
एतेषाञ्च विकाराणि पीत्वा मोहेन वा पुनः ॥३७
गोमूत्रयावकाहारो सप्तरात्रेण शुध्यति।
भुक्त्वा चैव नवश्राद्धं सूतके मृतकेऽथवा ॥३८
चान्द्रायणेन शुध्येत ब्राह्मणस्तु समाहितः।
यस्य यद्भूयते नित्यं न यस्याग्रं न दीयते ॥३९
चान्द्रायणं चरेत् सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः।
अभोज्यानान्तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम् ॥४०
अन्त्यस्यात्ययिनोऽन्नञ्च तप्तकृच्छ्रमुदाहृतम्।
चाण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणं चरेत् ॥४१
अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पर्शमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥४२
क्रव्यादानां पक्षिणाञ्च प्राश्य मूत्रपुरीषकम्।
महासान्तपनं कुर्य्यात्तेषां मोहाद् द्विजातयः ॥४३
भासमण्डूककुक्कुरवायसे कृच्छ्रमाचरेत्।
प्राजापत्येन शुध्येत ब्राह्मणः क्लिष्टभोजनात् ॥४४
क्षत्रिय स्तप्तकृच्छ्रं स्याद् वैश्य श्चैव त्रिकृच्छ्रकम्।
सुराभाण्डोदकं वापि पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥४५
शुनोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति।
गोमूत्रयावकाहारः पीतशेषञ्च वा पयः ॥४६
आपो मूत्रपुरीषाद्यै रुपेताः प्राशयेद्यदि।
तदा सान्तपनं कुर्याद् व्रतं कायविशोधनम् ॥४७

चाण्डालकूपभाण्डेषु यदज्ञानात् पिबेज्जलम्।
चरेत् सान्तपनं कृच्छ्रं ब्राह्मणः पापशोधनम् ॥४८
चाण्डालेन च संस्पृष्टं पीत्वा वारि द्विजोत्तमः।
त्रिरात्रेण विशुध्येत पञ्चगव्येन शुध्यति ॥४९
महापातकसंस्पर्शे भुक्त्वा स्नात्वा द्विजोत्तमः।
बुद्धिपूर्वन्तु मूढात्मा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥५०
अन्यजातिविवाहे च स महापातकी भवेत्।
तस्य पातकिसंसर्गात्पातकित्वमवाप्नुयात् ॥५१
चतुर्विंशतिकृच्छ्रं स्याद् विवाहे त्वन्यकन्यया।
संसर्गस्य तदर्द्धं स्यात् प्रायश्चित्तं सुतेन हि ॥५२
दृष्ट्वा महापातकिनं चाण्डालं वा रजस्वलाम्।
प्रमादाद्भोजनं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥५३
स्नानार्द्रो यदि भुञ्जीत अहोरात्रेण शुध्यति।
बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः ॥५४
शुष्कं पर्युषितादीनि गन्धादिप्रतिदूषितम्।
भुक्त्वोपवासं कुर्वीत चरेद्विप्रः पुनः पुनः ॥५५
अज्ञानाद् भुक्तिशुध्यर्थं मज्ञानस्य विशेषतः।
भृत्यानां यजनं कृत्वा परेषामन्यकर्मणि ॥५६
अभिचारमनर्हं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति।
ब्राह्मणाभिहतानाञ्च कृत्वा दाहादिकं द्विजः ॥५७
गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येन शुध्यति।
तैलाभ्यक्तः प्रभाते च कुर्यान्मूत्रपुरीषके ॥५८

अहोरात्रेण शुध्येत श्मश्रुकर्माणि मैथुने।
एकाहेति विवाहाग्निं परिभाव्य द्विजोत्तमः ॥५६

त्रिरात्रेण विशुध्येत त्रिरात्रात् षडहं पुनः।
दशाहे द्वादशाहे वा परिहास्य प्रमादतः ॥६०

कृच्छ्रचान्द्रायणं कुर्यात्तत्पापस्यापनुत्तये।
पतितद्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुध्यति ॥६१

चरेच्च विधिना कृच्छ्र मित्याह भगवान् प्रभुः।
अनाशकनिवृत्ता तु प्रव्रज्योपासिता तथा ॥६२

आचरेत् त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च।
पुनश्च जातकर्मादि संस्कारैः संस्कृता द्विजाः ॥६३

शुद्धो यस्तद् व्रतं सम्यक्चरेयुर्धर्म्मदर्शिनः ॥६४

अनुपासितसिद्धस्तु तं व्यापकवशेन च।
अजस्रं संयतमना रात्रौ चेद्रात्रिमेव हि ॥६५

अकृत्वा समिधाधानं शुचिः स्नात्वा समाहितः।
गायत्र्यष्टसहस्रस्य जपं कृत्वा विशुध्यति ॥६६

उपासीत न चेत्सन्ध्यां गृहस्थोऽपि प्रमादतः।
स्नात्वा विशुध्यते नद्याः परिश्रान्तः सुसंयमात् ॥६७

वैदिकानि च नित्यानि कर्माणि च विलोप्य तु।
स्नातकव्रतलौल्यन्तु कृत्वा चोपवसेद्दिनम् ॥६७

सम्वत्सरश्चरेत् कृच्छ्रं मनुच्छन्दे द्विजोत्तमः।
चान्द्रायणं चरेद्द वृत्या गोप्रदानेन शुध्यति ॥६८

नास्तिकाद्यदि कुर्वीत प्राजापत्यं चरेद् द्विजः।
देवद्रोहं गुरुद्रोहं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥६९

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानञ्च कामतः।
त्रिरात्रेण विशुध्येत नग्नो न प्रविशेज्जलम् ॥७०
षष्ठान्नकालमासं वा संहिताजपमेव वा।
होमाश्च शाकलान्नित्यमपत्यानां विशोधनम् ॥७१
नीलं रक्तं वसित्वा तु ब्राह्मणो वस्त्रमेव हि।
अहोरात्रोषितः स्नातः पञ्चगव्येन शुध्यति ॥७२
वेदधर्मपुराणाश्च चण्डालस्य च भाषणम्।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यान्न ह्यन्या तस्य निष्कृतिः ॥७३
उद्बन्धनादिनिहतं संस्पृश्य ब्राह्मणः क्वचित्।
चान्द्रायणेन शुद्धः स्यात् प्राजापत्येन वा पुनः ॥७४
उच्छिष्टो यदि नाचान्तश्चण्डालादीन् स्पृशेद् द्विजः।
उच्छिष्ट स्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्धये ॥७५
चण्डालसूतकशवांस्तथा नारीं रजस्वलाम्।
स्पृष्ट्वा स्नायाद्विशुध्यर्थं तत्स्पृष्टान् पतितांस्तथा ॥७६
चण्डालसूतकशवैः संस्पृष्टं स्पर्शयेद् यदि।
प्रमादात् स्नात आचम्य जपं कृत्वा विशुध्यति ॥७७
अस्पृष्टस्पर्शनं कृत्वा स्नात्वा शुध्येद् द्विजोत्तमः।
आचमेत विशुध्यर्थं प्राह देवः पितामहः ॥७८
विज्ञानस्य तु विप्रस्य कदाचित् स्रवते गुदम्।
कृत्वा शौचं ततः स्नात्वा उपोष्य जुहुयाद् घृतम् ॥७९

चाण्डालन्तु शवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्यात् द्विजोत्तमः ।
दृष्ट्वा नभस्थं नक्षत्रमहोरात्रेण शुध्यति ॥८०

सुरां स्पृष्ट्वा द्विजः कुर्यात् प्राणायमत्रयं शुचिः ।
पलाण्डुं लशुनं चैव घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥८१

ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यहं सायं पयः पिबेत् ।
नभिरूर्द्ध्वस्य दष्टस्य तदेव त्रिगुणं भवेत् ॥८२

स्यादेतत्त्रिगुणं बाह्वोर्मूर्ध्नि स्यात्तु चतुर्गुणम् ।
स्नात्वा जपेत्तु गायत्रीं श्वभिर्दष्टो द्विजोत्तमः ॥८३

पञ्चयज्ञानकृत्वा तु यो भुङ्क्ते प्रत्यहं गृही ।
अनातुरस्य निधनं कृच्छ्राद्धेन विशुध्यति ॥८४

आहिताग्ने रुपस्थानं यः कुर्यान्न तु पर्वणि ।
ऋतौ गच्छेत् न भार्यायां सोऽपि कृच्छ्रार्द्धमाचरेत् ॥८५

विना द्विरप्सु वा कुर्याच्छरीरं सन्निवेशवते ।
सचैलो जलमाप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति ॥८६

गायत्र्यष्टसहस्रन्तु त्र्यहं चोपवसेद् गृही ।
अनुगच्छेच्च यः शूद्रं प्रेतभूतं द्विजोत्तमः ॥८७

गायत्र्यष्टसहस्रन्तु जपं कुर्यान्नदीषु च ।
अकृत्वा शपथं विप्रो विप्रस्य विधिसंयुते ॥८८

मृषैव यावकान्नेत्रे कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम् ।
पंक्तौ विषमदानञ्च कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ॥८९

छायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद् घृतम् ।
रक्षेदादित्यमशुचिं दृष्ट्वाग्नीन्द्रजमेव च ॥९०

मानुष्यास्थि च संस्पृष्ट्वा स्नानमेव विशुध्यति।
कृत्वाप्यध्ययनं विप्रश्चरेद्भिक्षानुवत्सरम् ॥९१
कृतघ्नो ब्राह्मणगृहे पञ्चसम्वत्सरं व्रती।
हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारन्तु गरीयसः ॥९२
स्नात्वाचम्य ततः शेषं प्रणिपत्य प्रसादयेत्।
ताडयित्वा तृणेनैव कर्णं बद्ध्वा च वाससा ॥९३
विवादे परिनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्।
अवगूह्य चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्रनिपातने ॥९४
कृच्छ्रातिकृच्छ्रः कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्।
गुरोराक्रोशने चैव कृच्छ्रं कुर्य्याद्विशोधनम् ॥९५
एकरात्रं द्विरात्रं वा तत्पापस्यापनुत्तये।
देवर्षीणामभिमुखं ष्ठीवताक्रोशनाकृते ॥९६
उलूकादि जनुर्जित्वा दातव्यञ्च हिरण्यकम्।
देवोद्यानेन यः कुर्य्यान्मूत्रोच्चारं सकृद् द्विजः ॥९७
छिन्द्याच्छिश्नन्तु शुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्।
देवतायतने मूत्रं कृत्वा देहाद् द्विजोत्तमः ॥९८
शिश्नस्योत्कृन्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत्।
देवतानामृषीणाञ्च वेदानाञ्चैव कुत्सनम् ॥९९
कृत्वा सम्यक् प्रकुर्वीत प्राजापत्यं द्विजोत्तमः।
तैस्तु सम्भाषणं कृत्वा स्नात्वा देवान् समर्चयेत् ॥१००
स्त्री यदा बालभावेन महापापं करोति हि।
प्रायश्चित्तं व्रतस्यास्य पित्रा तद्व्रतचारिणीम् ॥१०१

उद्वहेदभिरूपान्तमन्यथा पतितस्तु सः।
अपि राजन्यकवये वार्षिकब्राह्मणोव्रतम् ॥१०२
तस्यान्ते वृषभैकेन सहस्रं गोदानमाचरेत्।

सर्पं हत्वा माषमात्रं दद्यात् सुवर्णरजतताम्रत्रपुसीसकांस्यासनामद्भिरेवमृत्स्नायुक्ताभिस्तेजसाश्चोच्छिष्टानां भस्मना त्रिः। प्रक्षालनं कनकरजतमणिशङ्खशुक्त्युपलानां वज्रविदलरज्जुचर्म्मणाश्चाद्भिः शौचमिति।

अपि चाण्डालश्वपचस्पृष्टे वा विण्मूत्र एव च।
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद् भुक्तोच्छिष्टः सदाचरेत् ॥१०३
पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाथ कस्यचित्।
तपोऽग्निहोत्रमन्त्रेषु न दोषः परिदेवने ॥१०४
अमावास्यायां यो ब्राह्मणं समुद्दिश्य पितामहम्।
ब्राह्मणीं स्त्रीं समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥१०५
अमावास्यां तिथिं प्राप्य यममाराधयेद्धवम्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१०६
कृष्णाष्टम्यां महादेवं तथा कृष्णचतुर्दशीम्।
संपूज्य ब्राह्मणमुखैः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१०७
त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम्।
दृष्ट्वैव प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः ॥१०८
सर्वत्र दानग्रहणे मुच्यते सोमयागतः।
शान्त्या च दक्षिणां गृह्णन् हिरण्यप्रतिमामपि ॥१०६
अयुतेनैव गायत्र्या मुच्यते सर्वपातकैः।

इत्यौशनस्मृतौ नवमोऽध्यायः।

समाप्ताचेयं-औशनसस्मृतिः।

ॐ तत्सत्।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

अथ

॥ बृहस्पतिस्मृतिः ॥

......〇〇〇......

श्रीगणेशाय नमः ।

तत्रादौसुवर्णपृथिवीदानफलमहत्ववर्णनम् ।

इष्ट्वा क्रतुशतं राजा समाप्तवरदक्षिणम् ।
मघवान् ! वाग्विदां श्रेष्ठं पर्य्यपृच्छद् बृहस्पतिम् ॥१
भगवन् केन दानेन सर्वतः सुखमेधते ।
यद्दत्तं यन्महार्घं च तन्मे ब्रूहि महातप ! ॥२
एवमिन्द्रेण पृष्टोऽसौ देवदेवपुरोहितः ।
वाचस्पतिर्महाप्राज्ञो बृहस्पतिरुवाच ह ॥३
सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वासव ! ।
एतत् प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४
सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिरत्नं च वासव ! ।
सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ॥५

फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां शस्यशालिनीम् ।
यावत् सूर्य्यकरा लोकास्तावत् स्वर्गे महीयते ॥६

यत्किञ्चित् कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः ।
अपि गोचर्म्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥७

दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डानि वर्त्तनम् ।
दश तान्येव विस्तारो गोचर्म तन्महाफलम् ॥८

सवृषं गोसहस्रं च यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम् ।
बालवत्सप्रसूतानां तद् गोचर्म इतिस्मृतम् ॥६

विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोवियुक्ताय जितेन्द्रियाय ।
यावन्मही तिष्ठति सागरान्ता तावत् फलं तस्य भवेदनन्तम् ॥१०

यथा वीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले ।
एवं कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमार्जिताः ॥११

यथाप्सु पतितः सद्य स्तैलविन्दुः प्रसर्पति ।
एवं भूमिकृतं दानं सश्ये सश्ये प्ररोहति ॥१२

अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् ॥१३

स नरः सर्वदो भूप यो ददाति वसुन्धराम् ।
यथा गौर्भरते वत्सं क्षारमुत्सृज्य क्षीरिणी ॥१४

एवं दत्ता सहस्राक्ष ! भूमिर्भरति भूमिदम् ।
शङ्खं भद्रासनं छत्रं चरस्थावरवारणाः ॥१५

भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरन्दर ! ।
आदित्यो वरुणो वह्निर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥१६

शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम् ।
आस्फोटयन्ति पितरः प्रहर्षन्ति पितामहाः ॥१७
भूमिदाता कुले जातः स नस्त्राता भविष्यति ।
त्रीण्याहुरति दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ॥१८
तारयन्ति हि दातारं सर्वात्पापादसंशयम् ।
प्रावृता वस्त्रदा यान्ति नग्ना यान्ति त्ववस्त्रदाः ॥१९
तृप्ता यान्त्यग्निदातारः क्षुधिता यान्त्यनन्नदाः ।
कांक्षन्ति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः ॥२०
गयां यो यास्यति पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ।
एष्टव्या बहवः पुत्राः यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥२१
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।
लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पाण्डुरः ॥२२
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ।
नीलः पाण्डुरलाङ्गूलस्तृणमुद्धरते तु यः ॥२३
षष्टिवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ।
यच्च शृङ्गगतम्पङ्कं कूलस्तिष्ठति चोद्धृतम् ॥२४
पितरस्तस्य नश्यन्ति सोमलोकं महाद्युतिम् ।
पृथोर्यदोर्दिलीपस्य नृगस्य नहुषस्य च ॥२५
अन्येषाञ्च नरेन्द्राणां पुनरन्या भविष्यति ।
बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ॥२६
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ।
यस्तु ब्रह्मघ्नः स्त्रीघ्नो वा यस्तु वै पितृघातकः ॥२७

गवां शतसहस्राणां हन्ता भवति दुष्कृती ।
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत्त वसुन्धराम् ॥२८
श्वविष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते ।
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तमेव नरकं व्रजेत् ॥२६
भूमिदो भूमिहर्त्ता च नापरं पुण्यपापयोः ।
ऊर्द्ध्वाधो वाऽवतिष्ठेत यावदाभूतसंप्लवम् ॥३०
अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता यः काञ्चनं गाञ्च महीञ्च दद्यात् ॥
षडशीति सहस्राणां योजनानां वसुन्धराम् ।
स्वतो दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ॥३२
भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति ।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥३३
सर्वेषामेव दानानां एकजन्मानुगं फलम् ।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥३४
यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
तस्य देहाद्वियुक्तस्य भयं नास्ति कदाचन ॥३५
अन्यायेन हृता भूमिर्यै नरैरपहारिता ।
हरन्तो हारयन्तश्च हन्युस्ते सप्तमकुलम् ॥३६
हरते हरयेद्यस्तु मन्दबुद्धिस्तमो वृतः ।
स बध्यो वारुणैः पाशैस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥३७
अ(सु)श्रुभिः पतितैस्तेषां दानानामपकीर्त्तनम् ।
ब्राह्मणस्य हृते क्षेत्रे हृतं त्रिपुरुषं कुलम् ॥३८

वापीकूपसहस्रेण अश्वमेधशतेन च ।
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न शुध्यति ॥३६

गामेकां स्वर्णमेकं वा भूमेरप्यर्द्ध मङ्गुलम् ।
रुन्धन्नरकमायाति यावदाभूतसंप्लवम् ।

हुतं दत्तं तपोऽधीतं यत्किञ्चिद्धर्मसञ्चितम् ॥४०
अर्द्धाङ्गुलस्य सीमाया हरणेन प्रणश्यति ।

गोवीथीं ग्रामरथ्याञ्च श्मशानं गोपितं तथा ॥४१
सम्पीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ।

ऊषरे निर्जले स्थाने प्रस्तं शस्यं विसर्जयेत् ॥४२
जलाधारश्च कर्तव्यो व्यासस्य वचनं यथा ।

पञ्च कन्यानृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ॥४३
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ।

हन्ति जाता नजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदेत्॥ ४४
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ।

ब्रह्मस्वे मा रतिं कुर्याः प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥४५
अनौषधमभेषज्यं विषमेतद्धलाहलम् ।

न विषं विषमित्याहुः ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥४६
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ।

लोहखण्डाश्मचूर्णं च विषञ्च ज्वरयेन्नरम् ॥४७
ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमान् ज्वरयिष्यति ।

मन्युप्रहरणा विप्रा राजानः शस्त्रपाणयः ॥४८

शस्त्रमेकाकिनं हन्ति विप्रमन्युः कुलक्षयम् ।
मन्युप्रहरणा विप्रा श्चक्रप्रहरणो हरिः ॥४६

चक्रात्तीव्रतरो मन्युस्तस्माद्विप्रं न कोपयेत् ।
अग्निदग्धाः प्ररोहन्ति सूर्यदग्धास्तथैव च ॥५०

मन्युदग्धस्य विप्राणामङ्कुरो न प्ररोहति ।
अग्निर्दहति तेजसा सूर्यो दहति रश्मिभिः ॥५१
राजा दहति दण्डेन विप्रो दहति मन्युना ।
ब्रह्मस्वेन तु यत् सौख्यं देवस्वेन तु या रतिः ॥५२
तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मविनाशकम् ।
ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य च यद्धनम् ॥५३
गुरुमित्रहिरण्यञ्च स्वर्गस्थमपि पीडयेत् ।
ब्रह्मस्वेन तु यच्छिद्रं तच्छिद्रं न प्ररोहति ॥५४
प्रच्छादयति तच्छिद्रमन्यत्र तु विसर्पति ।
ब्रह्मस्वेन तु पुष्टानि साधनानि बलानि च ॥५५
संग्रामे तानि लीयन्ते सिकतासु यथोदकम् ।
श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ! ॥५६
सन्तुष्टाय विनीताय सर्वभूताहिताय च ।
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥५७
ईदृशाय सुरश्रेष्ठ ! यद्दत्तं हि तदक्षयम् ।
आमपात्रे यथान्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥५८
विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं विनश्यति ।
एवं गाश्च हिरण्यञ्च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥५६

अविद्वान् प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ।
यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः ॥६०
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ।
कुलं तारयते धीरः सप्त सप्त च वासव ! ॥६१
यस्तडाकं नवं कुर्य्यात् पुराणं वाऽपि खानयेत् ।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गे लोके महीयते ॥६२
वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च ।
पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मौलिकं फलम् ॥६३
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव ! ।
स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥६४
एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां राजसत्तम !
कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराण्यपि ॥६५
दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान् स भवेन्नरः ।
प्रोक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधाञ्च विन्दति ॥६६
कृत्वाऽपि पापकर्म्माणि यो दद्यादन्नमर्थिने ।
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥६७
भूमिर्गाव स्तथा दाराः प्रसह्य ह्रियते यदा ।
नचाऽऽवेदयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६८
निवेदितस्तु राजा वै ब्राह्मणैर्मन्युपीडितैः ।
तं न तारयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६९
उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ! ।
मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते क्रिमिः ॥७०

धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ।
रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते ॥७१

फलमूलाशनात् पूज्यं स्वर्गं सत्येन लभ्यते ।
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वत्र सुखमश्नुते ॥७२

गवाढ्यःशक्रदीक्षायाः स्वर्गगामी तृणाशनः ।
स्त्रिय स्त्रिषवणस्नायी वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥७३

नित्यस्नायी भवेदर्कः सन्ध्ये द्वे च जपन् द्विजः ।
न तत्साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशके ॥७४

अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते ।
रत्ना(स्ना)नां प्रतिसंहारे पशून् पुत्रांश्च विन्दति ॥७५

नाके चिरं स वसते उपवासी च यो भवेत् ।
सततं चैकशायी यः स लभेदीप्सितांङ्गतिम् ॥७६

वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपाश्रितः ।
अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्युः सर्वकामगमास्तथा ॥७७

उपवासश्च दीक्षाश्च अभिषेकश्च वासव ! ।
कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥६८

अधीत्य सर्ववेदान् वै सद्यो दुःखात् प्रमुच्यते ॥६६

पावनं चरते धर्मं स्वर्गे लोके महीयते ॥८०

बृहस्पति मतं पुण्यं ये पठन्ति द्विजातयः ।
चत्वारि तेषां वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥८१

इति बृहस्पतिप्रणीतं धर्म्मशास्त्रं सम्पूर्णम् ।

समाप्ताचेयं, बृहस्पतिस्मृतिः ।

ॐतत्सत् ।

॥ अथ ॥

-॥ लघुव्याससंहिता ॥-

——:❀❀❀:——

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

—:❀::❀:—

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ सफलं स्नानविधि वर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

अहन्यहनि कर्तव्यं कर्माणां हि क्रमाद्विधिम् ।
ब्राह्मे मुहुर्ते उत्थाय धर्मार्थावनुचिन्तयेत् ॥१

कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेवच ।
ऊषः काले तु संप्राप्ते कृत्वाचावश्यकं बुधः ॥२

स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि ।
प्रातः स्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः ॥३

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रातःस्नानं समाचरेत् ।
प्रातः स्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥४

ऋषीणां कुर्वतां नित्यं प्रातःस्नानं न संशयः ।
मुखे सुप्तस्य सततं लालानित्यं स्रवन्ति हि ॥५
ततो नैवाचरेत्कर्माण्यकृत्वा स्नानमादितः ।
अलक्ष्मी कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तनम् ॥६
प्रातःस्नानेन पूयन्ते सर्वपापान्न संशयः ।
न हि स्नानं विना पुंसां प्राशस्त्यं कर्मसु स्मृतम् ॥७
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात् स्नानं समाचरेत् ।
अशक्तोऽवशिरस्कं वा स्नानमात्रं विधीयते ॥८
आर्द्रेण वाससा चाङ्गमार्जनं कापिलं स्मृतम् ।
अप्राशस्त्ये समुत्पन्ने स्नानमेव समाचरेत् ॥९
ब्राह्म्यादीन्यथवाशक्तौ स्नानान्याहुर्मनीषिणः ।
ब्राह्ममाग्नेय मुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च ॥१०
वारुणं यौगिकं चैव सदा स्नानं प्रकीर्तितम् ।
ब्राह्मं तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकविन्दुभिः ॥११
आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ।
यत्तु सातपवर्षेण तत्त स्नानं दिव्यमुच्यते ॥१२
वारुणश्चावगाहश्च मानसश्चात्मवेदनम् ।
यौगिकं स्नानमाख्यातं योगोऽयं विष्णुचिन्तनम् ॥१३
आत्मतीर्थमिदं ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ।
मनःशुद्धिकरं पुंसां नित्यं तत् स्नानमाचरेत् ॥१४
शक्तश्चेद्वारुणं विद्वानप्राशस्त्ये तथैव च ।
प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठञ्च भक्षयित्वा विधानतः ॥१५

आचम्य प्रयतो नित्यं प्रातःस्नानं समाचरेत् ।
मध्याङ्गुलिसमस्थौल्यं द्वादशाङ्गुलिसम्मितम् ॥१६
सत्वचन्दन्तकाष्ठं स्यात्तस्याग्रेण तु धावयेत् ।
क्षीरवृक्षसमूद्भूतं मालिनीसम्भवं शुभम् ॥१७
अपामार्गश्च विल्वश्च करवीरं विशेषतः ।
वर्जयित्वा निषिद्धानि गृहीत्वैकं यथोदितम् ॥१८
अपहृत्य दिनं पापं भक्षयित्वा विधानवित् ।
आचम्य प्रयतोनित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत् ॥१६
नोत्पादयेद्दन्तकाष्ठमङ्गुल्या धावयेत् क्वचित् ।
प्रक्षाल्य भक्त्या तर्जन्या शुचौ देशे समाहितः ॥२०
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवान् ऋषीन् पितृगणान् क्रमात् ।
आचम्य मन्त्रवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ॥२१
मार्जनं वारुणैर्मन्त्रैरात्मानं सकुशोदकैः ।
आपोहिष्ठादिव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैस्तथा ॥२२
ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम् ।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद्भास्करं प्रति तन्मनाः ॥२३
प्राक् तु तेन समासीनो दर्भेषु सुसमाहितः ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति श्रुतिः ॥२४
या सन्ध्या सा जगत्सृष्टिस्थितिसंयमकारिणी ।
ऐश्वरी तु पराशक्ति स्तत्र यत्र समुद्भवा ॥२५
सवितु र्मण्डलगतां गायत्रीं वै जपेद्बुधः ।
प्राङ्मुखः प्रयतो विप्रः सन्ध्योपासन माचरेत् ॥२६

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्य मनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलमाप्नुयात् ॥२७
अनन्यचेतसो शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः।
उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वं पराङ्गतिम् ॥२८
योऽन्यतः कुरुते यत्नं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः।
विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम् ॥२९
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन सन्ध्योपासं समाचरेत्।
उपासितो भवेत्तेन देवयोगतनुः परः ॥३०
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
गायत्रीं वै जपेद्विद्वान् ब्राह्मणः प्रयतः स्थितः ॥३१

इति लघुव्यासस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः।

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

अथ कर्तव्यकर्मविशेषवर्णनम्।

अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि।
अग्निं प्रज्वाल्य विधिवत् जुहुयाज्जातवेदसम् ॥१
ऋत्विक् पुत्रोऽथवा पत्नी शिष्योऽपि च सहोदरः।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयाद्वा यथाविधि ॥२
पवित्रपाणिः शुद्धात्मा शुद्धाम्बरधरोऽपरः।
अनन्यमानसो वह्नौ जुहुयात्संयतेन्द्रियः ॥३

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः ।
नाक्षयस्तद्भवेत्सर्वं नेहामुत्र फलप्रदम् ॥४

देवतादीन्नमस्कुर्यादुपहारं निवेदयेत् ।
दद्यात्पुष्पादिकां स्तेषां वृद्धांश्चैवाभिवादयेत् ॥५

गुरूञ्चैवाप्युपासीत हितं तस्य समाचरेत् ।
वेदाभ्यासस्ततः कुर्यात्प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः ॥६

वेदमध्यापयेच्छिष्यान् धारयेच्च विपाठयेत् ।
अपेक्षेत च शास्त्राणि मन्वादीनि द्विजोत्तमाः ! ।
वैदिकान्नियमान्वेदान्वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥७

उपेयादीश्वरञ्चैव योगक्षेमार्थसिद्धये ।
साधयेद्विविधानर्थान् कुटुम्बार्थे तथैव च ॥८

ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।
पुष्पाक्षतान्कुशतिलान् गोमयं गन्धमेव च ॥९

नदीषु देवखातेषु तटाकेषु सरित्सु च ।
स्नानं समाचरेन्नित्यं नदीप्रस्रवणेषु च ॥१०

परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वै कदाचन ।
पञ्च पिण्डान् समुद्धृत्य स्नायाद्वा सम्भवात् पुनः ॥११

मृदैकया शिरः क्षाल्य द्वाभ्यां नाभे स्तथोपरि ।
अतश्चतसृभिः कार्यं पादौ षड्भि स्तथैव च ॥१२

मृत्तिका च समाविष्टा स्वाद्रामलकमात्रतः ।
गोमयस्य प्रमाणं तत् तेनाङ्गं लेपयेत्ततः ॥१३

लेपयेदथतीरस्थस्तल्लिङ्गेनैव मन्त्रतः।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत् ततः स्नायात्समाहितः ॥१४
अभिमन्त्र्य जलर्मन्त्रैरब्लिङ्गैर्वारुणैः शुभैः।
आपो नारायणोद्भूता स्नानेवास्यायनं पुनः ॥१५
तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद्बुधः।
प्रोक्ष्यसोङ्कारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये ॥१६
आचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्।
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ॥१७
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योती रसोऽमृतम्।
द्विपदां वा त्रिरभ्यस्येद्व्याहृतिं प्रणवादिकाम् ॥१८
सावित्रीं वा जपेद्विद्वान् स्तथैवाप्यघमर्षणम्।
ततः सन्मार्जनं कुर्यादापोहिष्ठामयोभुवः ॥१६
इदमापः प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च।
ततोऽभिमन्त्र्य तत्तीर्थमापोहिष्ठादिमन्त्रकैः ॥२०
अन्तर्गत जलेमग्नो जपेत् त्रिरघमर्षणम्।
द्विपदां वाथ गायत्रीं तद्विष्णोः परमम्पदम् ॥२१
आवर्त्तयेद्वा प्रणवं देवं वा संस्मरेद्धरिम्।
द्विपदोहि परो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठितः ॥२२
अन्तर्जलात्त्रिरावृत्या सर्वपापैः प्रमुच्यते।
आपः पाणौ समादाय जप्त्वा वा मार्जने कृते ॥२३
विन्यस्य मूर्ध्नि तत्तोयं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपाप प्रणोदनः ॥२४

तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपाप प्रणोदनम्।
अथोपतिष्ठेतादित्य मूर्ध्वं पुष्पाञ्जलान्वितम् ॥२५
प्रक्षिप्य देवमादित्यं ऋग्यजुः सामरूपिणम्।
उदित्यश्चित्रमित्येतत् तच्चक्षुरितिमन्त्रतः ॥२६
हंसः शुचिषु इत्येतत्सावित्र्या च विशेषतः।
अन्यैश्च वैदिकैर्मन्त्रैः सर्वपाप प्रणाशनैः ॥२७
सावित्रीं वै जपेत्पश्चाज्जपयज्ञः प्रकीर्तितः।
विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च ॥२८
तिष्ठन् तदेक्षमाणोऽर्कं जपं कुर्यात्समाहितः।
आसीनः प्राङ्मुखो नित्यं जपं कुर्याद्यथाविधि ॥२६
स्फटिकेन्द्राक्षपद्माक्षैः पत्र दीप कुरुक्षकैः।
कर्तव्या त्वक्षमाला स्यात् विशिष्टा चोत्तरोत्तरा ॥३०
जपकाले न भाषेत नाङ्गानि चालयेत्तथा।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान्वै न प्रकाशयेत् ॥३१
गुह्यका राक्षसाः सिद्धा हरन्ति प्रसभं हि तत्।
एकान्ते तु शुचौ देशे तस्माज्जप्यं समाचरेत् ॥३२
चण्डालाशुद्धपतितान् दृष्ट्वाचम्य पुनर्जपेत्।
आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने ॥३३
सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानांश्च शक्तितः।
आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् ॥३४
ततः सन्तर्पयेद्देवान् ऋषीन् पितृगणान् क्रमात्।
आदौ ॐकार मुच्चार्य नाम्नोऽन्ते तर्पयामि च ॥३५

देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः ।
पितॄन् तिलोदकैश्चैव विधिना तर्पयेद्बुधः ॥३६

अपसव्येन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।
देवर्षीं स्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितॄन् ॥३७

यज्ञोपवीती देवानां निवीति ऋषितर्पणे ।
प्राचीनावीति पित्र्येषु स्वेन तीर्थेन भाषितम् ॥३८

निष्पीडयव तु वस्त्रञ्च समाचम्य यथाविधि ।
यैर्मन्त्रैरर्चयेद्देवान् पुष्पैः पत्रैस्तथाम्बुभिः ॥३६

ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यन्तथैव मधुसूदनम् ।
अन्यांश्चाभिमतान् देवान् पूजयेद्भक्तितो द्विजः ॥४०

प्रदद्याद्वाथ पुष्पाणि विन्यसेच्च पृथक् पृथक् ।
न विष्ण्वाराधनात् पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ॥४१

तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम् ।
तद्विष्णोरितिमन्त्रेण सूक्तेनापौरुषेण च ॥४२

नैताभ्यां सदृशो मन्त्रो वेदेषूक्तश्चतुर्ष्वपि ।
निवेदयित्वा चात्मानं विमलन्तत्र तेजसि ॥४३

तदात्मा तन्मनः शान्तः तद्विष्णोरितिमन्त्रतः ।
अथवा देवमीशानभगवन्तं सनातनम् ॥४४

आराधयेन्महेशानं महादेवं महेश्वरम् ।
मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः ॥४५

ईशाने नाथ वा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहितः ।
पुष्पैः पत्रैरथाद्भिर्वा चन्दनाद्यैर्महेश्वरम् ॥४६

अथोनमः शिवायेति मन्त्रेणानेन वाचयेत्।
नमस्कुर्यान्महादेव ममृतं परमेश्वरम् ॥४७

निवेदयित्वा स्वात्मानं यो ब्रह्माणमतःपरम्।
प्रदक्षिणन्ततः कुर्यात्ततो ब्रह्माणि वै जपेत् ॥४८

ध्यायेत देवमीशानं व्योममध्यगतं शुभम्।
अथवालोकयेदर्कं हंसः शुचिषदित्यृचा ॥४६

कुर्यात् पञ्चमहायज्ञान् गृहङ्गत्वा समाहितः।
देवयज्ञं पितृयज्ञम्भूतयज्ञन्तथैव च ॥५०

मनुष्यं ब्रह्मयज्ञञ्च पञ्चयज्ञान् प्रचक्षते।
यदि स्यात्तर्पणादर्वाक् ब्रह्मयज्ञः कृतो न हि।
कृत्वामनुष्य यज्ञं हि ततः स्वाध्याय मारभेत् ॥५१

अग्नेः पश्चिमतो देशे भूतयज्ञान्तरेऽथवा।
कुशपूतैः समासीनं कुशपाणिः समाहितः ॥५२

श्रौताग्नौ लौकिकेचापि जले भूम्या मथापिवा।
वश्वदेवश्च कर्त्तव्यो वेदयज्ञः स संस्कृतः ॥५३

यदि स्याल्लौकिके पक्वं तदन्नं तत्र हूयते।
शालाग्नौ तत्रचेदग्नौ विधिरेषः सनातनः ॥५४

देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद्भूत बलिं हरेत्।
श्वभ्यश्च श्वपदेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ॥५५

दद्याद्भूमा भूत बलिं क्रिमिभ्योऽथ द्विजोत्तमः।
सायन्तनस्य सिद्धस्य पक्वमन्नं बलिं हरेत् ॥५६

वैश्वदेवं विनार्थेन सायम्प्रातर्विधीयते ।
एकन्तु भोजयेद्विप्रं पितॄनुद्दिश्य यत्सदा ॥५७
नित्यश्राद्धं तदुद्दिष्टं पितृयज्ञो गतिप्रदः ।
उद्धृत्य वाथवाशक्तः किञ्चिदन्नं समाहितः ॥५८
वेदार्थ तत्व विदुषे द्विजायै वोप पादयेत् ।
पूजयेच्चासनं नित्यं नमस्येदर्चयेच्च तम् ॥५६
मनोवाक्कर्मभिः शान्तमागतं स्व गृहं गतम् ।
हन्तकार मथाग्रं वा भिक्षां वा शक्तितो द्विजः ॥६०
दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम् ।
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमग्रं तस्य चतुष्टयम् ॥६१
पुष्कलं हन्तकारस्यात्तच्चतुर्गुण मुत्तमम् ।
गोदोह कालमात्रं वै प्रतीक्ष्यं ह्य तिथिं स्वयम् ॥६२
अभ्यागतान्यथाशक्ति भोजयेदतिथिं सदा ।
आदत्वा देवता भूत भृत्या तिथि पितृष्वपि ॥६३
भुञ्जीत चेत्समूढात्मातिर्यग्योनिश्च गच्छति ।
वेदाभ्यासोऽन्वहंशक्त्या महायज्ञक्रिया क्रमाः ॥६४
नाशयन्त्याशु पापानि वेदानामर्चनं तथा ।
यो मोहादथवा लोभादकृत्वा देवतार्चनम् ॥६५
भुङ्क्ते स यानि नरकान् शूकरेष्वभिजायते ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कृत्वा कर्माणि वै शनैः ॥६६
भुञ्जीत स्वजनैः सार्धं स याति परमाङ्गतिम् ।
प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ।

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुंक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखोभुङ्क्ते ऋणं भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥६७
आसीनस्त्वासनेशुद्धे भूम्यां पादौ निधाय च ।
उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः ॥६८
पश्चाद्र्रोभोजनं कुर्य्यात् भूम्यां पादौ निधाय च ।
उपलिप्त शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वै करौ ॥६९
आर्द्रवागाननोभूत्वा पश्चाद्र्रोभोजनञ्चरेत् ।
महाव्याहृतिभिश्चान्नं परिधायोदकेन तु ॥७०
अमृतोपस्तरणमसीत्यापोशनक्रियाञ्चरेत् ।
स्वाहा प्रणवसंयुक्तं प्राणायान्नाहुतिं ततः ॥७१
अपानाय ततोहुत्वा व्यानाय तदनन्तरम् ।
उदानाय ततोहुत्वा समानायेति पञ्चमम् ॥७२
विज्ञाय चार्थमेतेषां जुहुयादात्मवान् द्विजः ।
शेषमन्नं यथाकामं भुञ्जीत व्यञ्जनैर्युतम् ॥७३
ध्यात्वा तन्मनसा देवमात्मानं वै प्रजापतिम् ।
अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टाज्जलं पिबेत् ॥७४
आचम्याङ्गुष्ठमात्रेण पादाङ्गुष्ठे तु दक्षिणे ।
निधापयेद्धस्तजल मूर्ध्वहस्तः समाहितः ॥७५
हुत्वानुमन्त्रणं कुर्य्याच्छ्रद्धायामिति मन्त्रतः ।
अथाक्षरेण स्वात्मानं योजयेत् ब्रह्मणेति हि ॥७६
सर्वेषामेव योगानामात्मयोगः परं स्मृतः ।
योगेन विधिना कुर्य्यात् स याति ब्रह्मणः पदम् ॥७७

यज्ञोपवीती भुञ्जीत सुगन्धालङ्कृतोत्तरम्।
सायम्प्रात(दिवारात्र्युपलक्षणं)स्तु भुञ्जीत विशेषेण समाहितम् ॥७८

नाद्यात्सूर्य्यग्रहात्पूर्वं मह्निसायं शशिग्रहात्।
ग्राहकाले च नाश्नीयात् स्नात्वाश्नीयात्प्रमुक्तयोः ॥७६

अमुक्तयोरस्तगयोरद्याद्दृष्ट्वा परेऽहनि।
नाश्नीयात्प्रेक्षमाणाना मप्रदायापि दुर्गतः ॥८०

न यज्ञशिष्टादन्यत्वात्कुलो मान्यो ममातुरः।
आत्मार्थं भोजनं यस्य सुखार्थं यस्य मैथुनम् ॥८१

वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम्।
यो भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यस्तु भुङ्क्ते विदिङ्मुखः ॥८२

सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम्।
नार्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक् ॥८३

न च भिन्नासनगतो न शयान स्थितोऽपि वा।
नोपानत्पादुकी चापि न च संविलपन्नपि ॥८४
भुङ्क्ते मुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत्।
इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थ मुपबृंहयेत् ॥८५
ततः सन्ध्या मुपासीत पूर्वोक्त विधिना द्विजः।
आसीनस्तु जपेद्देवीं गायत्रीं पश्चिमाम्प्रति ॥८६
नानुतिष्ठति यः पूर्वामुपास्ते न च पश्चिमाम्।
स शूद्रेण समोलोके सर्वकर्म विगर्हितः ॥८७
हुत्वाग्नौ विधिवन्मन्त्रै भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम्।

विसृज्य बान्धवजनं शपेच्छुष्कपदो निशि।
नोत्तराभि मुखः सुप्यात् पश्चिमाभिमुखो न च ॥८८
अवाङ्मुखो न नग्नो वा न च भिन्नासने क्वचित्।
न भग्नायान्तु खट्वायां शून्यागारे तथैव च ॥८९
इत्येव मखिलं प्रोक्त महन्यहनि वै पुरा।
ब्राह्मणोक्तं कृत्यजात मपवर्ग फलप्रदम् ॥९०
नास्तिक्यादथवालस्यात् ब्राह्मणो न करोति यः।
स याति नरकान् घोरान् शूकरेष्वभि जायते ॥९१
नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाश्रमधिकं स्वकम्।
तस्मात्सर्व्वाणि भूतानि मुक्तये परमेष्ठिनः ॥९२

लघुव्यासस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः।

इति लघुव्याससंहिता समाप्ता।

ॐ तत्सत्।

॥ अथ ॥

॥ (वेद) व्यासस्मृतिः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ धर्माचरणादेशप्रयुक्त-वर्ण-षोडशसंस्कारवर्णनम् ।

वाराणस्यां सुखासीनं वेदव्यासं तपोनिधिम् ।
पप्रच्छुर्मुनयोऽभ्येत्य धर्मान् वर्णव्यवस्थितान् ॥१

स पृष्टः स्मृतिमान् स्मृत्वा स्मृतिं वेदार्थगर्भिताम् ।
उवाचाथ प्रसन्नात्मा मुनयः श्रूयता मिति ॥२

यत्र यत्र स्वभावेन कृष्णसारो मृगः सदा ।
चरते तत्र वेदोक्तो धर्मो भवितु मर्हति ॥३

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥४

ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तधर्मयोग्यास्तु (ते नराः) नेतरे ॥५

शूद्रोवर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ।
वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥६

विप्रवद्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु विप्रवत्।
जातकर्माणि कुर्वीत ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥७
वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत्।
अधमादुत्तमायान्तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥८
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालो धर्मवर्जितः।
कुमारीसम्भवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥९
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालस्त्रिविधः स्मृतः।
वर्द्धकी नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः ॥१०
वणिक्किरातकायस्थमालाकार कुटुम्बिनः।
एते चान्ये च बहवः शूद्रा भिन्नः स्वकर्मभिः।
चर्मकारो भटो भिल्लो रजकः पुष्करो नटः।
वरटोमेद्चण्डालदास(श)स्वपचकोलकाः ॥११
एतेऽन्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः।
एषां सम्भाषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥१२
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥१३
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥१४
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः।
नवताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं क्रियाः स्त्रियाः ॥१५
विवाहो मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश।
गर्भाधानं प्रथमतस्तृतीये मासि पुंसवः ॥१६

सीमन्तश्चाष्टमे मासि जाते जातक्रिया भवेत् ।
एकादशेऽह्नि नामार्कस्येक्षा मासि चतुर्थके ॥१७
षष्ठे मास्यान्नमश्नीयाच्चूडाकर्म कुलोचितम् ।
कृतचूडे च बाले च कर्णबेधो विधीयते ॥१८
विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्त्रमेकादशे तथा ।
द्वादशे वैश्यजातिस्तु व्रतोपनयनक्रिया ॥१९
तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्यात् द्विगुणाधिकः ।
वेदव्रतच्युतो व्रात्यः स व्रात्यस्तोममर्हति ॥२०
द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात् प्रथमं तयोः ।
द्वितीयं छन्दसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥२१
एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो बाल्यदोषतः ।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥२२
उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः ।
बिभृयाद्दण्डकौपीनोपवीताजिनमेखलाः ॥२३
पुण्येऽह्नि गुर्वनुज्ञातः कृतमन्त्राहुतिक्रियः ।
स्मृत्वोङ्कारञ्च गायत्रीमारभेद्वेदमादितः ॥२४
शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपि द्विजः ।
पठेत गुरुतः सम्यक् कर्म तद्दिष्टमाचरेत् ॥२५
ततोऽभिवाद्य स्थविरान् गुरूञ्चैव समाश्रयेत् ।
स्वाध्यायार्थं तदा यत्नः सर्वदा हितमाचरेत् ॥२६
नापक्षिप्तोऽपि भाषेत (विरज्येत) नोव्रजेत्ताडितोऽपि वा ।
विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनञ्चार्कवीक्षणम् ॥२७

तौर्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलङ्क्रियाम् ।
अञ्जनोद्वर्त्तनादर्शस्रग्विलेपनयोषितः ॥२८
वृथाटनमसन्तोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ।
ईषच्चलितमध्याह्ने ऽनुज्ञातो गुरुणा स्वयम् ॥२६
आलोलुपश्चरेद्भैक्षं व्रतिषूत्तमवृत्तिषु ।
सद्यो भिक्षान्नमादाय वित्तवत्तदुपस्पृशेत् ॥३०
कृतमाध्याह्निकोऽश्नीयादनुज्ञातो यथाविधि ।
नाद्यादेकान्नमुच्छिष्टं भुक्त्वा चाऽऽचामितामियात् ॥३१
नान्यद्भिक्षितमादद्यादापन्नो द्रविणादिकम् ।
अनिन्द्यामन्त्रितः श्राद्धे पैत्र्येऽद्याद्गुरुचोदितः ॥३२
एकान्न मप्यविरोधे व्रतानां प्रथमाश्रमी ।
भुक्त्वा गुरुमुपासीत कृत्वा सन्धुक्षणादिकम् ॥३३
समिधोऽग्नावादधीत ततः परिचरेद्गुरुम् ।
अधीत(शयीत)गुर्वनुज्ञातः प्रह्वश्च(प्रबुद्धः)प्रथमं गुरोः ॥३४
एवमन्वहमभ्यासी ब्रह्मचारी व्रतश्चरेत् ।
हितोपवादः प्रियवाक् सम्यग्गुर्वर्थसाधकः ॥३५
नित्यमाराधयेदेनमा समाप्तेः श्रुतिग्रहात् ।
अनेन विधिनाऽधीतो वेदमन्त्रो द्विजं नयेत् ॥३६
शापानुग्रहसामर्थ्यमृषीणाञ्च सलोकताम् ।
पयोऽमृताभ्यां मधुभिः साज्यैः प्रीणन्ति देवताः ॥३७
तस्मादहरहर्वेदमनध्यायमृते पठेत् ।
यदङ्गं तदनध्याये गुरोर्वचनमाचरेत् ॥३८

व्यतिक्रमादसम्पूर्णमनहंकृतिराचरेत् ।
परत्रेह च तद्ब्रह्म अनधीतमपि द्विजम् ।
यस्तूपनयनादेतदामृत्योर्व्रतमाचरेत् ॥३६
स नैष्ठिको ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।
उपकुर्व्वाणकोयस्तु द्विजः षड्विंशवार्षिकः ॥४०
केशान्तकर्मणा तत्र यथोक्तचरितव्रतः ।
समाप्य वेदान् वेदौ वा वेदं वा प्रसभं द्विजः ॥४१
स्नायीत गुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तोदितदक्षिणः ।

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे ब्रह्मचर्याधिकारो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

....

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ विवाहविधिवर्णनम् ।

एवं स्नातकतां प्राप्तो द्वितीयाश्रमकाङ्क्षया ।
प्रतीक्षेत विवाहार्थमनिन्द्यान्वयसम्भवाम् ॥१
अरोगादुष्टवंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम् ।
सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम् ॥२
अनन्यपूर्विकां लघ्वीं शुभलक्षणसंयुताम् ।
धृताधोवसनां गौरीं विख्यातदशपूरुषाम् ॥३
ख्यातनाम्नः पुत्रवतः सदाचारवतः सतः ।
दातुमिच्छोर्दुहितरं प्राप्य धर्मेण चोद्वहेत् ॥४

ब्राह्मोद्वाहविधानेन तदभावेऽपरो विधिः।
दातव्यैषा सदृक्षाय वयोविद्यान्वयादिभिः ॥५
पितृतत्पितृभ्रातृषु पितृव्यज्ञातिमातृषु।
पूर्वाभावे परो दद्यात् सर्वाभावे स्वयं व्रजेत् ॥६
यदि सा दातृवैकल्याद्रजः पश्येत् कुमारिका।
भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तदप्रदः ॥७
तुभ्यं दास्याम्यहमिति ग्रहीष्यामीति यस्तयोः।
कृत्वा समयमन्योन्यं भजते न स दण्डभाक् ॥८
त्यजन्नदुष्टां दण्ड्यः स्याद्दूषयंश्चाप्यदूषिताम्।
तावन्न दुष्टं दुष्टं च स्वार्थेभ्यो भेदयंश्च तत्।
ऊढायां हि सवर्णायामन्या वा काममुद्वहेत् ॥९
तस्यामुत्पादितः पुत्रो न सवर्णात् प्रहीयते ॥१०
उद्वहेत् क्षत्त्रियां विप्रो वैश्याञ्च क्षत्त्रियो विशाम्।
न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम् ॥११
नानावर्णासु भार्यासु सवर्णा सहचारिणी।
धर्म्या धर्मेषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु ॥१२
पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयम्भुवा।
पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः ॥१३
यावन्न विन्दते जायां तावदर्द्धो भवेत् पुमान्।
नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः ॥१४
गुर्वी सा भूभिवर्गस्य वोढुं नान्येन शक्यते।
यतस्ततोऽन्वहं भूत्वा स्ववशो बिभृयाच्च ताम् ॥१५

कृतदारोऽग्निपत्नीभ्यां कृतवेश्मा गृहं वसेत् ।
स्वकृत्यं वित्तमासाद्य वैतानाग्निं न हापयेत् ॥१६

स्मार्त्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु ।
कर्म कुर्यात् प्रतिदिनं विधिवत् प्रीतिपूर्वतः ॥१७

सम्यग्धर्मार्थकामेषु दम्पतिभ्यामहर्निशम् ।
एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः ॥१८

न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ।
भावतो ह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्रविधिः परः ॥१६

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ।
उत्थाप्य शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम ॥२०

मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य साग्निशालं स्वमङ्गनम् ।
शोधयेदग्निकार्याणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ॥२१

प्रोक्षण्यैरिति तान्येव यथास्थनं प्रकल्पयेत् ।
द्वन्द्वपात्राणि सर्वाणि न कदाचिद्वियोजयेत् ॥२२

शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत् ।
महानसस्य पात्राणि बहिः प्रक्षाल्य सर्वथा ॥२३

मृद्भिश्च शोधयेच्चुल्लीं तत्राग्निं विन्यसेत्ततः ।
स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसांश्च द्रविणानि च ॥२४

कृतपूर्वाह्णकार्या च स्वगुरूनभिवादयेत् ।
ताभ्यां भर्तृपितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबान्धवैः ॥२५

वस्त्रालङ्काररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ।
मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी ॥२६

छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु।
दासीवाऽऽदिष्टकार्येषु भार्या भर्त्तुः सदा भवेत् ॥२७
ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य तत्।
वैश्वदेवकृतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत् ॥२८
पतिञ्चैतदनुज्ञाता शिष्टमन्वाद्यमात्मना।
भुक्त्वा नयेदहःशेषमायव्ययविचिन्तया ॥२६
पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ॥३०
कृतान्नसाधना साध्वी सुभृशं भोजयेत् पतिम्।
नातितृप्त्या स्वयं भुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च ॥३१
आस्तीर्य साधुशयनं ततः परिचरेत् पतिम्।
सुप्ते पतौ तदभ्यासे स्वपेत्तद्गतमानसा।
अनग्ना चाप्रमत्ता च निष्कामा च जितेन्द्रिया ॥३२
नोच्चैर्वदेन्न परुषं न बहून् पत्युरप्रियम्।
न केनचित् विवदेच्च अप्रलापविलापिनी ॥३३
नचातिव्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी।
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्यावञ्चनञ्चातिमानिताम् ॥३४
पैशुन्यहिंसाविद्वेषमहाहङ्कारधूर्त्तताः।
नास्तिक्यसाहसस्तेयदम्भान् साध्वी विवर्जयेत् ॥३५
एवं परिचरन्ती सा पतिं परमदैवतम्।
यशः शमिह यात्येव परत्र च सलोकताम् ॥३६
योषितो नित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते।
रजोदर्शनतोदोषात् सर्वमेव परित्यजेत् ॥३७

सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जिताऽन्तर्गृहे वसेत् ।
एकाम्बरावृता दीना स्नानालङ्कारवर्जिता ॥३८
मौनिन्यधोमुखी चक्षुष्पाणिपद्भिरचञ्चला ।
अश्नीयात् केवलं भक्तं नक्तं मृण्मयभाजने ॥३६
स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ।
स्नायीत सा त्रिरात्रान्ते सचैलमुदिते रवौ ॥४०
विलोक्य भर्त्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ।
कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् ॥४१
रजोदर्शनतो याः स्यू रात्रयः षोडशर्त्तवः ।
ततः पुंबीजमाक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रे प्ररोहति ॥४२
चतस्रश्चाऽऽदिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत् ।
गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौष्णपित्रर्क्षराक्षसान् ॥४३
प्रच्छादितादित्यपथे पुमान् गच्छेत् स्वयोषितः ।
क्षामाऽलङ्कृदवाप्नोति पुत्रं पूजितलक्षणम् ॥४४
ऋतुकालेऽभिगम्यैवं ब्रह्मचर्ये व्यवस्थितः ।
गच्छन्नपि यथाकामं न दुष्टः स्यादनन्यकृत् ॥४५
भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौ भार्यापराङ्मुखः ।
सा त्ववाप्याऽन्यतो गर्भं त्याज्या भवति पापिनी ॥४६
महापातकदुष्टा च पतिगर्भविनाशिनी ।
सद्वृत्तचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः ॥४७
महापातकदुष्टोऽपि नाप्रतीक्ष्यस्तया पतिः ।
अशुद्धे क्षयमादूरं स्थितायामनुचिन्तया ॥४८

व्यभिचारेण दुष्टानां पतीनां दर्शनादृते।
धिक्कृतायामवाच्यायामन्यत्र वासयेत् पतिः ॥४९
पुनस्तामार्त्तवस्नातां पूर्ववद् व्यवहारयेत्।
धूर्त्ताञ्च धर्मकामघ्नीमपुत्रां दीर्घरोगिणीम् ॥५०
सुदुष्टां व्यसनासक्तामहितामधिवासयेत्।
अधिविन्नामपि विभुः स्त्रीणान्तु समतामियात् ॥५१
विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता।
पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ ॥५२
मृतं भर्त्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत्।
जीवन्ती चेत्त्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः ॥५३
सर्वावस्थासु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम्।
तदेवानुक्रमात् कार्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ॥५४
जाताः सुरक्षितायां ये पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः।
ये यजन्ति पितॄन् यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमहोदयः ॥५५
मृतानामग्निहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम्।
दाहयेदविलम्बेन भार्याञ्चात्र व्रजेत सा ॥५६

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे स्त्र्यधिकारोनाम द्वितीयोऽध्यायः।

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ सस्नानादिविधि पूर्वाह्णकृत्यवर्णनम् ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति कर्म त्रिधा मतम् ।
त्रिविधं (कम) तच्च वक्ष्यामि गृहस्थस्यावधार्यताम् ॥१
यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत् ।
आलोक्य मङ्गलद्रव्यं कर्माऽऽवश्यकमाचरेत् ॥२
कृतशौचो निषेव्याग्निं दन्तान् प्रक्ष्याल्य वारिणा ।
स्नात्वोपास्य द्विजः सन्ध्यां देवादींश्चैव तर्पयेत् ॥३
जुहोत्यनुदिते भानावित्येक उदिते रवौ ।
जपेदादित्यदेवत्यान्मन्त्रान्मन्त्रनियोगवित् ।
वेदवेदाङ्गशास्त्राणि इतिहासानि चाभ्यसेत् ।
अध्यापयेच्च सच्छिष्यान् सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥४
अलब्धं प्रापयेल्लब्ध्वा क्षणमात्रं समापयेत् ।
समर्थो हि समर्थेन नाविज्ञातः क्वचिद्वसेत् ॥५
सरित्सरसि वापीषु गर्तप्रस्रवणादिषु ।
स्नायीत यावदुद्धृत्य पञ्च पिण्डानि वारिणा ॥६
तीर्थाभावेऽप्यशक्त्यां वा स्नायात्तोयैः समाहृतैः ।
गृहाङ्गणगतस्तत्र यावदम्बरपीडनम् ॥७
स्नानमब्दैवतैः कुर्यात् पावनैश्चापि मार्ज्जनम् ।
मन्त्रैः प्राणांस्त्रिरायम्य सौरैश्चार्कं विलोकयेत् ॥८
तिष्ठन् स्थित्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत् ।
ऋचाश्च यजुषां साम्नामथर्वाङ्गिरसामपि ॥९

इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विजः।
शक्त्या सम्यक् पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥१०
स यज्ञदानतपसामखिलं फलमाप्नुयात्।
वेदेभ्योऽन्यत्र संतुष्टः स विप्रः शूद्रतामियात्।
तस्मादहरहर्वेदं द्विजोऽधीयीत वाग्यतः ॥११
धर्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषां शक्तितः पठेत्।
कृतस्वाध्यायः प्रथमं तर्पयेच्चाथ देवताः ॥१२
जान्वा च दक्षिणं दर्भैः प्रागग्रैः सयवैस्तिलैः।
पुरः क्षिप्तैः कराग्राभ्यां निर्गतैः प्राङ्मुखो द्विजः।
एकैकाञ्जलिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥१३
समजानुद्वयो ब्रह्मसूत्रहार उदङ्मुखः।
तिर्य्यग्दर्भैश्च वामाग्रैर्यवैस्तिलविमिश्रितैः ॥१४
अम्भोभिरुत्तरक्षिप्तः कनिष्ठामूलनिर्गतैः।
द्वाभ्यां द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां मनुष्यांस्तर्पयेत्ततः ॥१५
दक्षिणाभिमुखः सव्यं जान्वा च द्विगुणैः कुशैः।
तिलैर्जलैश्च देशिन्या मूलदर्भाद्विनिःसृतैः ॥१६
दक्षिणांसोपवीतः स्यात् क्रमेणाञ्जलिभिस्त्रिभिः।
सन्तर्पयेद्दिव्यपितृंस्तत्परांश्च पितॄन् स्वकान् ॥१७
स्वधा वर्जन्त्यमानेवमेक इच्छन्ति तर्पणे।
द्विजतिजीवत्पितृकोऽप्येतानन्यांश्च तर्पयेत् ॥
तर्पयेद्दिव्यपितॄंश्च पितृपूर्वान्पितॄन्स्वकान्।
मातृमातामहांस्तद्वत्त्रीनेवं हि त्रिभिस्त्रिभिः।
मातामहाश्च येऽप्यन्ये गोत्रिणो दाहवर्जिताः ॥१८
तानेकाञ्जलिदानेन तर्पयेच्च पृथक् पृथक्।
असंस्कृतप्रमीता ये प्रेतसंस्कारवर्जिताः ॥१९

वस्त्रनिष्पीड़नाम्भोभिस्तेषामाप्यायनम्भवेत् ।
अतर्पितेषु पितृषु वस्त्रं निष्पीड़येच्च यः ॥२०

निराशाः पितरस्तस्य भवन्ति सुरमानुषैः ।
पयोदर्भस्वधाकारगोत्रनामतिलैर्भवेत् ॥२१

सुदत्तं तत्पुनस्तेषामेकेनापि वृथा विना ।
अन्यचित्तेन यद्दत्तं यद्दत्तं विधिवर्जितम् ॥२२

अनासनस्थितेनापि तज्जलं रुधिरायते ।
एवं सन्तर्पिताः कामैस्तर्पकांस्तर्पयन्ति च ॥२३

ब्रह्मविष्णुशिवादित्यमित्रावरुणनामभिः ।
पूजयेल्लक्षितैर्मन्त्रैर्जलमन्त्रोक्तदेवताः ॥२४

उपस्थाय रवेः काष्ठां पूजयित्वा च देवताः ।
ब्रह्माग्नीन्द्रौषधीजीवविष्णुनामहृतांहसाम् ॥२५
अपां यत्तेति सत्कार्यं नमस्कारैः स्वनामभिः ।
कृत्वा मुखं समालभ्य स्नानमेवं समाचरेत् ॥२६

ततः प्रविश्य भवनमावसथ्ये हुताशने ।
पाकयज्ञांश्च चतुरो विदध्याद्विधिवद् द्विजः ॥२७

अनाहितावसथ्याग्निरादायान्नं घृतप्लुतम् ।
शाकलेन विधानेन जुहुयाल्लौकिकेऽनले ॥२८

व्यस्ताभिर्व्याहृतीभिश्च समस्ताभिस्ततः परम् ।
षड्भिर्देवकृतस्येति मन्त्रवद्भिर्यथाक्रमम् ॥२९

प्राजापत्यं स्विष्टकृतं हुत्वैवं द्वादशाऽऽहुतीः ।
ओङ्कारपूर्वः स्वाहान्तस्त्यागः स्विष्टविधानतः ॥३०

भुविदर्भान् समास्तीर्य्य बलिकर्म समाचरेत् ।
विश्वेभ्योदेवेभ्य इति सर्वेभ्यो भूतेभ्य एव च ॥३१

भूतानां पतये चेति नमस्कारेण शास्त्रवित्।
दद्याद्बलित्रयञ्चाग्रे पितृभ्यश्च स्वधा नमः ॥३२

पात्रनिर्णेजनं वारि वायव्यां दिशि निःक्षिपेत्।
उद्धृत्य षोड़शग्रासमात्रमन्नं घृतोक्षितम्।
इदमन्नं मनुष्येभ्यो हन्तेत्युक्त्वा समुत्सृजेत्।
गोत्रनामस्वधाकारैः पितृभ्यश्चापि शक्तितः ॥३३

षड्भ्योऽन्नमन्वहं दद्यात् पितृयज्ञविधानतः।
वेदादीनां पठेत् किञ्चिदल्पं ब्रह्ममखाप्तये ॥३४

ततोऽन्यदन्नमादाय निर्गत्य भवनाद्बहिः।
काकेभ्यः श्वपचेभ्यश्च प्रक्षिपेद्ग्रासमेव च ॥३५

उपविश्य गृहद्वारि तिष्ठेद्यावन्मुहूर्तकम्।
अप्रमुक्तोऽतिथिं लिप्सुर्भावशुद्धः प्रतीक्षकः ॥३६

आगतं दूरतः (श्रान्ते) शान्तं भोक्तुकाममकिञ्चनम्।
दृष्ट्वा संमुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्रयार्चनैः ॥३७

पादधावनसम्मानाभ्यञ्जनादिभिरर्चितः।
त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥३८

कालागतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारो गृहागतः।
द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ।
विवाह्यस्नातकक्ष्माभृदाचार्यसुहृदृत्विजः ॥३९

अर्घ्या भवन्ति धर्मेण प्रतिवर्षं गृहागताः।
गृहागताय सत्कृत्य श्रोत्रियाय यथाविधि ॥४०

भक्त्योपकल्पयेदेकं महाभागं विसर्जयेत्,
विसर्जयेदनुव्रज्य सुतृप्तश्रोत्रियातिथीन्।
मित्रमातुलसम्बन्धिबान्धवान् समुपागतान् ॥४१
भोजयेद् गृहिणो भिक्षां सत्कृतां भिक्षुकोऽर्हति।
स्वाद्वन्नमश्नन्नस्वादु ददद्गच्छत्यधोगतिम् ॥४२
गर्भिण्यातुरभृत्येषु बालवृद्धातुरादिषु।
बुभुक्षितेषु भुञ्जानः गृहस्थोऽश्नाति किल्विषम् ॥४३
नाद्याद्गृध्येन्न पाकान्नं कदाचिदनिमन्त्रितः।
निमन्त्रितोऽपि निन्द्येन प्रत्याख्यानं द्विजोऽर्हति ॥४४
क्षुद्राभिशस्तवार्धुष्यवाग्दुष्टक्रूरतस्कराः।
क्रुद्धापविद्धबद्धोग्रवधबन्धनजीविनः ॥४५
शैलूषशौण्डिकोन्नद्धोन्मत्तव्रात्यव्रतच्युताः।
नग्ननास्तिकनिर्लज्जपिशुनव्यसनान्विताः ॥४६
कदर्य्यस्त्रीजितानार्य्यपरवादकृता नराः।
अनीशाः (अमित्रा)कीर्तिमन्तोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥४७
शयनासनसंसर्गवृत्तकर्मादिदूषिताः।
अश्रद्धधानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥४८
अभोज्यान्नाः स्युरन्नादो यस्य यः स्यात्स तत्समः।
नापितान्वयमित्रार्द्ध सीरिणो दासगोपकाः ॥४९
शूद्राणामप्यमीषान्तु भुक्त्वाऽन्नं नैव दुष्यति।
धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः ॥५०

स्ववृत्त्योपार्जितं मेध्यमकेशकृमिमक्षिकम्।
अश्वलीढमगोघ्रातमस्पृष्टं शूद्रवायसैः ॥५१
अनुच्छिष्टमसंदुष्टमपर्युषितमेव च।
अम्लानवाष्पमन्नाद्यमद्यान्नित्यं सुसंस्कृतम् ॥५२
कृसरापूपसंयावपायसं शष्कुलीति च।
नाश्नीयाद् ब्राह्मणो मांसमनियुक्तः कथञ्चन ॥५३
क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्नन् पतति द्विजः।
मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥५४
क्षत्त्रियो द्वादशोनं तत् क्रीत्वा वैश्योऽपि धर्मतः।
द्विजोजग्ध्वा वृथामांसं हत्वाऽप्यविधिना पशून् ॥५५
निरयेष्वक्षयं वासमाप्नोत्याचन्द्रतारकम्।
सर्वान् कामान् समासाद्य फलमश्वमखस्य च ॥५६
मुनिसाम्य मवाप्नोति गृहस्थोऽपि द्विजोत्तमः।
द्विजभोज्यानि गव्यानि माहिषाणि पयांसि च ॥५७
निर्दशासन्धिसम्बन्धिवत्सवन्तीपयांसि च।
अलावुशिग्रुकवकच्छत्राकलशुनानि च।
पलाण्डुश्वेतवृन्ताकरक्तमूलकमेव च ॥५८
गृञ्जनारुणवृक्षासृग्जन्तुगर्भ फलानि च।
अकालकुसुमादीनि द्विजोजग्ध्वैन्दवं चरेत् ॥५९
वाग्दूषितमविज्ञातमन्यपीड़ितकार्य्यपि।
भूतेभ्योऽन्नमदत्त्वा च तदन्नं गृहिणो दहेत् ॥६०
हैमराजतकांस्येषु पात्रेष्वद्यात् सदा गृही।
तदभावे साधुगन्ध(मेध्य)लोध्रद्रुमलतासु च ॥६१

पलाशपद्मपत्रेषु गृहस्थो भोक्तुमर्हति।
ब्रह्मचारी यतिश्चैव श्रेयोयद्भोक्तुमर्हति ॥६२

अभ्युक्ष्यान्नं नमस्कारैर्भुवि दद्याद्बलित्रयम्।
भूपतये भुवः पतये भूतानां पतये तथा ॥६३

अपः प्राश्य ततः पश्चात् पञ्चप्राणाहुतिःक्रमात्।
स्वाहाकारेण जुहुयाच्छेषमद्याद्यथासुखम् ॥६४

अनन्यचित्तो भुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्।
आतृप्तेरन्न मश्नीयादक्षुण्णां पात्रमुत्सृजेत् ॥६५

उच्छिष्टमन्नमुद्धृत्य ग्रासमेकं भुवि क्षिपेत्।
आचान्तः साधुसङ्गेन सद्विद्यापठनेन च ॥६६

वृत्तवृद्ध(पुरावृत्त)कथाभिश्चशेषाहमतिवाहयेत्।
सायं सन्ध्यामुपासीत हुत्वाऽग्निं भृत्यसंयुतः ॥६७

आपोशानक्रियापूर्वमश्नीयादन्वहं द्विजः।
सायमप्यतिथिः पूज्यो होमकालागतो(द्विजः)ऽनिशम् ॥६८

श्रद्धया शक्तितो नित्यं श्रुतं हन्यादपूजितः।
नातितृप्त उपस्पृश्य प्रक्षाल्य चरणौ शुचिः ॥६९

अप्रत्यगुत्तरशिराः शयीत शयने शुभे।
शक्तिमानुचिते काले स्नानं सन्ध्यां न हापयेत् ॥७०

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय चिन्तयेद्धितमात्मनः।
शक्तिमान् मतिमान् नित्यं वृत्तमेतत् समाचरेत् ॥७१

इति वेदव्यासीये धर्मशास्त्रे गृहस्थाह्निकोनाम तृतीयोऽध्यायः।

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ गृहस्थाश्रमप्रशंसापूर्वक तीर्थधर्म वर्णनम् ।

इति व्यासकृतं शास्त्रं धर्मसारसमुच्चयम् ।
आश्रमे यानि पुण्यानि मोक्षधर्माश्रितानि च ॥१
गृहाश्रमात् परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ।
सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥२
गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननुसूयकः ।
नित्यजापी च होमी च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥३
स्वदारे यस्य सन्तोषः परदारनिवर्तनम् ।
अपवादोऽपि नो यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥४
परदारान् परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ।
सर्व्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न नश्यति ॥५
गृहेषु सेवनीयेषु सर्वतीर्थफलं ततः ।
अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्ता भोगेन लिप्यते ॥६
प्रतिश्रयं पादशौचं ब्राह्मणानाञ्च तर्पणम् ।
न पापं संस्पृशेत्तस्य बलिं भिक्षां ददाति यः ॥७
पादोदकं पादघृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ।
यो ददाति ब्राह्मणेभ्यो नोपसर्पति तं यमः ॥८
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी ।
तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरोऽमृतम् ॥९

यत्फलं कपिलादाने कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे।
तत्फलं ऋषयः(पाण्डव)श्रेष्ठा विप्राणां पादशौ(ध)चने ॥१०
स्वागतेनाग्नयः प्रीता आसनेन शतक्रतुः।
पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥११
मातापित्रोः परं तीर्थं गङ्गा गावो विशेषतः।
ब्राह्मणात् परमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥१२
इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥१३
गङ्गाद्वारञ्च केदारं सन्निहत्यां तथैव च।
एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥१४
वर्णानामाश्रमाणाञ्च चातुर्वर्णस्य (पार्थिव) भो द्विजाः।
दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा व्यासेन भाषितम् ॥१५
यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने।
तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्याभिरक्षति ॥१६
यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥१७
किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः।
यद्वर्द्धयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशाश्वतम् ॥१८
अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥१६
यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये।
यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥२०

जीवन्ति जीविते यस्य विप्रा मित्राणि बान्धवाः ।
जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे को न जीवति ॥२१
क्रिमयः किं न जीवन्ति भक्षयन्ति परस्परम् ।
परलोकाविरोधेन यो जीवति स जीवति ॥
पशवोऽपि हि जीवन्ति केवलात्मोदरम्भराः ।
किं कायेन सुगुप्तेन (सुपुष्टेन) वलिना चिरजीविनः ॥२२
ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥२३
अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ।
दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति ॥२४
प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न सो (र्थः सनो) ऽमृतः ।
अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमोहि सः ॥२५
अनाहूतेषु यद्दत्तं यच्च दत्तमयाचितम् ।
भविष्यति युगस्यान्तस्तस्यान्तो न भविष्यति ॥२६
मृतवत्सा यथा गौश्च तृष्णा लोभेन दुह्यति ।
परस्परस्य दानानि लोकयात्रा न धर्मतः ॥२७
अदृष्टे चाशुभे (चाश्रुते) दानं भोक्ता चैव न दृश्यते ।
पुनरागमनं नास्ति तत्र दानमनन्तकम् ॥२८
मातापितृषु यद्दद्याद् भ्रातृषु श्वशुरेषु च ।
जायापत्येषु यद्दद्यात् सोऽनन्तः स्वर्गसंक्रमः ॥२९
पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते ।
भगिन्यां शतसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥३०
इन्दुक्षयः पिता ज्ञेयो माता चैव दिनक्षयः ।
संक्रान्तिर्भगिनी चैव व्यतीपातः सहोदरः ॥
अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणेभ्यो मुनीश्वर ।
आगमिष्यति यत् पात्रं तत्पात्रं तारयिष्यति ॥३१

किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित् पात्रं तपोमयम् ।
पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥३२

यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चाऽपि गुणान्वितः ।
गुणन्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥३३

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥३४

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥३५

सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ।
भोजने चैव दाने च हन्यात्त्रिपुरुषं कुलम् ॥३६

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥३७

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपश्च निर्जलः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥३८

ब्राह्मणेषु च यद्दत्तं यच्च वैश्वानरे हुतम् ।
तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम् ॥३६

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
सहस्रगुणमाचार्ये ह्यनन्तं वेदपारगे ॥४०

ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्रसंस्कारवर्जितः ।
जातिमात्रोपजीवी च स भवेद् ब्राह्मणः समः ॥४१

गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च ।
नाध्यापयति नाधीते स भवेद् ब्राह्मणब्रुवः ॥४२

अग्निहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः।
सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥४३
इष्टिभिः पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञै र्येन चेष्टं स इ(यि)ष्टवान् ॥४४
मीमांसते च यो वेदान् षड्भिरङ्गैः सविस्तरैः।
इतिहासपुराणानि स भवेद्वेदपारगः ॥४५
ब्राह्मणा येन जीवन्ति नान्यो वर्णः कथञ्चन।
ईदृक्पथमुपस्थाय कोऽन्यस्तं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥४६
ब्राह्मणः स भवेच्चैव देवानामपि दैवतम्।
प्रत्यक्षञ्चैव लोकस्य ब्रह्मतेजो हि कारणम् ॥४७
ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निष्ककरमकण्टकम्।
वापयेत्तत्र बीजानि सा कृषिः सार्वकामिकी ॥४८
सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे दापयेद्धनम्।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च क्षिप्तं नैव विदुष्यति ॥४९
विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गृहमागते।
क्रीडन्त्योषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥५०
नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते।
दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद्वै दुष्कृतं कृतम् ॥५१
वेदपूर्णमुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत्।
नच मूर्खं निराहारं षड्रात्रमुपवासिनम् ॥५२
यानि यस्य पवित्राणि कुक्षौ तिष्ठन्ति भो (भारत)द्विजाः।
तानि तस्य प्रयोज्यानि न शरीराणि देहिनाम् ॥५३

यस्य देहे सदाऽश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।
कव्यानि चैव पितरः किम्भूतमधिकं ततः ॥५४
यद्भुङ्क्ते वेदविद्विप्रः स्वकर्मनिरतः शुचिः ।
दातुः फलमसङ्ख्यातं प्रतिजन्म तदक्षयम् ॥५५
हस्त्यश्वरथयानानि केचिदिच्छन्ति पण्डिताः ।
अहं नेच्छामि मुनयः कस्यैताः शस्यसम्पदः ॥५६
वेदलाङ्गलकृष्टेषु द्विजश्रेष्ठेषु सत्सु च ।
यत्पुरा पातितं बीजं तस्यैताः सस्यसम्पदः ॥५७
शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ॥५८
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ।
न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पण्डितः ॥५९
न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः ।
इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पण्डितः ॥६०
हितप्रियोक्तिभिर्वक्ता दाता सम्मानदानतः ॥६१
यद्येकपङ्क्त्यां विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि वार्थहेतोः ।
वेदेषु दृष्टं ऋषिभिश्च गीतम् तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥६२
ऊषरे वाऽपितं वीजं भिन्नभाण्डेषु गोदुहम् ।
हुतं भस्मनि हव्यञ्च मूर्खे दानमशाश्वतम् ॥६३
मृतसूतकपुष्टाङ्गो द्विजः शूद्रान्नभोजने ।
अहमेवं न जानामि कां योनिं स गमिष्यति ॥६४
शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ।
स भवेत्शूकरो नूनं तस्य वा जायते कुलम् ॥६५

गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्त जन्मानि शूकरः।
श्वा चैव सप्त जन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत्।
अमृतं ब्राह्मणान्नेन दारिद्र्यं क्षत्रियस्य च ॥६६
वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्नान्नरकं व्रजेत्।
यश्च भुङ्क्तेऽथ शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ॥६७
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते।
यस्य शूद्रा पचेन्नित्यं शूद्रो वा गृहमेधिनी ॥६८
वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं याति स द्विजः।
भाण्डसङ्करसङ्कीर्णा नानासङ्करसङ्कराः ॥६९
योनिसङ्करसङ्कीर्णा निरयं यान्ति मानवाः।
पङ्क्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः ॥७०
आदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातकाः ॥७१
इदं व्यासमतं नित्यमध्येतव्यं प्रयत्नतः।
एतदुक्ताचारवतः पतनं नव विद्यते ॥७२

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे गृहस्थाश्रमप्रशंसादिवर्णनो नाम चतुर्थोऽध्यायः।

समाप्ता चेयं व्यासस्मृतिः।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

॥ अथ ॥

॥ देवलस्मृतिः ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

....

अथ प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

सिन्धुतीरे सुखासीनं देवलं मुनिसत्तमम् ।
समेत्य मुनयः सर्वे इदं वचनमब्रुवन् ॥१
भगवन्म्लेच्छनीता हि कथं शुद्धिमवाप्नुयुः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवानुपूर्वशः ॥२
कथं स्नानं कथं शौचं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।
किमाचारा भवेयुस्ते तदाचक्ष्व सविस्तरम् ॥३

देवल उवाच—

त्रिशङ्कुं वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् ।
उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन तु कीकटम् ॥४
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महर्षयः ॥५

मृतसूते तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ।
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते स्वामिनि यौनिकम् ॥६

अपेयं येन संपीतमभक्ष्यं चापि भक्षितम् ।
म्लेच्छैर्नीतेन विप्रेण अगम्यागमनं कृतम् ॥७

तस्य शुद्धिं प्रवक्ष्यामि यावदेकं तु वत्सरम् ।
चान्द्रायणं तु विप्रस्य सपराकं प्रकीर्तितम् ॥८

पराकमेकं क्षत्रस्य पादकृच्छ्रेण संयुतम् ।
पराकार्धं तु वैश्यस्य शूद्रस्य दिनपञ्चकम् ॥९

नखलोमविहीनानां प्रायश्चित्तं प्रदापयेत् ।
चतुर्णामपि वर्णानामन्यथाऽशुद्धिरस्ति हि ॥१०

प्रायश्चित्तविहीनं तु यदा तेषां कलेवरम् ।
कर्तव्यस्तत्र संस्कारो मेखलादण्डवर्जितः ॥११

म्लेच्छैर्नीतेन शूद्रैर्वा हारिते दण्डमेखले ।
संस्कारप्रमुखं तस्य सर्वं कार्यं यथाविधि ॥१२

संस्कारान्ते च विप्राणां दानं धेनुश्च दक्षिणा ।
दातव्यं शुद्धमिच्छद्भिरश्वगोभूमिकाञ्चनम् ॥१३

तदाऽसौ तु कुटुम्बानां पङ्क्तिं प्राप्नोति नान्यथा ।
स्वभार्यां च यथान्यायं गच्छन्नेव विशुध्यति ॥१४

अथ संवत्सरादूर्ध्वं म्लेच्छैर्नीतो यदा भवेत् ।
प्रायश्चित्ते तु संचीर्णे गङ्गास्नानेन शुध्यति ॥१५

सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रं तथा प्रत्यन्तवासिनः ।
कलिङ्गकौङ्कणान्वङ्गान्गत्वा संस्कारमर्हति ॥१६

बलाद्दासीकृता ये च म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः ।
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणिहिंसनम् ॥१७
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथा तस्यैव भोजनम् ।
खरोष्ट्रविड्वराहाणामामिषस्य च भक्षणम् ॥१८
तत्स्त्रीणां च तथा सङ्गं ताभिश्च सह भोजनम् ।
मासोषिते द्विजातौ तु प्राजापत्यं विशोधनम् ॥१९
चान्द्रायणं त्वाहिताग्नेः पराकस्त्वथ वा भवेत् ।
चान्द्रायणं पराकं च चरेत्संवत्सरोषितः ॥२०
संवत्सरोषितः शूद्रो मासार्धं यावकं पिबेत् ।
मासमात्रोषितः शूद्रः कृच्छ्रपादेन शुध्यति ॥२१
ऊर्ध्वं संवत्सरात्कल्प्यं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः ।
संवत्सरैश्चतुर्भिश्च तद्भावमधिगच्छति ॥२२
ह्रासो न विद्यते यस्य प्रायश्चित्तं दुरात्मनः ।
गुह्यकक्षशिरोभ्रूणां कर्तव्यं केशवापनम् ॥२३
प्रायश्चित्तं समारभ्य प्रायश्चित्तं तु कारयेत् ।
स्नानं त्रिकालं कुर्वीत धौतवासा जितेन्द्रियः ॥२४
कुशहस्तः सत्यवक्ता देवलेन ह्युदाहृतम् ।
वत्सरं वत्सरार्धं वा मासं मासार्धमेव वा ॥२५
बलान्म्लेच्छैस्तु यो नीतस्तस्य शुद्धिस्तु कीदृशी ।
संवत्सरोषिते शूद्रे शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु ॥२६
पराकं वत्सरार्धे च पराकार्धं त्रिमासिके ।
मासिके पादकृच्छ्रश्च नखरोमविवर्जितः ॥२७

पादोनं क्षत्रियस्योक्तमर्धं वैश्यस्य दापयेत् ।
प्रायश्चित्तं द्विजस्योक्तं पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२८

प्रायश्चित्तावसाने तु दोग्ध्री गौर्दक्षिणा मता ।
तथाऽसौ तु कुटुम्बान्ते ह्युपविष्टो न दुष्यति ॥२९

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाऽप्यूनषोडशः ।
प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥३०

ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च ।
प्रायश्चित्तं चरेद्भ्राता पिता वाऽन्योऽपि वर्धिता ॥३१

स्वयं व्रतं चरेत्सर्वमन्यथा नैव शुध्यति ।
तिलहोमं प्रकुर्वीत जपं कुर्यादतन्द्रितः ॥३२

संलापस्पर्शनिःश्वाससहयानासनाशनात् ।
याजनाध्यापनाद्यौनात्पापं संक्रमते नृणाम् ॥३३

याजनं योनिसंबन्धं स्वाध्यायं सहभोजनम् ।
कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः ॥३४

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन् ।
याजनासनयज्ञादि कुर्वाणः सार्वकामिकम् ॥३५

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तमिदं शुभम् ।
स्त्रीणां म्लेच्छैश्च नीतानां बलात्संवेशने क्वचित् ॥३६

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा नीता यदाऽन्त्यजैः ।
ब्राह्मण्याः कीदृशं न्याय्यं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥३७

ब्राह्मणी भोजयेन्म्लेच्छमभक्ष्यं भक्षयेद्यदि ।
पराकेण ततः शुद्धिः पादेनोत्तरतोत्तरान् (दानेनोत्तरोत्तरा)

न कृतं मैथुनं ताभिरभक्ष्यं नैव भक्षितम् ।
शुद्धिस्तदा त्रिरात्रेण म्लेच्छान्नेनैव भक्षिते ॥३६

रजस्वला यदा स्पृष्टा म्लेच्छेनान्येन वा पुनः ।
त्रिरात्रमुषिता स्नात्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥४०

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्त्रिया तथा ।
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्देवलस्य वचो यथा ॥४१

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा ।
पञ्चरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥४२

ब्राह्मण्यनशनं कुर्यात्क्षत्त्रिया स्नानमाचरेत् ।
सचैलं वैश्यजातीनां नक्तं शूद्रे विनिर्दिशेत् ॥४३

म्लेच्छान्नं म्लेच्छसंस्पर्शो म्लेच्छेन सह संस्थितिः ।
वत्सरं वत्सरादूर्ध्वं त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥४४

म्लेच्छैर्हृतानां चौरैर्वा कान्तारेषु प्रवासिनाम् ।
भुक्त्वा भक्ष्यमभक्ष्यं वा क्षुधार्तेन भयेन वा ॥४५

पुनः प्राप्य स्वकं देशं चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः ।
कृच्छ्रमेकं चरेद्विप्रस्तदर्धं क्षत्त्रियश्चरेत् ।
पादोनं च चरेद्वैश्यः शूद्रः पादेन शुध्यति ॥४६

गृहीता स्त्री बलादेव म्लेच्छैर्गुर्वीकृता यदि ।
गुर्वी न शुद्धिमाप्नोति त्रिरात्रेणेतरा शुचिः ॥४७

योषा गर्भं विधत्ते या म्लेच्छात्कामादकामतः ।
ब्राह्मणी क्षत्त्रिया वैश्या शूद्रा वर्णेतरा च या ॥४८

अभक्ष्यभक्षणं कुर्यात्तस्याः शुद्धिः कथं भवेत् ।
कृच्छ्रं सांतपनं शुद्धिर्घृतैर्योनेश्च पाचनम् ॥४९
असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते ।
अशुद्धा सा भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुञ्चति ॥५०
विनिःसृते ततः शल्ये रजसो वाऽपि दर्शने ।
तदा सा शुध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥५१
स गर्भो दीयतेऽन्यस्मै स्वयं ग्राह्यो न कर्हिचित् ।
स्वजातौ वर्जयेद्यस्मात्संकरः स्यादतोऽन्यथा ॥५२
गृहीतो यो बलान्म्लेच्छैः पञ्च षट् सप्त वा समाः ।
दशादि विंशतिं यावत्तस्य शुद्धिर्विधीयते ॥५३
प्राजापत्यद्वयं तस्य शुद्धिरेषा विधीयते ।
अतः परं नास्ति शुद्धिः कृच्छ्रमेव सहोषिते ॥५४
म्लेच्छैः सहोषितो यस्तु पञ्चप्रभृति विंशतिः ।
वर्षाणि शुद्धिरेषोक्ता तस्य चान्द्रायणद्वयम् ॥५५
कक्षागुह्यशिरःश्मश्रुभ्रूलोमपरिकृन्तनम् ।
प्राहृत्य पाणिपादानां नखलोम ततः शुचिः ॥५६
यो दातुं न विजानाति प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।
शुद्धिं ददाति चान्यस्मै तदशुद्धेः स भोजनम् ॥५७
सभायां स्पर्शने चैव म्लेच्छेन सह संविशेत् ।
कुर्यात्स्नानं सचैलं तु दिनमेकमभोजनम् ॥५८
माता म्लेच्छत्वमागच्छेत्पितरो वा कथंचन ।
असूतकं च नष्टस्य देवलस्य वचो यथा ॥५९

मातरं च परित्यज्य पितरं च तथा सुतः ।
ततः पितामहं चैव शेषपिण्डं तु निर्वपेत् ॥६०

स्त्रीणां चैव तु शूद्राणां पतितानां तथैव च ।
पञ्चगव्यं न दातव्यं दातव्यं मन्त्रवर्जितम् ॥६१

वरुणो देवता मूत्रे गोमये हव्यवाहनः ।
सोमः क्षीरे दध्नि वायुर्घृते रविरुदाहृतः ॥६२

गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ।
पयः काञ्चनवर्णाया नीलायाश्चापि गोदधि ॥६३

घृतं वै कृष्णवर्णाया विभक्तिवर्णगोचरा ।
उदकं सर्ववर्णं स्यात्कस्य वर्णो न गृह्यते ॥६४

षण्मात्रिकं (एकमात्रं)तु गोमूत्रं गोमयं (द्विमात्रकं)च कुशोदकम् ।
त्रिमात्रिकं घृतं क्षीरं दधि स्याद्दशमात्रिकम् ॥६५

व्रते तु सर्ववर्णानां पञ्चगव्यं तु संख्यया ।
प्रायश्चित्तं यथोक्तं तु दातव्यं ब्रह्मवादिभिः ॥६६

अन्यथा दापयेद्यस्तु प्रायश्चित्ती भवेद् द्विजः ॥६७

कपिलायाश्च गोदुग्ध्वा धारोष्णं यः पयः पिबेत् ।
एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥६८

तिलहोमं प्रकुर्वीत जपं कुर्यादतन्द्रितः ।
विष्णो रराटमन्त्रेण प्रायश्चित्ती विशुध्यति ॥६९

बहुनाऽत्र किमुक्तेन तिलहोमो विधीयते ।
तिलान्दत्त्वा तिलान्भुक्त्वा कुर्वीताघनिवारणम् ॥७०

संपादयन्ति यद्विप्राः स्नानं तीर्थफलं तपः।
संपादी क्रमते पापं तस्य संपद्यते फलम् ॥७१

प्रायश्चित्तं समाख्यातं यथोक्तं देवलेन तु।
इतरेषामृषीणां च नान्यथा वाक्यमर्हथ ॥७२

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं गवाह्निकम्।
विप्रेभ्यः संप्रयच्छेत प्रायश्चित्ती विशुध्यति ॥७३

पञ्चाहान्सहवासेन संभाषणसहाशनैः।
संप्राश्य पञ्चगव्यं तु दानं दत्त्वा विशुध्यति ॥७४

एकद्वित्रिचतुःसंख्यान्वत्सरान्संवसेद्यदि।
म्लेच्छवासं द्विजश्रेष्ठः क्रमतो द्रव्ययोगतः ॥७५

एकाहेन तु गोमूत्रं त्र्यहेनैव तु गोमयम्।
त्र्यहात्क्षीरेण संयुक्तं चतुर्थे दधिमिश्रितम् ॥७६

पञ्चमे घृतसंपूर्णं पञ्चगव्यं प्रदापयेत्।
पञ्चसप्तदशाहानि पञ्चदशाच्च विंशतिः ॥७७

संवासं च प्रवक्ष्यामि देहशुद्धिं द्विजन्मनाम्।
पञ्चाहं पञ्चगव्यं स्यात्पादकृच्छ्रं दशाहिके ॥७८

पराकं पञ्चदशभिर्विंशेऽतिकृच्छ्रमेव च।
उदरं प्रविशेद्यस्य पञ्चगव्यं विधानतः ॥७९

यत्किंचिद्दुष्कृतं तस्य सर्वं नश्यति देहिनः।
पञ्च सप्ताष्ट दश वा द्वादशाहोऽपि विंशतिः।
म्लेच्छैर्नीतस्य विप्रस्य पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥८०

पञ्चगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं घृतं पयः।
प्राश्यापरेऽह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥८१

पृथक्सांतपनं द्रव्यैः षडहः सोपवासकः।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनः स्मृतम् ॥८२

पर्णोदुम्बरराजीवविल्वपत्रकुशोदकैः।
प्रत्येकं प्रत्यहं पीतैः पू(प)र्णकृच्छ्र उदाहृतः ॥८३

तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्।
एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्रस्तु पावनः ॥८४

एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन तु।
उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्र उदाहृतः ॥८५

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम्।
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥८६

पिण्याकशाकतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रः सौम्यः प्रकीर्तितः ॥८७

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम्।
तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पञ्चदशाहिकः ॥८८

तिथि वृद्ध्या चरेत्पिण्डाञ्छुक्ले शिख्यण्डसंमितान्।
एकैकं ह्रासयेत्पिण्डान्कृच्छ्रचान्द्रायणं चरेत् ॥८९

यथाकथंचित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम्।
इति देवल(ले) [न] कृतं धर्मशास्त्रं प्रकीर्तितम् ॥९०

समाप्तेयं देवलस्मृतिः।

....

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

॥ अथ ॥

-॥ प्रजापतिस्मृतिः ॥-

—:❀:❀:❀:—

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ ब्रह्माणं प्रति रुचेः प्रश्नः, श्राद्धकालाभिधानञ्च

पितुर्वाक्यार्थकारी च रुचिः प्रम्लोचया सह ।
नमस्योवाच देवेशं ब्रह्माणं जगतः पतिम् ॥१

ब्रह्मन्विधे विरिञ्चेति धातः शंभो प्रजापते ।
त्वत्प्रसादादिमं धर्मं जग्राह पितृवाक्यतः ॥२

अनया सह तीर्थेषु मया श्राद्धान्यनेकशः ।
कृतानि पितृतुष्ट्यर्थं धनार्थं पुत्रकाम्यया ॥३

स्मृतयश्च पुराणानि त्वया दृष्टान्यनेकशः ।
दृष्टस्त्वनेकधा धातः श्राद्धकल्पः सविस्तरः ॥४

तथाऽप्यसंशयापन्नं क्रियमाणविधिं वद ।
येन विज्ञानमात्रेण न मुह्येऽहं कदाचन ॥५

चतुर्णामपि वेदानां शाखाः सन्ति सहस्रशः ।
अज्ञानादल्पशास्त्रार्था मोहयन्ति पदे पदे ॥६

कस्मिन्काले च कर्तव्यं कर्ता श्राद्धस्य कीदृशः ।
द्रव्यं देशः पाककर्ता कदा विप्रान्निमन्त्रयेत् ॥७

ब्राह्मणाः कीदृशास्तत्र नियमास्तत्र कीदृशाः ।
श्राद्धोपहारपात्राणि भक्ष्यं तत्कालदेवता ॥८

ततः श्राद्धेषु के मन्त्राः पदार्थादिक्रमः कथम् ।
आसनावाहनान्यर्घोऽग्नौ होमः पात्रा(त्र)लम्भनम् ॥६

विप्रभोज्यं पिण्डदानं क्षमापनविधिक्रमम् ।
वैश्वदेवं भृत्यभोज्यं वद सायंतनं विधिम् ॥१०

ब्रह्मोवाच—

पितरस्तव तुष्टा वै रुचे शृणु महामते ।
मालिन्यां रौच्यनामा वै त्वत्तः पुत्रो भविष्यति ॥११

नदीं तर्तुमनाः पारं पराचारस्य वि(वे)त्ति कम्(कः) ।
त(क)ल्पशास्त्र(स्त्राणि)स्मृतयः श्राद्धकल्पा बुधैर्द्विजाः(कृताः)॥

ममापि संशयस्तत्र श्राद्धकल्पाम्बुधौ रुचे ।
तथाऽपि शास्त्राण्यालोच्य वक्ष्ये निःसंशयं वचः ॥१३

शास्त्रनिष्ठैः शुक्रवाक्यैर्मुह्यन्ति द्विजसत्तमाः ।
भवन्ति बलिनस्तस्माद्राक्षसा बलहारिणः ॥१४

निरस्य शुक्रवाक्यानि(णि) सिद्धान्तस्मृतिनिश्चयम् ।
श्राद्धकल्पस्य वक्ष्येऽहं भक्त्या तुष्टो रुचे तव ॥१५

त्वया पृष्टं कदा श्राद्धं रुचे प्रम्लोचया सह ।
शृणु संक्षेपतो वच्मि कालकर्ता ह्यनुक्रमात् ॥१६

वृद्धौ क्षयेऽह्नि ग्रहणे युगादौ महालये श्राद्धममासु तीर्थे ।
सूर्यक्रमे पर्वसु वैधृतौ च रुचौ व्यतीपातगतेऽष्टकासु ॥१७

द्रव्यस्य संपत्सु मुन्यं (नी)न्द्रसङ्गे काम्येषु मन्वादिषु सद्व्रते स्यात् ।
छायासु मातंगभवासु नित्यं श्राद्धस्य कालः स च सर्वदोक्तः ॥१८

वृद्धौ प्राप्ते च यः कुर्याच्छ्राद्धं नान्दीमुखं पुमान् ।
तस्याऽऽरोग्यं यशः सौख्यं विवर्धन्ते धनप्रजाः ॥१९

श्राद्धं कृतं येन महालयेऽस्मिन्पित्रोः क्षयाहे ग्रहणे गयायाम् ।
किमश्वमेधैः पुरुषैरनेकैः पुण्यैरिमैरन्यतमैः कृतैः किम् ॥२०

दर्शश्राद्धं च यः कुर्याद् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
पितरस्तेन तुष्टा वै प्रयच्छन्ति यथेप्सितम् ॥२१

माघे पञ्चदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी ।
तृतीया माधवे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः ॥२२

भाद्रे कलिर्द्वापरे चैव माघे त्रेतातृतीया नवमी कृते च ।
युगादयः पुण्यतमा इमाश्च दत्तं पितॄणां किल चाक्षयं स्यात् २३

यावदायाति तत्पर्व वर्धते द्विगुणक्रमम् ।
दिने दिनेऽखिलं दानं दत्तं वैधृतपर्वणि ॥२४

संक्रान्तौ च व्यतीपाते मन्वादिषु युगादिषु ।
श्रद्धया स्वल्पमात्रं च दत्तं कोटिगुणं भवेत् ॥२५

पूर्वजान्मनुजान्देवान्सति द्रव्ये न वै यजेत् ।
मन्दाग्नि रामयावी च दरिद्रश्च प्रजायते ॥२६

छायासु सोमोद्भवजासु पुण्यं देवार्चनं गोतिलभूप्रदानम् ।
करोति यो वै पितृपिण्डदानं दूरे न तस्यास्ति विभोर्विमानम् ॥२७

चन्द्रग्रहे लक्षगुणं प्रदत्तं विवर्धते कोटिगुणं रविग्रहे ।
गजाश्वभूरुक्मतिलाज्ययोषिद्दानस्य संख्या न मयाऽत्र गण्यते ॥२८

पितॄणां नरकस्थानां जलं तीर्थस्य दुर्लभम् ।
तेन संतर्पिताः सर्वे स्वर्गं यान्तीति मद्वचः ॥२६

अष्टकासु च सर्वासु तथा चान्वष्टकासु च ।
पिण्डदानं प्रकर्तव्यमक्षय्यतृप्तिकारकम् ॥३०

अष्टकासु च सर्वासु साग्निकैर्नवदैवतम् ।
पित्राद्यं मातृमध्यं च कर्तव्यं न निरग्निकैः ॥३१

महायज्ञरतः शान्तो लौकिकाग्निं च रक्षयेत् ।
धर्मशास्त्रोक्तमार्गी या स साग्निकसमो मतः ॥३२

इष्टे गृहसमायाते पूज्ये यज्वनि मन्त्रदे ।
वेदज्ञैः सर्वशास्त्रज्ञैर्हृष्यन्त्यखिलपूर्वजाः ॥३३

व्रतस्थो व्रतसिद्ध्यर्थं श्राद्धं कुर्यादपिण्डकम् ।
विना श्राद्धेन यत्कर्म तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥३४

सपिण्डदानं सौभाग्यं काम्यश्राद्धं त्रिपौरुषम् ।
कार्यं भार्यासु तेनैतत्सर्वकामफलप्रदम् ॥३५

नित्यश्राद्धं सदा कार्यं पितॄणां तृप्तिहेतुकम् ।
स विष्णुरिति विज्ञेयो नित्यं प्रीणाति पूर्वजान् ॥३६

श्राद्धान्यनेकशः सन्ति पुराणोक्तानि वै रुचे !।
फलप्रदानि सर्वाणि तेषामग्र्यो महालयः ॥३७
सत्यवाक् शुद्धचेता यः सत्यव्रतपरायणः।
नित्यं धर्मरतः शान्तः स भिन्नालापवर्जितः॥३८
अद्रोहोऽस्तेयकर्मा च सर्वप्राणिहिते रतः।
स्वस्त्रीरतः सविनया (यो) नयचक्षुरकर्कशः॥३९
पितृमातृवचःकर्ता गुरुवृद्धपराष्टि (ति) कः।
श्रद्धालुर्वेदशास्त्रज्ञः क्रियावान्भैक्ष्य (क्ष) जीवकः॥४०
स तु श्राद्धं यदा कुर्यात्पत्रपाकेन सद्द्विजैः।
तदा श्राद्धसहस्त्रैर्यत्प्रीतिस्तज्जायते भृशम्॥४१
तिर्यङ्मनुष्ययोनौ हि को भेदः क्षुत्तृषा समाः।
सत्यवाङ्मानुषो धर्मः सुखं दुखं समं स्मृतम्॥४२
भैक्ष्यं (क्षं) द्रव्यं हि विप्राणां क्षत्रियाणां प्रजार्पितम्।
वैश्यानां कृषिवाणिज्यं शूद्राणां सेवयाऽऽगतम्॥४३
धनं पवित्रं विप्राणामस्ति तीर्थसमर्पितम्।
तर्पयेत्तेन वै देवान्मृतान्पितृगणातिथीन्॥४४
स्वस्ति वाच्य द्विजैर्नीतं धनं दुष्टप्रतिग्रहम्।
अग्नितीर्थेषु पतितं सद्यो याति पवित्रताम्॥४५
अयाचितं धनं पूतं शुक्लवृत्त्या समागतम्।
विवाहलब्धं वेजिनं (विजितं) पैत्रं(पित्र्यं)शिष्यनिवेदितम्॥४६
ब्राह्मणः क्षत्त्रियविशां जीव्यवृत्तिं समाश्रयेत्।
स्ववृत्तेरुपहानित्वान्न श्ववृत्त्या (त्तिं) कदाचन॥४७

वर्णानां तु त्रिधा वृत्तिरुत्तमा मध्यमाऽधमा।
ह्रासपुण्यफलांशस्य क्रमात्तद्धनदानलः (तः) ॥४८
धनं चिकित्सासंबन्धि ग्रामयाच(ज)कगायिनी(नाम्)।
कथं त्व (या) च समानीतमग्राह्यं पितृकर्मणि ॥४६
चित्रकृन्नटवेश्यानां धारकार(दे)क्षमर्दिनाम्।
स्वस्त्या अपि न तद्ग्राह्यं धनं कथककूटयोः ॥५०
मूल्यैश्चिकित्सां कुरुते कथां चित्रां तनोति यः।
गीतं गायति भृत्यर्थं विप्रः सन्प्लवगो मतः ॥५१
युगधर्मेण वर्णानां धनं ग्राह्यं द्विजातिभिः।
प्रकृतिना परिस्वस्त्या न्यायागतमथो यदि ॥५२
सरित्समुद्रतोयैक्ये वापीकूपसरित्तटे।
देवजुष्टे च संप्राप्ते देशे श्राद्धे गृहान्तरे ॥५३
धात्रीबिल्ववटाश्वत्थमुनिचैत्यगजावि(न्वि)ना।
श्राद्धं छायासु कर्तव्यं प्रासादाद्रौ महावने ॥५४
न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहे तिष्ठति सा यावत्तावत्तीर्थसमं गृहम् ॥५५
पत्नी पाकं यदा कुर्यात्पुत्रः पुष्पकुशान्हरेत्।
किं गयायां यदि श्राद्धं स्वकाले स्वगृहे भवेत् ॥५६
स्वगोत्रा सुभगा नारी भ्रातृभर्तृसुतान्विता।
गुरुशुश्रूषणोपेता पित्रन्नं कर्तुमर्हति ॥५७
आचार्यानी मातुलानी पितृमातृस्वसा स्वसा।
एता ह्यविधवा कुर्युः पितृपाकं सुता स्नुषा ॥५८

बहुप्रजास्तु या नार्यो भ्रातृवत्यः कुलोद्भवाः ।
पञ्चाशत्परितोऽब्दानां यदि वा विधवा अपि ॥५९
पितृव्यभ्रातृजायाश्च मातरः पितृमातरः ।
कुर्युः सदा पित्र (र्थं) मृदुः(दु)शीला च गोत्रिणी ॥६०
सितार्द्रवाससा युक्ता मुक्तकेशा विकञ्चुकी ।
शिरोस्नाता व्याधिता स्त्री पाकं कुर्यान्न पैतृकम् ॥६१
भ्राता पितृव्यो भ्रातृव्यः स्वस्तृपुत्रः स्वयं पचेत् ।
पित्रान्नं (ताऽन्नं) च सुतः शिष्यो दौहित्रो दुहितुः पतिः ॥६२
अक्रोधनैः शौचपरैरिति गाथामुदीरयन् ।
सायमामन्त्रयेद्विप्राञ्छ्राद्धे दैवे च कर्मणि ॥६३
निमन्त्रणं स्वयं दद्याद्भ्रातृ(ता)शिष्यः सुता अपि ।
न स्त्रीबालैः स्वगोत्रान्यैर्न ख्याप्यं न च दूरतः ॥६४
दैवे वृद्धौ तीर्थकाम्यनदोत्पन्नैः(न्ने)समागते ।
न दुष्यति मनःस्थैर्यात्प्रातः सद्योनिमन्त्रणम् ॥६५
प्रसाद्यतामितीत्युक्त्वा द्विस्त्रिर्देयं निमन्त्रणम् ।
यत्स्वीकृतं क्रिया सम्यक्सत्यं वितथमन्यथा (!) ॥६६
यतीनामगृहस्थानां प्राघूर्णब्रह्मचारिणाम् ।
सर्वदानं मन्त्रणं बन्धुभृत्यबालसुहृत्क्रिया (!) ॥६७
अदैवान्तरतःश्राद्धदम्पत्यङ्गी वृथा भवेत् (!)
निमन्त्रणं भवेद्यस्य लोभात्काकत्वमाप्नुयात् ॥६८
निमन्त्रणेऽप्रयातव्यं तं नियुक्तो लघुर्व्रजेत् (!) ।
सर्वदानलघोर्ज्येष्ठौ वृथापाकी तु वा यतः (!) ॥६९

ब्रह्मकर्मरताः शान्ता अपापा अग्निसंश्रिताः ।
कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठा वेदार्थज्ञाः कुलोद्भवाः ॥७०
मातृपितृपराश्चैव ब्राह्म्यै (ह्म) वृत्त्युपजीविनः ।
अध्यापको ब्रह्मविदो ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदि ॥७१
स्वकीयशाखिनो मुख्याः श्राद्धे वेदविदां वर ! ।
पङ्क्तिपावनाः सर्वेषामेको वै सामविद्भवेत् ॥७२
गुरुश्वशुरजामातृदौहित्रभगिनीसुताः ।
आसनार्हाः पितृश्राद्धे योग्याः पूज्याश्च मातुलाः ॥७३
भार्या रजस्वला यस्य हृता त्यक्त्वा दिवं गता ।
अश्राद्धार्हाः सर्वध्यास्य मृतनुकं गर्भदूषिता(!) ॥७४
योऽभार्यः सन्बलं चेतः संयम्याविधरो भवेत् ।
क्रियापरः श्रुतेर्वेत्ता श्राद्धे वै भोजयेत्पितुः ॥७५
श्रुतिज्ञं कुलजं शान्तं प्रजावन्तं जितेन्द्रियम् ।
मृतभार्यमपि श्राद्धे भोजयेदविशङ्कितः ॥७६
अप्रजो मृतपत्नीकः सर्वकर्मसु गर्हितः ।
छन्द्रो विनाऽपि न स्थेयं दिनमेकं विनाऽऽश्रमम् ॥७७
यस्य पुत्राः सदाचाराः श्रुतिज्ञा धर्मसंमुखाः ।
पितृभक्तिरता दान्ता न वैधव्यं (धुर्यं) मृतस्त्रियि ॥७८
तुरीये धाम्नि यस्तिष्ठेत्संधौ मध्यनिशि क्षणम् ।
अनार्योऽप्यनपत्योऽपि श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते ॥७९
षोडशाब्दात्परं श्राद्धे विप्राणां सप्तसप्तकैः ।
भोजयेत्पितृकार्यार्थे ततोऽन्यान्देवकर्मणि ।

न पुत्रपुत्री तदपत्यभार्या न बन्धुरङ्गीकृतचित्तधारणम्।
संप्राप्य वैधव्य(धुर्य) मनङ्गसंभवो यस्तिष्ठति व्यक्ततया स वर्ज्यः ॥८१

रोगी हीनातिरक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा।
अवकीर्णी कुण्डगोलौ कुनखी श्यावदन्तकः ॥८२

भृतकाध्यापकः कुष्ठी कन्यादूष्यभिशस्तकः।
क्लीबान्धमूकबधिराः कुजशी (नखी) वृषलीपतिः ॥८३

परपूर्वापतिः स्तेनः कर्मदुष्टश्च निन्दितः।
भोक्तारः षोडशे यस्य (ये च) ते वर्ज्या द्रव्यलोभतः ॥८४

वृषोत्सर्गस्य कर्तारो वर्जनीयाः सदैव हि।
पितुर्गृहेषु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥८५

सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः।
महिषीत्युच्यते भार्या सा चैव व्यभिचारिणी ॥८६

तान्दोषान्क्षमते यस्तु स वै माहिषकः स्मृतः।
अज्ञानादथ वा लोभान्मोहाद्वाऽपि विशेषतः ॥८७

समघ योऽन्नमादाय महार्घं तु प्रयच्छति।
स वै वार्धुषिको नाम अनर्हः सर्वकर्मसु ॥८८

वृषोत्सर्गस्य कर्तारं यदि पश्यन्ति पूर्वजाः।
रौरवं नरकं यान्ति कुम्भीपाकं सुदारुणम् ॥८९

कालालकं वार्धुषिकं मध्ये च वृषलीपतिम्।
श्राद्ध माहिषकं दृष्ट्वा निराशा यान्ति पूर्वजाः ॥९०

यो लोभादसवर्णानामाद्यश्राद्धान्यनुक्रमात्।
स षोडशकं (शं) वृषोत्सर्गं कुर्यात्कालालकः स्मृतः ॥९१

अथ श्राद्ध नियमानाह—

दन्तधावनताम्बूलं स्निग्धस्नानमभोजनम्।
दानं प्रतिग्रहो होमः श्राद्धभुगष्ट वर्जयेत् ॥९२
श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो वर्जयेत्स्त्रीनिषेवणम्।
पूर्वेद्युश्च परेद्युश्च वर्जयेद्भोजनद्वयम् ॥९३
नीचसंभाषणं याज्यं दिवानिद्रां प्रतिग्रहम्।
क्षौममुष्णोदकैः स्नानं वर्जयेच्छ्राद्धकृद् ध्रुवम् ॥९४
न च सीमान्तरं गच्छेन्न श्मशानं जिनालयम्।
श्राद्धकृत्सर्वदा पश्येन्नोदक्याः (क्यां) श्वपचं शवम् ॥९५

श्रीखण्डं दर्भसूत्रं यवतिलतुलसीशतपवित्रा(शातपत्रं च) कर्ता
धूपं(पो)दीपोदपात्रं कुसुम्भ(म)फलजत्यं(लं) पत्रभूम्भोम(न्यास)नानि।
श्रीशः शाल्वे च पात्रे द्विजमधुसकृदाच्छिन्नहेमार्घपात्राण्यन्नं-
श्राद्धोपहारः सुतगृहगृहणीशुभ्रवासांसि कालः ॥९६

श्रीखण्डमर्चयेच्छ्रेष्ठं सकर्पूरं सकेसरम्।
पूर्वजानां तु देवानां नान्यन्मलयजादिकम् ॥९७
मन्त्रपूता हरिद्वर्णाः प्रातर्विप्रसमुद्धृताः।
गोकर्णमात्रा दर्भाः स्युः पवित्रा पुण्यभूमिजाः ॥९८
शुक्लः कृष्णः कृष्णतरश्चतुर्थो जर्तिलस्तिलः।
उत्तरोत्तरतः श्राद्धे पितृणां तृप्तिकारकाः ॥९९
तुलस्यः सर्वदेवानां समञ्जर्यः शुभावहाः।
पूर्वजानां यथा प्राप्ता सैकोद्दिष्टे विमञ्जरी ॥१००

अगस्त्यं भृङ्गिराजं च तुलसी शतपत्रिका ।
तिलं च तिलपुष्पं च षडेते पितृवल्लभाः ॥१०१
त्रिगुणं सूत्रमादाद्यात्प्रतिपिण्डं नवोद्गतम् ।
सामगानां तु संलग्नं सर्वेषामेकतन्तुना ॥१०२
धूपं (पो) गुग्गुलुना कार्यं(र्यो) दीपस्तैलघृतेन तु ।
तुलसीशतपत्राभ्यां पूजनं पितृवल्लभम् ॥१ ३
चम्पको दमनः कुन्दकल्स(र)वीरोऽथ केतक ।
जातिदर्शनमात्रेण निराशा यान्ति पूर्वजाः ॥ ४
अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च ।
प्रादेशमात्रं सर्वत्र पवित्रं सर्वकर्मसु ॥१०५
वासश्चतुर्विधं प्रोक्तं त्वक्सूत्रं कृमिरोमजम् ।
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठं प्रक्षाल्यं श्राद्धकर्मणि ॥१०६
धौतं सप्ताष्टहस्तैः स्यादुत्तरीयं तदर्धकम् ।
वाससी सर्वदाचा (धा)र्ये दग्धरूच्यां(क्षा)र्द्रवर्जिते ॥१०७
त्यजेत्पर्युषितं पुष्पं त्यजेत्पर्युषितं जलम् ।
न त्यजेज्जाह्नवीतोयं तुलसीदलपङ्कजम् ॥१०८
गोमयेनोपलिप्ता भूः पवित्रा सर्वकर्मसु ।
गोमूत्रेणोक्षिता तीर्थे विष्णुपादाम्बुसेविता ॥१०६
पात्राण्यर्घ्याणि ख(खा)ड्गानि हेमरूप्यमृदामपि ।
उ(औ)दुम्बराणि प(पा)र्णानि देवत्वे(क्त)त्योद्भवानि च ॥११०
हेमरूप्यमये पात्रे पिण्डत्रयं विनिक्षिपेत् ।
शौल्वे कांस्ये खाड्गपात्रे न च मृण्मयकाष्ठजे ॥१११

पाकपात्राणि शौल्वानि सर्वधातुमयानि वा।
सर्वेभ्यो मृण्मयं श्रेष्ठमग्निपूतजलाप्लुतम् ॥११२
लोहपात्रेषु यत्पक्वं तदन्नं काकमांसवत्।
भुक्त्वा चान्द्रायणं कुर्याच्छ्राद्धे नान्येषु कर्मसु ॥११३
ताम्रपात्रे न गोक्षीरं पचेदन्नं न लोहजे।
क्रमेण घृततैलाक्ते ताम्रलोहे न दुष्यतः ॥११४
रौप्यहैमानि पात्राणि नव्यसौराष्ट्रजानि वा।
पत्रावल्यः पवित्राः स्युर्विप्राणां श्राद्धभोजने ॥११५
कांस्यखर्परशुक्राश्ममृत्काष्ठफललोहजैः।
नाऽऽचामेद्वैकृतैः पात्रैः श्राद्धे वै चर्मवारिणा ॥११६
औदुम्बरेण पात्रेण कुर्यादाचमनक्रियाम्।
तारताम्रसुवर्णांशैर्मिश्रधातुसमुद्भवैः ॥११७
कांस्यपात्राच्च्युतं वारि स्नाने च देवतार्चने।
श्वानमूत्रसमं तोयं पुनः स्नानेन शुध्यति ॥११८
नीवारा माषमुद्गाश्च गोधूमाः शालयस्तथा।
यवाश्च चणकाश्चैव श्राद्धे भक्ष्यास्तथा तिलाः ॥११९
कदलीकन्दफलकं धात्री बिल्वी च तूलकाः।
कारकद्रोणपुष्पी च तण्डुली चक्रवर्तिका ॥१२०
उपोदकी चर्मफलं कोशातक्याः फलं शमी।
जीवन्ती तुण्डिकाऽम्लीका कालशाकस्तथाऽऽर्द्रकम् ॥१२१
उर्वारुक्षीरिणीपीलुद्राक्षाम्रकदलीफलम्।
बीजपूरं कलिम्बुनि चर्भदं जानि चिर्भटम् (!) ॥१२२

कर्कोटकं कारवेल्लं सूरागं मृष्टपिण्डिकाः ।
कोटिभण्टं तत्त्रिविधं निशाचिह्नी च वासुकः (?) ॥१२३
मरीचं हिङ्गु तैलानि सद्द्रव्याण्यविदाहि च ।
श्राद्धे श्वेतानि मुख्यानि तथा लवणजीरकैः ॥१२४
गवां क्षीरं दधि घृतं क्षौद्रमिक्षुरसं तथा ।
शर्करा गुडमत्स्यण्डी तथा मृष्टफलानि च ॥१२५
श्यामाकान्कोद्रवान्कङ्गून्कलञ्जान्राजमाषकान् ।
निष्पावकान्कदम्बानि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥१२६
कलिङ्गं चैव वृन्ताकं कूष्माण्डं रक्तनीलकम् ।
हस्तीमुण्डफलं मर्ज्यमलाबु च तुषाम्रकम् ॥१२७
करीरजं कुमारीजं सार्षपं राजिकोद्भवम् ।
वर्जयेत्पितृकार्येषु बल्लकौसुम्भपर्परौ ॥१२८
क्षीरं दधि घृतं तक्रमविच्छागसमुद्भवम् ।
माहिषं च दधि क्षीरं श्राद्धे वर्ज्यं प्रयत्नतः ॥१२९
माहिषं मृतवत्सागोः सूतिकागोश्च वर्जयेत् (?) ॥१३०
मिश्रितं धेनुपयसा सापत्यमहिषीपयः ।
मेध्यमभ्युक्षितं गा(ह्य)तद्गायत्र्या सर्वकर्मसु ॥१३१
क्षैरं कठिनपक्वं स्याद्बाघसं स्याद्विलेपकम् ।
पीशी(रं)द्रवरूपं तत्क्षीरे यन्त्रिविधामता (?) ॥१३२
पितृमानवदेवानां पाशीरक्षीरपायसैः (?) ।
जायते परमा तृप्तिः समध्वाज्यैः सशर्करैः ॥१३३

पायसं शूद्रतो ग्राह्यं यद्यम्बुरहितं भवेत् ।
नव्यमृत्पात्रपक्वं चेत्पित्रर्थेऽपि न दुष्यति ॥१३४

पायसं सक्तवो धानास्तिलपिष्टं तथौषधम् ।
साम्बून्येतानि गृह्णीयादपि शूद्रान्न दुष्यति ॥१३५

क्रीतं विप्रघृतं नीत्वा यदि विप्रांश्च भोजयेत् ।
दाता भोक्ता च विक्रेता पूर्वजाश्च पतन्ति ते ॥१३६

लावण्य (क्य)तित्तिरिशाकुन्तकपिञ्जलानां
भारण्डसारसमसू(यू)र[क]वी(की)रकाण(णाम्) ।
धूम्यारकारिकुटरीदहनाटभार-
द्वा[जा]ख्यलाटशि(कुर?)रीकिकिदीविकानाम् ॥१३७

सारङ्गशम्बरवराहककृष्णसार
शशसानि(शाशानि)दुर्लभतमानि सदा पितॄणाम् ॥१३८

खड्गमांसैर्यदा पिण्डान्कुर्याद्वा भोजयेद्द्विजान् ।
तदा भवति पूर्वेषां तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥१३९

खड्गास्थि यदि विद्येत श्राद्धकाले समीपगम् ।
गयाश्राद्धे न सा तृप्तिः पितॄणां सा भवेत्तदा ॥१४०

कथयन्तीति पितरः कुले कश्चिद्भविष्यति ।
यः खड्गमांसपिण्डांश्च कुर्याद्वा पितृभोजनम् ॥१४१

कूर्चलो विलमण्डश्च गोधा कक्रपजाहकः (?) ।
पञ्च पञ्चनखा ह्येते दुर्लभाः श्राद्धकर्मणि ॥१४२

व्याधेभ्यो मेध्यमांसानि ग्राह्याणि द्रव्यपर्ययैः ।
पित्रर्थं स्वगृहे हिंसन्खादन्मांसं न पापभाक् ॥१४३

विना श्राद्धं विना यज्ञं मधुपर्कविधिं विना ।
पापी स्यात्स्वार्थतः कुर्वञ्जीवघातं बलिं विना ॥१४४
न जीवेन विना तृप्तिर्जीवस्यापि हि सर्वदा ।
अतः ससर्ज भगवाञ्जीवो जीवेन हिंस्यते ॥१४५
प्रवृत्तिर्व(त्तिं ब)चनात्कुर्वन्निवृत्तिर(म)पि कर्मणाम् ।
एवं व्यवहरेन्नित्यं गृहस्थोऽपि हि मुच्यते ॥१४६
न प्रवृत्तेः पुण्यहानिस्तन्निवृत्तेर्महत्फलम् ।
तदा दातव्यं धर्मज्ञैर्धर्मकारुण्यसंश्रय:(यैः) ॥१४७
कारुण्यं प्राणिषु प्रायः कर्तव्यं पुण्यहेतवे ।
अहिंसा परमो धर्मस्तस्मादात्मवदाचरेत् ॥१४८
यज्ञेषु पशुहिंसायां सावर्णिव्यवसायवत् ।
फलं सहस्रगुणितं हिंस्यो राजा भवेदनु ॥१४९
कारुण्यात्सर्वभूतेषु आत्मवंतः सततः सतः ।
उक्तकर्मसु सर्वत्र तदामांसनिषेधनम् ॥१५०
मद्यमप्यानृ(प्यमृ)तं श्राद्धे कलौ तत्तु विवर्जयेत् ।
मांसान्यपि हि सर्वाणि युगधर्मक्रमाद्भवेत् ॥१५१
अतो माखा(षा)न्नमेवैतन्मांसार्थे ब्रह्मणा कृतम् ।
पितरस्तेन तृप्यन्ति श्राद्धं कुर्व(र्या)न्न तद्विना ॥१५२
यथा बलिष्ठं मांसत्वान्माखा(षा)न्नपि तत्समम् ।
सौगन्धिकं च स्वादिष्ठं मधुरं द्रव्यभेदतः ॥१५३
भक्ष्यं भक्ष्यविधौ यत्तु गर्हितं तद्विवर्जयेत् ।
अभक्ष्यमपि भक्ष्यं स्याद्देशधर्मेण वै मुने ॥१५४

अथ(थ) शब्दस्तु रवि भागे जव्यान्ते राजवर्जिते (!)।
वाजं देयं प्रयत्नेन कथि (अर्थि)भ्यो वज्रमिश्रितम् ॥१५५
त्रिमुहूर्तस्तु प्रातः स्यात्तावानेव तु संगवः।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्नस्तथैव च ॥१५६
सायं तु त्रिमुहूर्तः स्यात्पञ्चधा काल उच्यते !
अतोऽपराह्नः पूर्वेषां भोज्यकाल उदाहृतः ॥१५७
आरम्भं कुतपं(पे) कुर्याद्रौहिणं तु न लङ्घयेत्।
एतत्पञ्चमुहूर्तान्तः श्राद्धकाल उदाहृतः ॥१५८
मुहूर्तास्तत्र विज्ञेया दश पञ्च च सर्वदा।
तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः ॥१५६
विवृद्धा यत्र पुरतः कुतपस्पर्शिनी तिथिः।
श्राद्धे सांवत्सराङ्के च निर्णयोऽयं कृतः सदा ॥१६०
आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे यान्यहानि तु षोडश।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि तेषु दत्तं महाफलम् ॥१६१
चतुर्दश्यां समारम्भः पौर्णमासादि पार्वणः।
प्रातरन्तमजस्रं स्यादस्यान्तः पार्वणो विधिः ॥१६२
ब्राह्मान्मुहूर्तादारभ्य कुर्यान्मासार्धयामतः।
श्राद्धं महालयं नाम तत्तु तीर्थवदाचरेत् ॥१६३
पक्षेऽपरे च भरणी महती सा प्रकीर्तिता।
तस्यां श्राद्धं प्रकुर्वीत गयाश्राद्धसमं फलम् ॥१६४
नन्दायां भार्गवदिने मघा(घा)सु च युगादिषु।
पिण्डपातं प्रकुर्वीत ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति ॥१६५

पौर्णमास्यादिसंयोगे योऽधिकुर्यान्महालयम् ।
पिण्डदाननिषिद्धेऽपि न निषिद्धं कदाचन ॥१६६

महालये त्रयोदश्यां भवेद्यदि पितुर्दिनम् ।
पिण्डदानं विप्रभोज्यं श्राद्धं तत्स्याद्गयासमम् ॥१६७

पक्षश्राद्धं वा पञ्चमीप्रभृती(ति) स्यान्महालये ।
पितुः पितामहस्याप्य(पि?) प्रपितामहमृद्दिने ॥१६८

कालो ह्यनन्तरूपस्तु कालो वै परमेश्वरः ।
तस्मात्काले प्रसन्नेन कर्तव्यं कर्म निश्चितम् ॥१६९

गर्भस्थोऽपि [च] दौहित्रो अश्वयुक्प्रतिपद्दिने ।
कुर्यान्मातामहश्राद्धं पितरौ यदि जीवतः ॥१७०

आश्वप्रतिपदि श्राद्धं नन्दीश्राद्धवदिष्यते (?) ।
नात्यंसपाकशुद्धिः (?) स्यादा मध्याह्नाद्विशिष्यते ॥१७१

सूतकादिनिमित्तेन द्रव्याभावादिभेदतः ।
स्थितं महालयं कुर्याद्यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥१७२

कन्यागते सवितरि पितरो यान्ति वै गुरु[गृह]म् ।
तिष्ठन्त्याकाङ्क्षिणस्तावद्यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥१७३

कन्दमूलफलैर्वाऽपि कर्तव्यं पितृतर्पणम् ।
अन्यथा दारुणं शापं दत्त्वा यान्ति बुभुक्षिताः ॥१७४

एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने दिवसस्य विधीयते ।
आद्ये मुहूर्ते वा[या]मस्य पिण्डदानं च भोजनम् ॥१७५

पितृक्षयाहे संप्राप्ते यदि कश्चिन्महालयः ।
तदा क्षयाहः कर्तव्योऽपरेऽहनि महालयम् [यः] ॥१७६

पूर्वाह्णे कानि[मि]कं श्राद्धं कुर्यान्नान्दीमुखं तथा।
माध्याह्निकं यदा कुर्यान्नित्यश्राद्धं तदा भवेत् ॥१७७
द्वौ दे[दै]वे च त्रयः पित्र्य एकैकमुभयत्र वा।
मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदैविकम् ॥१७८
इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौ काम्ये च ध्वनिरो[धुरिलो]चनौ।
पुरूरवार्द्रवसंज्ञौ [तु] पार्वणे समुदाहृतौ ॥१७६
सापिण्डे कालकामा(मौ)तौ वृद्धौ सत्यवसू स्मृतौ।
यज्ञे च वहवः सन्ति श्राद्धे श्राद्धे पृथक्पृथक् ॥१८०
पितरश्च पितामहास्तथा च प्रपितामहाः।
एवं पार्वणसंज्ञा च तथा मातामहेष्वपि ॥१८१
एषां पत्न्यः क्रमाद्ग्राह्यास्तिस्रस्तिस्रश्च पार्वणे।
उक्तानि चत्वार्येतानि पार्वणानि न पञ्चमम् ॥१८२
वृद्धौ द्वादशदैवत्यान्न चैवान्वष्टकासु च [?]।
षड्दर्शे त्रीणि यज्ञे च एक एव क्षयेऽहनि ॥१८३
पार्वणं च क्षयाहे स्याद्वृद्धौ स्यान्नवदैतम्।
दर्शे षड्दैवतं श्राद्धं काम्ये त्रैपौरुषं भवेत् ॥१८४
वसुरुद्रादित्या अमी इज्यन्ते सहमेलने।
चतुर्थस्यानिवृत्तिः स्याद्द्राद्यत्रेतो भवेदिति ॥१८५
श्राद्धं स्त्रीपुंसयोः कार्यमेकोद्दिष्टमसंततेः।
अतः संततिमन्तोऽमी इज्यन्ते बहुभिः सह ॥१८६
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं पूर्वजाः सन्ति ये कुले।
तृप्ता भवन्ति ते सर्वे पुत्रहस्तेन नान्यथा ॥१८७

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ।
येन केनाप्युपायेन पुत्रमुत्पादयेत्सुधीः ॥१८८

सैकोद्दिष्टं दैवहीनं यतः पुत्रो न विद्यते ।
आयान्ति पुत्रिणः पूर्वे देवर्षिपितृवेष्टिताः ॥१८६

दर्शे द्वे पार्वणे कार्ये मातुर्मातामहस्य च ।
क्षयाहे च पितुर्मातुः पार्णवं (पार्वणं) पार्वणं कृतम् ॥१६०

अम्बष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् ।
पित्रादौ मातृमध्यस्थं ततो मातामहान्तिकम् ॥१६१

अन्वष्टक्ये पितृभ्यश्च ततस्त्रीभ्यश्च दैवतम् ।
ताभ्यस्त्वदैवतं वृद्धौ तेभ्यश्चापि सदैवतः (?) ॥१६२

मातरः प्रथमं पूज्याः पितरश्च ततः परम् ।
मातामहश्च तदनु वृद्धिश्राद्धे त्वयं क्रमः ॥१६३

पार्वणानि मयोक्तानि विपरीतानि तानि ते ।
अथर्वणास्तर्पयन्ति तद्वेदोक्तमतं यथा ॥१६४

अतिथिं श्राद्धरक्षार्थमते(न्ते) विष्णुस्वरूपिणम् ।
निवेशाये वि(द्वि)ष्णुसमं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥१६५

कव्यवाहादयो येऽमी विद्यन्ते ये च पूर्वजाः ।
सर्वेषामेव वर्णानां श्राद्धे तृप्यन्ति देवताः ॥१६६

साक्षाद्विष्णुर्धर्मराजः श्राद्धदेवश्च कथ्यते ।
विश्वे देवाः पितृतिथिः सर्वं विष्णुरिति स्मृतम् ॥१६७

पूर्वजास्तुष्टिनायान्ति दाता भोक्ता न संशयः ॥१६८

इति प्रजापतिस्मृतिः समाप्ता ।

ॐ तत्सत्

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

॥ अथ ॥

॥ लघ्वाश्वलायनस्मृतिः ॥

—:::卐:::卐:::卐:::卐:::—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

तत्र प्रथममाचारप्रकरणवर्णनम् ।

आश्वलायनमाचार्यं नत्वाऽपृच्छन्मुनीश्वराः ।
द्विजधर्मान्वदास्माकं स्वर्गप्राप्तिकरान्मुने ।
इति तद्वचनं श्रुत्वा स धर्मान्मुनिरब्रवीत् ॥१

धर्मान्वः पुरतो वक्ष्ये ध्यात्वाऽहं भो मुनीश्वराः ।
लोकस्य च हितार्थाय ब्रह्ममार्गरतस्य च ॥२

स्नानं सन्ध्या जपो होमः स्वाध्यायाभ्यसनं तथा ।
माध्याह्निकी क्रिया पञ्चयज्ञाद्यतिथिपूजनम् ॥३

दानशिष्टप्रतिग्राहौ पोष्यवर्गैः सहाशनम्।
सत्कथाश्रवणं सायंसंध्याहोमादिकं च हि ॥४
शयनं च यथाकाले धर्मपत्न्या सह गृही।
ब्रह्मचारी स्वधर्मस्थो गुरुसेवापरो वसेत् ॥५
यजनं याजनं चैव वेदस्याध्ययनं च हि।
अध्यापनं तथा दानं प्रतिग्रहमि(इ)होच्यते ॥६
एतानि ब्राह्मणः कुर्यात्षट्कर्माणि दिने दिने।
अतः प्रातः समुत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम् ॥७
निर्गुणं निरहंकारं नारायणमनामयम्।
सगुणं च श्रिया युक्तं देवं देवीं सरस्वतीम् ॥८
यथाविधि ततः कुर्यादुत्सर्गं मलमूत्रयोः।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च शौचमद्भिर्मृदाऽऽचरेत् ॥९
एका लिङ्गे करे तिस्रः करयोर्मृद्द्वयं गुदे।
पञ्च वामे दश प्रोक्ताः करे सप्ताथ हस्तयोः ॥१०
एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः।
वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतेश्चैव चतुर्गुणम् ॥११
स्वपादं पाणिना विप्रो वामेन क्षालयेत्सदा।
शौचे दक्षिणपादं तु पश्चात्सव्यकरावुभौ ॥१२
शौचं विना सदाऽन्यत्र सव्यं प्रक्षाल्य दक्षिणम्।
एवमेवाऽऽत्मनः पादौ परस्याऽऽदौ तु दक्षिणम् ॥१३
गण्डूषैः शोधयेदास्यमाच(चा)मेदन्तधावनम्।
काष्ठैः पर्णैस्तृणैर्वाऽपि केचित्पर्णैः सदा तृणैः ॥१४

नवमी द्वादशी नन्दा पर्व चार्कमुपोषणम् ।
श्राद्धाहं च परित्यज्य दन्तधावनमाचरेत् ॥१५

आचम्याथ द्विजः स्नायान्नद्यां वा देवनिर्मिते ।
तीर्थे सरोवरे चैव कूपे वा द्विजनिर्मिते ॥१६

त्रिराप्लुत्य समाचम्य शिखाबन्धं समाचरेत् ।
प्राणानायम्य संकल्प्य त्रिवारं मज्जयेत्पुनः ॥१७

आचम्य वारुणं जाप्यं जपेत्सूक्तं च मार्जनम् ।
कुर्यादापो हि सूक्तेन ऋतमित्यघमर्षणम् ॥१८

मार्जयेदथ चाङ्गानि गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
मस्तके च मुखे बाह्वोर्हृदये पृष्ठदेशके ॥१९

ब्रह्मादयश्च ये देवाः कृष्णद्वैपायनादयः ।
सोम इत्यादयः प्रोक्ताः पितरो जलतर्पणे ॥२०

यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसंभवम् ।
तस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम् ॥२१

स विप्रः स शुचिः स्नातो ह्यस्पर्शस्पर्शनं विना ।
कालत्रयेऽपि कर्मार्हः स्वाध्यायनिरतोऽपि च ॥२२

अशक्तश्चेज्जलस्नाने मन्त्रस्नानं समाचरेत् ।
आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैस्त्रिभिश्चानुक्रमणे तु ॥२३

पच्छः पादशिरोहृत्सु शिरोहृत्पत्सु चार्धतः ।
हृत्पादमस्तकेष्वेवं प्रत्यृचा मार्जयेदथ ॥२४

मस्तके मार्जनं कुर्यात्पादैः प्रणवसंयुतैः ।
बाह्यशुद्धिरनेन स्यादन्तः शुद्धिरथोच्यते ॥२५

प्रणवेन पिबेत्तोयं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
सद्यस्तेन भवेच्छुद्धः स्नातोऽपि हि सरित्सु च ॥२६

समाहितमना भूत्वा ब्राह्मणः सर्वदाऽपि हि ।
स्मरेन्नारायणं शुद्धो धारयेदम्बरं शुचि ॥२७

परिधाने सितं शस्तं वासः प्रावरणे तथा ।
पट्टकूलं तथा लाभे ब्राह्मस्य विधीयते ॥२८

आविकं त्रसरं चैव परिधाने परित्यजेत् ।
शस्तं प्रावरणे प्रोक्तं स्पर्शदोषो न हि द्वयोः ॥२९

भोजनं च मलोत्सर्गं कुर्वते त्रसरावृताः ।
प्रक्षाल्य त्रसरं शुद्धं दुकूलं च सदा शुचि ॥३०

प्रावृत्य परिधायाथ प्राङ्मासीनः समाचरेत् ।
कुशपाणिर्द्विराचान्तस्तीरे सलिलसंनिधौ ॥३१

प्रणवेन द्विराचामेद्दक्षिणेन तु पाणिना ।
उभौ हस्तौ च गल्लौ द्वावोष्ठौ पाणिद्वयं स्पृशेत् ॥३२

पादद्वयं शिरश्चाऽऽस्यं नासारन्ध्रे च चक्षुषी ।
श्रोत्रे नाभिं च हृद्देशं शिरश्चांसौ स्पृशेत्क्रमात् ॥३३

प्राणानायम्य संकल्प्य ततः संध्यामुपास्महे(सयेत्) ॥३४

आप इत्यादिभिः पादैर्नवभिर्मार्जनं चरेत् ।
जलं यस्य क्षयायेति प्रक्षिपेत महीतले ॥३५

आपो जनयथानेन स्वशिरः परिषेचयेत् ।
सूर्यश्चेत्यनुवाकेन प्रातःकाले पिबेदपः ॥३६

आपः पुनन्तु मध्याह्ने सायमग्निश्च मन्त्रतः ।
आचम्याथ पुनश्चाप इत्येभिर्नवभिः क्रमात् ॥३७
ऋगन्ते मार्जनं कुर्याद्विधिनाऽनेन बह्वृचः ।
ऋतं चत्यभिमन्त्र्यापः समाघ्राय क्षिपेदधः ॥३८
ऋतं चेति त्र्यृचं वाऽपि जप्त्वा तदनवेक्षितः ।
समाचम्य ततस्तिष्ठेद्दिशश्चाभिमुखो रवेः ॥३९
जलमञ्जलिनाऽऽदाय गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ।
दद्यादर्घ्यत्रयं तिष्ठंस्त्रिषु कालेषु बह्वृचः ॥४०
प्रातर्मध्याह्नयोरप्सु क्षिपेत्सायं महीतले ।
मध्याह्ने तु विशेषोऽयं प्रदद्याद्धंस इत्यृचा ॥४१
आकृष्णेन द्वितीयार्घ्यं गायत्र्या च तृतीयकम् ।
उपतिष्ठन्समाचम्य तिष्ठेदभिमुखो रवेः ॥४२
उदु त्यं चित्रमित्येतज्जपेत्सूक्तद्वयं च हि ।
तुष्टस्तेन भवेत्सूर्यः स आत्मा जगतो हि वै ॥४३
तेनैव सूक्तजाप्येन हरेरर्चनकृद्भवेत् ।
आच(चा)मेदुपविश्याथ प्राणायामत्रयं चरेत् ॥४४
ध्यात्वा देवीं कुमारीं च तत्तत्कालानुरूपिणीम् ।
जपेत्प्रणवपूर्वाभिर्व्याहृतीभिः सहैव तु ॥४५
तिसृभिर्भूःप्रभृतिभिर्गायत्रीं ब्रह्मरूपिणीम् ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च शतमष्टोत्तरं जपेत् ॥४६
कालत्रयेऽप्यशक्तश्चेदष्टाविंशतिमेव वा ।
ततः कुर्यादुपस्थानं जातवेदस इत्यृचा ॥४७

तच्छंयोरनुवाकेन शान्त्यर्थं जप ईरितः ।
प्रागादिं च दिशं नत्वा मन्त्रस्थाश्चैव देवताः ॥४८

स्तुत्वा नत्वा ततः संध्यां सा मां संध्याऽभिरक्षतु ।
ब्रह्माणं हरिमीशानं तत्तच्छक्तिं क्रमेण तु ॥४६

नत्वा स्वयमथाऽऽत्मानं(मुक)गोत्रोऽहमभिवादयेत् ।
अग्नेरुद्धरणं कुर्यात्पूर्वमेवोदयाद्रवेः ॥५०

आदित्यमुदितं पश्येन्नत्वा होमान्तिकं व्रजेत् ।
आदित्येऽभ्युदिते चैव प्रातर्होमो विधीयते ॥५१

आहिताग्निस्तथैकाग्निः स्वस्वोक्तविधिना तथा ।
ध्यात्वा समिध्य चाभ्यर्च्य स्वस्थानस्थं हुताशनम् ॥५२

संस्कुर्यात्साग्निना हौम्यं पय आदि कुशेन च ।
मन्त्रेणानेन सूर्याय स्वाहेति जुहुयादथ ॥५३

द्वितीयामाहुतिं तद्वत्प्रजापतिरिदं स्मरेत् ।
स्वाहान्तां चाऽऽहुतिं हुत्वा तथेदं न ममोच्चरेत् ।
सर्वत्रैवाग्निहोमोऽयं विधिः सकृदुदाहृतः ॥५४

उक्त्वेदं परिषिञ्चामि त्वमग्निं परिषेचयेत् ।
जलेनैवाऽऽज्यहोमे तु यत्र चैतदुदीरितम् ॥५५

सूर्यो न इति सूक्तेन कुर्यात्प्रातरुपासनम् ।
उपासनं च सूर्यस्य प्रजापतिरतः परम् ॥५६

अग्ने त्वं चाग्न आयूंषि सायमग्नेरुपासनम् ।
कुर्यात्तिष्ठन्नुपस्थानं पूर्ववच्च प्रजापतेः ॥५७

प्रातः सायं जपेन्मन्त्रमों च मे स्वर इत्यथ ।
अभिवाद्य जपेद्देवीं विभूतिं चैव धारयेत् ॥५८

विभूतिधारणे मानस्तोकेऽयं मन्त्र उच्यते ।
बृहत्सामेति वा होमे नैत्यके च महामखे ॥५६

कर्मकाले तु सर्वत्र स्मरेद्विष्णुं हविर्भुजम् ।
तेन स्यात्कर्म संपूर्णं तस्मै सर्वं निवेदयेत् ॥६०

अग्निसंरक्षणे शक्तिर्यस्य चैव न वर्तते ।
तदाऽरण्यामजस्राग्निं स्थापयेद्विधिपूर्वकम् ॥६१

समित्प्रतपनेऽयं ते योनिर्मन्त्र उदीरितः ।
या ते अग्ने भवेन्मन्त्रः पाण्यारोपे स्मृतो बुधैः ॥६२

होमकालः प्रपद्येत पुनश्चैवं विधीयते ।
मन्त्रेणान्वाहिते वह्नावजस्राग्निं क्षिपेदथ ॥६३

उपस्थानादिकं चैव सर्वं पूर्ववदाचरेत् ॥६४

कालद्वये यदा होमं द्विजः कर्तुं न शक्यते ।
सायमाज्याहुतिं चैव जुहुयात्प्रातराहुतिम् ॥६५

सायंकाले समस्तं स्यादाज्याहुतिचतुष्टयम् ।
हुत्वा कुर्यादुपस्थानं समस्येत्यग्निसूर्ययोः ॥६६

होमश्चेत्पुरतः काले प्राप्तः स्यात्काल उत्तरः ।
हुत्वा व्याहृतिभिश्चाऽऽज्यं कुर्याद्धोमद्वयं च हि ॥६७

विच्छिन्नवह्निसंधानमपराह्णे विधीयते ।
सायमौपासनं कुर्यादस्तादुपरि भास्वतः ॥६८

नैव गच्छेद्विना भार्यां सीमामुल्लङ्घ्य योऽग्निमान् ।
यत्र तिष्ठति वै भार्या तत्र होमो विधीयते ॥६६
गत्वा भार्यां विना होमं सीमामुल्लङ्घ्य यो द्विजः ।
कुरुते तत्र चेन्मोहाद्धुतं तस्य वृथा भवेत् ॥७०
यथा जातोऽग्निमान्विप्रस्तन्निवासालये सदा ।
तस्या एवानुचारेण होमस्तत्र विधीयते ॥७१
धर्मानुचारिणी भार्या सवर्णा यत्र तिष्ठति ।
कुर्यात्तत्राग्निहोत्रादि प्रवदन्ति महर्षयः ॥७२
ततश्चैवाभ्यसेद्वेदं शिष्यानध्यापयेदथ ।
पोष्यवर्गार्थमन्नादि याचयेत यथोचितम् ॥७३
माता पिता गुरुर्भार्या पुत्रः शिष्यस्तथैव च ।
अभ्याश्रितोऽतिथिश्चैव पोष्यवर्ग इति स्मृतः ॥७४
मध्याह्ने च पुनः स्नायाद्धौतशुक्लाम्बरावृतः ।
श्रुत्युक्तविधिनाऽऽचम्य प्राङासीनः कुशासने ॥७५
गायत्र्याऽपश्चतस्रृणां पादे व्याहृतयः स्मृताः ।
सप्त मन्त्रशिरोमन्त्राः षड्भिराचमनं स्मृतम् (?) ॥७६
गायत्र्याश्च पिबेत्पादैरापो हि नवभिः स्पृशेत् ।
व्याहृतिभिः शिरोमन्त्रैरङ्गानि ब्रह्मयज्ञके ॥७७
पाणिगण्डूषकावोष्ठौ पाणिपादौ शिरो मुखम् ।
नासाबिलेऽक्षिणी श्रोत्रे नाभिहृन्मस्तकेंऽसकौ ॥७८
आद्यन्तौ प्रणवौ मन्त्रौ परतः पृष्ठतौ शुभौ ।
ब्रह्मको मध्यतो मन्त्रो गायत्र्या शिरसः स्मृतः ॥७९

कम्बले वाऽजिने पीठे कुशासनविनासने ।
न कुर्यादुपविष्टो वै ब्रह्मयज्ञं द्विजार्चनम् ॥८०
न कुर्यात्तर्पणं श्राद्धं धृत्वा भालेऽनुलेपनम् ।
कदाचित्कुरुते मोहान्नरकं प्रतिपद्यते ॥८१
दक्षिणं चोपविश्योरुं वामगुल्फोपरि न्यसेत् ।
वामोरौ दक्षिणं गुल्फं तच्चोपस्थमुदीरितम् ॥८२
प्राणानायम्य संकल्प्य कुशपाणिधरः करम् ।
कृत्वा तु सव्यमुत्तानं न्यसेदुपरि दक्षिणम् ॥८३
सव्यस्य पाणेरङ्गुष्ठप्रदेशिन्योस्तु मध्यतः ।
दक्षिणस्याङ्गुलीर्न्यस्य चतस्रोऽङ्गुष्ठवर्जिताः ॥८४
तथा सव्यकराङ्गुष्ठं दक्षिणाङ्गुष्ठवेष्टितम् ।
संवद्धमेवं कुर्वीत न्यसेद्दक्षिणसक्थिनि ॥८५
प्रागग्रे द्वे पवित्रे तु धृत्वाऽन्तःसंपुटौ करौ ।
संन्यसेद्दक्षिणे जानौ ब्रह्मयज्ञं समाचरेत् ॥८६
ॐपूर्वा व्याहृतीस्तिस्रः स्वरतः सकृदुच्चरेत् ।
गायत्रीमुच्चरेत्सम्यक्पादमर्धमृचं क्रमात् ॥८७
ऋषिदैवतच्छन्दांसि प्रणवं ब्रह्मयज्ञके ।
मन्त्रादौ नोच्चरेच्छ्राद्धे यागकालेऽपि चैव हि ॥८८
अग्निमील इषे त्वादि वेदांश्चैव स्वशक्तितः ।
अध्यायमनुवाकं वा पठेत्सूक्तमृचं च वा ॥८९
उपवीतं यथा यस्मिन्धत्ते कर्मणि वैदिके ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च तद्वद्वासोऽपि धारयेत् ॥९०

सव्यांसे च स्थिते सूत्रे तत्सव्यं चाथ दक्षिणे ।
अपसव्यं भवेत्कण्ठे लम्बे सूत्रे निवीतकम् ॥६१
न्यग्जानु दक्षिणं कृत्वा देवान्संतर्पयेदृषीन् ।
तद्वज्जानुद्वयं चाथ जानूर्ध्वं दक्षिणं पितॄन् ॥६२
सव्येन तर्पयेद्देवानृषींश्चैव निवीतिना ।
पितॄंश्चैवापसव्येन विधिरेष उदाहृतः ॥६३
तर्पयेद्विधिनाऽनेन देवांश्चैवाङ्गुल्यग्रतः ।
ऋषींश्च वामभागेन पितॄन्दक्षिणभागतः ॥६४
एकैकं चाथ द्वौ द्वौ वै त्रींस्त्रीनेकैकमञ्जलीन् ।
अर्हन्त्येते क्रमाश्चं(श्चै)व देवर्षिपितरस्त्रयः ॥६५
प्रत्यञ्जलि समुच्चार्य मन्त्रां दद्याद्वथाञ्जलिम् ।
देवर्षिपितृनामानि प्रोक्ता मन्त्रा महर्षिभिः ॥६६
पित्रादयस्त्रयश्चाऽऽदौ तिस्रो मात्रादयस्ततः ।
सापत्नजननी मातामहादयस्त्रयस्तथा ॥६७
मातामह्यादयस्तिस्रः स्त्रीसुतभ्रातरस्तथा ।
पितृव्यो मातुलश्चैव दुहिता भगिनी तथा ॥६८
दौहित्रो भागिनेयश्च पितुर्मातुश्च वै स्वसा ।
श्वशुरो गुरवश्चैव मित्रं चैवेति केचन ॥६९
पुत्रादयः सपत्नीकाः स्त्रियश्चैवाह(थ) केवलाः ।
तर्पणेऽभिहितास्तीर्थे गयायां च महालये ॥१००
उक्त्वा पित्रादिसंबन्धं नामगोत्रं स्वधानमः ।
बह्वृचस्तु क्रमेणैव तर्पयामीति तर्पयेत् ॥१०१

संबन्धं नामगोत्रं च स्वधामुच्चारयेत्ततः ।
श्राद्धेऽपि विधिरेष स्यादाश्वलायनशाखिनाम् ॥१०२
सव्यहस्तानुलग्नेन दक्षिणेन तु पाणिना ।
कुर्याद्बह्वृच एवं तु देवर्षिपितृतर्पणम् ॥१०३
बह्वृचस्तर्पणं कुर्याज्जले वाऽप्यथ बर्हिषि ।
तर्पयेद्देवतादींश्च बर्हिष्येव तु याजुषः ॥१०४
स्मृत्युक्तविधिनाऽऽचम्य ब्रह्मयज्ञं समाचरेत् ।
संतर्प्य देवतादींश्च बह्वृचस्तत आचमेत् ॥१०५
मध्याह्ने ब्रह्मयज्ञो वै नानुबन्धवशाद्भवेत् ।
प्रातरौपासनादूर्ध्वं कुर्यादस्तमयावधि ॥१०६
नैत्यकं तर्पणं कुर्याद् ब्रह्मयज्ञपुरःसरम् ।
तत्रैव देवतादीनां यद्वा वा स्नानपूर्वकम् ॥१०७
स्नानं वारुणिकं चैव क्वचित्कर्तुं न शक्यते ।
तत्राऽऽदौ ब्रह्मयज्ञार्थं मन्त्रस्नानं विधीयते ॥१०८
पुण्यकालनिमित्तं यत्तर्पणं क्रियते यदि ।
पितॄणां केवलं तद्धि प्रवदन्ति महर्षयः ॥१०९
निमित्तं चोपरागादेे रात्रावपि तथैव च ।
तीर्थान्तरेऽपि तद्वत्स्यादेकाहेऽप्यसकृद्भवेत् ॥११०
नैत्यकं तर्पणं कुर्यादहन्येव तु बह्वृचः ।
तर्पणं च तथा सौरं नैव रात्रौ कदाचन ॥१११
श्राद्धाङ्गं तर्पणं यामे प्रथमे मधुवद्भवेत् ।
पयो नीरं च रुधिरं क्रमाद्यामेषु च त्रिषु ॥ ११२

न कुर्याद्ब्रह्मयज्ञं च श्राद्धात्पूर्वं मृतेऽहनि ।
पित्रोः श्राद्धं विधायाथ वैश्वदेवं च तर्पणम् ॥११३
ब्रह्मयज्ञं च वै कुर्यात्संध्यां मध्यंदिनस्य च ।
उपस्थानं च सूर्यस्य पूर्वोक्तमिह तद्भवेत् ॥११४
कृत्वाऽऽदौ तर्पणं संध्यां कुर्याद्बह्वृच एव हि ।
आवर्तने परे सन्ध्यां कृत्वा कुर्याच्च तर्पणम् ॥११५
शुद्ध्यर्थं चाऽऽत्मनोऽन्नस्य वैश्वदेवं समाचरेत् ।
सिद्धान्नेन च गृह्याग्नावन्यस्मिन्ननलेऽपि च ॥११६
एकपाकाशिनः पुत्राः संसृष्टा भ्रातरोऽपि च ।
वैश्वदेवं न ते कुर्युरेकं कुर्यात्पितैव हि ॥११७
वैश्वदेवं क्वचित्कर्तुं न शक्नोति पितैव हि ।
पितुरेवाऽऽज्ञया कुर्यात्पुत्रो भ्राता परोऽपि हि ॥११८
एकान्नाशिषु पुत्रेषु भ्रातृष्वेकत्र सत्सु च ।
तत्रैको वैश्वदेवः स्याद्बह्वृचानामयं विधिः ॥११९
पुत्रः स्वार्जितमेकाशी स्याच्चेत्पितरि जीवति ।
वैश्वदेवं पृथक्कुर्याद्यत्र कुत्रापि वा वसन् ॥१२०
वैश्वदेवं द्विजः कुर्यात्सदा कालद्वयेऽपि च ।
आरम्भो वैश्यदेवस्य दिवा चैव विधीयते ॥१२१
अलंकृत्यानलं चान्नमधिश्रित्यानले चरेत् ।
सिद्धमादाय सूर्याय घृताक्तं जुहुयाद्धविः ॥१२२
प्रजापतय इत्युक्त्वा सोमायेत्यादितः क्रमात् ।
हुत्वा दशाऽऽहुतीः सायंकाले चाग्नय आदितः ॥१२३

परिषिच्यानलं चैव जुहुयाव्द्याहृतीरथ ।
एताभ्यो देवताभ्योऽग्नेः पृथग्दद्याद्बलीन्भुवि ॥१२४
प्राक्संस्थानन्तरालं स्याददृभ्य इत्यादितः क्रमात् ।
एता देयास्तथैव स्युः सूत्रोक्ता देवता इह ॥१२५
प्रागादिष्वाहुती द्वे द्वे इन्द्रायेत्यादितः क्रमात् ।
प्राक्संस्थे वाऽप्युदक्संस्थे चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ॥१२६
अग्रभागेऽन्तरालस्य दक्षिणे मूल उत्तरे ।
दिग्देवताहुतीनां च सममायतनं स्मृतम् ॥१२७
ब्रह्मादयोऽन्तरालस्य मध्ये शिष्टाश्च देवताः ।
प्राक्संस्थाश्चापि वै ताः स्यू रक्षोभ्य इति चोत्तरे ॥१२८
स्वधा पितृभ्य इत्यन्नं दद्यान्मन्त्रेण भूतले ।
दक्षिणे चापसव्यं च पितृभ्योऽथ स्वधा नमः ॥१२९
वैवस्वतकुलोत्पन्नौ महावीरौ सुरोत्तमौ ।
शुनौ द्वौ शा(श्या)मशबलौ पितृभागार्थिनौ सदा ॥१३०
ताभ्यां चापि बलिं दद्याद्याम्ये चोदक्पृथक्पृथक् ।
सव्येनानेन मन्त्रेण शा(श्या)माय शबलाय च ॥१३१
हविश्च जुहुयादग्नावुद्देशात्यागपूर्वकम् ।
स्वाहान्ते चैव सर्वत्र होमकर्मणि चात्र तु ॥१३२॥
स्वाहा स्याद्धुतयज्ञेऽपि पितृयज्ञे स्वधा स्मृता ।
यज्ञे मानुषके चैव हन्तकारो विधीयते ॥१३३
अतो मनुष्ययज्ञार्थं दद्याद्विप्राय वाऽनले ।
सनकादिभ्य इत्युक्त्वा हन्तकारेण वै हविः ॥१३४

कृत्वा मनुष्ययज्ञान्तमुपस्थायों च मे स्वरः ।
हविर्भुजं नमस्कृत्य गोत्रनामपुरःसरम् ॥१३५
जप्त्वा चैव तु गायत्रीं धारयेद्धोमभस्म च ।
स्मृत्वा यज्ञपतिं देवं हुतं तस्मै निवेदयेत् ॥१३६
एवं चापि दिवा कृत्वा सायं चापि तथैव हि ।
दिवाचारिभ्य इत्यत्र नक्तंचारिभ्य इष्यते ॥१३७
उक्तं कर्म यथाकाले यदि कर्तुं न शक्यते ।
अकाले वाऽपि तत्कुर्यादुल्लङ्घ्य वाऽपकृष्य च ॥१३८
वैश्वदेवे तथा ब्रह्मयज्ञे चैव(ष) विधिः स्मृतः ।
संध्ययोरुभयोश्चैव वाऽपकर्षणमिष्यते ॥१३९
देवतादिपितृयज्ञान्तं सायं चापि यथाक्रमम् ।
भूतेभ्योऽपि बलिं रात्रौ दद्यात्पात्रेण वै भुवि ॥१४०
द्वारादिदेवताभ्योऽन्नं दद्यात्पितामहादितः ।
हुतशेषं च भूतेभ्यो ये भूता इति मन्त्रतः ॥१४१
प्रक्षाल्य पाणिपादं च समाचम्य यथाविधि ।
शान्ता पृथिवीति मन्त्रेण गृहं संप्रोक्षयेज्जलैः ॥१४२
कुर्यात्पञ्च महायज्ञान्नित्यशः सूतकं विना ।
अनभ्यन्तिता सूतके संध्या स्नानं स्यादपि किञ्चन ॥१४३
वैश्वदेवं पुरा कृत्वा नित्ये चाभ्युदये तथा ।
स्वाभीष्टदेवतादिभ्यो नैवेद्यं विनिवेदयेत् ॥१४४
अकृत्वा देवयज्ञं च नैवेद्यं यो निवेदयेत् ।
तदन्नं नैव गृह्णन्ति देवताश्चापि सर्वथा ॥१४५

उच्छिष्टादिसंस्पर्शवर्णनम् ।

पादप्रक्षालनं कुर्याद्विप्राणां देवरूपिणाम् ।
स्वयं चापि समाचम्य विप्रांस्तादुपवेशयेत् ॥१४६

मधुपर्क विना रात्रौ द्विजपादाभिषेचनम् ।
न कुर्यात्पूजयेद्विप्रान्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥१४७

ततो विप्रान्समभ्यर्च्य यथाविभवसारतः ।
दद्याद(देयम)न्नं यथाशक्ति भिक्षाऽतिथिभ्य एव च ॥१४८

अन्नमामं च वै भिक्षां दद्यादहरहर्द्विजः ।
स सर्वव(वि)द्धुतः पाकादन्नाद्य(द)पि च यद्भवेत् ॥१४९

नित्यं ददाति यः साधुरन्नं वेदविदो मुखे ।
मुक्तः स्याद्दुरितात्पापाद् ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ॥१५०

परान्नत्यागिनामेव दद्यादामं विशेषतः ।
अन्नाद्दशगुणं पुण्यं लभेद्दाता न संशयः ॥१५१

भिक्षां ददाति विप्राय यतये ब्रह्मचारिणे ।
स सर्वाँल्लभते कामांस्ततो याति परां गतिम् ॥१५२

दत्तं नैव पुनर्दद्यादपक्वं पक्वमेव वा ।
पुनश्च दीयते मोहान्नरकं पतिपद्यते ॥१५३

पोष्यवर्गसमोपेतो भुञ्जीयात्सह बन्धुभिः ।
भोजने परिविष्टान्नं गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥१५४

सत्यं त्वर्तेन मन्त्रेण जलेन परिषेचयेत् ।
ततो बलित्रयं कुर्यान्मन्त्रेणापः पिबेदथ ॥१५५

यमायाथ च चित्राय भूतेभ्यो नम उच्चरेत् ।
दत्त्वाऽमृतोपस्तरणमसीत्युक्त्वा पिबेदपः ॥१५६

गृह्णीयादाहुतीः पञ्च सपवित्रेण पाणिना।
त्यक्त्वा पवित्रमश्नीयाद्धृत्वा तत्पुनराचमेत् ॥१५७
पुत्रवान्पितृमांश्चैव भुक्त्वा श्राद्धीयभोजनम्।
न कुर्याद्भोजने मौनं प्राणाहुतीर्विना ॥१५८
पङ्क्तिभेदेन यो भुङ्क्ते ग्रासमात्रमपि द्विजः।
अघं स केवलं भुङ्क्ते हतश्रीर्जायते ध्रुवम् ॥१५६
उत्तराचमनं पीत्वा मुखं प्रक्षालयेच्छुचिः।
भुञ्जतेभ्यस्ततो दद्यात्ताम्बूलं मुखशुद्धये ॥१६०
भुक्त्वा चैव स्वयं विप्रः कुर्यात्ताम्बूलचर्वणम्।
ततो नयेदहःशेषं श्रुत्यादिश्रवणादिभिः ॥१६१
स्पृशेदुच्छिष्टमुच्छिष्टः श्वानं शूद्रमथापि च।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्यं पिबेच्छुचिः ॥१६२
श्वानं शूद्रं तथोच्छिष्टमनुच्छिष्टो न संस्पृशेत्।
मोहाद्विप्रः स्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ॥१६३
उच्छिष्टस्पर्शने स्नायाद्ब्राह्मणो विधिवर्जितम्।
ब्रह्मविद्भजनोच्छिष्टपात्रचालं विनैव तु ॥१६४
विप्रश्चैव स्वयं कुर्याद्द्विजभुक्पात्रचालनम्।
प्रक्षाल्य पाणिपादं च द्विराचान्तः शुचिर्भवेत् ॥१६५
पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योऽथ वा सुतः।
असंस्कृतो न च स्त्री च न चान्यश्चालयेत्कचित् ॥१६६
परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामन्त्रणादृते।
कदाचित्स्यादापदि तु नैव नित्यं कदाचन ॥१६७

उच्छिष्टस्पर्शने चैव भुञ्जानश्च भवेद्यदि ।
पात्रस्थं चापि वाऽश्नीयादन्नं पात्रस्थितं च यत् ॥१६८
गायत्र्या संस्कृतं चान्नं न त्यजेदभिमन्त्रितम् ।
गृहीतं चेत्पुनश्चाद्याद् गायत्रीं च शतं जपेत् ॥१६६
अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंचितम् ।
अस्नेहा अपि गोधूमा यवगोरसविक्रियाः ॥१७०
अपूपसक्तवो धानास्तक्रं दधि घृतं मधु ।
एतत्पण्येषु भोक्तव्यं भाण्डलेपो न चेद्भवेत् ॥१७१
अन्नाक्तभाजनस्थानि दूष्यन्ते तानि चैव हि ।
शुद्धभाण्डस्थितानीह ग्राह्याण्याहुर्मनीषिणः ॥१७२
ग्राह्यं क्षा (क्षो) रविकारं स्यात्सर्वं चैवेक्षुसंभवम् ।
तैलक्षीराज्यपक्वं च जलसंमिश्रितं न हि ॥१७३
परान्नं नैव भुञ्जीयात्स्वकीयं चान्यपाचितम् ।
संस्काररहितं चैव नाश्नीयाद् ब्राह्मणः क्वचित् ॥१७४
ब्राह्मणो नैव भुञ्जीयाद्दुहित्रन्नं कदाचन ।
अज्ञानाद्यदि भुञ्जीत रौरवं नरकं व्रजेत् ॥१७५
पत्नी स्नुषा स्वयं पुत्रः शिष्योऽथ वा गुरुः सुतः ।
आचार्यो वा पचेदन्नं भुञ्जीयात्तन्न दुष्यति ॥१७६
शाकपाकादिकं निन्द्यं योऽन्नमद्यात्स्वकीयकम् ।
क्वचिच्छिष्टान्नमश्नीयाद्वत्सराभ्यन्तरे द्विजः ॥१७७
यद्येकत्र पचेदाममात्मनश्चापरस्य च ।
यस्तदन्नं द्विजो भुङ्क्ते प्राजापत्येन शुध्यति ॥१७८

न चैकत्र पचेदामं बहूनामथ वा द्वयोः ।
निषेधोऽयं परेषां तु पुत्रादीनां न हि क्वचित् ॥१७९

एवं भुक्त्वा द्विजश्चैव श्रुत्वा श्राद्धस्य वै कथाम् ।
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तमितिहासं पुरातनम् ॥१८०

घटिकैकाऽवशिष्टा स्याद्रवेरस्तमितस्य च ।
प्रक्षाल्य पाणिपादं च द्विराचान्तः शुचिर्भवेत् ॥१८१

प्राङ्गासीनः समाचम्य प्राणायामपुरःसरम् ।
पूर्वोक्तविधिना चैव सायंसंध्यां समाचरेत् ॥१८२

आदित्येऽस्तमिते यावत्तारकादर्शनं न हि ।
सायंहोमं तदा कुर्यान्नो चेत्स्युर्नव नाडिकाः ॥१८३

वैश्वदेवं पुनः सायं कुर्याद्यज्ञत्रयं च हि ।
दैवं भूतं तथा पै(पि)त्र्यं भुक्त्वा स्वाध्यायमभ्यसेत् ॥१८४

ततः स्वपेद्यथाकामं न कदाचिदुदक्शिराः ।
एतावन्नैत्यकं कर्म प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१८५

अनेन विधिना यस्तु नैत्यकं कुरुते द्विजः ।
स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८६

प्रत्यहं कर्मको(णो) योगः स्वाध्यायाभ्यसनं तथा ।
मन स्वस्थतया योगः स एवाऽऽत्मप्रकाशकः ॥१८७

त्यक्त्वेन्द्रियसुखं लोके यस्तिष्ठेद्यत्र कुत्रचित् ।
स एव योगी मुक्तः स्यात्सर्वसङ्गविवर्जितः ॥१८८

यः कश्चिन्मानवो लोके वारणस्यां त्यजेद्वपुः ।
स चाप्येको भवेन्मुक्तो नान्यथा मुनयो विदुः ॥१८९

इत्याश्वलायनधर्मशास्त्रे ब्रह्ममार्गाचाराध्यायः [रप्रकरणम्]

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ स्थालीपाकप्रकरणम् ।

स्थालीपाकस्य चाऽऽरम्भः पौर्णमास्यां विधीयते ।
अग्निमान्प्रतिपद्येत्र प्रातरौपासनं चरेत् ॥१
प्रातरौपासनं हुत्वा ततोऽन्वाधानमाचरेत् ।
स्थालीपाकं करिष्येऽहं होमः श्वः प्रातरेव हि ॥२
सद्यस्कालो भवेद्यद्वा कुर्याद्यत्र द्वयं न हि ।
अन्वाधानं ततः कुर्यात्स्थालीपाकं तथैव हि ॥३
प्राणानायम्य संकल्प्य विधाय स्थण्डिलं शुचिः ।
हस्तमात्रं चतुष्कोणं गोमयेन विलिप्य च ॥४
तण्डुलान्प्रकिरेद्रेखामुदक्संस्थां लिखेदथ ।
प्राक्संस्थे पार्श्वयोर्मध्ये तिस्रश्चैवोदगायताः ॥५
निदध्याच्छकलं तत्र प्रोक्ष्य प्राग्रं निरस्य च ।
संप्रोक्ष्य पुनरद्भिश्च तथा चानलमानयेत् ॥६
एहीत्यग्निं समादाय स्थापयेद्भूर्भुवःस्वरोम् ।
अग्निनाऽग्निस्ततो जुष्टः मनूनं तिस्र एव च ॥७
ध्यानं चत्वारि श्रृङ्गेति कुर्यादग्नेर्यथाविधि ।
विज्योतिषेत्यनेनैव मन्त्रेणाग्निं समिन्धयेत् ॥८
ध्यात्वा रूपं ततो वह्नेर्दर्शयेदेष हीत्यथ ।
धृत्वा तु समिधौ चाग्निमग्नीषोमौ च देवते ॥९

प्रधानदेवते चोक्त्वा तथा चैवाङ्गदेवताः ।
क्रमेण चरुणाऽऽज्येन सद्यो यक्ष्य इति क्षिपेत् ॥१०
पर्यूहनं ततः कुर्याज्जलेन परिषेचयेत् ।
अनादेशे तु सर्वत्र दक्षिणः पाणिरुच्यते ॥११
पाणिना सोदकेनाग्नेः समन्तात्परिमार्जनम् ।
अनुलेपमुदक्संस्थं कुर्यादीशानकोणतः १२
पर्युक्षणेऽप्युदक्संस्थं पाणिनेशानकोणतः ।
पुनरावर्तयेत्प्रत्यगीशानान्तं हविर्भुजम् ॥१३
प्रसारयेदुदक्संस्थान्पूर्वपश्चिमयोः कुशान् ।
दक्षिणोत्तरतश्चैव प्राक्संस्थान्पूर्वतः क्रमात् ॥१४
मुष्टिमात्रैः कुशैरग्नेः समन्ताद्धोमकर्मसु ।
परिस्तृणीयात्प्रागग्रैश्चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ॥१५
विन्यसेत्कुशमूलानां कुशाग्रानुपरि क्रमात् ।
दक्षिणोत्तरयोश्चैव चतुष्कोणेषु चव हि ॥१६
आस्तीर्याग्नेरुदग्दर्भान्प्रागग्रान्रत्निसंमितान् ।
द्वंद्वमासादयेन्न्युब्जं यज्ञपात्राणि तत्र तु ॥१७
स्थाली च प्रोक्षणी दर्वी स्रुवः पूर्णाज्यभाजने ।
इध्मं चैव तथा बर्हि चरुहोमे विधीयते ॥१८
चौलोपनयनोद्वाहे पुनराधन एव च ।
प्रोक्षणीं स्रुवपूर्णाज्यमिध्माबर्हिस्स्रुवाज्यके ॥१९
अष्टाङ्गुलमितस्थालीं प्रोक्षणीं च षडङ्गुलाम् ।
चमसं चाऽऽज्यपात्रं च षडङ्गुलमिति स्मृतम् ॥२०

स्रुक्स्रुवौ हस्तमात्रौ तु स्यातां तौ यज्ञकर्मणि ।
द्विप्रादेशो भवे दिध्मो वर्हिः प्रादेशसंमितः ॥२१
आदायाऽऽदौ कुशांस्त्रींस्त्रीन्मूलर्मूलानि वेष्टयेत् ।
सव्यावृत्तान्कुशान्कुर्यादधस्तात्ताव्रयेदुदक् ॥२२
वामस्थानितरांस्तद्वत्कुर्याद्रज्जुं त्रिसंधिताम् ।
उपविष्टां नयेत्तद्वत्तृतीयावर्तनं च हि ॥२३
रज्ज्वेध्मं सकृदावेष्ट्य रज्जुमूलं तथैव च ।
वेष्टितायाश्च पूर्वाया रज्ज्वग्रं च नयेदधः ॥२४
रज्जुग्रन्थिमधः कृत्वा प्रागग्रान्सध[द]येदथ ।
स्याच्चत्ताम्रमयी स्थाली होमे कांस्यमयी पि वा ॥
तथा स्युः प्रोक्षणादीनि यथालाभानि वाऽपि वा ॥२५
दण्डपा[मा]त्रयुतौ शस्तौ स्रुक्स्रुवौ यागदारुजौ ।
तदभावेऽथ वाऽश्वत्थपर्णकौ वाऽप्युदुम्बरौ ॥२६
प्रोक्षणं न्यक्पवित्राभ्यां प्रोक्षयेत्सलिलं ततः ।
कृत्वोत्तानं पवित्रे ते निधायापः प्रपूजयेत् ॥२७
सोदकाभ्यां पवित्राभ्यां त्रिः समुत्पूय चैव हि ।
कुर्यादेकैव मुत्तानं द्वंद्वं च प्रोक्षयेत्पुनः ॥२८
विस्रस्येध्मं तथा बर्हिर्निदध्याच्चमसे च ते ।
पवित्रे पूरयेद्वारि गन्धपुष्पाणि च क्षिपेत् ॥२९
निरस्य नैर्ऋतान्दर्भान्निरस्त इति मन्त्रतः ।
कर्ताऽऽचरेदिमं मन्त्रमुक्त्वा विष्टः कुशासने ॥३०

ब्रह्माणं वरयेदस्मिन्कर्मणि त्वं भवेरिति ।
ब्रूयाद्ब्रह्माऽहमस्मीति ततः कर्ता तमर्चयेत् ॥३१
धृत्वा पूर्णं करे सव्ये निधायोपरि दक्षिणम् ।
ब्रह्मन्नित्युच्चरन्मन्त्रं नीत्वा तन्नासिकाग्रतः ॥३२
निदध्यादुदगग्रे तन्मन्त्रेणों प्रणयेति च ।
कुशैराच्छादितं कुर्यात्पूर्णपात्रं तदुच्यते ॥३३
शूर्पं पश्चान्निधायाग्नेः पवित्रे स्थापयेच्च ते ।
निर्वपेच्चतुरोमुष्टींस्तानेव प्रोक्षयेदथ ॥३४
तण्डुलानवहंस्त्रींस्त्रीन्कृत्वा तांस्त्रिः फलीकृतान् ।
त्रिः प्रक्षाल्य पचेदग्नेरुदक्चैवाऽऽज्यभाजने ॥३५
सपवित्रे निषिच्याऽऽज्यं ततोऽङ्गारानपोह्य च ।
तत्राऽऽज्यभाजनं स्थाप्य संस्कुर्यादुल्मुके न च ॥३६
निक्षिपेत्कुशयोरग्नेः पर्यग्निकरणं ततः ।
त्रिः कुर्याज्ज्वलता तेन तत्प्राक्परिहरेदथ ॥३७
कर्षन्निवोदगुद्वास्य भाजनं घृतपूरितम् ।
कुशाग्रे निक्षिपेदग्नौ स्कन्दायेत्युच्चरन्नथ ॥३८
धृत्वा तूत्तानपाणिभ्यां पवित्रे चोदगग्रके ।
सवितुष्ट्विति मन्त्रेण सकृत्तूष्णीं द्विरिष्यते ॥३९
उत्पूयाऽऽज्यं पवित्रे ते प्रोक्ष्याग्नौ प्रहरेदथ ।
प्रत्यगासादयेदग्नेर्बर्हिस्तत्राऽऽज्यभाजनम् ॥४०
प्रताप्य सकुशौ दर्वीस्रुवौ दर्वीं निधाय च ।
सव्येन स्रुवमादाय कुशानितरपाणिना ॥४१

स्रुवस्य बिलमारभ्य यावदग्रं भवेदथ ।
अग्रतो बिलपृष्ठं तु तदारभ्य भवेद्बिलम् ॥४२

निमृजेत्त्रिस्त्रिरेकं तु कुशाग्रैः सव्यवच्च हि ।
कुशमूलैश्च वै दण्डं कुशैः प्रोक्ष्य प्रतापयेत् ॥४३

आसादयेत्स्रुवं चाऽऽदौ बर्हिष्युत्तरतो घृतात् ।
संस्कुर्यात्पूर्ववद्दर्वीं निदध्यादुद्धरे स्रुवात् ॥४४

संमार्जितान्कुशान्प्रोक्ष्य प्रहरेदनले च तान् ।
सम्यगाज्यं निरीक्ष्याथ चरुं पक्वमवेक्षयेत् ॥४५

अभिघार्य स्रुवेणाऽऽज्यं चरुमुद्वासयेदुदक् ।
हविर्भुगात्मनोश्चैव मध्यतश्चरुमानयेत् ॥४६

निदध्यात्तां चरोः स्थालीं बर्हिष्याज्यं च दक्षिणे ।
अभिघार्य चरुं चान्यत्पात्रं स्यादुत्तरे चरोः ॥४७

देवतायै हविः स्थाप्य तत्र तद्विभजेत्क्रमात् ।
अमुष्यै चेदमित्युक्त्वा यथालिङ्गं यथाक्रतु ॥४८

विश्वानीत्यष्टभिः पादैः पूर्व(र्वा)तो दिक्षु चाष्टसु ।
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैरग्निं स्तुयादवृ(द्द)चाऽऽन्त्यजा ॥४९

अलंकृत्याभिघार्येध्ममादायायं त इत्यथ ।
हुत्वेध्मं जुहुयादाज्यं तूष्णीं वायव्यकोणतः ॥५०

ततश्चाऽऽग्नेयपर्यन्तं प्रजापतिमिदं स्मरेत् ।
स्वाहेत्युक्त्वाऽथ निर्ऋतिमारभ्येशानकोणतः ॥५१

गृह्यवद्भिरिमौ मन्त्रावाघाराविति भाषितौ ।
होमे चैव तु सर्वत्र विधिरेष उदाहृतः ॥५२

अग्निश्चैव तथा सोमश्चक्षुषी जातवेदसः ।
भवेदुत्तरमाग्नेयं सौम्यं चैवाक्षि दक्षिणम् ॥५३
सक्तुलाजान्नहोमे तु जुहुयादेव चक्षुषी ।
अनुप्रवचनीये च वर्जयेदाज्यहोमके ॥५४
अभिघार्य स्रुवेणेदमाग्नेयं मध्यतो हविः ।
दर्वीं च हविरादाय विधिना स्थापयेदिह ॥५५
तर्जनीमध्यमांगुष्ठपर्वमात्रं च वै स्रुचि ।
तत्पुरस्तात्तथाऽऽदाय निदध्यात्तत्तथैव हि ॥५६
पात्रस्थं चापि दर्वीस्थं पुनरप्यभिघारयेत् ।
पञ्चावत्ती तु पश्चार्धादादाय च हविस्तथा ॥५७
जुहुयादग्नये स्वाहा दर्व्या मध्ये तु नेत्रयोः ।
आदाय चाग्नीषोमाभ्यामुत्तरस्थं च पूर्ववत् ॥५८
मन्त्रमुच्चार्य सर्वत्र स्वाहान्ते जुहुयाद्धविः ।
समुच्चार्य चतुर्थ्यन्तं नामेदं न ममेति च ॥५९
द्वयोश्चापि हविःशेषं द्वयोश्चापि अवद्य च ।
दर्व्यां सकृदवद्याच्च द्विस्ततो वाऽभिघारयेत् ॥६०
यदस्येत्यनया हुत्वा प्रागुदक्तु हविर्भुजः ।
रुद्राय जुहुयाद्रज्जुं विस्रंस्याच्चेध्मबन्धिनीम् ॥६१
स्रुक्स्रुवाज्याहुतेः शेषं विश्वेभ्यो जुहुयादथ ।
सर्वत्र जुहुयाद्धोमे प्रायश्चित्ताहुतीरथ ॥६२
अयाश्चाग्न इदं विष्णुश्चतस्रो व्याहृतीश्च हि ।
ब्रह्माऽपि जुहुयादेताः प्रायश्चित्ताहुतीरिमाः ॥६३

अनाज्ञातमिति द्वाभ्यां ज्ञाताज्ञातनिवृत्तये ।
सर्वत्रापि हि चैवं स्याद्विधिरेष उदाहृतः ॥६४
यत्पाकत्रेति मन्त्रेण न्यूनाधिकनिवृत्तये ।
मन्त्रतन्त्राधिकन्यूनविपर्याश्च(स)विकर्मणः ॥६५
स्वरवर्णादिलोपोत्थपापनिर्हरणाय च ।
यद्व इत्यनेनाग्नैकामाहुतिं जुहुयादथ ॥६६
सम्यक्पूर्णफलप्राप्त्यै होमस्येह कृतस्य च ।
कर्त्रैव जुहुयादाज्यं व्याहृतीभिश्चतसृभिः ॥६७
स्थाल्यादीनि च पात्राणि नीत्वा तूष्णीं निधाय च ।
चमसं पुरतः कृत्वा निधायाथ च बर्हिषि ॥६८
पूर्णमसीत्यनेनैव तत्पूर्णमभिमन्त्रयेत् ।
दिशः प्रागायतो दर्भैः प्राच्यां मन्त्रेण मार्जयेत् ॥६९
आपो अस्मानिदमापः सुमित्र्या न इति त्रिभिः ।
शिरसि स्वस्य पत्न्याश्च मार्जयेद्द्विष्म इत्यधः ॥७०
स्वस्य वामेऽञ्जलौ पत्न्या आसीनाया निषिञ्चयेत् ।
माऽहं प्रजामनेनैव चमसस्थं जलं च हि ॥७१
जलेन तेन वै होता प्रोक्षयेच्छिरसी तयोः ।
तत्रस्थानक्षतांश्चैव क्षिपेत्प्रणवमुच्चरेत् ॥७२
परिस्तरणदर्भांश्च विसृजेदुत्तरे हि तान् ।
ओं च म इत्यनेनाग्निं नत्वा पूर्ववदुच्चरेत् ॥७३
पर्यू(यु)ह्य परिषिच्याथ गन्धपुष्पाक्षतांश्च हि ।
धूपं दीपं च नैवेद्यं दद्यात्ताम्बूलदक्षिणाः ॥७४

तिष्ठन्नग्नेरुपस्थानं कुर्यादों च म इत्यथ ।
अभिवाद्य जपेद्देवीं कृतं कर्म निवेदयेत् ॥७५

शुभाशुभक्रियार्थं च दत्तं विप्राय यद्धनम् ।
तत्सर्वं जगदीशस्य प्रीतये निश्चितं भवेत् ॥७६

हुतशेषं हविश्चाऽऽज्यं होत्रे दद्याच्च दक्षिणाम् ।
सुवर्णं च यथाशक्ति होमसाद्गुण्यहेतवे ॥७७

होमान्ते ब्रह्मणे दद्याद्यज्ञपात्राणि चैव हि ।
होमे चैव तु सर्वत्र प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७८

दर्शके पूर्ववत्सर्वं विशेषस्त्वथ कथ्यते ।
अग्नीषोमपदस्थान इन्द्राग्नी(ग्नि)पदमुच्चरेत् ॥७९

पालाशखादिराश्वत्थशम्युदुम्बरजास्तथा ।
समिधः खादिराः शस्ता होमकर्मसु चैव हि ॥८०

इत्याश्वलायनधर्मशास्त्रे स्थालीपाकप्रकरणवर्णनम् ।

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ गर्भाधानप्रकरणम् ।

गर्भाधानं द्विजःकुर्यादृतौ प्रथम एव हि ।
चतुर्थदिवसादूर्ध्वं पुत्रार्थी दिवसे समे ॥१

चरं दारुणभं पौष्णं दस्राग्नी च द्विदैवतम् ।
श्राद्धाहं चैव रिक्तां च हित्वाऽन्यस्मिन्विधीयते ॥२

नान्दीश्राद्धं पतिः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
उपलेपादिकं कृत्वा प्रातरौपासनादितः ॥३
प्रजापतेश्चरोरेकां हुत्वा चाऽऽज्याहुतीरथ ।
विष्णुर्योनिं नेजमेष षडेका च प्रजापतेः ॥४
आसीनायाः शिरः स्पृष्ट्वा प्राङ्मुख्याः पाणिनापतिः ।
तिष्ठञ्जपेदिमे सूक्ते त्वपनश्च वधेन च ॥५
अग्निस्तुविश्रवस्तममित्यृचौ द्वे तथैव च ।
सूर्यो नो दिव इत्येतैः स्तुत्वा सूर्यं च पञ्चभिः ॥६
अश्वगन्धारसं पत्न्या दक्षिणे नासिकापुटे ।
उदीर्ष्वेति पठन्मन्त्रं सिञ्चेत्तद्वस्त्रशोधितम् ॥७
ततः स्विष्टकृदादि स्याद्वाससी च नवे तयोः ।
फलानि च पतिस्तस्यै प्रदद्यात्फलमन्त्रतः ॥८
मातुलिङ्गं नारिकेलं रम्भाखर्जूरपूरकम् ।
शस्तानि स्युरथान्यानि नारिङ्गादीनि वाऽपि च ॥९
वृषभं गां सुवर्णं च होत्रे दद्याच्च दक्षिणाम् ।
पुत्रवान्धनवांस्तेन भवेत्कर्ता न संशयः ॥१०
भोजयित्वा द्विजान्सम्यक्तोषयेद्दक्षिणादिभिः ।
संतुष्टा देवताः सर्वाः प्रयच्छन्तीप्सितं फलम् ॥११
स्थालीपाकं चाऽऽग्रयणं गर्भसंस्कारकर्मसु ।
प्रातरौपासने कुर्यादग्नौकरणमेव च ॥१२
प्रसन्नात्मा भवेत्कर्ता भुञ्जीत सह बन्धुभिः ।
तस्मिन्नेव दिने रात्रौ गर्भारोपणमिष्यते ॥१३

पतिवत्या(त्न्या)श्च दुर्भेद्यं प्रथमं स्याद्रजो यदि ।
पत्युस्तस्या भवेन्मृत्युः स्त्री(स्त्रि)पूर्वाहियमेषु च ॥१४
मघाशक्रशिवादित्यवह्निभेषु च वा भवेत् ।
तत्रापि स्यान्महाशोको दरिद्रं चानपत्यता ॥१५
तद्दोषपरिहारार्थं कुर्याच्छान्तिं यथाविधि ।
तोषयेज्जपहोमाभ्यां तत्तद्दक्षादिदेवताः ॥१६
आचार्यादीन्समभ्यर्च्य भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ।
तदुद्दिश्य कृतेनाऽऽशु सर्वारिष्टं प्रणश्यति ॥१७
शान्तिकर्मविधानेन कृत्वाऽन्यस्मिन्दिने शुभे ।
गर्भाधानं ततः कुर्यादित्याचार्योऽब्रवीद्वचः ॥१८
अकृत्वा शान्तिकं कर्म न कुर्याद्गर्भसाधनम् ।
सर्वेषां शाखिनामेव विधिरेष उदाहृतः ॥१९

इत्याश्वलायनधर्मशास्त्रे गर्भाधानप्रकरणम् ।

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पुंसवनानवलोभनसीमन्तोन्नयनप्रकरणम् ।

कुर्यात्पुंसवनं मासि तृतीयेऽनवलोभनम् ।
सीमन्तोन्नयनं चैव चतुर्थे मासि तद्भवेत् ॥१
नो चेत्षष्ठेऽष्टमे वाऽपि कर्तव्यं तद्द्वयं च हि ।
तावदेव भवेत्केचिद्यावत्स्याद्गर्भधारणम् ॥२

पुष्यादित्याश्विनीहस्तविधिमूलोत्तरामृगाः ।
हरिपूषानुराधाश्च शस्तं पुंसवनादिकम् ॥३
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं चतुर्थ्यन्तं च पूर्वकम् ।
दधिमाषौ यवं तस्या निधाय प्रसृतौ च तान् ॥४
त्रिः पिबेत्किं पिबसीति पतिः पुंसवनं हि सा ।
प्रोक्ष्यापः पुनरेव स्यात्त्रिवारं पुनराचमेत् ॥५
सिञ्चेद्दूर्वारसं तस्या दक्षिणे नासिकापुटे ।
आ ते गर्भ इति द्वाभ्यां सूक्ताभ्यां तावदुच्यते ॥६
प्रजापतये स्वाहेति जुहुयादाहुतिं चरोः ।
गुर्विण्या हृदयं स्पृष्ट्वा यत्ते मन्त्रमुदीरयेत् ॥७
धाता ददातु मन्त्रौ द्वौ तथा राकामहं च तौ ।
नेजमेषत्रयो मन्त्रा एको मन्त्रः प्रजापतेः ॥८
अष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा त्रिशुक्लशललीकुशैः ।
औदुम्बरेण युग्मेन ग्लप्स्थे(द्रप्से) न सफलेन च (?) ॥९
पूर्णसूत्रावृतेनेह सहैवैकत्र मेव च ।
त्रिरुन्नयेति गर्भिण्याः सीमन्तेन समूलतः (?) ॥१०
कृतकेशविभागं स्याद्योषिद्भालाग्रभागतः ।
सीमन्तं सधवाचिह्नं सदा सौभाग्यदायकम् ॥११
तिष्ठन्पश्चात्प्राङ्मुखोऽग्नेरुच्चरन्भुर्भुवः स्वरोम् ।
चतुर्थ्योमूढतं कृत्वा विद्वायां तु निरुध्यते (!) ॥१२
सामस्वरेण मन्त्रं च सोमं राजानमुच्चरेत् ।
समीपस्थनदीनाम समुच्चार्य नमेदथ ॥१३

पतिपुत्रवती नारी गर्भिण्या(णी)मुपदेशयेत् ।
मा कुरु क्लेशदं कर्म गर्भसंरक्षणं कुरु ॥१४

ततः स्विष्टकृदादि स्याद्धोमशेषं समापयेत् ।
पूर्ववत्फलदानानि कृत्वाऽऽचार्याय दक्षिणाम् ॥१५

वृषभं धेनुसंयुक्तं दद्याद्विभवसारतः ।
भोजयेच्छक्तितो विप्रान्कर्मसाद्गुण्यहेतवे ॥१६

प्राशनं यत्पुंसवनं होमश्चानवलोभनम् ।
प्रतिगर्भमिदं कुर्यादाचार्येणेह भाषितम् ॥१७

आज्यहोमश्च शललीकुशल्यप्सु निमज्जनम् ।
सीमन्तोन्नयनं तच्च प्रतिगर्भे न हि स्मृतम् ॥१८

प्रधानं पुंसवनं न स्यादङ्गं चानवलोभनम् ।
सीमन्तं च तथैव स्यात्केचिदुन्नयनं तथा ॥१९

इत्याश्वलायनधर्मशास्त्रे पुंसवनानवलोभनसीमन्तो न्नयन [प्रकरण]म्

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ जातकर्मप्रकरणम् ।

जाते सुते पिता स्नायान्नान्दीश्राद्धं विधानतः ।
जातकर्म ततः कुर्यादैहिकामुष्मिकप्रदम् ॥१

सौवर्णे राजते वाऽपि पात्रे कांस्यमयेऽपि वा ।
मधुसर्पिर्निषिच्याथ हिरण्येनावघर्षयेत् ॥२

प्राशयेत्तं हिरण्येन कुमारं मधुसर्पिषी ।
प्रतिमन्त्रं पठेत्कर्णे हिरण्यं स्थाप्य दक्षिणे ॥३
तथा वामे ज़पेन्मेधां स्पृशेदंसावतः परम् ।
अश्मा भव जपेदिन्द्रः श्रेष्ठान्यस्मै प्रयान्ति च ॥४
एवं कुर्यात्सुतस्यैव तूष्णीमेव च योषितः ।
केचिदिच्छन्त्यनादिष्टहोममन्त्रादिना परे ॥५

इत्याश्वलायनधर्मशास्त्रे जातकर्मप्रकरणम् ।

—०—

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ नामकरणप्रकरणम् ।

अहन्येकादशे कुर्यान्नामकर्म विधानतः ।
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं द्वादशे षोडशेऽपि वा ॥१
मार्गशीर्षं समारभ्य मासानां नाम निर्दिशेत् ।
नक्षत्रपादतो जातजन्मनाम तदुच्यते ॥२
यद्वा तातपितानां(तुर्ना)म भवेत्संव्यावहारिकम् ।
क्रमेणानेन संलिख्य नामानि च समर्चयेत् ॥३
समाक्षरयुतं नाम भवेत्पुंसः सुखप्रदम् ।
विषमं यदि तत्र श्रीः (श्री) समेतं च विनिर्दिशेत् ॥४
आचार्येणात्र मन्त्रोऽयं नामानि तु उदाहृतः ।
नमस्करोत्यसौ देवं ब्राह्मणेभ्यः पिता वदेत् ॥५

त्रिस्त्रिः स्यात्प्रतिनाम्नैवं ततः स्वस्तीति निर्दिशेत्।
भवन्तोऽस्य ब्रुवन्त्येवं प्रतिब्रूयुस्तथा द्विजाः ॥६

तत्तन्नाम शिशोस्त्रिस्त्रिर्ब्रूयात्तत्र तथाऽऽशिषः।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या भुञ्जीयात्सह बन्धुभिः ॥७

इत्याश्वलायनस्मृतौ नामकरण[प्रकरण]म् ॥

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ निष्क्रमणप्रकरणम्।

मासे चैवं चतुर्थे तु कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोः।
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धमादायाङ्के शिशुं पिता ॥१

स्वस्ति नो मिमीतां सूक्तं जपन्देवादिकं नयेत्।
आशुः शिशान इत्येतत्पठेत्तं श्वशुरालयम् ॥२

नीत्वाऽन्यस्य गृहं वाऽपि प्राङ्गणे वाऽर्कमीक्षयेत्।
तच्चक्षुरिति मन्त्रेण दृष्ट्वाऽर्कं प्रविशेद्गृहम् ॥३

इत्याश्वलायनस्मृतौ निष्क्रमण[प्रकरण]म् ॥

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

अथान्नप्राशनप्रकरणम् ।

षष्ठेऽन्नप्राशनं कुर्यान्मासे पुंस्यष्टमेऽथ वा ।
दशमे द्वादशे मासि केचिदेवं वदन्ति हि ॥१
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं शुभे चैव दिने पिता ।
सौवर्णे राजते पात्रे कांस्ये वाऽथ नवे शुभे ॥२
क्षीराज्यमधुदध्यन्नं विधाय प्राशयेच्छिशून् ।
मन्त्रेणान्नपतेऽन्नस्य हिरण्येन स्रुवेण च ॥
पाणिना सपवित्रेण जलं चापि हि पाययेत् ।
दत्त्वा विप्राय तत्पात्रं तूष्णीमेव च योषितः ॥४
ततो विभवसारेण ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ।
स्वयं चैव तु भुञ्जीयात्समाहितमना भवेत् ॥५

इत्याश्वलायनस्मृतावन्नप्राशन[प्रकरण]म् ।

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

अथ चौल(चूडाकरण)कर्मप्रकरणम्

तृतीये वत्सरे चौलं बालकस्य विधीयते ।
शुभे चैव दिने मासि विहितं चोत्तरायणे ॥१
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं पूर्वेद्युरपरेऽहनि ।
प्रातःसंध्यादिकं कृत्वा नान्दीश्राद्धं परेऽहनि ॥२

प्राणानायम्य संकल्प्य कुर्वीत स्थण्डिलादिकम्।
पात्रासादनपर्यन्तं कृत्वा धान्यानि पूरयेत् ॥३
उदगग्नेः शरावेषु प्राक्संस्थेषु नवेषु च।
तेषु वै क्रमतो व्रीहियवमाषतिलांश्च हि ॥४
पुरतःस्थे शरावे च विन्यसेद् वृषगोमयम्।
तदुत्तरे नवेऽन्यस्मिञ्छमीपर्णानि पूरयेत् ॥५
आघारान्तं ततः कुर्यात्कृत्वोत्तानानि पूरयेत्।
ततश्च जुहुयादाज्यमग्निश्चेति चतसृभिः ॥६
अग्न आयूंषि पवस इत्येका च प्रजापतेः।
एता एवोपनयने गोदाने च विवाहिके ॥७
मातुरङ्कोपविष्टस्य कुमारस्य तु चैव हि।
पश्चात्स्थित्वा पिता शीतं जलमादाय पाणिना ॥८
दक्षिणेनाथ सव्येन पाणिनोष्णं जलं तथा।
दक्षिणोत्तरयोस्तत्र निनयेत्केशपक्षयोः ॥९
उष्णेन वायमन्त्रेण जलधारे तयोश्च ते।
अनामिकाया चाऽऽदाय नवनीतं तथा दधि ॥१०
प्रदक्षिणप्रकारेण वामकर्णप्रदेशतः।
सकेशान्धारयेद् ब्रह्मा त्रींस्त्रीन्प्रागग्रकान्कुशान् ॥११
आचार्यश्छेदयेदेतानोषधे मन्त्रमुच्चरेत्।
क्लेदयेद्वामकर्णान्तं त्रिश्चैवादितिरुच्चरेत् ॥१२
क्षुरेणेति च तीक्ष्णेन ताम्रयुक्तेन चैव हि।
छेदितान्सुत आदाय मातुर्हस्ते निवेदयेत् ॥१३

विन्यसेत्ताञ्छमीपर्णैः सहाऽऽनडुहगोमये ।
येनावपत्प्रथमं स्याद्येन धाता द्वितीयकः ॥१४
तृतीये येन भूयश्च सर्वै रेव चतुर्थकम् ।
एवं च दक्षिणे कृत्वा त्रिवारं तूत्तरे तथा ॥१५
यत्क्षुरेणेति मन्त्रेण क्षुरधारां जलेन च ।
निमृज्येन्मर्म तत्कृत्वा नापिताय प्रदापयेत् ॥१६
यावन्तः प्रवरास्तस्य शिखामध्ये च पार्श्वयोः ।
पश्चात्पूर्वं तथा पञ्चप्रवराणां शिखाः स्मृताः ॥१७
अभ्यञ्जयेत्कुमारं तमानयेदग्निसंधौ ।
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥१८
यदुक्तं च यथाकाले कुर्यात्संस्कारकर्म च ।
असामर्थ्यात्कृतं नो चेद्विधिस्तस्य कः भवेत् ॥१९
प्रायश्चित्तं विधायाऽऽदावेकैकस्य च कर्मणः ।
कृत्वाऽऽदौ कृच्छ्रमेकैकं लुप्तकर्माणि कारयेत् ॥२०
मन्त्रमेकं जपेत्तत्र तत्तत्कर्मणि एव हि ।
विधिवच्चौलकर्मैवं कृत्वा स्यादुपनायनम् ॥२१
चौलकर्मादितश्चैवं यावद्वैवाहिकं भवेत् ।
तावत्स्याल्लौकिको ह्यग्निरिति वेदविदो विदुः ॥२२

इत्याश्वलायनस्मृतौ चौल(चूड़ाकरण)कर्मप्रकरणम् ।

॥ दशमोऽध्यायः ॥

अथोपनयनप्रकरणम्

ब्राह्मणस्याष्टमे वर्षे विहितं चोपनायनम् ।
सप्तमे चाथ वा कुर्यात्सर्वाचार्यमतं भवेत् ॥१
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धमावाह्य कुलदेवताः ।
मण्डपाद्यर्चनं कृत्वा भोजयेच्च द्विजान्स्वयम् ॥२
अथापरेद्युरभ्यज्ज्य कुमारं भोजयेत्ततः ।
वपेत्क्षुरवतः केशान्मात्रासहैकभाजने ॥३
चैलाङ्गस्थापिते ये च शिखे द्वे तेऽपि वापयेत् ।
सर्वकेशेऽपि कुमारस्य हित्वैकां मध्यमस्थिताम् ॥४
आसीनस्यान्तिके स्नातं कुमारमुपवेशयेत् ।
पितुश्च प्राङ्मुखस्येह प्रत्यङ्मुखमलंकृतम् ॥५
धृत्वाऽञ्जलिं कुमारस्य सुवर्णफलसंयुतम् ।
मुहूर्तकालपर्यन्तमसमीक्ष्य परस्परम् ॥६
ध्यायन्देवान्सुमुहूर्ते मुहूर्ते पितुरञ्जलौ ।
दत्त्वा फलमसौ तस्य निदध्यात्पादयोः शिरः ॥७
शिरः स्पृशेत्पिता तस्य स्वाङ्के तमुपवेशयेत् ।
यो यज्ञेन पठेत्सूक्तमाचार्यो ब्राह्मणैः सहः ॥८
आज्यसंस्कारपर्यन्तं प्राणायामादिपूर्वकम् ।
कृत्वा नवं ततो दद्यात्कौपीनं कटिसूत्रकम् ॥९
धारयित्वा ततो दद्याद्वाससी युवमित्यृचा ।
एकं स्यात्परिधानार्थमेकं प्रावरणाय हि ॥१०

इच्छन्ति केचिदैणेयमृक्सामाभ्यां तथाऽजिनम् ।
उपवीतं ततो दद्याद्यज्ञोपवीतमन्त्रतः ॥११
आचम्याथ वटुर्गच्छेत्पुरतश्चोत्तरे गुरोः ।
दृष्ट्वा पात्रं तथाऽऽगत्य दक्षिणे तूपवेशयेत् ॥१२
कृत्वाऽऽज्याहुतिपर्यन्तं बर्हिरास्तरणादिकम् ।
कुमारः पूर्ववद्गच्छे दुदगग्रे गु(ग्नेर्गु)रोश्च हि ॥१३
आचार्यः प्राङ्मुखस्तिष्ठेद्वटुः प्रत्यङ्मुखस्तथा ।
आचार्यः पूरयेत्तत्र कुमारस्याञ्जलौ जलम् ॥१४
सजले चाञ्जलौ तस्य गन्धपुष्पाणि चाऽऽवपेत् ।
सुवर्णं च यथाशक्ति फलैः क्रमुकजैः सह ॥१५
आचार्यस्याञ्जलौ ब्रह्मा पूरयेत्सलिलं च तत् ।
आचार्यो मन्त्रमुच्चार्य तत्सवितुर्वृणीमहे ॥१६
कुमारस्याञ्जलौ चैव निनयेत्स्वस्य चाञ्जलिम् ।
ध्यायन्कुमार आदित्यमर्घ्यपात्रे निवेदयेत् ॥१७
देवस्य त्वेति गृह्णीयात्साङ्गुष्ठं करमस्य च ।
असौ शर्मेति दीर्घायुर्भवत्विति वदेत्पिता ॥१८
अथ वाऽसौ पदे नाम संबुद्ध्या वाऽस्य नामकम् ।
उच्चार्य शर्म दीर्घायुर्भवेत्येके वदन्ति हि ॥१९
एवं त्रिः पूर्ववच्चैव मन्त्रोऽन्यः स्यात्करग्रहे ।
सविता तेऽयमेकः स्यादग्निराचार्य एव च ॥२०
ईक्षयेद्वटुरादित्यं देवं सवितृमन्त्रतः ।
आवर्तयेत्कुमारं तं पूर्वार्धर्चे न चैव हि ॥२१

पाणिभ्यामुत्तरेणांसौ पाणी वाऽस्य हृदि स्पृशेत् ।
एवं कृत्वा पुनश्चामुं दक्षिणे बटुमानयेत् ॥२२

तूष्णीं समिधमादाय निदध्याद्नले च ताम् ।
मन्त्रेणाग्नय इत्यत्र वदन्त्येके महर्षयः ॥२३

ओष्ठौ विलोमकौ कृत्वा पाणिद्वयतलेन च ।
त्रिवारं प्रतिमन्त्रेण तेजसा मेति चैव हि ॥२४

सूत्रोदितान्मयीत्यादीन्मन्त्रांस्त्रिष्ठ्जपेदथ ।
मानस्तोकेऽनया भाले त्रिपुण्ड्रं धारयेत्क्रमात् ॥२५

हृदि नाभौ तथा बाह्वोर्मस्तके चापि केचन ।
त्र्यायुषं ताञ्जपेन्मन्त्रानुपस्थायों च मे स्वरः ॥२६

पुरतः पितुरासीनो ब्रह्मचारी कुशासने ।
गायत्रीमनुगृह्णीयादुपांशु प्रत्यगाननः ॥२७

पूर्ववदुपविश्यांसावन्वाच्य जानु दक्षिणम् ।
फलाक्षतसुवर्णं च गुरवे तन्निवेदयेत् ॥२८

अधीहीत्यादिकं मन्त्रं समुच्चार्य यथाविधि ।
नमस्कुर्याद् गुरोः पादौ धृत्वा हस्तद्वयेन च ॥२९

ब्राह्मणोऽहं भवानीह गुरोऽहं ते प्रसाददतः ।
गायत्री(त्रीं)मामनुब्रूहि शुद्धात्मा सर्वदाऽस्मि हि ॥३०

संगृह्य पाणी पाणिभ्यां स्वस्य च ब्रह्मचारिणः ।
वाससाऽऽच्छादनं कृत्वा गायत्रीमनुवाचयेत् ॥३१

उच्चार्य प्रणवं चाऽऽदौ भुर्भुवः स्वस्ततः परम् ।
पच्छ(पाद)मर्धमृचं चैव तं यथाशक्ति वाचयेत् ॥३२

पाणिना हृदयं तस्य स्पृष्ट्वा मम व्रतं जपेत् ।
प्राणायामं ततः कृत्वा ब्रह्मचार्येव नेतरः ॥३३
आबध्य मेखलां तस्य प्रावेपामेत्यृचं जपेत् ।
एषक्षेत्यनया दण्डं धारयित्वादिशेद्व्रतम् ॥३४
ब्रह्मचर्यादिकं भिक्षां ददात्वित्यन्त एव च ।
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समाप्य च ॥३५
याचयेत्प्रथमां भिक्षां पितरं मातरं च वा ।
पितरं यदि याचेत भवान्भिक्षां ददात्विति ॥३६
भवतीति पदं चोक्त्वा भिक्षां देहीति याचयेत् ।
मातरं चाग्र एवेति गत्वा पात्रं करान्तिके ॥३७
तण्डुलान्सफलान्दद्याद्भिक्षार्थं जननी तु च ।
होमार्थं तण्डुलान्मात्रे दत्त्वा शेषं गुरोरथ ॥३८
याचिता तत्र या भिक्षा गुरवे तां निवेदत् ।
पितैव गुरुराचार्यो भवेत्सद्भिरुदाहृतः ॥३९
यस्मात्पुरोहितो ब्रह्मा होता च सह याज्ञिकम् ।
उक्त्वा वेदमधीष्वात्र यस्मादिशति वै पिता ॥४०
तदाचार्यपदं तत्र जायते ब्राह्मणेऽपि हि ।
पिता माता तथाऽऽचार्यास्त्रयो मान्या सदैव हि ॥४१
अन्येऽपि श्रोत्रिया वृद्धा वेदविद्याप्रदास्तथा ।
दद्याद्विभवसारेण कर्माङ्गत्वेन दक्षिणाम् ॥४२
सुवर्णाम्बरधान्यानि सद्योऽनन्तफलं लभेत् ।
न ददाति द्विजो होत्रे लोभाद्यज्ञाङ्गदक्षिणाम् ॥४३

वित्ते सति कृतं कर्म निष्फलं स्याद्धनक्षयः।
धनिनोऽयं निषेधः स्याद् व्रतहीनस्य चैव हि ॥४४

असमर्थो नमेत्सद्योदत्त्वाऽक्षतफलादिकम्।
विप्रेभ्योदक्षिणां दत्त्वा गृह्णीयादाशिषः स्वयम् ॥४५

यथाविभवसारेण हेतवे यज्ञसाक्षिणः।
आसायं न हि किंचित्स्यान्नैत्यकं कर्म चैव हि ॥४६

ब्रह्मचारिण एवात्र सायं संध्या विधीयते।
ब्रह्मचारी ततः कुर्यात्सायंसंध्यां यथाविधि ॥४७

अग्निकार्यं तथा होमं तस्मिन्नग्नौ विधीयते।
नो चेत्स्यात्पूर्ववत्कुर्यादाचार्यः स्थण्डिलादिकम् ॥४८

पूर्णपात्रनिधानान्तमनलस्थापनादिकम्।
निर्वपेन्मातृतः प्राप्तांस्तण्डुलान्सदसस्पतेः।
सवितुश्च ततस्तूष्णीमृषीणां मन्त्रतः क्रमात् ॥४९

श्रपयित्वौदनं कुर्यादाघारान्तं हुनेदथ।
सदसस्पतिमन्त्रेण गायत्र्यर्षिभ्य एव च ॥५०

चर्वाहुतित्रयं दत्त्वा कुर्यात्स्विष्टकृदादिकम्।
भोजयित्वा द्विजान्वेदसमाप्तिरस्य चोत्तरे ॥५१

निर्विघ्नेन त्रिवारं तु पिताऽस्य ब्रह्मचारिणः।
वसेदसौ त्रिरात्रं तु क्षारादिव्रतमाचरेत् ॥५२

प्रातःसंध्यामुपास्याग्निकार्यं कृत्वा परेऽहनि।
मध्याह्ने चाऽऽचरेत्संध्यां ब्रह्मयज्ञादनन्तरम् ॥५३

उपाकरणपर्यन्तं सावित्र्या ब्रह्मयज्ञकम् ।
ततोऽग्निमील इत्यादि जपेद्वेदान्स्वशक्तितः ॥५४

चतुर्थदिवसे कुर्यान्मेधाजननकं च हि ।
संध्यादिकं विधायाथ गच्छेत्पालाशसंनिधौ ॥५५

कलशान्स्थापयेत्तत्र चतुष्कोणेषु चैव हि ।
पलाशं पूजयेत्तत्र वसन्तं च यथाविधि ॥५६

श्रद्धां मेधां च वै प्रज्ञां पूजयेच्छ्रद्धयेत्यृचा ।
गन्धपुष्पाक्षतैश्चैव धूपदीपादिभिस्तथा ॥५७

प्रदक्षिणात्रयं कुर्यादाचार्यः सुश्रवं पठन् ।
निनयेज्जलधाराश्च सहैव ब्रह्मचारिणा ॥५८

मेखलामजिनं दण्डं वस्त्रं यज्ञोपवीतकम् ।
एकैकं धारयेत्तत्र क्रमेणैवं त्यजेदथ ॥५९

आचार्याय च ते दद्याद्वाससी ब्रह्मचार्यथ ।
नवं चैवात्र कौपीनं धारयेत्पुनरेव हि ॥६०

विप्रेभ्यः कलशान्दद्याद् गृह्णीयादाशिषः शुभाः ।
यथाचारं तथा कुर्याद्देवकोत्थापनं च हि ॥६१

इत्याश्वलायनस्मृतावुपनयनप्रकरणम् ।

॥ एकादशोऽध्यायः ॥

अथ महानाम्न्यादिव्रतत्रयप्रकरणम्।

महानाम्नीव्रतं कुर्यात्पूर्णाब्दे चोत्तरायणे।
शुक्लपक्षे शुभेऽह्नि स्यादुपनायनवच्च हि ॥१
महाव्रतं द्वितीये तु भवेत्तत्पूर्ववच्च हि।
संपूर्णे च तृतीयेऽब्दे तथा चोपनिषद्व्रतम् ॥२
मासे पूर्णे तथा कुर्यात्क्रमाच्चैतद्व्रतत्रयम्।
कुर्यात्परिददाम्यात(म्यन्त)मुपनायनहोमवत् ॥३
चर्वाहुतित्रयं हुत्वा जुहुयात्तिलमिश्रितम्।
अनुप्रवचनीयोक्ता देवताश्च ततः स्मृताः ॥४
महानाम्नीभ्यः स्वाहेति सावित्र्या स्नानमिष्यते।
महाव्रताय चाथोपनिषदे तत्र तत्र तु ॥५
वस्त्रादीनि तथाऽन्यत्र दत्त्वा चाऽऽज्याहुतीरथ।
चर्वाहुतित्रयं हुत्वा मौञ्जीं दण्डं च धारयेत् ॥६
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत्।
विदामघवनाथान्त(?) इत्यारम्भे जपेदथ ॥७
नत्वा गुरुमथाऽऽदित्यमीक्षयेद्ब्रह्मचार्यथ।
उक्त्वाऽऽचार्यमधीहीति भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ॥८

इत्याश्वलायनस्मृतौ महानाम्न्यादिव्रतत्रय[प्रकरण]म् ॥

॥ द्वादशोऽध्यायः ॥

अथोपाकर्मप्रकरणम् ।

श्रवणे स्यादुपाकर्म हस्ते वा श्रावणस्य तु ।
नो चेद्भाद्रपदे वाऽपि कुर्याच्छिष्यैर्गुरुः सह ॥१

ग्रहदोषादुपाकर्म प्रथमं न भवेद्यदि ।
उक्तकालेऽथ वाऽऽषाढे कुर्याच्छरदि वाऽपि वा ॥२

अकाले नैव तत्कुर्यादुपाकर्म कथंचन ।
अकृत्वा नोद्वहेत्कन्यां मोहाच्चेत्पतितो भवेत् ॥३

अनारभ्योक्तकाले च वेदान्कन्यां य उद्वहेत् ।
नूतनो ब्रह्मचारी स्यात्सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥४

स्नात्वा नित्यक्रियां कुर्यादृषींश्चैव समर्चयेत् ।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे गौतमादींश्च सप्त वै ॥५

आज्यसंस्कारपर्यन्तमुपलेपादि पूर्ववत् ।
सक्तूंस्तेनाथ संकुर्यात्स्थालीस्थान्दधिसंयुतान् ॥६

त्रिः प्रोक्ष्य स्थापयेत्स्थालीं बर्हिष्याज्यस्य दक्षिणे ।
कुर्यादग्निमलंकृत्य चक्षुष्यन्तं च पूर्ववत् ॥७

सावित्र्यादीन्दशाऽऽज्येन जुहुयादाहुतीरथ ।
केचिद्यज्ञोपवीतस्य होममिच्छन्ति चात्र हि ॥८

उत्सर्गेऽप्येवमेवं स्याद्बह्वृचानामयं विधिः ।
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा दधिसक्तुभिरेव च ॥९

प्राशयेद्दधिसक्तूंश्च गुरुः शिष्यान्समाशयेत्।
दानं यज्ञोपवीतस्य धारणं च विधीयते ॥१०

ब्रह्मचारी च मौञ्जीवद्धारयेदजिनादिकम्।
निषिच्यापः शरावे तु अभिमार्जनमुच्यते ॥११

प्रणवेन च वै सर्वे कुर्युस्ते दर्भपाणयः।
विधिनाऽनेन तां ब्रूयादादावों भूर्भुवः स्वरोम् ॥१२

त्रिवारं चैव सावित्रीं पादमर्धमृचं क्रमात्।
अग्निमील इदं सूक्तं वाचयेद्ब्रह्मचारिणम् ॥१३

क्रमेण संहितारण्यं ब्राह्मणं सूत्रमेव च।
याजुषं साम चाथर्वमङ्गानि च यथाक्रमम् ॥१४

अध्यापयित्वा रुद्रादिहोमशेषं समापयेत्।
ततश्चाभ्यासयेद्वेदं स्वाध्याये ब्रह्मचारिणम् ॥१५

तत आरभ्य षण्मासं गुरुसेवान्तरं च हि [?]।
उपनीतोऽभ्यसेद्वेदं यथाश्रुत्युक्तमार्गतः ॥१६

नियमेन च षण्मासमृग्वेदादिकमेव हि ॥१७

इत्याश्वलायनस्मृतावुपाकर्म[प्रकरण]म्।

॥ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

अथोत्सर्जनप्रकरणम् ।

उत्सर्गं च द्विजः कुर्यात्षण्मास इदमादितः ।
दार्ढ्यार्थं (दीर्घार्थं) च हितं चैतदधीतानां च छन्दसाम् ॥१

पुष्पे चैवोपलेपादि कृत्वा चोत्पवनावधि ।
संस्कृत्य सक्तुवच्चान्नं चक्षुष्यन्तं च पूर्ववत् ॥२

सप्त चाऽऽज्याहुतीर्हुत्वा सक्तुस्थाने हुनेच्चरुम् ।
हुत्वा स्विष्टकृतं चैव अभिघार्य यथाविधि ॥३

कर्मोत्सर्गे भवेत्सर्वमुपाकरणवच्च हि ।
प्रतिवर्षं द्विजैः कार्यं प्राशनं मार्जनं विना ॥४

तर्पयेद्देवताः सर्वाः सावित्र्यादि य(दीर्य)थाक्रमम् ।
अत्र चैवापि सर्वेऽपि ब्रह्मयज्ञाङ्गदेवताः ॥५

जुहुयाद्रुद्रभागादीन्होमशेषं समापयेत् ।
विशेषं चाऽऽहुराचार्याः केचिद्यज्ञविदो विदुः ॥६

उपाकर्मणि चोत्सर्गे पुनश्चापि यथाविधि ।
नैत्यकं तर्पणं कृत्वा ब्रह्मयज्ञपुरःसरम् ॥७

इत्याश्वलायनस्मृतावुत्सर्जन[प्रकरण]म् ।

॥ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

अथ गोदानादित्रयप्रकरणवर्णनम् ।

गोदानं षोडशे वर्षे कुर्यात्तदुदगायने ।
केचिद्विवाहकाले च शुभ मासि वदन्ति हि ॥१
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धमुपलेपेन पूर्ववत् ।
विधायोपरि समिधमन्वाधानादिकं च हि ॥२
चौलोक्ताज्याहुतीर्हुत्वा चौलवच्छ्मश्रुवापनम् ।
स्नापयेद्वाससी दद्याद्युवं वस्त्राणि मन्त्रतः ॥३
अञ्जनं कुण्डलादीनि दण्डान्तानि च धारयेत् ।
आयुष्यमिति वै सूक्तं पठन्गच्छेच्छिवालयम् ॥४
पुनरागत्य संतिष्ठदाधाय समिधं च ताम् ।
स्मृतमित्यादिकान्मन्त्राञ्जपित्वा प्रक्षिपेत्स्वयम् ॥५
कृत्वा तु स्नातकः पश्येत्समावर्तनकं भवेत् ।
ममाग्ने प्रत्यृचं हुत्वा समिधश्च दश स्वयम् ॥६
स्पृष्ट्वा पादौ नमस्कुर्याद्गुरोर्दत्त्वेति तत्फलम् ।
न नक्तमिति चानुज्ञालब्धस्तेन यथोदितम् ॥७
ततः स्विष्टकृतं कृत्वा होमशेषं समापयेत् ।
लभेदाज्ञां विवाहार्थं गुरुर्निर्मुच्य मेखलाम् ॥८
समावृत्तस्य वै मौञ्जीं होमान्ते चैव वह्वृचः ।
उदुत्तमं मुमुग्धीति मन्त्रेणानेन मोचयेत् ॥९

इत्याश्वलायनस्मृतौ गोदानादित्रय[प्रकरण]म् ।

।। अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।।

अथ विवाहप्रकरणम् ।

सर्वेषामाश्रमाणां च गृहस्थाश्रम उत्तमः ।
तमेवाऽऽश्रित्य जीवन्ति सर्वे चैवाऽऽश्रमा इह ।।१
कुलजां सुमुखीं स्वा(स्व)ङ्गीं सुवासां च मनोहरम् ।
सुनेत्रां सुभगां कन्यां निरीक्ष्य वरयेद्बुधः ।।२
स्नातकाय सुशीलाय कुलोत्तमभवाय च ।
दद्याद्वेदविदे कन्यामुचिताय वराय च ।।३
आचार्यः स्नातकादीनां मधुपर्कार्चनं चरेत् ।
स्वगृह्योक्तविधानेन विवाहे च महामखे ।।४
मधुनाऽऽज्येन वा युक्तं मधुपर्काभिधं दधि ।
दध्यलाभे पयो ग्राह्यं मध्वलाभे तु वै गुडः ।।५
निदध्यात्तं नवे कांस्ये तस्योपरि पिधाय च ।
वेष्टयेद्विष्टरेणैव मधुपर्कं तदुच्यते ।।६
प्राणानायम्य संकल्प्य विष्टराद्यर्चनं भवेत् ।
त्रिस्त्रिर्ब्रूयादहं वर्ष्म मन्त्रेणानेन विष्टरम् ।।७
पाद्यमर्घ्यं तथा दत्त्वा दद्यादाचमनीयकम् ।
पिबेज्जलं चामृतोपस्तरणमसीति मन्त्रतः ।।८
आच(चा)मेन्मधुपर्कोऽयं मित्रस्येति निरीक्षयेत् ।
देवस्य त्वेति तद्दद्यादञ्जलौ प्रतिगृह्य च ।।९

तदवेक्ष्य करे सव्ये धृत्वा मन्त्रं जपेन्मधु ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां त्रिस्तदेवाऽऽलोडयेद्वरः ॥१०
मधुपर्कं क्षिपेत्किंचिद्वसवस्त्वेति पूर्वतः ।
भूतेभ्यस्त्वोत्क्षिपेन्त्रिस्तं निदध्याद्भुवि भाजनम् ॥११
कर्ताऽऽदाय सकृद्धस्ते मधुपर्कं वरस्य च ।
जपेदथविराजोऽथ प्राशयेत्पुनराचमेत् ॥१२
पूर्ववच्च विधानं स्यान्मन्त्रोऽन्यः प्राशने भवेत् ।
उक्तं सूत्रे विजानीयात्तृतीये प्राशने तथा ॥१३
तुत्तराचमनं पीत्वा सत्यमित्युदकं पिबेत् ।
द्विराचम्योत्सृजन्माता रुद्राणां मन्त्रतो वरः ॥१४
ततः कर्ताऽर्चयेदेनं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
वराय वाससी दद्यादुपवीतादिकं च हि ॥१५
वरयेच्चतुरो विप्रान्कन्यकावरणाय च ।
कन्यासमीपमागत्य विप्रगोत्रपुरःसरम् ॥१६
नाम ब्रूयुर्वरस्याथ प्रपितामहपूर्वकम् ।
प्रपौत्रपौत्रपुत्रेषु चतुर्थ्यन्तं वराय च ॥१७
गोत्रे चैवाथ संबन्धे षष्ठी स्याद्वरकन्ययोः ।
वरे चतुर्थी कन्यायां विभक्तिर्द्वितीयैव हि ॥१८
श्रावयेयुः प्रसुग्मन्तासूक्तं कन्यां कनिक्रदत् ।
देवीमृचं पठन्तश्च नयेयुस्ते हि वै वरम् ॥१९
प्राङ्मुखी कन्यका तिष्ठेद्वरः प्रत्यङ्मुखस्तथा ।
वस्त्रान्तरं तयोः कृत्वा मध्ये तु वरकन्ययोः ॥२०

परस्परमुखं पश्यन्मुहूर्तं चाक्षतान्क्षिपेत्।
वरमूर्ध्नीति कन्याऽऽदौ कन्यामूर्ध्नि वरस्तथा ॥२१
गाथामिमां पठेयुस्ते ब्राह्मणा ऋक्च वा इदम्।
क्षिपेयुस्तेऽक्षतान्विप्राः शिरसोरुभयोरपि ॥२२
तिष्ठेत्प्रत्यङ्मुखी कन्या प्राङ्मुखः स्याद्वरस्तथा।
मन्त्रेणानृक्षराश्चैव भवेत्स्थानविपर्ययः ॥२३
अक्षतारोपणं कुर्यात्पूर्ववच्चैव कन्यका।
श्रियो मे कन्यका ब्रूयात्प्रजाय स्याद्वरस्तथा ॥२४
त्रिवारमेवं कृत्वा तु कन्यां दद्यात्ततः पिता।
शिष्टाचारानुसारेण वदन्त्येके महर्षयः ॥२५
लक्ष्मीरूपामिमां कन्यां प्रददे द्वि(वि)ष्णुरूपिणे।
तुभ्यं चोदकपूर्वां तां पितॄणां तारणाय च ॥२६
वरगोत्रं समुच्चार्य कन्यायाश्चैव पूर्ववत्।
एषा धर्मार्थकामेषु न त्याज्या स्वीकृता ह्यतः ॥२७
दाता वदेदिमं मन्त्रं कन्या तारयतु स्वयम्।
अक्षतारोपणं काय मन्त्र उक्तो महर्षिभिः ॥२८
इहापि पूर्ववत्कुर्यादक्षतारोपणं सकृत्।
यज्ञो मे कन्यकामन्त्रः पशवो मे वरस्य च ॥२९
ईशानकोणतः सूत्रे वेष्टयेत्पञ्चधा तयोः।
परि त्वेत्यादिभिर्मन्त्रैः कुर्यात्तच्च चतुर्गुणम् ॥३०
रक्षाथ दक्षिणे हस्ते बध्नीयात्कङ्कणे तयोः।
विश्वेत्ता साविकं [तेतिवै]पुंसः कन्यायास्तद्ब्रवीतथा [?]॥३१

कन्यायै वाससी दद्याद्युवमित्यनया वरः।
तयोरुभे ते बध्नीयान्नीललोहितमित्यृचा ॥३२

बध्नीयात्कन्यकाकण्ठे सूत्रं मणिसमन्वितम्।
माङ्गल्यतन्तुनाऽनेन मन्त्रेण स्यात्सदा सती ॥३३

पुण्याहं स्वस्ति वृद्धिं च त्रिस्त्रिर्ब्रूयाद्वरस्य च।
अनाधृष्टमुभौ मन्त्रावापो ह्यानः प्रजां तथा ॥३४

नमस्कुर्यात्ततो गौरीं सदा मङ्गलदायिनीम्।
तेन सा निर्मला लोके भवेत्सौभाग्यदायिनी ॥३५

दंपती तु प्रजेयातां होमार्थं चैव वेदिकाम्।
वरस्य दक्षिणे भागे तां वधूमुपवेशयेत् ॥३६

आघारान्तं ततः कुर्यादुपलेपादि पूर्ववत्।
सूत्रोक्तविधिना कर्म सर्वं कुर्यात्तु चैव हि ॥३७

अग्न आयूंषि तिस्रोऽत्रत्वमर्यमा प्रजापते।
हुत्वा त्वाज्याहुतीरेवं सूत्रोक्तं पाणिपीडनम् ॥३८

वरस्त्रिः प्रोक्षयेल्लाजाञ्छूर्पस्थानभिघारयेत्।
अभिघार्याञ्जलिं तस्याः पूरयित्वाऽभिघारयेत् ॥३९

अञ्जलीन्पूरयेद्धृत्वा लाजान्वध्वा विवाहिके।
विच्छिन्नवह्निसंधाने पतिर्लाजान्द्विरावपेत् ॥४०

हुत्वा लाजांस्तथा होमं हुत्वा कुर्यात्प्रदक्षिणम्।
सोदकुम्भस्य चैवाग्नेरश्मानमवरोहयेत् ॥४१

विधिरेष विवाहस्य प्रत्याहुतिप्रदक्षिणम्।
मन्त्रोऽर्यमणं वरुणं पूषणं लाजहोमके ॥४२

अवशिष्टान्वरो लाजाञ्छूर्पकोणेन चैव हि ।
अभ्यात्मं जुहुयायात्तूष्णीमिति यज्ञविदां मतम् ॥४३
यदि वद्धे शिखे स्यातां कन्यकावरयोरपि ।
प्रत्यृचं च शिखे बद्ध्वा तूष्णीं वरस्य मोचयेत् ॥४४
इष इत्यादिभिर्मन्त्रैरीशान्यां चालयेद्वधूम् ।
गत्वा पदानि सप्ताथ संयोज्य शिरसी च ते ॥४५
कुम्भस्य सलिलं सिञ्चेदुभयोः शिरसोः स्वयम् ।
सौभाग्यजननीं देवीं स्मृत्वा दाक्षायणीं शिवाम् ॥४६
ततः स्विष्टकृदादि स्याद्धोमशेषं समापयेत् ।
अहः शेषं च तिष्ठेतां मौनेनैव तु दंपती ॥४७
ध्रुवं चारुन्धतीं दृष्ट्वा विसृजेतामुभौ वचः ।
पतिपुत्रवती चाऽऽशीस्तयोर्दद्याद्यथोचितम् ॥४८
अनेन विधिनोत्पन्नो विवाहाग्निरिति स्मृतः ।
स एव स्यादजस्राख्य इति यज्ञविदो विदुः ॥४९ ॥४९
दिवा वा यदि वा रात्रौ कन्यादानं विधीयते ।
तदानीमेव होमं तु कुर्याद्वैवाहिकं च हि ॥५०

इति विवाहहोमविधि वर्णनम् ।

वध्वा सह गृहं गच्छेदादायाग्निं तमग्रतः।
सूत्रोक्तविधिना चेह प्रियामूढां प्रवेशयेत् ॥५१
प्रतिष्ठाप्यानलं कुर्याच्चक्षुष्यन्तं च पूर्ववत्।
ऋग्भिश्च जुहुयादाज्यमानः प्रजां चतसृभिः ॥५२
समञ्जन्त्वेतया प्राश्य दधि तस्यै प्रयच्छति।
अनक्ति हृदये तस्या दध्नाऽलाभे घृतं च तत् ॥५३
मन्त्रलोपादि होमान्तं कृत्वा स्विष्टकृदादिकम्।
हुत्वा व्याहृतिभिश्चात्र पत्नीं वामे समानयेत् ॥५४
नवोढामानयेत्पत्नीं वामं वामं त इत्यृचा।
वाममद्येत्यृचा चैके ततः पूर्णमसीति च ॥५५
यदि कालवशात्कर्तुं पृथग्घोमद्वयं न चेत्।
द्वयमप्येककाले वा कर्तव्यं कर्म केचन ॥५६
कुम्भस्य जलसिक्तान्तं कृत्वा सर्वं तदादितः।
प्रत्यृचं जुहुयादाज्यमानः प्रजां चतसृभिः ॥५७
समञ्जन्त्विति चाऽऽरभ्य सर्वं पूर्ववदाचरेत्।
स्वस्थानीयवधूं वामे पूर्णमस्यादिकं चरेत् ॥५८
रात्रावहनि वा दानं कन्यायाः स्वीकृतं यदा।
तदानीमेव होमः स्याद्विवाहस्य च सिद्धये ॥५९
यावत्सप्तपदीमध्ये विवाहो नैव सिध्यति।
सद्योऽतो होममिच्छन्ति सन्तः सायमुपासनम् ॥६०
विवाहश्चेद्भवेद्रात्रौ सार्धयामद्वयादधः।
तदैवोपासनं कुर्यात्केचिद्गृह्यविदो विदुः ॥६१

नित्यहोमे तु कालः स्याद्रात्रौ नाडीनवात्मकः।
द्विगुणः स्याद्विवाहे तु प्रवदन्ति महर्षयः ॥६२
दंपती नियमेनैव ब्रह्मचर्यव्रतेन तु।
वैवाहिकगृहे तौ च निवसेतां चतुर्दिनम् ॥६३
चतुर्थी(र्थ)त्रिदिव(न)स्यान्ते यामे वा चैव दंपती।
उमामहेश्वरौ नत्वा वंशदानं प्रदापयेत् ॥६४
भोजनं शयनं स्नानं तथैकत्रोपवेशनम्।
गृहप्रवेशपर्यन्तं दंपत्योर्मुनयो विदुः ॥६५
वध्वा सह वरो गच्छेत्स्वगृहं पञ्चमे दिने।
गृह्योक्तविधिना चैव देशधर्मेण वाऽपि च ॥६६
नान्दीश्राद्धं द्विजः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
गृहप्रवेशमारभ्य पितर्यपि च जीवति ॥६७
स जीवत्पितृको नान्दीश्राद्धं चेत्कुरुते द्विजः।
पितुश्चैव पितॄणां तु प्रवदन्ति महर्षयः ॥६८
प्रथमोद्वाहपर्यन्तं पुत्रस्यैव क्रियासु च।
नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादत ऊर्ध्वं सुतः स्वयम् ॥६९
चत्वारो ब्राह्मणा दैवे पित्र्ये चाष्टादश स्मृताः।
नान्दीश्राद्धं वदन्त्येके मुनयः पञ्च वाऽपि च ॥७०
विवाहे चोपनयने गर्भाधानादिके तथा।
अन्वाधाने शतं विप्रान्भोजयेद्दक्षिणान्वितान् ॥७१
विवाहोत्सवयज्ञेषु दैवे पित्र्ये च कर्मणि।
प्रारब्धे सूतकं नास्ति प्रवदन्ति महर्षयः ॥७२

प्रारम्भकर्मणश्चैव क्रियाप्रारम्भकस्य च ।
क्रियावसानपर्यन्तं न तस्याऽऽशौचमिष्यते ॥७३
प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः ।
नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥७४
नान्दीश्राद्धे कृते चैव विवाहे चोत्सवादिषु ।
न कुर्यादुपवासं च छन्दसां वै तपोव्रतम् ॥७५
अपसव्यं स्वधाश्राद्धं नदीस्नानं शवेक्षणम् ।
वर्जयेत्तर्पणं चैव देवकोत्थापनावधि ॥७६
नान्दीश्राद्धे कृते मोहाच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकादिकम् ।
सपिण्डः कुरुते यश्चेदपमृत्युं व्रजेद्ध्रुवम् ॥७७
अलाभे सुमुहूर्तस्य विघ्नं यः कुरुते यदि ।
स्वधया तु विवाहस्य न स पश्येच्छुभं क्वचित् ॥७८
विघ्नमाचरते यस्तु यज्ञस्योद्वाहकस्य च ।
यात्रायाश्चैव धर्मस्य स याति नरकं ध्रुवम् ॥७९
ऊढाया दुहितुश्चान्नं नाद्याद्विप्रः कथंचन ।
अज्ञानाद्यदि भुञ्जीत नरकं प्रतिपद्यते ॥८०

इत्याश्वलायनस्मृतौ विवाहप्रकरणम् ।

॥ षोडशोऽध्यायः ॥

अथ पत्नीकुमारोपवेशनप्रकरणम् ।

संस्कार्यः पुरुषो वाऽपि स्त्री वा दक्षिणतो भवेत् ।
संस्कारकस्तु सर्वत्र तिष्ठेदुत्तरतः सदा ॥१
धर्मकार्येषु सर्वेषु व्रतोद्यापनशान्तिषु ।
वामे स्त्री दक्षिणे कर्ता स्थालीपाके तथैव च ॥२
मार्जने चाभिषेके च कन्यापुत्रविवाहके ।
आशीर्वचनकाले च पत्नी स्यादुत्तरे सदा ॥३
विच्छिन्नवह्निसंधाने कन्यादाने वरार्चने ।
नवोढाप्रवेशे पत्नी दक्षिणे स्वयमुत्तरे ॥४
आरभ्याऽऽधानकं कर्म यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ।
कर्ता स्यादुत्तरे तावत्पत्नी पुत्रस्य दक्षिणे ॥५
पत्नीं विना न तत्कुर्यात्संस्कारं कर्म यच्छिशोः ।
पत्न्यां चैव तु जीवन्त्यां विधिरेष उदाहृतः ॥६
इत्याश्वलायनस्मृतौ पत्नीकुमारोपवेशन[प्रकरण]म् ।

॥ सप्तदशोऽध्यायः ॥

अथाधिकारिनियमप्रकरणम् ।

सुतसंस्कारकर्माणि पिता कुर्यात्सभार्यकः ।
तदभावेऽधिकारी च कुर्यादेव स चापि हि ॥१

पिता यस्य मृतश्चेत्स्यादधिकारी पितामहः।
तदभावे तु वै भ्राता पितृव्यो गोत्रजो गुरुः ॥२

व्रतबन्धे विवाहे च कन्यायाश्चापि व तथा।
सपत्नीको वाऽपत्नीकः सोऽधिकारी भवेदिह ॥३

संस्कार्यस्य च वै यस्य यदि माता विपद्यते।
पत्नीं विनेति नियमः सद्भिश्चैवात्र नोच्यते ॥४

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा योऽधिकारी स एव हि।
संस्कुर्यादथ वा (तत्र)ब्राह्मणो ब्रह्मसंभवम् ॥५

इत्याश्वलायनस्मृताधिकारिनियम[प्रकरण]म्।

॥ अष्टादशोऽध्यायः ॥

अथ नान्दीश्राद्धे पितृप्रकरणम्।

अथ नान्दीश्राद्धपूर्वककर्माण्याह।

आधाने पुंसि सीमन्ते जातनामनि निष्क्रमे।
अन्नप्राशनके चौले तथा चैवोपनायने ॥१

ततश्चैव महानाम्नि तथैव च महाव्रते।
अथोपनिषद्गोदाने समावर्तनकेषु च ॥२

विवाहे नियतं नान्दीश्राद्धमेतेषु शस्यते।
प्रवेशं च नवोढायाः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥३

अन्यान्यत्र वदन्त्येके नान्दीश्राद्धं महर्षयः ।
यागे च प्रथमे वेदस्वीकारे च महामखे ॥४

मातृवर्गादितः कुर्यात्पितुर्मातामहस्य च ।
नवैते पितरो वृद्धिश्राद्धे सद्भिरुदीरितम् ॥५

कन्यादाने च वृद्धौ च प्रपितामहपूर्वकम् ।
नाम संकीर्तयेद्विद्वांस्तत्वावरोहणं(ण)क्रमात् ॥६

इति नान्दीश्राद्धे पितरः [तृप्रकरणम्] ।

॥ एकोनविंशोऽध्यायः ॥

अथ विवाहहोमोपरिवर्ज्यप्रकरणम् ।

नान्दीश्राद्धे कृते यावद्देवकोत्थापनं भवेत् ।
ब्रह्मयज्ञश्च वै श्राद्धं वेदाध्ययनमेव च ॥१

शवेक्षणं स्वधाकारं श्मश्रुकेशनिकृन्तनम् ।
सीमातिक्रमणं चैव श्राद्धभोजनमेव च ॥२

न कुर्याच्छुभकर्ता च सपिण्डा अपि चैव हि ।
यस्तु वै कुरुते मोहादशुभं स च वै लभेत् ॥३

विवाहे चोपनयने कृते चौले सुतस्य च ।
त्यजेत्पिण्डांस्तिलाञ्छ्राद्धे करकं चाब्दमध्यतः ॥४

मातापित्रोर्मृताहे च गयाश्राद्धे महालये।
दद्यात्पिण्डान्कृतोद्वाहः श्राद्धेष्वन्येषु वर्जयेत् ॥५

नान्दीश्राद्धे कृते विप्रस्तथाचैव तु पैतृके।
प्रेतश्पिण्डे प्रदत्ते तु नैव कुर्यादुपोषणम् ॥६

इति विवाहहोमोपरिवर्ज्य[प्रकरण]म्।

....

॥ अथ विंशोऽध्यायः ॥

अथ प्रेतकर्मविधिप्रकरणम्

प्रेतकर्मौरसः पुत्रः पित्रोः कुर्याद्यथाविधि।
तदभावेऽधिकारी स्यात्सपिण्डोवाऽन्यगोत्रजः ॥१

याम्ये चैव तु विप्रस्यः शिरः कृत्वा मृतस्य च।
प्राच्यां वाऽथ दहेदेष विधिः स्याद्बह्वृचस्य तु ॥

दहनादि सपिण्डान्तं कुर्याज्ज्येष्ठोऽनुजैः सह।
ज्येष्ठश्चेत्संनिधौ न स्यात्कुर्यात्तदनुजोऽपि वा ॥३

ईषद्वस्त्रावृतं प्रेतं शिखासूत्रसमन्वितम्।
दहेन्मंत्रविधानेन नैव नग्नं कदाचन ॥४

प्रथमेऽहनि कर्ता स्याद्यो दद्यादग्निमौरसः।
सर्वं कुर्यात्सपिण्डान्तं नान्योऽन्यं द(न्यद)हनं विना ॥५

स्वगोत्रो वाऽन्यगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्।
प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स दशाहं समापयेत् ॥६
अपुत्रश्चेन्मृतस्यै(श्चै)वं विधिरुक्तो महर्षयः।
दाहं पुत्रवतः कुर्यात्पुत्रः स्या(त्रश्चे)त्संनिधौ भवेत् ॥७
पुत्रं विनाऽग्निदोऽन्यश्चेदसगोत्रो यदा भवेत्।
कुर्याद्दशाहमाशौचं स चापि हि सपिण्डवत् ॥८
पुत्राभावेऽग्निदः कुर्यात्सकलं प्रेतकर्म च।
तस्मापुत्रवतोऽन्यश्चेद्विना दाहाग्निसंचयम् ॥९
अस्थिसंचयनादर्वाग्ज्येष्ठश्चेदागतः सुतः।
वासो धृत्वाऽऽदितः कर्म ज्येष्ठः कुर्याद्यथाविधि ॥१०
अस्थिसंचयनादूर्ध्वं ज्येष्ठश्चैवाऽऽतगतोऽपि चेत्।
कुर्यादग्निप्रदः पुत्रो दशाहान्तं स कर्म च ॥११
संस्कृतस्यानुमन्त्रेण येन केनापि चैव हि।
संस्कुर्याच्च पुनः प्रेतं तिलाञ्जांजा[ञ्जल्या]दिकं चरेत् ॥१२
नवश्राद्धानि वै पञ्च विषमाहेषु पञ्चसु।
दशाहाभ्यन्तरे कुर्युर्बह्वृचाश्चैव याजुषाः ॥१३
अतीतानञ्जलीन्पिण्डान्दत्त्वा चैव तदादितः।
अथ वाऽऽद्याह्निकं सर्वं ज्येष्ठः कुर्याद्यथाविधि ॥१४
क्रियमाणे सुते पित्रोः प्रेतकर्माणि दूरतः।
दशाहाभ्यन्तरे पुत्रस्तथाऽन्यत्र स्थितो यदि ॥१५
श्रुतस्थाने सुतः कुर्यात्सकलं प्रेतकर्म च।
षोडशं च सपिण्डं च दहनास्थिक्रियां विना ॥१६

नैव तत्र शवोत्पत्तिर्दर्भग्रन्थिर्विधीयते ।
तस्यामेवाञ्जलिं दद्याद्दशाहान्तं यथाविधि ॥१७
दग्धस्य विधिना चान्तर्दशाहानि कृतानि चेत् ।
प्रेतकर्माण्यथैकस्मिन्कुर्यात्सर्वाणि वै दिने ॥१८
समाप्य तु दशाहान्तं सकलं प्रेतकर्म च ।
अपरेद्युस्ततः कुर्यात्षोडशं च सपिण्डनम् ॥१९
पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रः स्त्री भ्राता तज्जश्च दत्तकः ।
प्रेतकार्येऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावेऽथ गोत्रजः ॥२०
कृत्वाऽऽदौ वपनं स्नानं शुद्धाम्बरधरः शुचिः ।
धृत्वा चैवाऽऽद्रिकं[मं]वासः प्रेतकार्यं समाचरेत् ॥२१
प्रेतकर्म द्विजः कुर्याद्गोत्रनामपुरःसरम् ।
बह्वृचो विधिनाऽनेन तत्तन्मन्त्रेण चैव हि ॥२२
मौञ्जीबन्धनकाले च व्रताचरणकर्मसु ।
यज्ञे च मरणे पित्रोर्गयायां क्षौरमिष्यते ॥२३
सपिण्डमरणे चैव पुत्रजन्मनि वै तथा ।
स्नानं नैमित्तिकं शस्तं प्रवदन्ति महर्षयः ॥२४
सपिण्डमरणे स्नायादुदक्या च प्रसूतिकाम् ।
इत्युक्तो मुनिभिश्चैव सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥२५
कस्यापि मुक्तिः प्रेतत्वाद्वृषोत्सर्गं विना न हि ।
स्त्रीणां चैव वृषोत्सर्गं कुर्यादेकादशेऽहनि ॥२६
वृषोत्सर्गं विना प्रेतः पिशाचत्वान्न मुच्यते ।
पुमांश्चाप्यथ वा नारी विधवा सधवाऽपि वा ॥२७

एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ।
ततोरुद्रगणाख्यानि वस्वाख्यानि तथैव च ॥२८
धर्माख्यं चैव षट्त्रिंशच्छ्राद्धान्येकादशेऽहनि ।
कुर्याद्विधिवदेतानि द्वादशाहे सपिण्डनम् ॥२६
यावन्न क्रियते पित्रोर्दाहादि प्रेतकम च ।
संध्यामात्रं विना कर्म नान्यत्कुर्यात्कदाचन ॥३०
ऊर्ध्वमेतद्दशाहाच्चेत्पितुः स्याद्दहनं यदि ।
दहनाहस्तदारभ्य पुत्राणां दशरात्रकम् ॥३१
विना पुत्रवतोऽन्येषामाशौचं त्रिदिनं भवेत् ।
प्राग्न्यादीनां तु नैव स्यात्कर्तुः स्याद्ग्राहिणोऽपि च ।
पितृत्वं च प्रयातस्य श्रूयते मरणं पितुः ।
श्रवणादिदशाहं स्यादाशौचं मुनयो विदुः ॥३३
सपिण्डीकरणं पित्रोर्भवेत्कालान्तरेऽपि चेत् ।
अतीतान्यपि वै कुर्यान्मासिकानि यथाविधि ॥३४
कालप्राप्तानि चान्यानि कुर्यात्प्रथमवत्सरे ।
न कुयाद्वत्सरादूर्ध्वं प्रवदन्ति महर्षयः ॥३५
प्रपितामहपर्यन्तं प्रेतस्यैव सुतादयः ।
सपिण्डीकरणं कुर्युस्तदूर्ध्वं न हि सर्वथा ॥३६
पितुः सपिण्डनं कुर्यात्त्रिभिः पितामहादिभिः ।
तदेव हि भवेच्छस्तं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥३७
पिता विपद्यते चैव विद्यमाने पितामहे ।
तत्र देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥३८

पिण्डौ दत्त्वा तु द्वावेव पितुः पितामहस्य च ।
ततस्तु तत्पितुश्चैकं प्रेतस्यैकं विधीयते ॥३९

त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने ।
पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥४०

पितामहस्तथा वाऽपि विद्यते प्रपितामहः ।
तृतीयस्यैव ते देयास्त्रयः पिण्डाः सपिण्डने ॥४१

प्रेतश्च पितरश्चैव विद्यन्तेऽपि त्रयो यदि ।
षोडशश्राद्धपर्यन्तं कुर्यात्सर्वं यथाविधि ॥४२

पितॄणां मध्य एकश्चेन्म्रियते चेत्सपिण्डनम् [?] ।
सह कुर्यात्तदाऽन्ये(न्ये)न नान्यथा मुनयो विदुः ॥४३

सपिण्डीकरणं न स्याद्यावन्नोपनयादिकम् ।
अब्दादूर्ध्वं न दुष्येत केचिदाहुर्मृतुत्रयात् ॥४४

निषेधो मुनिभिः प्रोक्तः सपिण्डानयनं च हि ।
चौलोपनयनादौ चेन्नाधिकारः सुतस्य च ॥४५

यथा पितुस्तथा मातुः सपिण्डीकरणे विधिः ।
स यथा स्यादपुत्रायाः पत्या सह सपिण्डने ॥४६

पुत्रेषु विद्यमानेषु दूरतः प्रेतसत्क्रियाम् ।
असपिण्डः सपिण्डो वा न कुर्याद्दहनं विना ॥४७

जीवत्स्वेव हि पुत्रेषु प्रेतश्राद्धानि यानि च ।
स्नेहेन वाऽर्थलाभेन कुरुतेऽन्यो वृथा भवेत् ॥४८

येन केनापि पुत्रेण कृतं चेदौरसं[सो]न चेत् ।
सपिण्डीकरणे चैव शस्तं स्यान्मुनयो विदुः ॥४९

पितुः पुत्रेण चैकेन पिण्डसंयोजने कृते ।
पुनः संयोजनं तस्य न कुर्याद्दूरगः सुतः ॥५०
येन केन विना पुत्रं प्रेतकर्म कृतं यदि ।
पुत्रः कुर्यात्पुनः सर्वं विना दाहास्थिसंचयम् ॥५१
चाण्डालेन हतो विप्रः षडब्देनैव शुध्यति ।
यदि तेन शवं स्पृष्टं तदर्धेनैव शुध्यति ॥५२
शवं चैव स्पृशेच्छूद्रो यदि चापि प्रमादतः ।
आप्नुयाच्छुद्धिमब्देन वहम[न्न]ब्दत्रयेण च ॥५३
प्रायश्चित्तं विधायाऽऽदौ दहेत्प्रेतं यथाविधि ।
अन्यथा कुरुते यस्तु स च गच्छेदधोगतिम् ॥५४
खट्वोपर्यन्तरिक्षे वा विप्रश्चेन्मृत्युमाप्नुयात् ।
तस्याब्दमाचरेदेकं तेन पूतो भवेत्तथा ॥५५
प्रायश्चित्तं विना यस्तु क्रिय[कुरु]ते दहनक्रियाम् ।
निष्फलं प्रेतकार्यं स्याद्वदन्त्येवं महर्षयः ॥५६
कर्तुं चेदस्थिसंस्कारं प्रमादान्न हि शक्यते ।
अस्थिशुद्धिकरान्मन्त्रान्धृत्वा दर्भानुदीरयेत् ॥५७
दग्धस्य विधिनाऽशीति[स्थीनि] भावयित्वा जले क्षिपेत् ।
तिलाञ्जल्यादिकं सर्वं कुर्यात्प्रेतस्यकर्म च ॥५८
साग्निकं सधवां चैव दहेदौपासनाग्निना ।
विधुरं विधवां ब्रह्मचारिणं च कुशाग्निना ॥५९
पत्नी वाऽथ पतिर्वा स्यान्मृत्युकाले न संनिधौ ।
प्रायश्चित्तेन सद्योऽग्निमुत्पाद्य तेन संदहेत् ॥६०

प्रायश्चित्तविधिर्नोक्तो यत्र स्याद्गृह्यकर्मणि।
चतुर्गृहीतेनाऽऽज्येन होमव्याहृतिभिश्च हि ॥६१

दर्शमारभ्य शुक्ले स्यान्मृतश्चोपासनाहुतीः।
चतुश्चतुस्तिलैः सद्यो जुहुयात्तद्दिनावधि ॥६२

कृष्णे मृताहमारभ्य दर्शावधि तदाहुतीः।
हुत्वा स्यात्पूर्ववत्कता दहेदौपासनाग्निना ॥६३

निधनं च सहात्मेनं दंपत्योर्गतयोश्च हि।
वासनाग्निशिलाचित्तिचतुश्चैकेन मन्त्राणम् [?] ॥६४

तिलोदकं तथा पिण्डान्नवश्राद्धं पृथक्पृथक्।
अस्थिशुद्धिवृषोत्सर्ग एक एव भवेद्द्वयोः ॥६५

षोडशं च सपिण्डं च तथा मासानुमासिकम्।
एकस्मिन्नेव काले तु तयोः कार्यं पृथक्पृथक् ॥६६

भर्त्रा सह मृता नारी सह तेन सपिण्डनम्।
द्विधा कृत्वा त्रिधा चैकं द्वितीयं च त्रिधा तथा ॥६७

भागांस्त्रीन्प्रथमे पिण्डे पितॄणां सह योजयेत्।
संयोजयेत्तथा भागान्मातृपिण्डैः सहान्तरान् ॥६८

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं क्रमात्पित्रादयस्त्रयः।
मात्रादयस्तथा तिस्रः श्राद्धकर्मसु चैव हि ॥६९

सहानुमृतयोः पित्रोः श्राद्धे चैव क्षयाहके।
शाकपाकादिकं चान्नं तयोः कुर्यात्पृथक्पृथक् ॥७०

यदि कर्तुं न शक्येत कालातीतभयादपि।
अन्नपात्रं पृथक्कुर्यादिति वेदविदो विदुः ॥७१

एकमेव भवेदत्र प्रायश्चित्तं तिलोदकम् ।
एकस्मिन्नेव काले तु द्विजः स्तुतिप्रदक्षिणम् ।।७२
विश्वदेवादिकं सर्वमर्चयन्तु पृथक्पृथक् ।
पितुरादौ ततो मातुः कुर्यात्संकल्पपूर्वकम् ।।७३
अमा चाप्यष्टकापे(प)क्षमनुक्रान्तियुगादयः ।
वैधृतिश्च व्यतीपातः श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ।।७४
गजच्छायोपरागादि श्रोत्रियागमनं च हि ।
नवधान्यफलोत्पत्तिरन्यश्चालभ्ययोगता ।।७५
नैमित्तिका इमे प्रोक्ताः श्राद्धकाला महर्षिभिः ।
शक्तितः कुरुते श्राद्धं स याति परमां गतिम् ।।७६
महानदीषु सर्वासु पुण्यतीर्थासु (र्थेषु) चैव हि ।
श्राद्धं विधीयते तच्च नैमित्तिकमुदाहृतम् ।।७७
पुत्रवर्गादिकामेष्टिस्तत्तत्काले विधीयते ।
पञ्चम्यां प्रोष्ठपद्यादि वर्षर्तौ चैव वार्षिकम् ।।७८
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यत्र कामप्रचोदितम् ।
सूतके मृतके चैव नैव कुर्यात्कथंचन ।।७९
सूतकं मृतकं चैव पुत्रादीनां च संनिधौ ।
त्रिदिनं पक्षिणी चाथ सद्य इत्यनुवर्तते ।।८०
स्मृतितस्तु न जानीयादितरेषां महर्षिणाम् ।
दशाहं तावदाशौचं सापिण्ड्यमनुवर्तते ।।८१
भवेत्तदूर्ध्वमेकाहं तत्पश्चात्स्नानतः शुचिः ।
पित्रादयस्त्रयश्चैवं तथा तत्पूर्वजास्त्रयः ।।८२

सप्तमः स्यात्स्वयं चैव तत्सापिण्ड्यं बुधैः स्मृतम्।
सापिण्ड्यं चो(सो)दकं चैव सगोत्रं तच्च वै क्रमात् ॥८३
एकैकं सप्तकं चैकं सापिण्ड्यकमुदाहृतम् ॥८४
सपिण्डानां तथाऽशौचं संनिधौ स्याद्यथोदितम्।
दूरतस्थाद्विजानीयाद्देशकालान्तरादपि ॥८५
मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासं पक्षिणी भवेत्।
अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ॥८६
पर्वतश्च (श्य) महानद्या व्यवधानं भवेद्यदि।
त्रिंशद्योजनदूरं वा सद्यः स्नानेन शुध्यति ॥८७
यत्र वाऽपि श्रुतं पित्रोर्मरणं दूरतोऽथ वा।
भवेद्दशाहमाशौचं पुत्राणामेव निश्चितम् ॥८८
संनिधौ सोदकाशौचं भवेन्न स्यादसंनिधौ।
अतश्चानुपनीतस्य मृत (ता) शौचं न हि क्वचित् ॥८९
दीक्षितश्चा (स्या)ऽऽहिताग्नि(ग्ने)श्च स्वाध्यायनिरतस्य च।
वृतस्याऽऽमिन्त्रतस्येह नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥९०
संप्रक्षालितपादस्य श्राद्धे विप्रस्य चैव हि।
गृहानुव्रजपर्यन्तं न तस्याशौचमिष्यति(ते) ॥९१
बन्धं ग (त) तस्य विप्रस्य नित्यशौच (र) परस्य (द) च।
सदा चैवाऽत्मनिष्ठस्य नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥९२

इत्याश्वलायनस्मृतौ प्रेतकर्मविधिप्रकरणम्।

॥ एकविंशोऽध्यायः ॥

अथ लोके निन्द्यप्रकरणम् ।

क्रियाहीनस्य मूर्खस्य पराधीनस्य नित्यशः ।
नीचसेवारतस्यैतस्त (वं स) दाऽशौचं तदोच्यते ॥१

सदाचारपरिभ्रष्टो विप्रस्यै (श्चै, व भवेद्यदि ।
कर्मभ्रष्टः स विज्ञेयो निन्द्यकर्मरतः सदा ॥२

माहिषेयश्च वैकुण्ठो वृषलेयश्च गोलकः ।
निन्द्याश्च ते हि लोके स्युः कथं जातीस्तदो(तिरथो)च्यते ॥३

महिषी सोच्यते भार्या भगेनार्जति या धनम् ।
तस्यां यो जायते पुत्रो माहिषेयः सुतः स्मृतः ॥४

रजस्वला च या कन्या यदि स्यादविवाहिता ।
वृषली वार्षलेयः स्याज्जातस्तस्यां स्य (स) चैव हि ॥५

विवाहितामसंयोगां मोहाच्चेदुद्वहेद् द्विजः ।
भूयन्तीमुद्व्रतीं चाभिगोमयेनानुलेपयेत् (?) ॥६

सूत्रमशंवरादीनि परिहृत्याभिषेचयेत् ।
पल्लवैः पञ्चभिर्गव्यैः पावमानीभिरेव च (?) ॥७

प्रायश्चित्तं विधातव्यं कूश्या[ष्मा]ण्डं होममाचरेत् ।
पुनस्तामुद्वहेत्प्रोक्तां विधिवत्पूर्वजः पतिः ॥८

संभोगात्पूर्व एव स्यादुक्तोऽयं मुनिभिर्विधिः ।
व्रात्यस्तोमं जपेदन्यः प्रायश्चित्तपुरःसरम् ॥९

ऊर्ध्वं चेत्पतिसंयोगो जायते तां परित्यजेत् ।
संतानश्चेद्भवेत्तस्यां निन्द्य स्यात्पतितः पतिः ॥
अज्ञातश्च द्विजो यस्तु विधवामुद्वहेद्यदि ।
परित्यज्य च वै तां च प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥११
अब्दमेकं विधायाऽदाववकीर्ण[र्णि] व्रतं चरेत् ।
पुत्रश्चेज्जायते तस्यामेको गोलक उच्यते ॥१२
विधवायाः सुतस्यं[श्चै]व गोलकः कुण्ड इत्यथ ।
त्रयश्चैव हि निन्द्याः स्युः सर्वधर्मवहिष्कृताः ॥१३
संस्कार्य[र्यौ]विधिवन्नोक्तं[क्तौ]मुनिभिः कुण्डगोलकौ ।
युगान्तरे समर्थ [धर्म] स्यात्कलौ निन्द्य इतिस्मृतः ॥१४
परिव(वि)त्त्यां सुतः कुण्डो व्यभिचारसमुद्भवः ।
गोलको विधवां च निषिद्धः स्यात्कलौ स्मृतः ॥१५
वार्षलेयश्च वै कुण्डो गोलकः शूद्रयोनिजः ।
तज्जश्चापि हि निन्द्यः स्युर्माहिषेयश्च विप्रजः ॥१६
एभिः सह वसेदेषां याजनं कुरुतेऽथ वा ।
वित्तमेषां द्विजो यस्तु भुङ्क्ते सोऽपि हि तत्समः ॥१७
एतेषां याजनं यस्तु ब्राह्मणः कुरुते यदि ।
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१८
अद्विजानां चाध्ययनं याजनं च प्रतिग्रहम् ।
ब्राह्मणो नैव गृह्णीयादिति प्राहुर्मुनीश्वराः ॥१९

इति [आश्वलायनस्मृतौ]लोके निन्द्यप्रकरणम् ।

॥ द्वाविंशोऽध्यायः ॥

अथ वर्णधर्मप्रकरणम् ।

सर्वेषां चैव वर्णानामुत्तमो ब्राह्मणो यतः ।
क्षेत्रस्य(क्षस्त्रतु) पालयेद्विप्रं विप्राज्ञाप्रतिपालकः ॥१
सेवां चैव तु विप्रस्य शूद्रः कुर्याद्यथोदितम् ।
सर्वेषां चापि वै मान्यो वेदविद् द्विज एव हि ॥२
यजनादीनि कर्माणि कुर्यादहरहर्द्विजः ।
धर्मोऽयं द्विजवर्यस्य परमानन्ददायकः ॥३
रणे धीरो भवेत्क्षत्त्री(त्त्रो)जयाद्राज्यं च वैरिणः ।
पालयेद् ब्राह्मणान्सम्यक्परं तेनैव जेष्यति ॥४
शूद्रः कुर्याद् द्विजस्यैव सेवामेव कृषिं तथा ।
सुखं तेन लभेन्नूनं प्रवदन्ति महर्षयः ॥५
ब्राह्मणः क्षत्त्रियो वाऽपि स्वधर्मेणानुवर्तयेत् ।
नाऽऽचरेत्परधर्मं च धर्मनाशाय चाऽत्मनः ॥६
स्नानेन च वहिः शुद्धिरात्मज्ञानेन चान्तरा ।
सत्कर्मणा द्विजः शुद्धः सर्वकर्मसु चैव हि ॥७
स्वधर्मनियतो विप्रः कुरुते पातकं यदि ।
स्वधर्मेणैव शुद्धेन(ध्येत) नान्यथा शुचितामियात् ॥८
न स्पृशन्तीह पापानि ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
कदाचित्कुरुते मोहात्पद्मपत्रे यथा जलम् ॥९

अशुचिं वै स्पृशेत्स्नातः कर्मकाले कचिद् द्विजः ।
प्रक्षालिताङ्घ्रिराचम्य कर्म कर्तुमथार्हति ॥१०

जृम्भकारविकारः स्यात्क्षुत्वाऽधोवातनिर्मितः ।
श्लेष्मोत्सारो भवेत्कर्मकाले चाभ्यज्य शुध्यति (!) ॥११

न च तस्या(स्मा)दधो वायुः कर्मकाले द्विजस्य यत् ।
कृत्वा शौचं द्विराचम्य शिष्टं कर्म समापयेत् ॥१२

उदक्यां सूतिकां चैव पतितं शवमन्त्यजम् ।
श्वकाकरासभान्स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥१३

तत्स्पृष्टिनः स्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ।
तदूर्ध्वं तु समाचम्य व्यवहारे शुचिः स्मृतः ॥१४

उच्छिष्टस्पर्शनं चेत्स्यादश्नतो याजकस्य च ।
अन्नं पात्रस्थमश्नीयान्नान्यं दद्यात्कथंचन ॥१५

कुरुते व्रतभङ्गं यो द्विजस्यैव विशेषतः ।
स गच्छेन्नरकं चाऽऽशु प्रवदन्ति महर्षयः ॥१६

वेदविद् द्विजहस्तेन सेवां(वा)संगृह्(ह्य,)ते यदि ।
न तस्य वर्धते धर्मः श्रीरायुः क्षीयते ध्रुवम् ॥१७

यस्य कस्य नरो यस्तु व्रते निष्ठुरभाषणम् ।
द्विजस्येह विशेषं च स च गच्छेदधोगतिम् ॥१८

कुरुते योऽपमानं च ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
तस्याऽऽयुः क्षीयते नूनमायुर्लक्ष्मीश्च संततिः ॥१९

उच्चालयोपविष्टस्य मा(ष्टः स्यान्मा)न्यानां पुरतो यदि ।
गच्छेत्स विपदं नूनमिह चामुत्र चैव हि ॥२०

परदेवार्चको विप्रस्तदधीनो भवेद्यदि ।
मासत्रयं तदन्नाशी जीवञ्छूद्रत्वमाप्नुयात् ॥२१
यश्च कर्मपरित्यागी पराधीनस्तथैव च ।
अधीतोऽपि द्विजश्चैव स च शूद्रसमो भवेत् ॥२२
अनधीत्य द्विजो वेदानन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥२३
संतुष्टो येन केनाह(पि)सदाचारपरायणः ।
पराधीनो द्विजो न स्यात्स तरेद्भवसागरम् ॥२४

इत्याश्वलायनधर्मशास्त्रे वर्णधर्मप्रकरणम् ।

॥ त्रिविंशोऽध्यायः ॥

अथ श्राद्धप्रकरणम् ।

अथ चैव द्विजः कुर्याच्छ्राद्धं पित्रोर्मृतेऽहनि ।
तत्पार्वणविधानेन पितृयज्ञः स उच्यते ॥१
होमं कृत्वाऽथ पूर्वेद्युः सायं विप्रान्निमन्त्रयेत् ।
प्रातश्चेत्तान्परेद्युर्वा श्राद्धाहे वेदपारगान् ॥२
प्रातरौपासनाग्नेस्तु श्राद्धपाकार्थमुल्मुकम् ।
नीत्वाऽन्नं सकलं कृत्वा पुनः संमीलयेदुभौ ॥३
ततो म[मा]ध्याह्निकं स्नानं कृत्वा संध्यामुपास्य च ।
निमन्त्रितान्समाहूय क्रमाद्देवपितन्द्वि [तृद्वि]जान् ॥४

प्राणानायम्य संकल्प्य श्राद्धार्थमनुवेदयेत् ।
कुशाक्षततिलैर्युक्तं जलपात्रे प्रपूर्य च ॥५
आत्मनश्चैव शुद्ध्यर्थं द्रव्यस्य गृहशुद्धये ।
द्विजैः सह पठेत्सूक्तं प्रायश्चित्तार्थमेव हि ॥६
नतं सूक्तं शुचीवोऽग्निः शुचिव्रततमश्च हि ।
उदग्न इत्यथैतोनु त्रयो मन्त्राः क्रमेण तु ॥७
केचिद्यज्ञविदो ज्ञात्वा सूक्तानि कथयन्ति हि ।
पुरुषं चास्य वामस्य ममाग्ने वर्च इत्यथ ॥८
सौम्यं च वैष्णवं रुद्रं पावमान्यमथापि वा ।
ऋग्भिश्च पावमानीभिर्जलं चैवाभिमन्त्रयेत् ॥९
श्राद्धोपयोगिकं द्रव्यमपक्वं पक्वमेव वा ।
सर्वं चैव स्मरेद्वि[रन्वि]ष्णुं जलेन प्रोक्षयेच्चरुम् ॥१०
ततः संस्तूय तान्विप्रान्समस्तेतिपठन्नयेत् ।
पुरतश्चार्पयेत्तेषां हिरण्यं सकुशं च हि ॥११
लब्धा[ब्ध्वाऽऽ]ज्ञामपसव्येन श्राद्धं कर्तुं पितुर्मम ।
आचम्यासून्नियम्याथ दद्यात्संकल्प्य वै क्षणम् ॥१२
देवानां क्षालयेत्पादौ मण्डले चतुरस्रके ।
पितॄणां वर्तुलं[ले]चैव प्राङ्गणे रविदीपके ॥१३
ईशान्यां त्वाचमेत्कर्ता देवाः प्राच्यामथोत्तरे ।
पितरश्च पवित्राणि स्वस्वस्थाने त्यजेदथ ॥१४
आचम्य गृहमागत्य ब्राह्मणानुपवेशयेत् ।
प्राङ्मुखौ द्वा उदक्संस्थौ प्राक्संस्थांस्त्रीनुदङ्मुखान् ॥१५

निरुध्य प्रकिरेद्वायुं तिलान्मिश्रं तिकोणतः ।
पठन्नपहतामन्त्रमसव्येन चाष्टसु ॥१६

पितॄणां पुरतः सिञ्चेज्जलं पठन्नुदीरताम् ।
सव्येन पुरतो देवे गायत्र्या चैवमेव हि ॥१७

श्राद्धकाले गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गदाधरम् ।
वस्वादींश्च पितॄन्ध्यात्वा ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥१८

देवानामासनं दद्यात्क्षणे चाऽऽवाहयेदथ ।
कुशाञ्छिरसि देवानां विश्वे देवास इत्यृचा ॥१९

विश्वे देवाः सकृन्मन्त्रमुच्चार्य प्रोक्षयेद्ध्रुवम् ।
अर्घ्यार्थं चाऽऽसादयेद् द्वे पात्रे दैवे कुशान्विते ॥२०

आगच्छन्तु महाभागा विश्वे देवा महाबलाः ।
ये चात्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥२१

पूर्वाग्रैः प्र)दैविके पात्रे दक्षिणाग्रं तु पैतृके(कम्) ।
अधश्चोपरि पात्राणां कुशान्दैवे च पैतृके ॥२२
गायत्र्या प्रोक्षयेत्पात्रे कृत्वा तान्निक्षिपेद्यवान् ॥२३
यवोऽसि धान्यराजो वा वारुणो मधुसंयुतः ।
निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतम् ॥२४
गन्धाक्षतकुशांश्चैव क्षिपेदर्घ्यं निवेदयेत् ।
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते हस्तं पिधापयेत् ॥२५
निदध्यादर्घ्यपात्रेषु देवानामभिसंमुखे ।
पितॄणामर्घ्यपात्राणि तानि वै पै(पि)तृसंमुखे ॥२६

देवार्चा दक्षिणादि स्यात्पादजान्वंसमूर्धनि ।
शिरोंसजानुपादेषु वामाङ्गादिषु पैतृके ॥२७
अर्चतानेन मन्त्रेण गन्धदिभिरथार्चयेत् ।
युवासुवासामन्त्रेण दद्यादाच्छादनं ततः ॥२८
यथोक्तविधिना देवान्समभ्यर्च्य तदाज्ञया ।
पितॄणामर्चनं कुर्यादपसव्येन चैव हि ॥२९
आसनं च क्षणं दत्त्वा पितॄनावाहयेदथ ।
उसन्तस्त्वेति मन्त्रेण प्रति पितरमिष्यथ(ते) ॥३०
आयन्तु न इमं मन्त्रमुच्चरेत्सकृदेव हि ।
सव्येन प्रोक्ष्य गायत्र्या पात्रान्यु[ण्यु]त्तानि कारयेत् ॥३१
क्षिप्त्वा तिलानपः पूर्य शं नो देवीं समुच्चरेत् ।
पुनस्तेषु च पात्रेषु तिलोऽसीत्यावपेत्तिलान् ॥३२
गन्धपुष्पकुशादीनि क्षिप्त्वा चैव तु पूर्ववत् ।
स्वधाऽर्घ्य इति ब्रूयात्त्रिः सव्येन तु निवेदयेत् ॥३३
सव्यं कृत्वा गृहीतेन पाणिना दक्षिणेन तु ।
दद्यात्पितरिदं तेऽर्घ्यं या दिव्यामन्त्रमुच्चरेत् ॥३४
एवं पितामहे चैव तथैव प्रपितामहे ।
दत्त्वाऽर्घ्यं सलिलं दद्यात्पुनस्त्रिषु करेषु च ॥३५
पात्रद्वयं[य]कृतं तोयं पितृपात्रे प्रसिच्य च ।
पात्रस्थं पुत्रकामी चेन्मुखं तद[तेना]नुलेपयेत् ॥३६
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं वोत्तानमेव वा ।
तृतीयं पिहितं कुर्यादुत्तानोपरि भाजनम् ॥३७

स्थापितं प्रथमं पात्रं तत्स्थानं न हि चालयेत् ।
जलसेचनपर्यन्तं पिण्डदानं पुनश्च हि ॥३८
पितृपाणिष्वपो दद्यादपसव्येन वै ततः ।
नमो व इति मन्त्रेण पितॄंश्चैवार्चयेत्तिलैः ॥३९
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य पितृपूजां समापयेत् ।
मण्डलानि समानानि कारयेद्देवपूर्वकम् ॥४०
द्वे तु चतुरस्रे तु ततो वृत्तानि पैतृके ।
प्रमाणं मण्डलस्योक्तं यावत्पात्रमितं भवेत् ॥४१
अन्तर्धाय कुशांस्तेषु प्रक्षिपेच्च यवांस्तिलान् ।
पात्राण्यासादयेत्तेषु हेमरौप्यमयानि च ॥४२
तदभावे तु पर्णानि कदल्यानि शुभानि च ।
परिस्तरेत्कुशाद्यैश्च पात्राणि पितृपूर्वकम् ॥४३
पितृयज्ञचरोरन्नमादायाक्तं घृतेन तु ।
अग्नौ करिष्य इत्येतान्पृष्ट्वोक्तः क्रियतामिति ॥४४
न भवेत्पितृयज्ञश्चेद्गृह्याग्नौ पचनं भवेत् ।
अग्नौकरणहोमं तु कुर्यादौपासनानले ॥४५
गृह्याग्नौ पचनं पिण्डं पितृयज्ञो न चैव हि ।
अग्नौकरणं गृह्याग्नौ न कुर्यादिति केचन ॥४६
कालद्वयेऽपि कुरुते नित्यहोमं द्विजो यदि ।
स चाग्नौकरणं कुर्यात्प्रातर्होमो विधीयते ॥४७
गृह्याग्निर्यस्य चेन्न स्यात्तस्याग्नौकरणं कथम् ।
श्राद्धार्थमन्नमादाय जुहुयात्पितृपाणिषु ॥४८

संगृह्याऽऽहुतिमेकां च घृताभ्यक्तां विगृह्य च।
सोमायेति तु मन्त्राभ्यां जुहुयात्कुशपाणिना ॥४९
स्रुवेण चाऽऽज्यमादाय तदाभावेऽथ वा कुशैः।
पितॄणामेव पात्राणि तूष्णीमेवाभिघारयेत् ॥५०
अन्नं पाणिहुतं यच्च निदध्यात्तत्स भाजने।
गत्वाऽन्यत्र समाचम्य पुनश्चोपविशेदथ ॥५१
देवपात्रादितश्चाऽऽज्यं सव्येनैवाभिघारयेत्।
मूर्धानमिति मन्त्रेण सर्वपात्राणि चैव हि ॥५२
आमास्वित्यादिकान्मन्त्रान्स्वयमेव जपन्न हि [पेदथ]।
पत्नी चाप्यथ वा पुत्रः शिष्यो वा परिवेषयेत् ॥५३
अन्नं च पायसं भक्ष्यमाज्यं च व्यञ्जनादिकम्।
दद्यादेवाऽऽदितः सर्वं सूपमन्ते च पैतृके ॥५४
पात्रस्थं प्रोक्षयेदन्नं गायत्र्या चाभिमन्त्र्य च।
पाणिभ्यां भाजनं धृत्वा पृथ्वी ते पात्रमुच्चरेत् ॥५५
इदं विष्णुरनेनान्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेद[शा]येत्।
स्वहादितः समुच्चार्य गयायां दत्तमस्त्विति ॥५६
ये देवास इमं मन्त्रमुच्चार्याथ च पैतृके।
संप्रोक्ष्य पूर्ववच्चान्नं प्राचीनावीत्यतः परम् ॥५७
परिविष्टेषु चान्नेषु हुतशेषं निधाय च।
दद्यादन्नं पितृभ्योऽपि पूर्ववत्पितृनामभिः ॥५८
ये चेहेति च वै मन्त्रं समुच्चार्य ततः परम्।
देवांस्तुत्वा पितृंश्चैव ब्रह्मनिष्ठान्मुनीश्वरान् ॥५९

परिवेषे च[षेचन]पर्यन्तं कारयित्वा यथाविधि।
स्मृत्वा हरिहरौ चैव पितॄणां मुक्तिहेतवे॥
देवान्पितॄन्समुद्दिश्य क्रियमाणं हि कर्म यत्।
पितॄणां मुक्तये सर्वं ब्रह्मणे विनिवेदयेत्॥६०
न्यूनं चैवातिरिक्तं च मन्त्रादीनां भवेद्यदि।
तद्दोषपरिहारार्थं गायत्रीं समुदीरयेत्॥६१
ततश्चैवापसव्येन मधु वाता जपेदथ।
आपोशनार्थमुदकं पितृपूर्वं निवेदयेत्॥६२
ईशानादिपदं स्तुत्वा तिष्ठन्नुदङ्मुखश्च हि।
दैवे पित्र्ये समुच्चार्य तत्सद्ब्रह्मामृतमस्त्विति॥६३
निनयेत्सलिलं चैव द्विजानां पुरतो जलम्।
प्रीयतामिति मन्त्रेण पितृरूपी जनार्दनः॥६४
अमृतोपस्तरणमसीत्युक्त्वा मन्त्रं पिबेज्जलम्।
प्राणाहुतिं च गृह्णीयात्क्रमान्मन्त्रैश्च पञ्चभिः॥६५
नासदासीति सूक्तानि भुञ्जानाञ्छ्रावयेद्द्विजान्।
कृणुष्वेत्यादिसूक्तानि रक्षोघ्नानि च पञ्च वै॥६६
अग्निमीळेऽनुवाकश्च पितृस्तुतिमुदीरताम्।
पवित्राणि च सूक्तानि यावद्ब्राह्मणभोजनम्॥६७
इच्छातृप्तेषु विप्रेषु गायत्रीं समुदीरयेत्।
तृप्ताः स्थ इति तान्पृष्ट्वा ह्यपसव्येन पैतृके॥६८
मध्वक्षन्निति मन्त्रं वै मधुसंपन्नमित्यथ।
पृथग्भुक्तवतो विप्रानन्नं पिण्डार्थमुद्धरेत्॥६९

तान्पृच्छेदन्न[थ] संपन्नं शेषं किं क्रियतामिति।
लब्ध्वा चैषामनुज्ञां च सहेष्टैर्भुञ्ज[ञ्ज्य]तामिति ॥७०

उच्छिष्टपुरतो भूमौ जलदर्भां स्तिलान्क्षिपेत्।
ये अग्निदग्धामन्त्रेण सर्वान्नं किंचिदुत्क्षिपेत् ॥७१

उत्तराचमनात्पूर्वं पिण्डदानं विधीयते।
ऊर्ध्वं वा केचिदिच्छन्ति तच्च संकल्पपूर्वकम् ॥७२

आग्नेयप्रवणे रेखां लिखेदपहता इति।
तामभ्युक्ष्य जलेनाथ कुशानास्तीर्य तत्र तु ॥७३

अपस्तत्रापसव्येन शुन्धतामिति सेचयेत्।
तत्र पिण्डत्रयं दद्याद्ये च त्वा पितृपूर्वकम् ॥७४

अत्रेति चानुमन्त्र्याथ यथोव[थावद्व]र्तयेदुदक्।
आप्रदक्षिणमावर्त्य कुर्याद्वायुनिरोधनम् ॥७५

पुनश्चाऽऽवर्तयेत्तद्वदमी मदन्त चैव हि।
भक्षयेच्च चरोः शेषमाघ्रायेदिति केचन ॥७६

उपवीती समाचम्य प्राचीनावीत्यतः परम्।
पिण्डोपरि जलं सिञ्चेच्छुन्धन्तामिति पूर्ववत् ॥७७

अभ्यङ्क्ष्वेति च वै तैलं दद्यादङ्क्ष्वेति चाञ्जनम्।
नामसंबन्धगोत्रादि समुच्चार्य यथाक्रमम् ॥७८

एतद्व इति मन्त्रेण प्रतिपिण्डं वरं शुभम्।
सव्येन चार्चयेत्पिण्डान्गंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥७९

धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं चैव दक्षिणाम्।
दत्त्वा तिष्ठन्नुपस्तूयात्प्राचीनावीतिना ततः ॥८०

नमो व इति मन्त्रो वै मनश्चैव पठेदिति।
मनोन्विति त्रिभिर्मन्त्रैः किंचित्पिण्डान्प्रवाहयेत् ॥८१
परेतनेति मन्त्रं वै जपेत्पिण्डान्तिके ततः।
औपासनान्तिके गत्वा जपेदग्नेतमित्यृचम् ॥८२
पिण्डं तं प्राशयेत्पत्नीं पुत्रार्थी मध्यमं हि चेत्।
आधत्तेति च मन्त्रेण धत्ते गर्भं कुमारकम् ॥८३
नो चेदतिप्रणीतेऽग्नावप्सु वा तान्क्षिपेदथ।
पिण्डप्राशनपक्षे तु विशेषः कथ्यतेऽधुना ॥८४
तावन्न प्राशयेत्पिण्डं न हि श्राद्धविसर्जनम्।
पिण्डप्रक्षेपणं चाग्नावप्सु चापि तथैव हि ॥८५
पिण्डदानं च वै श्राद्धे यत्र कुत्रापि वा भवेत्।
गयायां च कृतं मत्वा ह्यात्मनेति निवेदयेत् ॥८६
प्रक्षालितकरान्विप्रानाचान्तानुपवेशयेत्।
जलदर्भाक्षतान्दत्त्वा तथैव पैतृके तिलान् ॥८७
तत्पाणिष्वक्षतान्दत्त्वा ततो विप्राशिषो भवेत्।
स्वस्तीत्युक्त्वा मया दत्तं श्राद्धमक्षय्यमस्त्विति ॥८८
दक्षिणां च ततो दद्याद्यथाविभवसारतः।
दक्षिणारहितं यच्च तच्छ्राद्धं निष्फलं भवेत् ॥८९
चालयित्वा तु पात्राणि स्वस्तीत्युक्त्वाऽक्षतांस्तिलान्।
तत्तत्स्थाने क्षिपेदेषु प्रकिरेदन्नमप्यथ ॥९०
असंस्कृतेति वै पित्र्ये दैवे चासोमपा इति।
दक्षिणां च ततो दत्त्वा पितृसंतुष्टिहेतवे ॥९१

विसृजेत्पितृपात्रस्थं पिण्डानां पुरतो जलम् ।
स्वधोच्यतामनेनैव ततः पिण्डान्समुच्चरेत् ॥९२
वाजे वाजेऽथ मन्त्रेण कुर्याच्छ्राद्धविसर्जनम् ।
सव्यमंसं पितॄणां च देवानां दक्षिणं स्पृशेत् ॥९३
पठेदुच्चैरिमं मन्त्रमामा वाजस्य चैव हि ।
प्रदक्षिणत्रयं कुर्वन्भुञ्जतः पितृसेवितान् ॥९४
जलमर्चनपात्रस्थान्विसृजेदक्षतादिकान् ।
पुरतस्तेन पुत्रः स्युर्याति ब्रह्मपदं च हि ॥९५
ब्रह्मत्वं च प्रयातेभ्यो गृह्णीयादाशिषः शुभाः ।
भवत्प्रसादतो भूयाद्धनधान्यादिकं मम ॥९६
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव नः ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु धे(दे)यं च नोऽस्त्विवति ॥९७
अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन ॥९८
ततो विप्रास्तथैवेति प्रतिवचनमादरात् ।
वः पदं निर्दिशेयुस्ते ब्राह्मणाश्चैव नः पदे ॥९९
स्वादुषं सद इत्युक्त्वा मन्त्रानुच्चैः पठेदथ ।
दक्षिणाभिमुखस्तिष्ठेद्विप्राणां पुरतश्च हि ॥१००
इहैवेति पठेन्मन्त्रं भुक्तवद्भिर्द्विजैः सह ।
संतुष्टा आशिषो दद्युर्भुक्तिमुक्तिप्रदाः शुभाः ॥१०१
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्तु तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥१०२

तेभ्यश्चैवाऽऽशिषो लब्ध्वा नमस्कुर्याद्द्विजांस्तथा ।
अभ्यज्याऽऽज्य द्विजानां च पादान्प्रक्षालयेत्क्रमात् ॥१०३

अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाब्जवन्दनात् ।
अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहाद्दिवम् ॥१०४

ताम्बूलं च ततो दद्याद्यथाविभवसारतः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्ताननेन च ॥१०५

पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः ।
तत्क्लेशजातं चित्तात्तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ॥१०६

वसिष्ठसदृशा यूयं सूर्यपर्वसमा तिथिः ।
आसनादि नमस्कारो भवत्सत्कार एव हि ॥१०७

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥१०८

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं द्विजोत्तमाः ।
श्राद्धं भवति संपूर्णं प्रसादाद्भवतां मम ॥१०९

अनेन पितृयज्ञेन प्रीयतां भगवानिह ।
मया भक्त्या कृतं सर्वं तत्सद्ब्रह्मार्पणं भवेत् ॥११०

वसिष्ठासस्ततो देवा वसिष्ठश्च जपेदिमौ ।
पितृस्तुतिकरां गाथामिदं पितृभ्य एव च ॥१११

मन्त्राञ्छृण्वत(न्त) इत्येतान्संतुष्टाः पितरो गृहे ।
दत्त्वाऽभीष्टफलं कर्तुं (र्तुः) प्रयान्तीदमनुत्तमम् ॥११२

अनेन विधिना चैव यः श्राद्धं कुरुते द्विजः ।
भुक्त्वेह सकलान्कामान्सोऽपि सायुज्यमाप्नुयात् ॥११३

इत्याश्वलायनधर्मशास्त्रे श्राद्धप्रकरणम् ।

चतुर्विंशोऽध्यायः।

अथ श्राद्धोपयोगिप्रकरणम्।

पितृयज्ञमकृत्वा तु पित्रोरेकाब्दिकं यदि।
यज्ञान्यः कुरुते पञ्च स याति नरकं ध्रुवम् ॥१
कुरुते ब्रह्मयज्ञं च श्राद्धात्पूर्वं मृतेऽहनि।
निराशाः पितरस्तस्य श्राद्धान्नं न लभन्ति ते ॥२
तर्पणं कुरुते पित्रोः श्राद्धात्पूर्वं मृतेऽहनि।
निराशाः पितरस्तस्य स च गच्छेदधोगतिम् ॥३
कुर्यात्पञ्च महायज्ञान्निवृत्ते श्राद्धकर्मणि।
पित्रोराब्दिक एवाऽऽहुराचार्याः शौनकादयः ॥४
अनग्निको यदा ज्येष्ठः कनिष्ठः साग्निको यदि।
अग्नौकरणहोमन्तु ज्येष्ठः कुर्यात्कथंचन ॥५
कनिष्ठस्य च गृह्याग्नावग्नाकरणहोमकम्।
तदाज्ञयाऽग्रजः कुर्यादिति केचिद्वदन्ति हि ॥६
संसृष्टा भ्रातरो यत्र श्राद्धे स्युर्यदि चैव हि।
तत्रायं मुनिभिः प्रोक्तो विधिर्नैवान्यथा भवेत् ॥७
बह्वृचो ब्रह्मचारी वा तथैवानग्निकोऽपि वा।
अग्नौकरणहोमाख्यं कुर्याच्चैव पितुः परे ॥८
पञ्चौ(ञ्च) वा स्युर्द्विजाः शस्ता द्वौ च पित्रोर्मृतेऽहनि।
द्वौ दैवेऽथ त्रयः पित्र्य एकैको वोभयत्र तु ॥९
चत्वारश्चेद् द्विजाः श्राद्धे दैवे चैको भवेत्तदा।
त्रयः पित्र्ये भवन्त्येके वदन्त्येव हि संकटे ॥१०

अथ वाऽपि त्रयो वाऽपि एकः स्यात्पितृषु त्रिषु ।
द्वौ दैवे चैव तु स्यातां विप्रावेके वदन्ति हि ॥११

द्वितीयाऽऽवाहने षष्ठी संकल्पे चाऽऽसने क्षणे ।
चतुर्थ्याच्छादने चान्ने शेषाः संबुद्धयः स्मृताः ॥१२

अन्नदाने विशेषः स्यात्संबुद्धिः प्रथमाऽथ वा ।
अन्ते(न्ये) चैव चतुर्थी तु वदन्त्येके महर्षयः ॥१३

देवानामासनं दद्याद्दक्षिणे चाऽऽविकं कुशान् ।
कृत्वा द्विगुणभुग्नांस्तान्पितॄणां वाम एव हि १४

विप्रान्निमन्त्रयेच्छ्राद्धे बह्वृचान्वेदपारगान् ।
तदभावे तु चैवान्यशाखिनो वाऽपि चैव हि ॥१५

मन्त्रैश्चैव स्वशाखोक्तैः कर्म कुर्याद्यथाविधि ।
अन्यथा कर्महानिः स्याद्बह्वृचानामयं विधिः ॥१६

कर्मणां याजुषादीनां स्वस्वशाखा न विद्यते ।
ऋक्शाखाविहितं कर्म समानं सर्वशाखिनाम् ॥१७

बह्वृचानां तु यत्कर्म यदि स्यादन्यशाखया ।
पुनश्चैवापि तत्कर्म कुर्याद् बह्वृचशाखया ॥१८

हित्वा स्वस्य द्विजो वेदं यस्त्वधीते परस्य तु ।
शाखारण्डः स विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥१९

रोगादिरहितो विप्रो धर्मज्ञो वेदपारगः ।
भुञ्जीयन्नमलं श्राद्धे साग्निकः पुत्रवानपि ॥२०

पितृमानेव भुञ्जीयाच्छ्राद्धमिन्दुक्षये द्विजः ।
तृप्ताः स्युः पितरस्तेन दाता स्वर्गमवाप्नुयात् ॥२१

श्राद्धकर्ता न भुञ्जीयात्परश्राद्धे विधुक्षये ।
भुङ्क्ते चेत्पितरो यान्ति दाता भोक्ताऽप्यधोगतिम् ॥२२
दर्शेष्टि(र्शाष्ट)का व्यतीपातो(ता) वैधृतिश्च महालयः ।
युगाश्च मनवः श्राद्धकालाः संक्रान्तयस्तथा ॥२३
गजच्छायोपरागश्च षष्ठी या कपिला तथा ।
अर्धोदयादयश्चैव श्राद्धकालाः स्मृता बुधैः ॥२४
संभूते च नवे धान्ये श्रोत्रियो गृहमागते ।
आचार्याः केचिदिच्छन्ति श्राद्धं तीर्थे च सर्वदा ॥२५
श्राद्धकालेषु सर्वेषु कुर्याच्छ्राद्धं च शक्तितः ।
विशेषतो मृताहे तु पित्रोश्चैव विधीयते ॥२६
मोहान्न कुरुते श्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।
निराशाः पितरो यान्ति दुर्गतिं चापि वै सुतः ॥२७
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा यो मृताहमतिक्रमेत् ।
स याति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥२८
अतिक्रमं(मो) मृताहस्य दोषः स्यात्सूतकं विना ।
न कुर्याच्छ्राद्धमाशौचे प्रवदन्ति महर्षयः ॥२९
आचरेद्विधिवच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।
पितरस्तेन तृप्यन्ति गच्छन्ति पदमुत्तमम् ॥३०
सदाचारपरो विप्रः कृपालुः श्राद्धकृत्तथा ।
आत्मनिष्ठोऽर्थलोकेषु तारयेत्तरति स्वयम् ॥३१

इत्याश्वलायनधर्मशास्त्रे श्राद्धोपयोगिप्रकरणम् ।

समाप्तेयं लघ्वाश्वलायनस्मृतिः ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

॥ अथ ॥

॥ बौधायनस्मृतिः ॥

——:❀::❀:——

श्रीगणेशाय नमः ।

प्रथमः प्रश्नः ।

तत्र प्रथमोऽध्यायः ।

अथादौ सशिष्टधर्मलक्षणम् ।

उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम् ॥१ तस्यानुव्याख्यास्यामः ॥२

स्मार्तो द्वितीयः ॥३ तृतीयः शिष्टागमः ॥४

शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहंकाराः कुम्भीधान्या-
अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः ॥५

धर्मेणाधिगतो येषां वेदः सपरिबृंहणः ।
शिष्टास्तदनुमानज्ञाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः, इति ॥६

तदभावे दशावरा परिषत् ॥७ अथाप्युदाहरन्ति ॥८

चातुर्वैद्यं विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपाठकः ।
आश्रमस्थास्त्रयो विप्राः पर्षदेषा दशावरा ॥९

पञ्च वा स्युस्त्रयो वा स्युरेको वा स्यादनिन्दितः ।
प्रतिवक्ता तु धर्मस्य नेतरे तु सहस्रशः ॥१०

यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥११

यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममजानतः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा वक्तॄन्समधिगच्छति ॥१२

बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगा गतिः ।
तस्मान्न वाच्यो ह्येकेन बहुज्ञेनापि संशये ॥१३

धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ।
क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥१४

यथाऽश्मनि स्थितं तोयं मारुतोऽर्कश्च नाशयेत् ।
तद्वत्कर्तरि यत्पापं जलवत्संप्रतीयते ॥१५

शरीरं बलमायुश्च वयः कालं च कर्म च ।
समीक्ष्य धर्मविद्बुद्ध्या प्रायश्चित्तानि निर्दिशेत् ॥१६

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते, इति ॥१७

पञ्चधा विप्रतिपत्तिः ॥१८

पञ्चधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरतः ॥१९

यानि दक्षिणतस्तानि व्याख्यास्यामः ॥२०

यथैतदनुपेतेन सह भोजनं स्त्रिया सह भोजनं पर्युषितभोजनं-मातुलपितृष्वसृदुहितृगमनमिति ॥२१

अथोत्तरत ऊर्णाविक्रयः सीधुपानमुभयतोदद्भिर्व्यवहार-आयुधीयकं समुद्रसंयानमिति ॥२२

इतरदितरस्मिन्कुर्वन्दुष्यतीतरदितरस्मिन् ॥२३

तत्र तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यात् ॥२४

मिथ्यैतदिति गौतमः ॥२५

उभयं चैव नाऽऽद्रियेत शिष्टस्मृतिविरोधदर्शनात् ॥२६

प्राग्विनशनात्प्रत्यक्कालकाद्वनाद्दक्षिणेन हिमवन्तमुदक्पारियात्रमेतदार्यावर्तं तस्मिन्य आचारः स प्रमाणम् ॥२७

गङ्गायमुनयोरन्तरमित्येके ॥२८

अथाप्यत्र भाल्लविनो गाथामुदाहरन्ति ॥२९

पश्चात्सिन्धुर्विधरणी सूर्यस्योदयनं पुरः ।
यावत्कृष्णा विधावन्ति तावद्धि ब्रह्मवर्चसमिति ॥३०

अवन्तयोऽङ्गमगधाः सुराष्ट्रा दक्षिणापथाः
उपावृत्सिन्धुसौवीरा एते संकीर्णयोनयः ॥३१

आरट्टान्कारस्करान्पुण्ड्रान्सौवीरान्वङ्गकलिङ्गान्प्रानूनानिति-च गत्वा पुनः स्तोमेन यजेत, सर्वपृष्ठया वा ॥३२

अथाप्युदाहरन्ति ॥३३

पद्भ्यां स कुरुते पापं यः कलिङ्गान्प्रपद्यते ।
ऋषयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वैश्वानरं हविः ॥३४

बहूनामपि दोषाणां कृतानां दोषनिर्णये ।
पवित्रेष्टिं प्रशंसन्ति सा हि पावनमुत्तमम्, इति ॥३५

अथाप्युदाहरन्ति ॥३६

वैश्वानरीं व्रातपतीं पवित्रेष्टिं तथैव च ।
ऋतावृतौ प्रयुञ्जानः पापेभ्यो विप्रमुच्यते-
पापेभ्यो विप्रमुच्यते, इति ॥३७

इति प्रथमप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ ब्रह्मचारिधर्मवर्णनम् ।

अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि पौराणं वेदब्रह्मचर्यम् ॥१

चतुर्विंशतिं द्वादश वा प्रतिवेदम् ॥२

संवत्सरावमं वा प्रतिकाण्डम् ॥३

ग्रहणान्तं वा जीवितस्यास्थिरत्वात् ॥४

कृष्णकेशोऽग्नीनादधीतेति श्रुतिः ॥५

नास्य कर्म नियच्छन्ति किंचिदा मौञ्जिबन्धनात् ।
वृत्त्या शूद्रसमो ह्येष यावद्वेदेन जायत, इति ॥६

गर्भादि संख्या वर्षाणां तदष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत ॥७

त्र्यधिकेषु राजन्यम् ॥८ तस्मादेकाधिकेषु वैश्यम् ॥९

वसन्तो ग्रीष्मः शरदित्यृतवो वर्णानुपूर्व्येण ॥१०

गायत्रीत्रिष्टुब्जगतीभिर्यथाक्रमम् ॥११

आ षोडशादाद्वाविंशादाचतुर्विंशादित्यना(न)त्यय एषां क्रमेण॥

मौञ्जी धनुर्ज्या शाणीति मेखलाः ॥१३

कृष्णरुरुबस्ताजिनान्यजिनानि ॥१४

मूर्धललाटनासाग्रप्रमाणा याज्ञिकस्य वृक्षस्य दण्डा-
विशेषाः पूर्वोक्ताः ॥१५

भवत्पूर्वां भिक्षामध्यां याच्यान्तां भिक्षां चरेत्सप्ताक्षरां-
क्षां च हिं च न वर्धयेत् ॥१६

भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत भवन्मध्यां राजन्यो भवदन्त्यां-
वैश्यः सर्वेषु वर्णेषु ॥१७

ते ब्राह्मणाद्याः स्वकर्मस्थाः ॥१८

सदाऽरण्यात्समिध आहृत्याऽऽदध्यात् ॥१९

सत्यवादी ह्रीमाननहंकारः पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी ॥२०

सर्वत्राप्रतिहतगुरुवाक्योऽन्यत्र पातकात् ॥२१

यावदर्थसंभाषी स्त्रीभिः ॥२२

नृत्तगीतवादित्रगन्धमाल्योपानच्छत्रधारणाञ्जनाभ्यञ्जनवर्जी ॥

दक्षिणं दक्षिणेन सव्यं सव्येन चोपसंगृह्णीयाद्दीर्घमायुः-
स्वर्गं चेप्सन् ॥२४

काममन्यस्मै साधुवृत्ताय गुरुणाऽनुज्ञातः ॥२५

असावहं भो इति श्रोत्रे संस्पृश्य मनःसमाधानार्थम् ॥२६

अधस्ताज्जान्वोरापद्भ्याम् ॥२७

नाऽऽसीनो नाऽऽसीनाय न शयानो न शयानाय नाप्रयतो-
नाप्रयताय ॥२८

शक्तिविषये मुहूर्तमपि नाप्रयतः स्यात् ॥२९

समिद्धार्युदकुम्भपुष्पान्नहस्तो नाभिवादयेद्यच्चान्यदप्येवं युक्तम् ॥
न समवायेऽभिवादनमत्यन्तशः ॥३१
भ्रातृपत्नीनां युवतीनां च गुरुपत्नीनां जातवीर्यः ॥३२
नौशिलाफलककुञ्जरप्रासादकटेषु चक्रवत्सु चादोषं सहाऽऽसनम्
प्रसाधनोच्छादनस्नापनोच्छिष्टभोजनानीति गुरोः ॥३४
उच्छिष्टवर्जनं तत्पुत्रेऽनूचाने वा ॥३५
प्रसाधनोच्छादनस्नापनवर्जनं च तत्पत्न्याम् ॥३६
धावन्तमनुधावेद्गच्छन्तमनुगच्छेत्तिष्ठन्तमनुतिष्ठेत् ॥३७
नाप्सु श्लाघमानः स्नायात् ॥३८
दण्ड इव प्लवेत ॥३९ अब्राह्मणादध्ययनमापदि ॥४०
शुश्रूषाऽनुव्रज्या च यावदध्ययनम् ॥४१
तयोस्तदेव पावनम् ॥४२ भ्रातृपुत्रशिष्येषु चैवम् ॥४३
ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानां तु यवीयसां-
प्रत्युत्थायाभिभाषणम् ॥४४
प्रत्यभिवादं इति कात्यः ॥४५ शिशावाङ्गिरसे दर्शनात् ॥४६
धर्मार्थौ यत्र न स्याताम् ॥४७

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा ।
विद्यया सह मर्तव्यं न चैनामूषरे वपेत् ॥४८
अग्निरिव कक्षं दहति ब्रह्म पृष्ठ(ष्ट)मनादृतम् ।
तस्माद्वै शक्यं न ब्रूयाद् ब्रह्म मानमकुर्वतामिति ॥४९

एवास्मै वचो वेदयन्ते ब्रह्म वै मृत्यवे प्रजाः प्रायच्छत्तस्मै-
ब्रह्मचारिणमेव न प्रायच्छत्सोऽब्रवीदस्तु मह्यमप्येतस्मिन्भाग-

इति यामेव रात्रिं समिधं नाऽऽहराता इति ॥५०

तस्माद् ब्रह्मचारी यां रात्रिं समिधं नाऽऽहरत्यायुष एव-
तामवदाय वसति तस्माद्ब्रह्मचारी समिधमा-
हरेन्नेदायुषोऽवदाय वसानीति ॥५१

दीर्घसत्रं ह वा एष उपैति यो ब्रह्मचर्यमुपैति स-
यामुपयन्समिधमादधाति सा प्रायणीयाऽथ यां-
स्नास्यन्सोदयनीयाऽथ या अन्तरेण सत्त्या एवास्य ताः ॥५२

ब्राह्मणो वै ब्रह्मचर्यमुपयंश्चतुर्धा भूतानि प्रविशत्यग्निं-
पदा मृत्युं पदाऽऽचार्यं पदाऽऽत्मन्येव चतुर्थः पादः-
परिशिष्यते स यदग्नौ समिधमादधाति य एवास्याग्नौ-
पादस्तमेव तेन परिक्रीणाति तं संस्कृत्याऽऽत्मन्धत्ते स-
एनमाविशत्यथ यदात्मानं दरिद्रीकृत्याह्रीर्भूत्वा भिक्षते
ब्रह्मचर्यं चरति य एवास्य मृत्यौ पादस्तमेव तेन परिक्रीणाति-
तं संस्कृत्याऽऽत्मन्धत्ते स एनमाविशत्यथ यदाचार्यवचः-
करोति य एवास्याऽऽचार्ये पादस्तमेव तेन परिक्रीणाति तं-
संस्कृत्याऽऽत्मन्धत्ते स एनमाविशत्यथ यत्स्वाध्यायमधीते-
य एवास्याऽऽत्मनि पादस्तमेव तेन परिक्रीणाति तं-
संस्कृत्याऽऽत्मन्धत्ते स एनमाविशति न ह वै स्नात्वा-
भिक्षेतापि ह वै स्नात्वा भिक्षां चरत्यपि ज्ञातीनामशनायापि-
पितॄणामन्याभ्यः क्रियाभ्यः स यदन्यां भिक्षितव्यां न-
विन्देतापि वा स्वयमेवाऽऽचार्यजायां भिक्षेताथो स्वां मातरं-
नैनं सप्तम्यभिक्षिताऽतीयात् ॥५३

भैक्ष्य(क्ष)स्याचरणे दोषः पावकस्यासमिन्धने ।
सप्तरात्रमकृत्वैतदवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥५४

तमेवं विद्वांसमेवं चरन्तं सर्वे वेदा आविशन्ति यथा ह वा-अग्निः समिद्धो रोचत एवं ह वा एष स्नात्वा रोचते य एवं-विद्वान्ब्रह्मचर्यं चरतीति ब्राह्मणमिति ब्राह्मणम्(मिति) ॥५५

इति प्रथमप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ।

अथ स्नातकधर्मवर्णनम् ।

अथ स्नातकस्य ॥१ अन्तर्वास उत्तरीयम् ॥२

वैणवं दण्डं धारयेत् ॥३ सोदकं च कमण्डलुम् ॥४

द्वियज्ञोपवीती ॥५

उष्णीषमजिनमुत्तरीयमुपानहौ छत्रं चौपासनं दर्शपूर्णमासौ ॥६

पर्वसु च केशश्मश्रुलोमनखवापनम् ॥७ तस्य वृत्तिः ॥८

ब्राह्मणराजन्यवैश्यरथकारेष्वामं लिप्सेत ॥९

भैक्षं वा ॥१० वाग्यतस्तिष्ठेत् ॥११

सर्वाणि चास्य देवपितृसंयुक्तानि पाकयज्ञसंस्थानि-भूतिकर्माणि कुर्वीतेति ॥१२

एतेन विधिना प्रजापतेः परमेष्ठिनः परमर्षयः परमां-काष्ठां गच्छतीति ह स्माऽऽह बौधायनः ॥१३

इति प्रथमप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ कमण्डलुचर्याभिधानवर्णनम् ।

अथ कमण्डलुचर्यामुपदिशन्ति ॥१

छागस्य दक्षिणे कर्णे पाणौ विप्रस्य दक्षिणे ।
अप्सु चैव कुशस्तम्बे पावकः परिपठ्यते ॥२

तस्माच्छौचं कृत्वा पाणिना परिमृजीत पर्यग्निकरणं हि तत् ॥३

उद्दीप्यस्व जातवेद इति पुनर्दाहाद्विशिष्यते ॥४

तत्रापि किंचित्संस्पृष्टं मनसि मन्येत कुशैर्वा तृणैर्वा प्रज्वाल्य प्रदक्षिणं परिदहनम् ॥५

अत ऊर्ध्वं श्ववायसप्रभृत्युपहतानामग्निवर्ण इत्युपदिशन्ति ॥६

मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानामुत्सर्गः ॥७

भग्ने कमण्डलौ व्याहृतिभिः शतं जुहुयाज्जपेद्वा ॥८

भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यगात् ।
भूयास्म पुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि स भिद्यतामिति ॥९

कपालानि संहृत्याप्सु प्रक्षिप्य सावित्रीं दशावरां कृत्वा पुनरेवान्यं गृह्णीयात् ॥१०

वरुणमाश्रित्यैतत्ते वरुण पुनरेतु मोमिति अक्षरं ध्यायेत् ॥११

शूद्राद्गृह्य शतं कुर्याद्वैश्यादर्धशतं स्मृतम् ।
क्षत्रियात्पञ्चविंशस्तु ब्राह्मणाद्दशकीर्तिताः ॥१२

अस्तमित आदित्य उदकं गृह्णीयान्न गृह्णीयादिति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः ॥१३

गृह्णीयादित्येतदपरम् ॥१४

यावदुदकं गृह्णीयात्तावत्प्राणमायच्छेत्, अग्निर्ह वै ह्युदकं गृह्णाति ॥१५

कमण्डलूदकेनाभिषिक्तपाणिपादो यावदार्द्रं तावदशुचिः परेषामात्मानमेव पूतं करोति नान्यत्कर्म कुर्वीतेति विज्ञायते ॥१६

अपि वा प्रतिशौचमा मणिबन्धाच्छुचिरिति बौधायनः ॥१७

अथाप्युदाहरन्ति ॥१८

कमण्डलुर्द्विजातीनां शौचार्थं विहितः पुरा ।
ब्रह्मणा मुनिमुख्यैश्च तस्मात्तं धारयेत्सदा ॥१९

ततः शौचं ततः पानं संध्योपासनमेव च ।
निर्विशङ्कं न कर्तव्यं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।
कुर्याच्छुद्धं न मनसा न चित्तं दूषयेद्बुधः ॥२०

सह कमण्डलुनोत्पन्नः स्वयंभूस्तस्मात्कमण्डलुना चरेत् ॥२१

मूत्रपुरीषे कुर्वन्दक्षिणे हस्ते गृह्णाति सव्य आचमनीय-मेतत्सिध्यति साधूनाम् ॥२२

यथा हि सोमसंयोगाच्चमसो मेध्य उच्यते ।
अपां तथैव संयोगान्नित्यो मेध्यः कमण्डलुः ॥२३

पितृदेवाग्निकार्येषु तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥२४

तस्माद्विना कमण्डलुना नाध्वानं व्रजेन्न सीमान्तं न गृहाद्गृहम् ॥२५

पदमपि न गच्छेदिषुमात्रादित्येके ॥२६

यदिच्छेद्धर्मसंततिमिति बौधायनः ॥२७

ऋग्विधेनेति वाग्वदति (?) ॥२८

इति प्रथमप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ॥४

अथ प्रथमप्रश्ने पञ्चमोऽध्यायः।

अथ शुद्धिप्रकरणवर्णनम्।

अथातः शौचाधिष्ठानम् ॥१

अद्भिः शुध्यन्ति गात्राणि बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।

अहिंसया च भूतात्मा मनः सत्येन शुध्यति, इति ॥२

मनःशुद्धिरन्तःशौचम् ॥३

बहिःशौचं व्याख्यास्यामः ॥५

कौशं सूत्रं वा त्रिस्त्रिवृद्यज्ञोपवीतम् ॥५ आ नाभेः ॥६

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य सव्यमवधाय शिरोऽवदध्यात् ॥७

विपरीतं पितृभ्यः ॥८ कण्ठेऽवसक्तं निवीतम् ॥९

अधोऽवसक्तमधोवीतम् ॥१०

प्राङ्मुख उदङ्मुखो वाऽऽसीनः शौचमारभेत शुचौ देशे दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा प्रक्षाल्य पादौ पाणी चाऽऽमणिबन्धात् ॥११

पादप्रक्षालनोच्छेषणेन नाऽऽचामेत् ॥१२

यद्याचामेद्भूमौ स्रावयित्वाऽऽचामेत् ॥१३

ब्राह्मेण तीर्थेनाऽऽचामेत् ॥ अङ्गुष्ठमूलं ब्राह्मं तीर्थम् ॥१५

अङ्गुष्ठाग्रं पित्र्यम् ॥१६ अङ्गुल्यग्रं दैवम् ॥१७

अङ्गुलिमूलमार्षम् ॥१८

नाङ्गुलीभिर्न सबुद्बुदाभिर्न सफेनाभिर्नोष्णाभिर्न क्षाराभिर्न लवणाभिर्न कलुषाभिर्न विवर्णाभिर्न दुर्गन्धरसाभिर्न हसन्न जल्पन्न तिष्ठन्न विलोकयन्न प्रह्वो न प्रणतो न मुक्तशिखो न प्रावृतकण्ठो न वेष्टितशिरा न त्वरमाणो नायज्ञोपवीती न प्रसारितपादो न बद्धकक्ष्यो न बहिर्जानुः शब्दमकुर्वन्निरपो हृदयंगमाः पिबेत् ॥१९

त्रिः परिमृजेत् ॥२० द्विरित्येके ॥२१

सकृदुभयं शूद्रस्य स्त्रियाश्च ॥२२

अथाप्युदाहरन्ति ॥२३

"गताभिर्हृदयं विप्रः कण्ठ्याभिः क्षत्रियः शुचिः ।
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिः स्यात्स्त्रीशूद्रौ स्पृश्य चान्ततः," इति ॥२४

दन्तवद्दन्तसक्तेषु दन्दवत्तेषु धारणा ।
स्रस्तेषु तेषु नाऽऽचामेत्तेषां संस्रावबच्छुचिः," इति ॥२५

अथाप्युदाहरन्ति ॥२६

दन्तवद्दन्तलग्नेषु यच्चाप्यन्तर्मुखे भवेत् ।
आचान्तस्यावशिष्टं स्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः," इति ॥२७

खान्यद्भिः संस्पृश्य पादौ नाभिं शिरः सव्यं पाणिमनन्तः ॥२८

तैजसं चेदादायोच्छिष्टी स्यात्तदुदस्याऽऽचम्याऽऽदा-

स्यन्नद्भिः प्रोक्षेत् ॥२९

अथ चेदन्नेनोच्छिष्टी स्यात्तदुदस्याऽऽचम्याऽऽदास्य न्नद्भिः प्रोक्षेत् ॥३०

अथ चेदद्भिरुच्छिष्टी स्यात्तदुदस्याऽऽचम्याऽऽदास्यन्नद्भिः प्रोक्षेत् ॥३१

एतदेव विपरीतममत्र ॥३२　　वानस्पत्ये विकल्पः ॥३३

तैजसानामुच्छिष्टानां गोशकृन्मृद्भस्मभिः परिमार्जन-मन्यतमेन वा ॥३४

ताम्ररजतसुवर्णानामम्लैः ॥३५　　अमन्त्राणां दहनम् ॥३६

दारवाणां तक्षणम् ॥३७　　वैणवानां गोमयेन ॥३८

फलमयानां गोवालरज्ज्वा ॥३९

कृष्णाजिनानां बिल्वतण्डुलैः ॥४०　कुतपानामरिष्टैः ॥४१

और्णानामादित्येन ॥४२　क्षौमाणां गौरसर्षपकल्केन ॥४३

मृदा चेलानाम ॥४४　　चेलवच्चर्मणाम ॥४५

तैजसवदुपलमणीनाम ॥४६　　दारुवदस्थ्नाम ॥४७

क्षौमवच्छङ्खशृङ्गशुक्तिदन्तानाम, पयसा वा ॥४८

चक्षुर्घ्राणानुकूल्याद्वा मूत्रपुरीषासृग्शुक्रकुणपस्पृष्टानां पूर्वोक्तानामन्यतमेन त्रिःसप्तकृत्वः परिमार्जनम ॥४९

अतैजसानामेवंभूतानामुत्सर्गः ॥५०

वचनाद्यज्ञे चमसपात्राणाम ॥५१

न सोमेनोच्छिष्टा भवन्तीति श्रुतिः ॥५२

कालोऽग्निर्मनसः शुद्धिरुदकाद्युपलेपनम ।
अविज्ञातं च भूतानां षड्विधं शौचमुच्यते, इति ॥५३

अथाप्युदाहरन्ति ॥५४

कालं देशं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् ।
उपपत्तिमवस्थां च विज्ञाय शौचं शौचज्ञः कुशलो
धर्मेप्सुः समाचरेत् ॥५५

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्यं यच्च प्रसारितम् ।
ब्रह्मचारिगतं भैक्षं नित्यं मेध्यमिति श्रुतिः ॥५६

वत्सः प्रसवणे मेध्यः शकुनिः फलशातने ।
स्त्रियश्च रतिसंसर्गे श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥५७

आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुराकरम् ।
अदूष्याः सतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥५८

अमेध्येषु च ये वृक्षा उप्ताः पुष्पफलोपगाः ।
तेषामपि न दुष्यन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥५९

चैत्यवृक्षं चितिं यूपं चण्डालं वेदविक्रयम् ।
एतानि ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सचेलो जलमाविशेत् ॥६०

आत्मशय्याऽऽसनं वस्त्रं जायाऽपत्यं कमण्डलुः ।
शुचीन्यात्मन एतानि परेषामशुचीनि तु ॥६१

आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च ।
श्वचण्डालपतितस्पृष्टं मारुतेनैव शुध्यति ॥६२

खलक्षेत्रेषु यद्धान्यं कूपवापीषु यज्जलम् ।
अभोज्यादपि तद्भोज्यं यच्च गोष्ठगतं पयः ॥६३

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥६४

आपः पवित्रा भूमिगता गोतृप्तिर्यासु जायते ।
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥६५
भूमेस्तु संमार्जनप्रोक्षणोपलेपनावस्तरणोल्लेखनैर्यथा-
स्थानं दोषविशेषात्प्रायत्यम् ॥६६
अथाप्युदाहरन्ति ॥६७
गोचर्ममात्रमब्बिन्दुर्भूमेः शुध्यति पतितः ।
समूढमसमूढं वा यत्रामेध्यं न लक्ष्यत, इति ॥६८
परोक्षमधिश्रितस्यान्नस्यावद्योत्याभ्युक्षणम् ॥६९
तथाऽऽपणे(णी)यानां च भक्ष्याणाम् ॥७०
वीभत्सवः शुचिकामा हि देवा नाश्रद्दधानाय
हविर्जुषन्त इति ॥७१
शुचेरश्रद्दधानस्य श्रद्दधानस्य चाशुचेः ।
मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥७२
प्रजापतिस्तु तानाह न समं विषमं हि तत् ।
हतमश्रद्दधानस्य श्रद्धापूतं विशिष्यत, इति ॥७३
अथाप्युदाहरन्ति ॥७४
अश्रद्धा परमः पाप्मा श्रद्धा हि परमं तपः ।
तस्मादश्रद्धया दत्तं हविर्नाश्नन्ति देवताः ॥७५
इष्ट्वा दत्त्वाऽपि वा मूर्खः स्वर्गं न हि स गच्छति ।
शङ्काविहतचारित्रो यः स्वाभिप्रायमाश्रितः ॥७६
शास्त्रातिगः स्मृतो मूर्खो धर्मतन्त्रोपरोधनादिति ॥७७
शाकपुष्पफलमूलौषधीनां तु प्रक्षालनम् ॥७८

शुष्कं तृणमयाज्ञिकं काष्ठं लोष्टं वा तिरस्कृत्याहोरात्रयो-रुदग्दक्षिणामुखः प्रावृत्य शिर उच्चरेदवमेहेद्वा ॥७९
मूत्रे मृदाऽद्भिः प्रक्षालनम् ॥८० त्रिः पाणेः ॥८१
तद्वत्पुरीषे ॥८२ पर्यायात्त्रिस्त्रिः पायोः पाणेश्च ॥८३
मूत्रवद्रेतस उत्सर्गे ॥८४
नीवीं विस्रस्य परिधायाप उपस्पृशेत् ॥८५
आर्द्रतृणं गोमयं भूमिं वा समुपस्पृशेत् ॥८६
नाभेरधःस्पर्शनं कर्मयुक्तो वर्जयेत् ॥८७
ऊर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्यैमेध्यमवाचीनममेध्यमिति श्रुतिः ॥८८
शूद्राणामार्याधिष्ठितानामर्धमासि मासि वावपनमार्य-वदाचमनकल्पः ॥८९
वैश्यः कुसीदमुपजीवेत् ॥९०
पञ्चविंशतिस्त्वेव पञ्चमाषकी स्यात् ॥९१
अथाप्युदाहरन्ति ॥९२

यः समर्घमृणं गृह्य महार्घं संप्रयोजयेत् ।
स वै वार्धुषिको नाम सर्वधर्मेषु गर्हितः ॥९३
वृद्धिं च भ्रूणहत्यां च तुलया समतोलयत् ।
अतिष्ठद् भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिः समकम्पत, इति ॥९४
गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।
प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्राञ्छूद्रवदाचरेत् ॥९५

कामं तु परिलुप्तकृत्याय कदर्याय नास्तिकाय पापीयसे-पूर्वौ दद्याताम् ॥९६

अयज्ञेनाविवाहेन वेदस्योत्सादनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥९७
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे मन्त्रविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥९८
गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ।
कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥९९
मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महायशः ॥१००
वेदः कृषिविनाशाय कृषिर्वेदविनाशिनी ।
शक्तिमानुभयं कुर्यादशक्तस्तु कृषिं त्यजेत् ॥१०१

न वै देवान्पीवरोऽसंयतात्मा रोरूयमाणः ककुदी समश्नुते ।
चलत्तुन्दी रसभः कामवादी कृशास इत्यणवस्तत्र यान्ति ॥१०२
यद्यौवने चरति विभ्रमेण सद्वाऽसद्वा यादृशं वा यदा वा ।
उत्तरे चेद्वयसि साधुवृत्तस्तदेवास्य भवति नेतराणि ॥१०३

सोचेत मनसा नित्यं दुष्कृतान्यनुचिन्तयन् ।
तपस्वी चाप्रमादी च ततः पापात्प्रमुच्यते ॥१०४
स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
न तैरुच्छिष्टभावः स्यात्तुल्यास्ते भूमिगैः सहेति ॥१०५

सपिण्डेष्वादशाहम् ॥१०६

सपिण्डेष्वादशाहमाशौचमिति जननमरणयोरधिकृत्य-
वदत्यृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिवर्जम् ॥१०७

सपिण्डता त्वा सप्तमात्सपिण्डेषु ॥१०८

आ सप्तमासाद्वा दन्तजननाद्वोदकोपस्पर्शनम्।
पिण्डोदकक्रिया प्रेते नात्रिवर्षे विधीयते ॥१०६
आ दन्तजननाद्वाऽपि दहनं च न कारयेत्।
अप्रत्तासु च कन्यासु प्रत्तास्वेके ह कुर्वते ॥११०
लोकसंग्रहणार्थं हि तदमन्त्राः स्त्रियो मताः।
स्त्रीणां कृतविबाहानां त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ॥१११
यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति च सनाभयः, इति ॥११२

अपि च प्रपितामहः पितामहः पिता स्वयं सोदर्या भ्रातरः-सवर्णायाः पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रस्तत्पुत्रवर्जं तेषां च-, पुत्रपौत्रमविभक्तदायं सपिण्डानाचक्षते ॥११३

विभक्तदायानपि सकुल्यानाचक्षते ॥११४

असत्स्वन्येषु तद्गामी ह्यर्थो भवति ॥११५

सपिण्डाभावे सकुल्यः ॥११६

तदभावे पिताऽऽचार्योऽन्तेवास्यृत्विग्वा हरेत् ॥११७

तदभावे राजा तत्स्वं त्रैविद्यवृद्धेभ्यः संप्रयच्छेत् ॥११८

न त्वेव कदाचित्स्वयं राजा ब्राह्मणस्वमाददीत ॥११६

अथाप्युदाहरन्ति ॥१२०

ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रघ्नं विषमेकाकिनं हरेत्।
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥१२१

तस्माद्राजा ब्राह्मणस्वं नाऽऽददीत परमं ह्येतद्विषं यद्ब्राह्मणस्वमिति ॥१२२

जननमरणयोः संनिपाते समानो दशरात्रः ॥१२३

अथ यदि दशरात्रात्संनिपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचमा-
नवमाद्दिवसात् ॥१२४

जनने तावन्मातापित्रोर्दशाहमाशौचम् ॥१२५

मातुरित्येके तत्परिहरणात् ॥१२६

पितुरित्यपरे शुक्रप्राधान्यात् ॥१२७

अयोनिजा ह्यपि पुत्राः श्रूयन्ते मातापित्रोरेव तु-
संसर्गसामान्यात् ॥१२८

मरणे तु यथा बालं पुरस्कृत्य यज्ञोपवीतान्यपसव्यानि-
कृत्वा तीर्थमवतीर्य सकृत्सकृत्त्रिर्निमज्ज्योन्मज्ज्योत्तीर्या-
ऽऽचम्य तत्प्रत्ययमुदकमासिच्यात एवोत्तीर्यऽऽचम्य गृह-
द्वार्यङ्गारमुदकमिति संस्पृश्याक्षारलवणाशिनो दशाहं-
कटमासीरन् ॥१२९

एकादश्यां द्वादश्यां वा श्राद्धकर्म ॥१३०

शेषक्रियायां लोकोऽनुरोद्धव्यः ॥१३१

अत्राप्यसपिण्डेषु यथासन्नं त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहमिति कुर्वीत ॥३३

आचार्योपाध्यायतत्पुत्रेषु त्रिरात्रम् ॥१३३

ऋत्विजां च ॥१३४

शिष्यसतीर्थ्यसब्रह्मचारिषु त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहमिति कुर्वीत ॥

गर्भस्रावे गर्भमाससंमिता रात्रयः स्त्रीणाम् ॥१३६

परशवोपस्पर्शनेऽनभिसंधिपूर्वं सचेलोऽपः स्पृष्ट्वा सद्यः शुद्धो-
भवति ॥१३७ अभिसंधिपूर्वं त्रिरात्रम् ॥१३८

ऋतुमत्यां च यस्ततो जायते सोऽभिशस्त इति व्याख्या-

तान्यस्यै व्रतानि ॥१३९

वेदविक्रयिणं यूपं पतितं चितिमेव च।

स्पृष्ट्वा समाचरेत्स्नानं श्वानं चाण्डालमेव च ॥१४०

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे।

कृमिरुत्पद्यते तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१४१

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।

त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत् ॥१४२

शुनोपहतः सचेलोऽवगाहेत ॥१४३

प्रक्षाल्य वा तं देशमग्निना संस्पृश्य पुनः प्रक्षाल्य पादौ-
चाऽऽचम्य प्रयतो भवति ॥१४४

अथाप्युदाहरन्ति ॥१४५

शुना दष्टस्तु यो विप्रो नदीं गत्वा समुद्रगाम्।

प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥१४६

सुवर्णरजताभ्यां वा गवां शृङ्गोदकेन वा।

नवैश्च कलशैः स्नात्वा सद्य एव शुचिर्भवेत्, इति ॥१४७

अभक्ष्याः पशवो ग्राम्याः ॥१४८

क्रव्यादाः शकुनयश्च ॥१४९ तथा कुक्कुटसूकरम् ॥१५०

अन्यत्राजाविभ्यः ॥१५१

भक्ष्याः श्वाविड्गोधाशशशल्यककच्छपखड्गाः खड्गवर्जाः
पञ्च पञ्चनखाः ॥१५२

तथर्श्यहरिणपृषतमहिषवराहकुलङ्गाः कुलङ्गवर्जाः पञ्च-
द्विखुरिणः ॥१५३

पक्षिणस्तित्तिरिकपोतकपिञ्जलवार्ध्रीणसमयूरवारणा-
वारणवर्जाः पञ्च विष्किराः ॥१५४

मत्स्याः सहस्रदंष्ट्रश्चिलिचिमो वर्मिबृहच्छिरोमशकरिरोहि-
तराजीवाः ॥१५५

अनिर्दशाहसंधीनीक्षीरमपेयम् ॥१५६

विवत्सान्यवत्सयोश्च ॥१५७

आविकमौष्ट्रिकमैकशफमपेयम् ॥१५८

अपेयपयःपाने कृच्छ्रोऽन्यत्र गव्यात् ॥१५९

गव्ये तु त्रिरात्रमुपवासः ॥१६०

पर्युषितं शाकयूषमांससर्पिःश्रृतधानागुडदधिमधुसक्तुवर्जम् ॥

शुक्तानि तथा जातोगुडः ॥१६२

श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्य तैष्यां माघ्यां-
वोत्सृजेयुरुत्सृजेयुः ॥१६३

इति प्रथमप्रश्ने पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रश्ने षष्ठोऽध्यायः ।

अथ यज्ञाङ्गविधिनिरूपणम् ।

शुचिमध्वरं देवा जुषन्ते ॥१

शुचिकामा हि देवाः शुचयश्च ॥२　तदेषाऽभिवदति ॥३

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः, इति ॥४

अहतं वाससां शुचिस्त(च्चि त)स्माद्यत्किंचेज्यासंयुक्तं स्यात्सर्वं तद्हतैर्वासोभिः कुर्यात् ॥५

प्रक्षालितोपवातान्यक्लिष्टानि वासांसि पत्नीयजमाना-वृत्विजश्चपरिदधीरन् ॥६ एवं प्रक्रमादूर्ध्वम् ॥७

दीर्घसोमेषु सत्रेषु चैवम् ॥८ यथासमाम्नातं च ॥६

यथैतदभिचरणीयेष्विष्टिपशुसोमेषु लोहितोष्णीषा लोहित-वाससश्चर्त्विजः प्रचरेयुश्चित्रवाससश्चित्रासङ्गा-वृषाकपाविति च ॥१०

अग्न्याधाने क्षौमाणि वासांसि तेषामलाभे कार्पासिका-न्यौर्णानि वा भवन्ति ॥११

मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानां मृदाऽद्भिरिति प्रक्षालनम् ॥

वासोवत्तार्प्यंवृकलानाम् ॥१३

वल्कलवत्कृष्णाजिनानाम् ॥१४

न परिहितमधिरूढमप्रक्षालितं प्रावरणम् ॥१५

नापल्पूलितं मनुष्यसंयुक्तं देवत्रा युञ्ज्यात् ॥१६

घनाया भूमेरुपघात उपलेपनम् ॥१७

सुषिरायाः कर्षणम् ॥१८ क्लिन्नाया मेध्यमाहृत्य प्रच्छादनम् ॥१६

चतुर्भिः शुध्यते भूमिर्गोभिराक्रमणात्खननाद्दहनादभिवर्षणात् ॥२०

पञ्चमाच्चोपलेपनात्षष्ठात्कालात् ॥२१

असंस्कृतायां भूमौ न्यस्तानां तृणानां प्रक्षालनम् ॥२२

परोक्षोपहतानामभ्युक्षणम् ॥२३ एवं क्षुद्रसमिधाम् ॥२४

महतां काष्ठानामुपघाते प्रक्षाल्यावशोषणम् ॥२५

बहूनां तु प्रोक्षणम् ॥२६

दारुमयाणां पात्राणामुच्छिष्टसमन्वारब्धानामवलेखनम् ॥२७

उच्छिष्टलेपोपहतानामवतक्षणम् ॥२८

मूत्रपुरीषलोहितरेतः प्रभृत्युपहतानामुत्सर्गः ॥२६

तदेतदन्यत्र निर्देशात् ॥३०

यथैतदग्निहोत्रे ध(घ)र्मोच्छिष्टे च दधिध(घ)र्मे च कुण्ड-
पायिनामयने चोत्सर्गिणामयने च दाक्षायणयज्ञे चेडादधे च
चतुश्चक्रे च ब्रह्मौदनेषु च तेषु सर्वेषु दर्भैरद्भिः प्रक्षालनम् ॥३१

सर्वेष्वेव सोमभक्षेष्वद्भिरेव मार्जालीये प्रक्षालनम् ॥३२

मूत्रपुरीषलोहितरेतः प्रभृत्युपहतानामुत्सर्गो मृण्मयानां-
पात्राणाम् ॥३३

मृण्मयानां पात्राणामुच्छिष्टसमन्वारब्धानामवकूलनम् ॥३४

उच्छिष्टलेपोपहतानां पुनर्दहनम् ॥३५

मूत्रपुरीषलोहितरेतः प्रभृत्युपहतानामुत्सर्गः ॥३६

तैजसानां पात्राणां पूर्ववत्परिमृष्टानां प्रक्षालनम् ॥३७

परिमार्जनद्रव्याणि गोशकृन्मृद्भस्मेति ॥३८

मूत्रपुरीषलोहितरेतः प्रभृत्युपहतानां पुनः करणम् ॥३६

गोमूत्रे वा सप्तरात्रं परिशायनम् ॥४०

महानद्यां वैवम् ॥४१

अश्ममयानामलाबुबिल्वविनाडानां गोवालैः परिमार्जनम् ॥

नडवेणुशरकुशव्यूतानां गोमयेनाद्भिरिति प्रक्षालनम् ॥४३

व्रीहीणामुपघाते प्रक्षाल्यावशोषणम् ॥४४

बहूनां तु प्रोक्षणम् ॥४५ तण्डुलानामुत्सर्गः ॥४६
एवं सिद्धहविषाम् ॥४७
महतां श्ववायसप्रभृत्युपहतानां तं देशं पुरुषान्नमुद्धृत्य पवमानः सुवर्जन इति एतेनानुवाकेनाभ्युक्षणम् ॥४८
मधूदके पयोविकारे पात्रात्पात्रान्तरानयने शौचम् ॥४९
एवं तैलसर्पिषी उच्छिष्टसमन्वारब्धे उदकेऽवधायोपयोजयेत् ॥
अमेध्याभ्याधाने समारोप्याग्निं मथित्वा पवमानेष्टिः ॥५१
शौचदेशमन्त्रावृदर्थद्रव्यसंस्कारकालभेदेषु पूर्वपूर्वप्राधान्यं पूर्वपूर्वप्राधान्यम् ॥५२

इति प्रथमप्रश्ने षष्ठोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रश्ने सप्तमोऽध्यायः ।

अथ पुनः यज्ञाङ्गविधिवर्णनम् ।

उत्तरत उपचारो विहारः ॥१ तथाऽपवर्गः ॥२
विपरीतं पित्र्येषु ॥३ पादोपहतं प्रक्षालयेत् ॥४
अङ्गमुपस्पृश्य सिचं वाऽप उपस्पृशेत् ॥५
एवं छेदनभेदनखननिरसनपित्र्यराक्षसनैर्ऋतरौद्राभिचरणीयेषु ॥६
न मन्त्रवतायज्ञाङ्गेनाऽऽत्मानमभिपरिहरेत् ॥७
अभ्यन्तराणि यज्ञाङ्गानि बाह्या ऋत्विजः ॥८
पत्नीयजमानावृत्विग्भ्योऽन्तरतमौ ॥९

यज्ञाङ्गेभ्य आज्यमाज्याद्धवींषि हविर्भ्यः पशुः पशोः सोमः सोमादग्नयः ॥१०
यथाकर्मर्त्विजो न विहारादभिपर्यावर्तेरन् ॥११
प्राङ्मुखश्चेद्दक्षिणमंसमभिपर्यावर्तेत ॥१२
प्रत्यङ्मुखः सव्यम् ॥१३
अन्तरेण चात्वालोत्करौ यज्ञस्य तीर्थम् ॥१४
आ चात्वालादाहवनीयोत्करौ ॥१५
ततः कर्तारो यजमानः पत्नी च प्रपद्येरन्, विसंस्थिते: ॥१६
संस्थिते च संचरोऽनुत्करदेशात् ॥१७
नाप्रोक्षितमप्रपन्नं क्लिन्नं काष्ठं समिधं वाऽभ्यादध्यात् ॥१८
अग्रेणाऽऽहवनीयं ब्रह्मयजमानौ प्रपद्येते ॥१९
जघनेनाऽऽहवनीयमित्येके ॥२०
दक्षिणेनाऽऽहवनीयं ब्रह्मायतनं तमपरेण यजमानस्य ॥२१
उत्तरां श्रोणिमुत्तरेण होतुः ॥२२　उत्कर आग्नीध्रस्य ॥२३
जघनेन गार्हपत्यं पत्न्याः ॥२४
तेषु काले काल एव दर्भान्संस्तृणाति ॥२५
एकैकस्य चोदकमण्डलुरुपात्तः स्यादाचमनार्थः ॥२६
व्रतोपेतो दीक्षितः स्यात् ॥२७
न परपापं वदेन्न क्रुद्धेन्न रोदेन्मूत्रपुरीषे नावेक्षेत ॥२८
अमेध्यं दृष्ट्वा जपति ॥२९
अबद्धं मनो दरिद्रं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषां श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हासीरिति ॥३०

इति प्रथमप्रश्ने सप्तमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः।

अथ ब्राह्मणादिवर्णनिरूपणम्।

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्त्रियविट्शूद्राः ॥१
तेषां वर्णानुपूर्व्येण चतस्रो भार्या ब्राह्मणस्य ॥
तिस्रो राजन्यस्य ॥३ द्वे वैश्यस्य ॥४ एका शूद्रस्य ॥५
तासु पुत्राः सवर्णानन्तरासु सवर्णाः ॥६
एकान्तरद्व्यन्तरास्वम्बष्ठोग्रनिषादाः ॥७
प्रतिलोमास्वायोगवमागधवैणक्षत्त्रपुल्कसकुक्कुटवैदेहक-
चाण्डालाः ॥८ अम्बष्ठात्प्रथमायां श्वपाकः ॥९
उग्राद् द्वितीयायां वैणः ॥१०
निषादात्तृतीयायां पुल्कसः ॥११ विपर्यये कुक्कुटः ॥१२
निषादेन निषाद्यामा पञ्चमाज्जातोऽपहन्ति शूद्रताम् ॥१३
तमुपनयेत्षष्ठं याजयेत् ॥१४
सप्तमो विकृतबीजः समबीजः सम इत्येषां संज्ञाः क्रमेण
निपतन्ति ॥१५
त्रिषु वर्णेषु सादृश्यादव्रतो जनयेत्तु यान्।
तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानाहुर्मनीषिण व्रात्यानाहु-
र्मनीषिण इति ॥१६

इति प्रथमप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः।

....

अथ प्रथमप्रश्ने नवमोऽध्यायः ।

अथ संकरजातिनिरूपणम् ।

रथकाराम्बष्ठसूतोग्रमागधायोगववैणक्षत्तृपुल्कस-
कुक्कुटवैदेहकचण्डालश्वपाकप्रभृतयः ॥१

तत्र सवर्णासु सवर्णाः ॥२

ब्राह्मणात्क्षत्त्रियायां ब्राह्मणो वैश्यायामम्बष्ठः
शूद्रायां निषादः ॥३ पारशव इत्येके ॥४

क्षत्त्रियाद्वैश्यायां क्षत्त्रियः शूद्रायामुग्रः ॥५

वैश्याच्छूद्रायां रथकारः १६

शूद्राद्वैश्यायां मागधः क्षत्त्रियायां क्षत्ता ब्राह्मण्यां चण्डालः ॥७

वैश्यात्क्षत्त्रियायामायोगवो ब्राह्मण्यां वैदेहकः ॥८

क्षत्त्रियाद्ब्राह्मण्यां सूतः ॥९

तत्राम्बष्ठोग्रसंयोगे भवत्यनुलोमः ॥१०

क्षत्तृवैदेहकयोः प्रतिलोमः ॥११

उग्राज्जातः क्षत्त्र्यां श्वपाकः ॥१२

वैदेहकादम्बष्ठायां वैणः ॥१३ निषादाच्छूद्रायां पुल्कसः ॥१४

शूद्रान्निषाद्यां कुक्कुटः ॥१५

वर्णसंकरादुत्पन्नान्व्रात्यानाहुर्मनीषिणो व्रात्यानाहुर्म-
नीषिण इति ॥१६

इति प्रथमप्रश्ने नवमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रश्ने दशोऽध्यायः ।

अथ राजधर्मवर्णनम् ।

षड्भागभृतो राजा रक्षेत्प्रजाम् ॥१

ब्रह्म वै स्वं महिमानं ब्राह्मणेष्वदधादध्ययनाध्यापनयजन-
याजनदानप्रतिग्रहसंयुक्तं वेदानां गुप्त्यै ॥२

क्षत्त्रे बलमध्ययनयजनदानशस्त्रकोशभूतरक्षणसंयुक्तं
क्षत्त्रस्य वृद्ध्यै ॥३

विट्स्वध्ययनयजनदानकृषिवाणिज्यपशुपालनसंयुक्तं
कर्मणां वृद्ध्यै ॥४ शूद्रेषु पूर्वेषां परिचर्या ॥५

पत्तो ह्यसृज्यन्तेति ॥६ सर्वतोधुरं पुरोहितं वृणुयात् ॥७

तस्य शासने वर्तेत ॥८ संग्रामे न निवर्तेत ॥९

न कर्णिभिर्न दिग्धैः प्रहरेत् ॥१०

भीतमत्तोन्मत्तप्रमत्तविसंनाहस्त्रीबालवृद्धब्राह्मणैर्न युध्येत ॥११

अन्यत्राऽऽततायिनः ॥१२

अथाप्युदाहरन्ति ॥१३

अध्यापकं कुले जातं यो हन्यादाततायिनम् ।
न तेन भ्रूणहा भवति मन्युस्तं मन्युमृच्छति, इति ॥१४

सामुद्रशुल्को वरं रूपमुद्धृत्य दशपणं शतम् ॥१५

अन्येषामपि सारानुरूप्येणानुपहत्य धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥१६

अब्राह्मणस्य प्रनष्टस्वामिकं रिक्थं संवत्सरं परिपाल्य
राजा हरेत् ॥१७

अवध्यो वै ब्राह्मणः सर्वापराधेषु ॥१८

ब्राह्मणस्य ब्रह्महत्यागुरुतल्पगमनसुवर्णस्तेयसुरापानेषु कुसिन्धभगसृगालसुराध्वजांस्तप्तेनायसा ललाटेऽङ्कयित्वा विषयान्निर्धमनम् ॥१९

क्षत्रियादीनां ब्राह्मणवधे वधः सर्वस्वहरणं च ॥२०

तेषामेव तुल्यापकृष्टवधे यथाबलमनुरूपान्दण्डान्प्रकल्पयेत् ॥२१

क्षत्रियवधे गोसहस्रम् ॥२२

क्षत्रियवधे गोसहस्रमृषभैकाधिकं राज्ञ उत्सृजेद्वैरनिर्यातनार्थम् ॥२३

शतं वैश्ये दश शूद्र ऋषभश्चात्राधिकः ॥२४

शूद्रवधेन स्त्रीवधो गोवधश्च व्याख्यातोऽन्यत्राऽऽत्रेय्या वधात् ॥२५

धेन्वनडुहोश्च वधे धेन्वनडुहोरन्ते चान्द्रायणं चरेत् ॥२६

आत्रेय्या वधः क्षत्रियवधेन व्याख्यातः ॥२७

हंसभासबर्हिणचक्रवाकप्रचलाककाकोलूकमण्डूकडिड्डिकडेरिकाश्वबभ्रूनकुलादीनां वधे शूद्रवत् ॥२८

लोकसंग्रहणार्थं यथा दृष्टं श्रुतं वा साक्षी साक्ष्यं ब्रूयात् ॥२९

पादो ऽधर्मस्य कर्तारं पादो गच्छति साक्षिणम् ।
पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति ॥३०

राजा भवत्यनेनाश्च मुच्यन्ते च सभासदः ।
एनो गच्छति कर्तारं यत्र निन्द्यो ह निन्द्यते ॥३१

साक्षिणं त्वेवमुद्दिष्टं यत्नात्पृच्छेद्विचक्षणः।
यां रात्रिमजनिष्ठास्त्वं यां च रात्रिं मरिष्यसि ॥३२

एतयोरन्तरा यत्ते सुकृतं सुकृतं भवेत्।
तत्सर्वं राजगामि स्यादनृतं ब्रुवतस्तव ॥३३

त्रीनेव च पितॄन्हन्ति त्रीनेव च पितामहान्।
सप्त जातानजातांश्च साक्षी साक्ष्यं मृषा वदन् ॥३४

हिरण्यार्थेऽनृते हन्ति त्रीनेव च पितामहान्।
पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ॥३५

शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति साक्षी साक्ष्यं मृषा वदन् ॥३६

चत्वारो वर्णाः पुत्रिणः साक्षिणः स्युरन्यत्र श्रोत्रिय-
राजन्यप्रव्रजितमानुष्यहीनेभ्यः ३७

स्मृतौ प्रधानतः प्रतिपत्तिः ॥३८

अतोऽन्यथा कर्तपत्यम् (?) ३९

द्वादशरात्रं तप्तं पयः पिबेत्कूष्माण्डैर्वा जुहुयादिति
कूष्माण्डैर्वा जुहुयादिति ॥४०

इति प्रथमप्रश्ने दशमोऽध्यायः।

अथ प्रथमप्रश्ने एकादशोऽध्यायः ।

अथाष्टविवाहप्रकरणवर्णनम् ।

अष्टौ विवाहाः ॥१

श्रुतशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने दीयते स ब्राह्मः ॥२

आच्छाद्यालंकृत्यैषा(तया) सह धर्मश्चर्यतामिति प्राजापत्यः ॥३

पूर्वां लाजाहुतिं हुत्वा गोमिथुनं कन्यावते दद्यात्स आर्षः ॥४

दक्षिणासु नीयमानास्वन्तर्वेद्यृत्विजे स दैवः ॥५

धनेनोपतोष्याऽऽसुरः ॥६

सकामेन सकामाया मिथः संयोगो गान्धर्वः ॥७

प्रसह्य हरणाद्राक्षसः ॥८

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वोपयच्छेदिति पैशाचः ॥९

तेषां चत्वारः पूर्व ब्राह्मणस्य ॥१०

तेष्वपि पूर्वः पूर्वः श्रेयान् ॥११

उत्तरेषामुत्तरोत्तरः पापीयान् ॥१२

अत्रापि षष्ठसप्तमौ क्षत्रधर्मानुगतौ तत्प्रत्ययत्वात्क्षत्रस्य ॥१३

पञ्चमाष्टमौ वैश्यशूद्राणाम् ॥१४

अयन्त्रितकलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवन्ति ॥१५

कर्षणशुश्रूषाधिकृतत्वात् ॥१६

गान्धर्वमप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात् ॥१७

यथायुक्तो विवाहः ।

यथा युक्तो विवाहस्तथा युक्ता प्रजा भवतीति विज्ञायते ॥१८

अथाप्युदाहरन्ति ॥१६

क्रीता द्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते ।
सा न दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां काश्यपोऽब्रवीत् ॥२०
शुल्केन ये प्रयच्छन्ति स्वसुतां लोभमोहिताः ।
आत्मविक्रयिणः पापा महाकिल्विषकारकाः ॥२१
पतन्ति नरके घोरे घ्नन्ति चाऽऽसप्तमं कुलम् ।
गमनागमनं चैव सर्वं शुल्को विधीयते (?) ॥२२

पौर्णमास्यष्टकामावास्याग्न्युत्पातभूमिकम्पश्मशानदेशपति-श्रोत्रियैकतीर्थ्यप्रयाणेष्वहोरात्रमनध्यायः ॥२३
वाते पूतिगन्धे नीहारे च नृत्तगीतवादित्ररुदितसामशब्देषु तावन्तं कालम् ॥२४
स्तनयित्नुवर्षविद्युत्संनिपाते त्र्यहमनध्यायोऽन्यत्र वर्षाकालात् ॥
वर्षाकालेऽपि वर्षवर्जमहोरात्रयोश्च तत्कालम् ॥२६
पित्र्यप्रतिग्रहभोजनयोश्च तद्दिवसशेषम् ॥२७
भोजनेष्वाजीर्णान्तम् ॥२८
पाणिमुखो हि ब्राह्मणः ॥२६ अथाप्युदाहरन्ति ॥३०
भुक्तं प्रतिगृहीतं च निर्विशेषमिति श्रुतिः ॥३१
पितर्युपरते त्रिरात्रम् ॥३२
द्वयसु ह वै सुश्रवसोऽनूचानस्य रेतो ब्राह्मणस्योर्ध्वं नाभे-रधस्तादन्यत्स यदूर्ध्वं नाभेस्तेन हैतत्प्रजायते यद्ब्राह्मणानु-पनयति यदध्यापयति यद्याजयति यत्साधु करोति-

सर्वाऽस्यैषा प्रजा भवत्यथ यद्वाचीनं नाभेस्तेन हास्यौरसी प्रजा भवति तस्माच्छ्रोत्रियमनूचानमप्रजोऽसीति न वदन्ति ॥
तस्माद् द्विनामा द्विमुखो विप्रो द्विरेता द्विजन्मा चेति ॥३४
शूद्रापपात्रश्रवणसंदर्शनयोश्च तावन्तं कालम् ॥३५
नक्तं शिवाविरावे नाधीयीत स्वप्नान्तम् ॥३६
अहोरात्रयोश्च संध्योः पर्वसु च नाधीयीत ॥३७
न मांसमश्नीयान्न स्त्रियमुपेयात् ॥३८
पर्वसु हि रक्षःपिशाचा व्यभिचारवन्तो भवन्तीति विज्ञायते ॥
अन्येषु चाद्भुतोत्पातेष्वहोरात्रमनध्यायोऽन्यत्र मानसात् ॥४०
मानसेऽपि जननमरणयोरनध्यायः ॥४१
अथाप्युदाहरन्ति ॥४२

हन्त्यष्टमी ह्युपाध्यायं हन्ति शिष्यं चतुर्दशी ।
हन्ति पञ्चदशी विद्यां तस्मात्पर्वणि वर्जयेत्तस्मात्पर्वणि-
वर्जयेदिति ॥४३

इति प्रथमप्रश्न एकादशोऽध्यायः ।

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

अथ पूर्वोक्तानेकविधप्रकरणवर्णनम् ।

यथा युक्तो विवाहः ॥१ अष्टौ विवाहाः ॥२
क्षत्रियवधे गोसहस्रम् ॥३ षड्भागभृतो राजा रक्षेत् ॥४

रथकाराम्बष्ठ० ॥५ चत्वारो वर्णाः ॥६
उत्तरत उपचारो विहारः ॥७ मृण्मयानां पात्राणाम् ॥८
शुचिमध्वरं देवा जुषन्ते ॥९ अभक्ष्याः पशवो ग्राम्याः ॥१०
सपिण्डेष्वादशाहम् ॥११ गोचर्ममात्रम् ॥१२
नित्यं शुद्धः कारुहस्तः ॥१३ अथातः शौचाधिष्ठानम् ॥१४
कमण्डलुर्द्विजातीनाम् ॥१५ अथ कमण्डलुचर्यामुपदिशन्ति ॥
अथ स्नातकस्य ॥१७ धर्मार्थौ यत्र न स्याताम् ॥१८
अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि ॥१९ पञ्चधा विप्रतिपत्तिः ॥२०
उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम् ॥२१

इति प्रथमप्रश्ने द्वादशोऽध्यायः।

समाप्तोऽयं प्रथमः प्रश्नः।

...○○...

अथ द्वितीयः प्रश्नः।

तत्र प्रथमोऽध्यायः।

अथ प्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम्।

अथातः प्रायश्चित्तानि ॥१ भ्रूणहा द्वादश समाः ॥२
कपाली खट्वाङ्गी गर्दभचर्मवासा अरण्यनिकेतनः श्मशाने
ध्वजं शवशिरः कृत्वा कुटीं कारयेत्तामावसेत्सप्तागाराणि
भैक्षं चरन्स्वकर्माऽऽचक्षाणस्तेन प्राणान्धारयेदलब्धोपवासः ॥

अश्वमेधेन गोसवेनाग्निष्टुता वा यजेत ॥३

अश्वमेधावभृथे वाऽऽत्मानं प्लावयेत् ॥४

अथाप्युदाहरन्ति ॥५

अमत्या ब्राह्मणं हत्वा दुष्टो भवति धर्मतः ।
ऋषयो निष्कृतिं तस्य वदन्त्यमतिपूर्वके ॥६
मतिपूर्व घ्नतस्तस्य निष्कृतिर्नोपलभ्यते ।
अपगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ॥७
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव लोहितस्य प्रवर्तने ।
तस्मान्नैवापगुरेत न च कुर्वीत शोणितमिति ॥८

नव समा राजन्यस्य ॥९ तिस्रो वैश्यस्य ॥१०

संवत्सरं शूद्रस्य ॥११ स्त्रियाश्च ॥१२ ब्राह्मणवदात्रेय्याः ॥१३

गुरुतल्पगस्तप्ते लोहशयने शयीत ॥१४

सूर्मिं वा ज्वलन्तीं श्लिष्येत् ॥१५

लिङ्गं वा सवृषणं परिवास्याञ्जलावाधाय दक्षिणाप्रतीच्यो-
र्दिशमन्तरेण गच्छेदा निपतनात् ॥१६

स्तेनः प्रकीर्य केशान्सैध्रकं मुसलमादाय स्कन्धेन राजानं
गच्छेदनेन मां जहीति तेनैनं हन्यात् ॥१७

अथाप्युदाहरन्ति ॥१८

स्कन्धेनाऽऽदाय मुसलं स्तेनो राजानमन्वियात् ।
अनेन शाधि मां राजन्क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥१९
शासने वा विसर्गे वा स्तेनो मुच्येत किल्बिषात् ।
अशासनात्तु तद्राजा स्तेनादाप्नोति किल्बिषमिति ॥२०

सुरां पीत्वोष्णया कायं दहेत् ॥२१
अमत्या पाने कृच्छ्राब्दपादं चरेत्पुनरुपनयनं च ॥२२
वपनव्रतनियमलोपश्च पूर्वानुष्ठितत्वात् ॥२३
अथाप्युदाहरन्ति ॥२४

अमत्या वारुणीं पीत्वा प्राश्य मूत्रपुरीषयोः।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः पुनः संस्कारमर्हति ॥२५
सुराधाने तु यो भाण्डे अपः पर्युषिताः पिबेत्।
शङ्खपुष्पीविपक्वेन षडहं क्षीरेण वर्तयेत् ॥२६

गुरुप्रयुक्तश्चेन्म्रियेत् गुरुस्त्रीन्कृच्छ्रांश्चरेत् ॥२७
एतदेवासंस्कृते ॥२८
ब्रह्मचारिणः शवकर्मणा व्रतावृत्तिरन्यत्र मातापित्रोराचार्याच्च ॥
स चेद्व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भैषज्यार्थे सर्वं प्राश्नीयात् ॥
येनेच्छेत्तेन चिकित्सेत् ॥३१
स यदाऽगतिः स्यात्तदुत्थायाऽऽदित्यमुपतिष्ठेत ॥३२
हंसः शुचिषदिति ॥३३
एतया दिवा रेतः सिक्त्वा त्रिरपो हृदयंगमाः पिबेद्रेतस्याभिः ॥
यो ब्रह्मचारी स्त्रियमुपेयात्सोऽवकीर्णी ॥३५
स गर्दभं पशुमालभेत ॥३६
नैर्ऋतः पशुपुरोडाशश्च रक्षोदेवतो यमदेवतो वा ॥३७
शिश्नात्प्राशित्रमप्स्ववदानैश्चरन्तीति विज्ञायते ॥३८
अपि वाऽमावास्यायां निश्यग्निमुपसमाधाय दर्विहोमिकीं
परिचेष्टां कृत्वा द्वे आज्याहुती जुहोति— ॥३९

कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा ॥४०

कामाभिद्रुग्धोऽस्म्यभिद्रुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति ॥४१

हुत्वा प्रयताञ्जलिः कवातिर्यङ्ङग्निमभिमन्त्रयेत ॥४२

संमा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृहस्पतिः ।

सं माऽयमग्निः सिञ्चत्वायुषा च बलेन चाऽऽयुष्मन्तं करोतु मेति ॥

अथास्य ज्ञातयः परिषद्युदपात्रं निनयेयुरसावहमित्थंभूत इति ॥

चरित्वाऽपः पयो घृतं मधु लवणमित्यारब्धवन्तं ब्राह्मणा

ब्रूयुश्चरितं त्वयेत्योमितीतरः प्रत्याह चरितनिर्वेशं

सवनीयं कुर्युः ॥४५

सगोत्रां चेदमत्योपयच्छेद् भर्तृवदेनां बिभृयात् ॥४६

प्रजाता चेत्कृच्छ्राब्दपादं चरित्वा यन्म आत्मनोनिन्दा-

ऽभूत्पुनरग्निश्चक्षुरदादिति एताभ्यां जुहुयात् ॥४७

परिवित्तः परिवेत्ता या चैनं परिविन्दति ।

सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥४८

परिवित्तः परिवेत्ता दाता यश्चापि याजकः ।

कृच्छ्रद्वादशरात्रेण स्त्री त्रिरात्रेण शुध्यति, इति ॥४९

अथ पतनीयानि— ॥५०

समुद्रसंयानम् ॥५१   ब्रह्मस्वन्यासापहरणम् ॥५२

भूम्यनृतम् ॥५३   सर्वपण्यैर्व्यवहरणम् ॥

शूद्रसेवनम् ॥५४   शूद्राभिजननम् ॥५५

तदपत्यत्वं च ॥५६   एषामन्यतमत्कृ(मं कृ)त्वा ॥५७

चतुर्थकालामितभोजिनः स्युरपोऽभ्युपेयुः सवनानुकल्पम् ।

स्थानासनाभ्यां विहरन्त एते त्रिभिर्वर्षैस्तदपघ्नन्ति पापमिति ॥

यदेकरात्रेण करोति पापं कृष्णं वर्णं ब्राह्मणः सेवमानः।
चतुर्थकाल उदकाभ्यवायी त्रिभिर्वर्षैस्तदपहन्ति पापम्, इति ॥५९

अथोपपातकानि— ॥६०

अगम्यागमनं गुर्वीसखीं गुरुसखीमपपात्रां पतितां च गत्वा भेषजकरणं ग्रामयाजनं रङ्गोपजीवनं नाट्याचार्यता गोमहिषीरक्षणं यच्चान्यदप्येवं युक्तं कन्यादूषणमिति ॥६१

तेषां तु निर्वेशः पतितवृत्तिर्द्वौ संवत्सरौ ॥६२

अथाशुचिकराणि— ॥६३

द्यूतमभिचारोऽनाहिताग्नेरुञ्छवृत्तिता समावृत्तस्य भैक्षचर्या तस्य चैव गुरुकुले वास ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यस्तस्य चाध्यापनं नक्षत्रनिर्देशश्चेति ॥६४

तेषां तु निर्वेशो द्वादश मासान्द्वादशार्धमासान्द्वादश द्वादशाहान्द्वादश षडहान्द्वादश त्र्यहान्द्वादशाहं षडहं त्र्यहमहोरात्रमेकाहमिति यथा कर्माभ्यासः ॥६५

अथ पतिताः ॥६६

समवसाय धर्मांश्चरेयुरितरेतरयाजका इतरेतराध्यापका मिथो विवहमानाः पुत्रान्संनिष्पाद्य ब्रूयुर्विप्रव्रजतास्मभ्य एवमार्यान्संप्रतिपत्स्यथेति ॥६७

अथापि न सेन्द्रियः पतति ॥६८

तदेतेन वेदितव्यमङ्गहीनो हि साङ्गं जनयेत् ॥६९

मिथ्यैतदिति हारीतः ॥७०

दधिधानीसधर्माः स्त्रियः स्युर्यो हि दधिधान्यामप्रयतं पय

आतच्य मन्थति न तच्छिष्टा धर्मकृत्येषूपयोजयन्ति ॥७१
एवमशुचि शुक्लं यन्निर्वर्तते न तेन सह संप्रयोगो विद्यते ॥७२
अशुचिशुक्लोत्पन्नानां तेषामिच्छतां प्रायश्चितिः ॥७३
पतनीयानां तृतीयोंऽशः स्त्रीणामंशस्तृतीयः ॥७४
अथाप्युदाहरन्ति ॥७५

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ।
श्वविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जतीति ॥७६

पितॄन्वा एष विक्रीणीते ॥७७ यस्तिलान्विक्रीणीते प्राणान्वा एष विक्रीणीते यस्तण्डुलान्विक्रीणीते ॥७८
सुकृतांशान्वा एष विकीणीते यः पणमानो दुहितरं ददाति ॥७९
तृणकाष्ठमविकृतं विक्रेयम् ॥८० अथाप्युदाहरन्ति ॥८१

पशवश्चैकतोदन्ता अश्मा च लवणोद्धृतः ।
एतद्ब्राह्मण ते पण्यं तन्तुश्चारजनीकृत, इति ॥८२

पातकवर्जं वा बभ्रुं पिङ्गलां गां रोमशां सर्पिषाऽवसिच्य कृष्णैस्तिलैरवकीर्यानूचानाय दद्यात् ॥८३
कूष्माण्डैर्वा द्वादशाहम् ॥८४
यदर्वाचीनमेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मुच्यत, इति ॥८५
पातकाभिशंसने कृच्छ्रः ॥८६ तदब्दोऽभिशंसितुः ॥८७

संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन् ।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनादिति ॥८८

अमेध्यप्राशने प्रायश्चित्तिर्नैष्पुरीष्यं तत्सप्तरात्रेणावाप्यते ॥८९
अपः पयो घृतं पराक इति प्रतित्र्यहमुष्णानि स तप्तकृच्छ्रः ॥९०

त्र्यहं प्रातस्तथा सायमयाचितं पराक इति कृच्छ्रः ॥६१

प्रातः सायमयाचितं पराक इति त्रयश्चतूरात्राः स एष स्त्रीबालवृद्धानां कृच्छ्रः ॥६२

यावत्सकृदाददीत तावदश्नीयात्पूर्ववत्सोऽतिकृच्छ्रः ॥६३

अब्भक्षस्तृतीयः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ॥६४

कृच्छ्रे त्रिषवणमुदकोपस्पर्शनम् ॥६५ अधः शयनम् ॥६६

एकवस्त्रता ॥६७ केशश्मश्रुलोमनखवापनम् ॥६८

एतदेव स्त्रियाः केशवपनवर्जम् ॥६९

इति द्वितीयप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ।

—o—

अथ द्वितीयप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ दायविभागवर्णनम् ।

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी वृषलान्नवर्जी ।
ऋतौ च गच्छन्विधिवच्च जुह्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥१

मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजदिति श्रुतिः ॥२

समशः सर्वेषामविशेषात् ॥३ वरं वा रूपमुद्धरेज्ज्येष्ठः ॥४

तस्माज्ज्येष्ठं पुत्रं धनेन निरवसाययन्तीति श्रुतिः ॥५

दशानां वैकमुद्धरेज्ज्येष्ठः ॥६ सममितरे विभजेरन् ॥७

पितुरनुमत्या दायविभागः सति पितरि ॥८

चतुर्णां वर्णानां गोऽश्वाजावयो ज्येष्ठांशः ॥९

नानावर्णस्त्रीपुत्रसमवाये दायं दशांशान्कृत्वा चतुरस्त्रीन्द्वा-
वेकमिति यथाक्रमं विभजेरन् ॥१०

औरसे तूत्पन्ने सवर्णास्तृतीयांशहराः ॥११

सवर्णापुत्रानन्तरापुत्रयोरनन्तरापुत्रश्चेद्गुणवान्स
ज्येष्ठांशं हरेत् ॥१२

गुणवान्हि शेषाणां भर्ता भवति ॥१३

सवर्णायां संस्कृतायां स्वयमुत्पादितमौरसं पुत्रं विद्यात् ॥१४

अथाप्युदाहरन्ति— ॥१५

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधि जायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतमिति ॥१६

अभ्युपगम्य दुहितरि जातं पुत्रिकापुत्रमन्यं दौहित्रम् ॥१७

अथाप्युदाहरन्ति ॥१८

आदिशेत्प्रथमे पिण्डे मातरं पुत्रिकासुतः ।
द्वितीये पितरं तस्यास्तृतीये च पितामहमिति ॥१९

मृतस्य प्रसूतो यः क्लीबव्याधितयोर्वाऽन्येनानुमते
स्वे क्षेत्रे स क्षेत्रजः ॥२०

स एष द्विपिता द्विगोत्रश्च द्वयोरपि स्वधारिक्थभाग्भवति ॥२१

अथाप्युदाहरन्ति ॥२२

द्विपितुः पिण्डदानं स्यात्पिण्डे पिण्डे च नामनी ।
त्रयश्च पिण्डाः षण्णां स्युरेवं कुर्वन्न मुह्यतीति ॥२३

मातापितृभ्यां दत्तोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते
स दत्तः ॥२४

सदृशं यं सकामं स्वयं कुर्यात्स कृत्रिमः ॥२५

गृहे गूढोत्पन्नोऽन्ते ज्ञातो गूढजः ॥२६

मातापितृभ्यामुत्सृष्टोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते
सोऽपविद्धः ॥२७

असंस्कृतामनतिसृष्टां यामुपयच्छेत्तस्यां यो जातः
स कानीनः ॥२८

या गर्भिणी संस्क्रियते विज्ञाता वाऽविज्ञाता वा तस्य यो
जातः स सहोढः ॥२९

मातापित्रोर्हस्तात्क्रीतोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे
परिगृह्यते स क्रीतः ॥३०

क्लीवं त्यक्त्वा पतितं वा याऽन्यं पतिं विन्देत्तस्यां
पुनर्भ्वां यो जातः स पौनर्भवः ॥३१

मातापितृविहीनो यः स्वयमात्मानं दद्यात्स स्वयंदत्तः ॥३२

द्विजातिप्रवराच्छूद्रायां जातो निषादः ॥३३

कामात्पारशव इति पुत्राः ॥३४ अथाप्युदाहरन्ति ॥३५

औरसं पुत्रिकापुत्रं क्षेत्रजं दत्तकृत्रिमौ।
गूढजं चापविद्धं च रिक्थभाजः प्रचक्षते ॥३६

कानीनं च सहोढं च क्रीतं पौनर्भवं तथा।
स्वयंदत्तं निषादं च गोत्रभाजः प्रचक्षते ॥३७

तेषां प्रथम एवेत्याहौपजङ्घनिः ॥३८

इदानीमहमीर्ष्यामि स्त्रीणां जनक नो पुरा ।

यतो यमस्य सदने जनयितुः पुत्रमब्रुवन् ॥३९

रेतोधाः पुत्रं नयति परेत्य यमसादने ।

तस्माद्भार्यां (तु)रक्षन्ति बिभ्यतः पररेतसः ॥४०

अप्रमत्ता रक्षथ तन्तुमेतं मां वः क्षेत्रे पर(रे)बीजानि वाप्सुः ।

यनयितुः पुत्रो भवति सांपराये मोघं वेत्ता कुरुते

तन्तुमेतमिति ॥४१

तेषामवाप्तव्यवहाराणामंशान्सोपचयान्सुनिगुप्ता-

न्निदध्युरा व्यवहारप्रापणात् ॥४२

अतीतव्यवहारान्ग्रासाच्छादनैर्बिभृयुः ॥४३

अन्धजडक्लीबव्यसनिव्याधितादींश्च ॥४४

अकर्मिणः ॥४५ पतिततज्जातवर्जम् ॥४६

न पतितैः संव्यवहारो विद्यते ॥४७

पतितामपि तु मातरं बिभृयादनभिभाषमाणः ॥४८

मातुरलंकारं दुहितरः सांप्रदायिकं लभेरन्नन्यद्वा ॥४९

न स्त्रीस्वातन्त्र्यं विद्यते ॥५०

अथाप्युदाहरन्ति ॥५१

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।

पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हतीति ॥५२

निरिन्द्रिया ह्यदायाश्च स्त्रियो मता इति श्रुतिः ॥५३

भर्तृहिते यतमानाः स्वर्गं लोकं जयेरन् ॥५४

व्यतिक्रमे तु कृच्छ्रः ॥५५ शूद्रे चान्द्रायणं चरेत् ॥५६
वैश्यादिषु प्रतिलोमं कृच्छ्रातिकृच्छ्रादींश्चरेत् ५७
पुंसां ब्राह्मणादीनां संवत्सरं ब्रह्मचर्यम् ॥५८
शूद्रं कटाग्निना दहेत् ॥५९ अथाप्युदाहरन्ति ॥६०

अब्राह्मणस्य शारीरो दण्डः संग्रहणे भवेत् ।
सर्वेषामेव वर्णानां दारा रक्ष्यतमा धनात् ॥६१

न तु चारणदारेषु न रङ्गावतरे वधः ।
संसर्जयन्ति तान्ह्येतान्निगुप्तांश्चालयन्त्यपि ॥६२

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित् ।
मासि मासि रजो ह्यासां दुरितान्यपकर्षति ॥६३

सोमः शौचं ददत्ता(दौ ता)सां गन्धर्वं शिक्षितां गिरम् ।
अग्निश्च सर्वभक्षत्वं तस्मान्निष्कल्मषाः स्त्रियः ॥६४

अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् ।
मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥६५

संवत्सरं प्रेतपत्नी मधुमांसमद्यलवणानि वर्जयेदधःशयीत ६६
षण्मासानिति मौद्गल्यः ॥६७
अत ऊर्ध्वं गुरुभिरनुमता देवराज्जनयेत्पुत्रमपुत्रा ॥६८
अथाप्युदाहरन्ति ॥६९

वशाचोत्पन्नपुत्रा च नीरजस्का गतप्रजा ।
नाकामा संनियोज्या स्यात्फलं यस्यां न विद्यत, इति ॥७०
मातुलपितृष्वसा भगिनी भागिनेयी स्नुषा मातुलानी

सखिवधूरित्यगम्याः ॥७१

अगम्यानां गमने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति प्रायश्चित्तिः ॥७२

एतेन चण्डालीव्यवायो व्याख्यातः ॥७३

अथाप्युदाहरन्ति ॥७४

चण्डालीं ब्राह्मणो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।
अज्ञानात्पतितो विप्रो ज्ञानात्तु समतां व्रजेत् ॥७५

पितुर्गुरोर्नरेन्द्रस्य भार्यां गत्वा प्रमादतः ।
गुरुतल्पी भवेत्तेन पूर्वोक्तस्तस्य निश्चयः, इति ॥७६

अध्यापनयाजनप्रतिग्रहैरशक्तः ।
क्षत्त्रधर्मेण जीवेत्प्रत्यनन्तरत्वात् ॥७७

नेति गौतमोऽत्युग्रो हि क्षत्त्रधर्मो ब्राह्मणस्य ॥७८

अथाप्युदाहरन्ति ॥७९

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा वर्णानां वाऽपि संकरे ।
गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यपेक्षया ॥८०

वैश्यवृत्तिरनुष्ठेया प्रत्यनन्तरत्वात् ॥८१

प्राक्प्रातराशात्कर्षी स्यात् ॥८२

अस्यूतनासिकाभ्यां समुष्काभ्यामतुदन्नारया-मुहुर्मुहुरभ्युच्छन्दयन् ॥८३

भार्यादिरग्निस्तस्मिन्कर्मकरणं प्रागग्न्याधेयात् ॥८४

अग्न्याधेयप्रभृत्यथैमान्यजस्राणि भवन्ति यथैतदग्न्या-धेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावाग्रयणमुदगयनदक्षिणाय-

नयोः पशुश्चातुर्मास्यान्यृतुमुखे षड्ढोता वसन्ते ज्योतिष्टोम इत्येवं क्षेमप्रापणम् ॥८५

अथाप्युदाहरन्ति ॥८६

न दिवा स्वप्नशीलेन न च सर्वान्नभोजिना।
कामं शक्यं नभो गन्तुमारूढपतितेन वा ॥८७

दैन्यं शाठ्यं जह्मंथ च वर्जयेत् ॥८८

अथाप्यत्रोशनसश्च वृषपर्वणश्च दुहित्रोः संवादे गाथामुदाहरन्ति ॥८९

स्तुवतो दुहिता त्वं वै याचतः प्रतिगृह्णतः।
अथाहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतो ददतोऽप्रतिगृह्णत, इति

इति द्वितीयप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः।

अथ द्वितीयप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः।

अथ देवादितर्पणविधिवर्णनम्।

तपस्यवगाहनम् ॥१ देवतास्तर्पयित्वा पितृतर्पणम् ॥२
अनुतीर्थमप उत्सिञ्चति ॥३ ऊर्जं वहन्तीरिति ॥४

अथाप्युदाहरन्ति ॥५

स्रवन्तीष्वनिरुद्धासु त्रयो वर्णा द्विजातयः।
प्रातरुत्थाय कुर्वीरन्देवर्षिपितृतर्पणम् ॥६

निरुद्धासु न कुर्वीरन्नंशभाक्तत्र सेतुकृत् ।

तस्मात्परकृतान्सेतून्कूपांश्च परिवर्जयेदिति ॥७

अथाप्युदाहरन्ति ॥८

उद्धृत्य वाऽपि त्रीन्पिण्डान्कुर्यादापत्सु नो सदा ।

निरुद्धासु तु मृत्पिण्डान्कूपात्त्रीनब्घटांस्तथेति ॥९

बहुप्रतिग्राह्यस्याप्रतिग्राह्यस्य वा प्रतिगृह्यायाज्यं वा याजयित्वाऽनाश्यान्नस्य वाऽन्नमशित्वा तरत्समन्दीयं जपेदिति ॥१०

अथाप्युदाहरन्ति ॥११

गुरुसंकरिणश्चैव शिष्यसंकरिणश्च ये ।

आहारमन्त्रसंकीर्णा दीर्घं तम उपासत इति ॥१२

अथ स्नातकव्रतानि ॥१३

सायं प्रातर्यदशनीयं स्यात्तेनान्नेन वैश्वदेवं बलिमुपहृत्य ब्राह्मणक्षत्त्रियविट्शूद्रानभ्यागतान्यथाशक्ति पूजयेत् ॥१४

यदि बहूनां न शक्नुयादेकस्मै गुणवते दद्यात् ॥१५

यो वा प्रथममुपगतः स्यात् ॥१६

शूद्रश्चेदागतस्तं कर्मणि नियुञ्ज्यात् ॥१७

श्रोत्रियाय वाऽग्रं दद्यात् ॥१८

ये नित्या भाक्तिकाः स्युस्तेषामनुपरोधेन संविभागो विहितः ॥

न त्वेव कदाचिददत्त्वा भुञ्जीत ॥२०

अथाप्यत्रान्नगीतौ श्लोकावुदाहरन्ति ॥२१

यो मामदत्त्वा पितृदेवताभ्यो भृत्यातिथीनां च सुहृज्जनस्य ।

संपन्नमश्नन्विषमत्ति मोहात्तमद्म्यहं तस्य च मृत्युरस्मि ॥२२

हुताग्निहोत्रः कृतवैश्वदेवः पूज्यातिथीन्भृत्यजनावशिष्टम् ।
तुष्टः शुचिः श्रद्दधदत्ति यो मां तस्यामृतं स्यां स च मां भुनक्ति ॥२३

सुब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यो गुर्वर्थनिवेशौषधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो यथाशक्ति कार्यो बहिर्वेदि भिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु ॥२४

सुप्रक्षालितपादपाणिराचान्तः शुचौ संवृते देशेऽन्नमुपहृतमुपसंगृह्य कामक्रोधद्रोहलोभमोहानपहत्य सर्वाभिरङ्गुलीभिः शब्दमकुर्वन्प्राश्नीयात् ॥२५

न पिण्डशेषं पात्र्यामुत्सृजेत् ॥२६

न पिण्डशेषं पात्र्यामुत्सृजेत् ॥२७

मांसमत्स्यतिलसंसृष्टप्राशनेऽप उपस्पृश्याग्निमभिमृशेत् ॥२८

अस्तमिते च स्नानम् ॥२९

पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत् ॥३०

नोत्सङ्गेऽन्नं भक्षयेत् ॥३१ आसन्द्यां न भुञ्जीत ॥३२

वैणवं दण्डं धारयेत् ॥३३ रुक्मकुण्डले च ॥३४

पदा पादस्य प्रक्षालनमधिष्ठानं च वर्जयेत् ॥३५

न बहिर्मालां धारयेत् ॥३६ सूर्यमुदयास्तमये न निरीक्षेत ॥

नेन्द्रधनुरिति परस्मै ब्रूयात् ॥३८

यदि ब्रूयान्मणिधनुरित्येव ब्रूयात् ॥३९

पुरद्वारीन्द्रकीलपरिघावन्तरेण नातीयात् ॥४०

प्लेङ्खयोरन्तरेण न गच्छेत् ॥४१

वत्सतन्तिं च नोपरि गच्छेत् ॥४२

भस्मास्थिरोमतुषकपालावस्थानानि नाधितिष्ठेत् ॥४३

गां धयन्तीं परस्मै न प्रब्रूयात् ॥४४

नाधेनुमधेनुरिति ब्रूयात् ॥४५

यदि ब्रूयाद्धेनुंभव्येत्येव ब्रूयात् ॥४६

शुक्ता रूक्षाः परुषा वाचो न ब्रूयात् ॥४७

नैकोऽध्वानं व्रजेत् ॥४८ न पतितैर्न स्त्रिया न शूद्रेण ॥४९

न प्रतिसायं व्रजेत् ॥५० न नग्नः स्नायात् ॥५१

न नक्तं स्नायात् ॥५२ न नदीं बाहुकस्तरेत् ॥५३

न कूपमवेक्षेत ॥५४ न गर्तमवेक्षेत ॥५५

न तत्रोपविशेद्यत एनमन्य उत्थापयेत् ॥५६

पन्था देयो ब्राह्मणाय गवे राज्ञे ह्यचक्षुषे ।
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ॥५७

प्रभूतैधोदकयवससमित्कुशमाल्योपनिष्क्रमणमाढ्यजना-
कुलमनलससमृद्धमार्यनभूयिष्ठमदस्युप्रवेश्यं ग्राममावसितुं
यतेत धार्मिकः ॥५८

उदपानोदके ग्रामेब्राह्मणो वृषलीपतिः ।
उषित्वा द्वादश समाः शूद्रसाधर्म्यमृच्छति ॥५९

पुररेणुकुण्ठितशरीरस्तत्परिपूर्णनेत्रवदनश्च ।
नगरे वसन्सुनियतात्मा सिद्धिमवाप्स्यतीति न तदस्ति ॥६०

रथाश्वगजधान्यानां गवां चैव रजः शुभम् ।
अप्रशस्तं समूहन्याः श्वाजाविखरवाससाम् ॥६१

पूज्यान्पूजयेत् ॥६२

ऋषिविद्वन्नृपवरमातुलश्वशुरर्त्विजः।
एतेऽर्घ्याः शास्त्रविहिताः स्मृताः कालविभागशः ॥६३
ऋषिविद्वन्नृपाः प्राप्ताः क्रियारम्भे वरर्त्विजौ।
मातुलश्वशुरौ पूज्यौ संवत्सरगतागताविति ॥६४
अग्न्यगारे गवां मध्ये ब्राह्मणानां च संनिधौ।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं बाहुमुद्धरेत् ॥६५
उत्तरं वासः कर्तव्यं पञ्चस्वेतेषु कर्मसु।
स्वाध्यायोत्सर्गदानेषु भोजनाचमनयोस्तथा ॥६६
हवनं भोजनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः।
बहिर्जानु न कार्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम् ॥६७
अन्ने श्रितानि भूतानि अन्नं प्राणमिति श्रुतिः।
तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्नं हि परमं हविः ॥६८
हुतेन शाम्यते पापं हुतमन्नेन शाम्यति।
अन्नं दक्षिणया शान्तिमुपयातीति नः श्रुतिरिति ॥६९

इति द्वितीयप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः।

अथ द्वितीयप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः।

अथ सन्ध्योपासनविधिवर्णनम्।

अथातः संध्योपासनविधिं व्याख्यास्यामः ॥१
तीर्थं गत्वाऽप्रयतोऽभिषिक्तः प्रयतो वाऽनभिषिक्तः-

प्रक्षालितपादपाणिरप आचम्य सुरभिमत्याऽब्लिङ्गा-
भिर्वारुणीभिर्हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिर्व्याहृतिभि-
रन्यैश्च पवित्रैरात्मानं प्रोक्ष्य प्रयतो भवति ॥२

अथाप्युदाहरन्ति ॥३

अपोऽवगाहनं स्नानं विहितं सार्ववर्णिकम्।
मन्त्रवत्प्रोक्षणं चापि द्विजातीनां विशिष्यत इति ॥४

सर्वकर्मणां चैवाऽऽरम्भेषु प्राक्संध्योपासनकालाच्चैतेनैव
पवित्रसमूहेनाऽऽत्मानं ॥५ प्रोक्ष्य प्रयतो भवति ॥५

अथाप्युदाहरन्ति ॥६

दर्भेष्वासीनो दर्भान्धारयमाणः सोदकेन पाणिना–
प्रत्यङ्मुखः सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेत् ॥७

प्राणायामशो वा शतकृत्वः ॥८

उभयतः प्रणवां ससप्तव्याहृतिकां मनसा वा दशकृत्वः ॥९

त्रिभिश्च प्राणायामैस्तान्तो ब्रह्महृदयेन ॥१०

वारुणीभ्यां रात्रिमुपतिष्ठते ॥११

इमं मे वरुण तत्त्वा यामीति द्वाभ्याम् ॥१२

एवमेव प्रातः प्राङ्मुखस्तिष्ठन् ॥१३

मैत्रीभ्यामहरुपतिष्ठते मित्रस्य चर्षणीधृतो मित्रो जनान्या-
तयतीति द्वाभ्याम् ॥१४

सुपूर्वामपि पूर्वामुपक्रम्योदित आदित्ये समाप्नुयात् ॥१५

अनस्तमित उपक्रम्य सुपश्चादपि पश्चिमाम् ॥१६

संध्ययोश्च संपत्तावहोरात्रयोश्च संतत्यै ॥१७

अपि चात्र प्रजापतिगीतौ श्लोकौ भवतः— ॥१८

अनागतां तु ये पूर्वामनतीतां तु पश्चिमाम्।
संध्यां नोपासते विप्राः कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः ॥१९

सायं प्रातः सदा संध्यां ये विप्रा नो उपासते।
कामं तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेदिति ॥२०

तत्र सायमतिक्रमे रात्र्युपवासः ॥२१

प्रातरतिक्रमेऽहरुपवासः ॥२२

स्थानासनफलमवाप्नोति ॥२३

अथाप्युदाहरन्ति— २४

यदुपस्थकृतं पापं पद्भ्यां वा यत्कृतं भवेत्।
बाहुभ्यां मनसा वाऽपि वाचा वा यत्कृतं भवेत् ॥२५

सायं संध्यामुपस्थाय तेन तस्मात्प्रमुच्यते ॥२६

रात्र्या चापि संधीयते न चैनं वरुणो गृह्णाति ॥२७

एवमेव प्रातरुपस्थाय रात्रिकृतात्पापात्प्रमुच्यते ॥२८

अह्ना चापि संधीयते मित्रश्चैनं गोपायत्यादित्यश्चैनं स्वर्गं लोकमुन्नयति ॥२९

स एवमेवाहरहरहोरात्रयोः संधिषूपतिष्ठमानो ब्रह्मपूतो ब्रह्मभूतो ब्राह्मणः शास्त्रमनुवर्तमानो ब्रह्मलोकमभिजयतीति विज्ञायते ब्रह्मलोकमभिजयतीति विज्ञायते ॥३०

इति द्वितीयप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः।

अथ द्वितीयप्रश्ने पञ्चमोऽध्यायः।

अथ मध्याह्नस्नानविधिवर्णनम्

अथ हस्तौ प्रक्षाल्य कमण्डलुं मृत्पिण्डं च संगृह्य तीर्थं
गत्वा त्रिः पादौ प्रक्षालयते त्रिरात्मानम् ॥१
अथ हैके ब्रुवते ॥२
श्मशानमापो देवगृहं गोष्ठं यत्र च ब्राह्मणा अप्रक्षाल्य
पादौ तन्न प्रवेष्टव्यमिति ॥३　अथापोऽभिप्रपद्यते ॥४
हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः।
यन्मया भुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः ॥५
यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम्।
तन्म(न्न) इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता च पुनन्तु पुनः
पुनरिति ॥६　अथाञ्जलिनाऽप उपहन्ति ॥७
सुमित्रा न आप ओषधयः [संत्विति] ॥८
तां दिशं निरुक्षति यस्यामस्य दिशि द्वेष्यो भवति-
दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति ॥६
अथाप उपस्पृश्य त्रिः प्रदक्षिणमुदकमावर्तयति यदपां
क्रूरं यदमेध्यं यदशान्तं तदपगच्छतादिति ॥१०
अप्सु निमज्ज्योन्मज्ज्य ॥११
नाप्सु सतः प्रयमणं विद्यते न वासः पल्पूलनम् ॥१२
नोपस्पर्शनम् ॥१३
यद्युपरुद्धाः स्युरेतेनोपतिष्ठते नमोऽग्नयेऽप्सुमते नम इन्द्राय
नमो वरुणाय नमो वारुण्यै नमोऽद्भ्य इति ॥१४

उत्तीर्याऽऽचम्याऽऽचान्तः पुनराचामेत् ॥१५
आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् ।
पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म पूता पुनातु माम् ॥१६
यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम ।
सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहं स्वाहेति ॥१७
पवित्रे कृत्वाऽद्भिर्मार्जयति आपो हि ष्ठा मयोभुव इति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इति चतसृभिः ॥१८
पवमानः सुवर्जन इत्येतेनानुवाकेन मार्जयित्वा-ऽन्तर्जलगतोऽघमर्षणेन त्रीन्प्राणायामान्धारयित्वोत्तीर्य वासः पीडयित्वा प्रक्षालितोपवातान्यक्लिष्टानि वासांसि परिधायाप आचम्य दर्भेष्वासीनो दर्भान्धारयमाणः प्राङ्मुखः सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो वा दशावरम् ॥१९
अथाऽऽदित्यमुपतिष्ठत उद्वयं तमसस्परि उदु त्यं चित्रं तच्चक्षुर्देवहितं य उदगादिति ॥२०
अथाप्युदाहरन्ति ॥२१
प्रणवो व्याहृतयः सावित्री चेत्येते पञ्च ब्रह्मयज्ञा-अहरहर्ब्राह्मणं किल्बिषात्पावयन्ति ॥२२
पूतः पञ्चभिर्ब्रह्मयज्ञैरथोत्तरं देवतास्तर्पयति ॥२३
अग्निः प्रजापतिः (?) ।
अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर्बृहस्पतिः सर्पा-इत्येतानि प्राग्द्वाराणि दैवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि-

साहोरात्राणि समुहूर्तानि तर्पयामि ॥२४

ओं वसूंश्च तर्पयामि ॥२५ ॥२५

ओं पितरोऽर्यमा भगः सविता त्वष्टा वायुरिन्द्राग्नी-

इत्येतानि दक्षिणद्वाराणि दैवतानि सनक्षत्राणि

सग्रहाणि साहोरात्राणि सुमुहूर्तानि तर्पयामि ॥२६

ओमादित्यांश्च तर्पयामि ॥२७

ओं वसवो वरुणोऽज एकपादहिर्बुध्न्यः पूषाऽश्विनौ-

यम इत्येतान्युदग्द्वाराणि दैवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि

साहोरात्राणि समुहूर्तानि तर्पयामि ॥२८

ओं विश्वान्देवांस्तर्पयामि ॥२९

ओं साध्यांश्च तर्पयामि ॥३० ओं ब्रह्माणं तर्पयामि ॥३१

ओं प्रजापतिं तर्पयामि ॥३२ ओं चतुर्मुखं तर्पयामि ॥३३

ओं हिरण्यगर्भं तर्पयामि ॥३४ ओं स्वयंभुवं तर्पयामि ॥

ओं ब्रह्मपार्षदांस्तर्पयामि ॥३६ ओं परमेष्ठिनं तर्पयामि ॥

ओं ब्रह्मपार्षदींश्च तर्पयामि ॥३८ ओमग्निं तर्पयामि ॥३९

ओं वायुं तर्पयामि ॥४० ओं वरुणं तर्पयामि ॥४१

ओं सूर्यं तर्पयामि ॥४२ ओं चन्द्रमसं तर्पयामि ॥४३

ओं नक्षत्राणि तर्पयामि ॥४४ ओं सद्योजातं तर्पयामि ॥४५

ओं भूः पुरुषं तर्पयामि ॥४६ ओं भुवः पुरुषं तर्पयामि ॥४७

ओं स्वः पुरुषं तर्पयामि ॥४८ ओं भूर्भुवःस्वः पुरुषं तर्पयामि

ओं भूस्तर्पयामि ॥५० ओं भुवस्तर्पयामि ॥५१

ओं स्वस्तर्पयामि ॥५२ ओं महस्तर्पयामि ॥५३

ओं जनस्तर्पयामि ॥५४ ओं तपस्तर्पयामि ॥५५
ओं सत्यं तर्पयामि ॥५६ ओं भवं देवं तर्पयामि ॥५७
ओं शर्वं देवं तर्पयामि ॥५८ ओमीशानं देवं तर्पयामि ॥५९
ओं पशुपतिं देवं तर्पयामि ॥६० ओं रुद्रं देवं तर्पयामि ॥६१
ओमुग्रं देवं तर्पयामि ॥६२ ओं भीमं देवं तर्पयामि ॥६३
ओं महान्तं देवं तर्पयामि ॥६४ ओं भवस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥६५ ओं शर्वस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥६६
ओमीशानस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥६७
ओं पशुपतेर्देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥६८
ओं रुद्रस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥६९
ओमुग्रस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥७०
ओं भीमस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥७१
ओं महतो देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥७२
ओं भवस्य देवस्य सुतं तर्पयामि ॥७३
ओं शर्वस्य देवस्य सुतं तर्पयामि ॥७४
ओमीशानस्य देवस्य सुतं तर्पयामि ॥७५
ओं पसुपतेर्देवस्य सुतं तर्पयामि ॥७६
ओं रुद्रस्य देवस्य सुतं तर्तयामि ॥७७
ओमुग्रस्य देवस्य सुतं तर्पयामि ॥७८
ओं भीमस्य देवस्य सुतं तर्पयामि ॥७९
ओं महतो देवस्य सुतं तर्पयामि ॥८० ओं रुद्रांश्च तपयामि ॥८१
ओं रुद्रपार्षदांस्तर्पयामि ॥८२ ओं विघ्नं तर्पयामि ॥८३

ओं विनायकं तर्पयामि ॥८४ ओं वीरं तर्पयामि ॥८५
ओं स्थूलं तर्पयामि ८६ ओं वरदं तर्पयामि ८७
ओं हस्तिमुखं तर्पयामि ॥८८ ओं वक्रतुण्डं तर्पयामि ॥८९
ओमेकदन्तं तर्पयामि ॥९० ओं लम्बोदरं तर्पयामि ॥९१
ओं विघ्नपार्षदांस्तर्पयामि ॥९२ ओं विघ्नपार्षदींश्च तर्पयामि॥९३
ओं सनत्कुमारं तर्पयामि ॥९४ ओं स्कन्दं तर्पयामि ॥९५
ओमिन्द्रं तर्पयामि ९६ ओं षष्ठीं तर्पयामि ॥९७
ओं षण्मुखं तर्पयामि ९८ ओं विशाखं तर्पयामि ॥९९
ओं महासेनं तर्पयामि ॥१०० ओं सुब्रह्मण्यं तर्पयामि ॥१०१
ओं स्कन्दपार्षदांस्तर्पयामि ॥१०२
ओं स्कन्दपार्षदींश्च तर्पयामि ॥१०३
ओमादित्यं तर्पयामि ॥१०४ ओं सोमं तर्पयामि ॥१०५
ओमङ्गारकं तर्पयामि ॥१०६ ओं बुधं तर्पयामि ॥१०७
ओं बृहस्पतिं तर्पयामि ॥१०८ ओं शुक्रं तर्पयामि ॥१०९
ओं शनैश्चरं तर्पयामि ॥११० ओं राहुं तर्पयामि ॥१११
ओं केतुं तर्पयामि ॥११२ ओं केशवं तर्पयामि ॥११३
ओं नारायणं तर्पयामि ११४ ओं माधवं तर्पयामि ॥११५
ओं गोविन्दं तर्पयामि ११६ ओं विष्णुं तर्पयामि ॥११७
ओं मधुसूदनं तर्पयामि ॥११८ ओं त्रिविक्रमं तर्पयामि ॥११९
ओं वामनं तर्पयामि १२० ओं श्रीधरं तर्पयामि ॥१२१
ओं हृषीकेशं तर्पयामि ॥१२२ ओं पद्मनाभं तर्पयामि ॥१२३
ओं दामोदरं तर्पयामि ॥१२४ ओं श्रियं देवीं तर्पयामि ॥१२५

ओं सरस्वतीं देवीं तर्पयामि ॥१२६ ओं पुष्टिं तर्पयामि ॥१२७
ओं तुष्टिं तर्पयामि ॥१२७ ओं विष्णुं तर्पयामि ॥१२८
ओं गरुत्मन्तं तर्पयामि ॥१३० ओं विष्णुपार्षदांश्च तर्प० ॥१३१
ओं विष्णुपार्षदीश्च तर्पयामि ॥१३२ ओं यमं तर्पयामि ॥१३३
ओं यमराजं तर्पयामि ॥१२४ ओं धर्मं तर्पयामि १३५
ओं धर्मराजं तर्पयामि ॥१३६ ओं कालं तर्पयामि १३७
ओं नीलं तर्पयामि ॥१३८ ओं मृत्युंजयं तर्पयामि ॥१३६
ओं वैवस्वतं तर्पयामि ॥१४० ओं चित्रगुप्तं तर्पयामि ॥१४१
ओमौदुम्बरं तर्पयामि ॥१४२ ओं वैवस्वतपार्षदांस्तर्प० ॥१४३
ओं वैवस्वत पार्षदीश्च तर्पयामीति ॥१४४
ओं भूमिदेवांस्तर्पयामि ॥१४५ ओं काश्यपं तर्पयामि ॥१४६
ओमन्तरिक्षं तर्पयामि ॥१४७ ओं विद्यां तर्पयामि ॥१४८
ओं धन्वन्तरिं तर्पयामि ॥१४६
ओं धन्वन्तरिपार्षदांश्च तर्पयामि ॥१५०
ओं धन्वन्तरिपार्षदीश्च तर्पयामीति ॥१५१
अथ निवीती ॥१५२ ओमृषींस्तर्पयामि ॥१५३
ओं महर्षींस्तर्पयामि ॥१५४ ओं परमर्षींस्तर्पयामि ॥१५५
ओं ब्रह्मर्षींस्तर्पयामि ॥१५६ ओं देवर्षींस्तर्पयामि ॥१५७
ओं राजर्षींस्तर्पयामि ॥१५८ ओं श्रुतर्षींस्तर्पयामि ॥१५६
ओं सप्तर्षींस्तर्पयामि ॥१६० ओं काण्डर्षींस्तर्पयामि ॥१६१
ओमृषिकांस्तर्पयामि ॥१६२ ओ मृषिपत्नीस्तर्पयामि १६३
ओमृषिपुत्रकांस्तर्पयामि ॥१६४ ओं कण्वं बौधायनं तर्प० ॥१६५

ओमापस्तम्बं सूत्रकारं तर्पयामि ॥१६६
ओं सत्याषाढं हिरण्यकेशिनं तर्पयामि ॥१६७
ओं वाजसनेयिनं याज्ञवल्क्यं तर्पयामि ॥१६८
ओमाश्वलायनं शौनकं तर्पयामि ॥१६९
ओं व्यासं तर्पयामि ॥१७० ओं प्रणवं तर्पयामि ॥१७१
ओं व्याहृतीस्तर्पयामि ॥१७२ ओं सावित्रीं तर्पयामि ॥१७३
ओं गायत्रीं तर्पयामि ॥१७४ ओं छन्दांसि तर्पयामि ॥१७५
ओमृग्वेदं तर्पयामि ॥१७६ ओं यजुर्वेदं तर्पयामि १७७
ओं सामवेदं तर्पयामि ॥१७८ ओमथर्वाङ्गिरसं तर्पयामि ॥१७९
ओमितिहासपुराणं तर्पयामि ॥१८० ओं सर्ववेदांस्तर्प० ॥१८१
ओं सर्वदेवजनांस्तर्पयामि ॥१८२
ओं सर्वभूतानि तर्पयामि ॥१८३
अथ प्राचीनावीती (?) ॥ अथ प्राचीनावीती ॥१८४
ओं पितॄन्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१८५
ओं पितामहान्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१८६
ओं प्रपितामहान्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१८७
ओं मातॄः स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१८८
ओं पितामहीः स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१८९
ओं प्रपितामहीः स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१९०
ओं मातामहान्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१९१
ओं मातुः पितामहान्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१९२
ओं मातुः प्रपितामहान्स्वधा नमस्तर्पयामि १९३

ओं मातमहीः स्वधा नमस्तर्पयामि १६४

ओं मातुः पितामहीः स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१६५

ओं मातुः प्रपितामहीः स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१६६

ओमाचार्यान्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१६७

ओमाचार्यपत्नीः स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१६८

ओं गुरून्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥१६६

ओं गुरुपत्नीः स्वधा नमस्तर्पयामि ॥२००

ओं सखीन्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥२०१

ओं सखिपत्नीः स्वधा नमस्तर्पयामि ॥२०२

ओं ज्ञातीन्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥२०३

ओं ज्ञातिपत्नीः स्वधा नमस्तर्पयामि ॥२०४

ओममात्यान्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥२०५

ओममात्यपत्नीः स्वधा नमस्तर्पयामि २०६

ओं सर्वान्स्वधा नमस्तर्पयामि ॥२०७

ओं सर्वाः स्वधा नमस्तर्पयामीति ॥२०८

अनुतीर्थमप उत्सिञ्चति २०६

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयःकीलालं परिस्रुतम्।

स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्। तृप्यत तृप्यतेति ॥२१०

नैकवस्त्रो नाऽऽर्द्रवासा दैवानि कर्माण्यनुसंचरेत् ॥२११

पितृसंयुक्तानि चेत्येकेषां पितृसंयुक्तानि चेत्येकेषाम् ॥२१२

इति द्वितीयप्रश्ने पञ्चमोऽध्यायः।

अथ द्वितीयप्रश्ने षष्ठोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमहायज्ञाः, आश्रमधर्मनिरूपणञ्च ।

अथ पञ्च महायज्ञाः ॥१　तान्येव महासत्राणि ॥२

देवयज्ञः पितृयज्ञो भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति ॥३

अहरहः स्वाहा कुर्यादाकाष्ठात्तथैतं देवयज्ञं समाप्नोति ॥४

अहरहः स्वधा कुर्यादोदपात्रात्तथैतं पितृयज्ञं समाप्नोति ॥५

अहरहर्नमस्कुर्यादापुष्पेभ्यस्तथैतं भूतयज्ञं समाप्नोति ॥६

अहरहर्ब्राह्मणेभ्योऽन्नं दद्यादा मूलफलशाकेभ्यस्तथैतं मनुष्ययज्ञं समाप्नोति ॥७

अहरहः स्वाध्यायं कुर्यादा प्रणवात्तथैतं ब्रह्मयज्ञं समाप्नोति ॥८

स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञस्तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेव जुहूर्मन उपभृच्चक्षुर्ध्रुवा मेधा स्रुवः सत्यमवभृथः स्वर्गो लोक उदयनं यावन्त ह वा इमां वित्तस्य पूर्णां ददत्स्वर्गं लोकं जयति तावन्तं लोकं जयति भूयांसं चाक्षय्यं चाप पुनर्मृत्युं जयति य एवं विद्वान्स्वाध्यायमधीते तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्य इति हि ब्राह्मणम् ॥९　अथाप्युदाहरन्ति ॥१०

स्वभ्यक्तः सुहितः सुखे शयने शयानो यं यं क्रतुमधीते तेन तेनास्येष्टं भवतीति ॥११

तस्य ह वा एतस्य धर्मस्य चतुर्धा भेदमेक आहुरदृष्टत्वात् ॥१२

ये चत्वार इति कर्मवादः ॥१३

ऐष्टिकपाशुकसौमिकदार्विहोमानाम् ॥१४

तदेषाऽभिवदति ॥१५

ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति। तेषां यो अज्यानिमजीतिमावहात्तस्मै नो देवाः परिदत्तेह सर्व इति ॥१६

ब्रह्मचारी गृहस्थो वानप्रस्थः परिव्राजक इति ॥१७

ब्रह्मचारी गुरुशुश्रूष्यामरणात् ॥१८

वानप्रस्थो वैखानसशास्त्रसमुदाचारः ॥१९

वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः [सवने] षूदकमुपस्पृशाञ्छ्रामणकेनाग्निमाधायाग्राम्यभोजी देवपितृभूतमनुष्यर्षिपूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्जं भैक्षमप्युपयुञ्जीत न फालकृष्टमधितिष्ठेद्ग्रामं च न प्रविशेज्जटिलश्चीराजिनवासा नातिसांवत्सरं भुञ्जीत ॥२०

परिव्राजकः परित्यज्य बन्धूनपरिग्रहः प्रव्रजेद्यथाविधि ॥२१

अरण्यं गत्वा शिखामुण्डः कौपीनाच्छादनः ॥२२

वर्षास्वेकस्थः ॥२३

काषायवासाः सन्नमुसले व्यङ्गारे निवृत्तशरावसंपाते भिक्षेत ॥२४

वाङ्मनःकर्मदण्डैर्भूतानामद्रोही ॥२५

पवित्रं बिभ्रच्छौचार्थम् ॥२६

उद्धृतपरिपूताभिरद्भिरप्कार्यं कुर्वाणः ॥२७

अपविध्य वैदिकानि कर्माण्युभयतः परिच्छिन्ना मध्यमं पदं संश्लिष्यामह इति वदन्तः ॥२८

ऐकाश्रम्यं त्वाचार्या अप्रजनत्वादितरेषाम् ॥२६

तत्रोदाहरन्ति ॥३०

प्राह्लादिर्ह वै कपिलो नामाऽऽसुर आस स एतान्भेदां-श्चकार देवैः स्पर्धमानस्तान्मनीषी नाऽऽद्रियेत ॥३१

अदृष्टत्वात् ॥३२ ये चत्वार इति ॥३३

कर्मवाद ऐष्टिकपाशुकसौमिकदार्विहोमाणाम् ॥३४

तदेषाऽभ्यनूच्यते ॥३५

एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न कर्मणा वर्धते कनीयान् ।
तस्यैवाऽऽत्मा पदवित्तं विदित्वा न कर्मणा लिप्यते
पापकेनेति ॥३६ स ब्रूयात् ॥३७

येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः पिता पुत्रेण पितृमान्योनियोनौ ।
नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम् ।
सर्वानुभुमात्मानं संपराय इति ॥३८

इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते
अप्रजज्ञाय इति ॥३६

प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ४०

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्वा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति ॥४१

एवमृणसंयोगादीन्यसंख्येयानि भवन्ति ॥४२

त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रजातिं श्रद्धां तपो यज्ञमनुप्रदानम् ॥४३
य एतानि कुर्वते तैरित्सह स्मो रजो भूत्वा ध्वंसते-
ऽन्यत्प्रशंसन्निति ॥४४

इति द्वितीयप्रश्ने षष्ठोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रश्ने सप्तमोऽध्यायः ।

शालीनयायावराणामात्मयाजिनां प्राणाहुति व्याख्यानम् ।

अथ शालीनयायावराणामात्मयाजिनां प्राणाहुतीर्व्या-
ख्यास्यामः ॥१
सर्वावश्यकावसाने संमृष्टोपलिप्ते देशे प्राङ्मुख उपविश्य
तद्भूतमाह्रियमाणं भूर्भुवः स्वरोमिति उपस्थाय वाचं
यच्छेत् ॥२
न्यस्तमन्नं महाव्याहृतिभिः प्रदक्षिणमुदकं परिषिच्य
सव्येन पाणिना विमुञ्चन्नमृतोपस्तरणमसीति पुरस्तादपः
पीत्वा पञ्चान्नेन प्राणाहुतीर्जुहोति ॥३
प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो मा विशाप्रदाहाय
प्राणाय स्वाहेति ॥४
पञ्चान्नेन प्राणाहुतीर्हुत्वा तूष्णीं भूयो व्रतयेत्प्रजापतिं
मनसा ध्यायन्नान्तरा वाचं विसृजेत् ॥५

यद्यन्तरा वाचं विसृजेत्, भूर्भुवः स्वरोमिति जपित्वा पुनरेव भुञ्जीत ॥६

त्वक्केशनखकीटाखुपुरीषाणि दृष्ट्वा तं देशं पिण्डमुद्धृत्याद्भिरभ्युक्ष्य भस्मावकीर्य पुनरद्भिः प्रोक्ष्य वाचा च प्रशस्तमुपयुञ्जीत ॥७ अथाप्युदाहरन्ति ॥८

आसीनः प्राङ्मुखोऽश्नीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
अस्कन्दयंस्तन्मनाश्च भुक्त्वा चाग्निमुपस्पृशेदिति ॥९

सर्वभक्ष्यापूपकन्दमूलफलमांसानि दन्तैर्नावद्येत् ॥१०

नातिसुहितोऽमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पीत्वाऽऽचान्तो हृदयदेशमभिमृशति ॥११

प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकस्तेनान्नेनाऽऽप्यायस्वेति ॥१२

पुनराचम्य दक्षिणे पादाङ्गुष्ठे पाणी निस्त्रावयति ॥१३

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽङ्गुष्ठं च समाश्रितः ।
ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्वभुगिति ॥१४

हुतानुमन्त्रणमूर्ध्वहस्तः समाचरेत् ॥१५

श्रद्धायां प्राणेन निविश्यामृतं हुतं प्राणमन्नेनाऽऽप्यायस्वेति पञ्च ॥१६

ब्रह्मणि म आत्माऽमृतत्वायेत्यात्मानम् ॥१७

अक्षरेण चाऽऽत्मानं योजयेत् ॥१८

सर्वक्रतुयाजिनामात्मयाजी विशिष्यते ॥१९

अथाप्युदाहरन्ति ॥२०

यथा हि तूलमैषीकम् ॥२१

यथा हि तूलमैषीकमग्नौ प्रोतं प्रदीप्यते ।
तद्वत्सर्वाणि पापानि दह्यन्ते ह्यात्मयाजिनः ॥२२

केवलाघो भवति केवलादी मोघमन्नं विन्दत इति ॥२३

स एवमेवाहरहः सायं प्रातर्जुहुयात् ॥२४

अद्भिर्वा सायम् ॥२५ अथाप्युदाहरन्ति ॥२६

अग्रे भोजयेदतिथीनन्तर्वत्नीरनन्तरम् ।
बालवृद्धांस्तथा दीनान्व्याधितांश्च विशेषतः ॥२७

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुङ्क्ते यथाविधि ।
भुज्यमानो न जानाति न स भुङ्क्ते स भुज्यते ॥२८

पितृदैवतभृत्यानां मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।
वाग्यतो विघसमश्नीयादेवं धर्मो विधीयत इति ॥२९

अथाप्युदाहरन्ति ॥३०

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः ।
द्वात्रिंशतं गृहस्थस्यापरिमितं ब्रह्मचारिणः ॥३१

आहिताग्निरनड्वांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः ।
अश्नन्त एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नतामिति ॥३२

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा योऽनश्नंस्तु तपश्चरेत् ।
प्राणाग्निहोत्रलोपेन अवकीर्णी भवेत्तु सः ॥३३

अन्यत्र प्रायश्चित्तात्प्रायश्चित्ते तदेव विधानम् ॥३४

अथाप्युदाहरन्ति ॥३५

अन्तरा प्रातराशं च सायमाशं तथैव च ।

सदोपवासी भवति यो न भुङ्क्ते कदाचन ॥३६

प्राणाग्निहोत्रमन्त्रांस्तु निरुद्धे भोजने जपेत् ।

त्रेताग्निहोत्रमन्त्रांस्तु द्रव्यालाभे यथा जपेदिति ॥३७

एवमेवाऽऽचरन्ब्रह्मभूयाय कल्पते ब्रह्मभूयाय कल्पत इति ॥

इति द्वितीयप्रश्ने सप्तमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः ।

अथ श्राद्धाङ्गाग्नौकरणादि विधिनिरूपणम् ।

पित्र्यमायुष्यं स्वर्ग्यं यशस्यं पुष्टिकर्म च ॥१

त्रिमधुस्त्रिणाचिकेतस्त्रिसुपर्णः पञ्चाग्निः षडङ्गविच्छीर्षको ज्येष्ठसामकः स्नातक इति पङ्क्तिपावनाः ॥२

तदभावे रहस्यवित् ॥३

ऋचो यजूंषि सामानीति श्राद्धस्य महिमा ॥४

तस्मादेवंविदं सपिण्डमप्याशयेत् ॥५

राक्षोघ्नानि च सामानि स्वधावन्ति यजूंषि च ।

मध्वृचोऽथ पवित्राणि श्रावयेदाशयञ्छनैः ॥६

चरणवतोऽनूचानान्योनिगोत्रमन्त्रासंबन्धाञ्छुचीन्मन्त्र-
तस्त्र्यवरानयुजः पूर्वेद्युः प्रातरेव वा निमन्त्र्य सदर्भोप-

क्लृप्तेष्वासनेषु प्राङ्मुखानुपवेशयत्युदङ्मुखान्वा ॥७

अथैनांस्तिलमिश्रा अपः प्रतिग्राह्य गन्धैर्माल्यैश्चालंकृत्याग्नौ करिष्यामीत्यनुज्ञातोऽग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्याग्नि मुखात्कृत्वाऽन्नस्यैव तिस्र आहुतीर्जुहोति ॥८

सोमाय पितृपीताय स्वधा नमः स्वाहा ॥६

यमायाङ्गिरस्वते पितृमते स्वधा नमः स्वाहा ॥१०

अग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमः स्वाहेति ॥११

तच्छेषेणान्नमभिघार्यान्नस्यैता एव तिस्रो जुहुयात् ॥१२

वयसां पिण्डं दद्यात् ॥१३

वयसां हि पितरः प्रतिमया चरन्तीति विज्ञायते ॥१४

अथेतरत्साङ्गुष्ठेन पाणिनाऽभिमृशति ॥१५

पृथिवीसमन्तस्य तेऽग्निरुपद्रष्टर्चस्ते महिमा दत्तस्या-प्रमादाय पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्य-क्षितमसि मा पितॄणां क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिंल्लोँक इति ॥१६

अन्तरिक्षसमन्तस्य ते वायुरुपश्रोता यजूंषि ते महिमा दत्तस्याप्रमादाय पृथिवी ते पात्र द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयो-र्जुहोम्यक्षितमसि मा पितामहानां क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिं-ल्लोँक इति ॥१७

द्युसमन्तस्य त आदित्योऽनुख्याता सामानि ते महिमा दत्तस्याप्रमादाय पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा

मुखे जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयो-
र्जुहोम्यक्षितमसि मा प्रपितामहानां क्षेष्ठा अमुत्राः
मुष्मिंल्लोँक इति ॥१८

अथ वै भवति ॥१६　अथ वै भवति ॥२०

अग्नौकरणशेषेण तदन्नमभिघारयेत् ।
निरङ्गुष्ठं तु यद्दत्तं न तत्प्रीणाति वै पितॄन् ॥२१

उभयोः शाखयोर्मुक्तं पितृभ्योऽऽन्नं निवेदितम् ।
तदन्तरमुपासन्तेऽसुरा वै दुष्टचेतसः ॥२२

यातुधानाः पिशाचाश्च प्रतिलुम्पन्ति तद्धविः ।
तिलादाने ह्यदायादास्तथा क्रोधवशेऽसुराः ॥२३

काषायवासा यान्कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान् ।
न तद्देवगमं भवति हव्यकव्येषु यद्धविः ॥२४

यच्च दत्तमनङ्गुष्ठं यच्चैव प्रतिगृह्यते ।
आचामति च यस्तिष्ठन्न स तेन समृध्यत इति ॥२५

आद्यन्तयोरपां प्रदानं सर्वत्र ॥२६

जपप्रभृति यथाविधानम् ॥२७　शेषमुक्तमष्टकाहोमे ॥२८

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥२६

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदम् ।
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥३०

उरस्तः पितरस्तस्य वामतश्च पितामहाः ।
दक्षिणतः प्रपितामहाः पृष्ठतः पिण्डतर्कका इति ॥३१

इति द्वितीयप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रश्ने नवमोऽध्यायः।

अथ सत्पुत्रप्रशंसावर्णनम्।

प्रजाकामस्योपदेशः ॥१ प्रजननिमित्ता समाख्येति ॥२

अश्विनावूचतुः ॥३

आयुषा तपसा युक्तः स्वाध्यायेज्यापरायणः।
प्रजामुत्पादयेद्युक्तः स्वे स्वे वर्णे जितेन्द्रियः ॥४

ब्राह्मणस्यर्णसंयोगस्त्रिभिर्भवति जन्मतः।
तानि मुच्यात्मवान्भवति विमुक्तो धर्मसंशयात् ॥५

स्वाध्यायेन ऋषीन्पूज्य सोमेन च पुरंदरम्।
प्रजया च पितॄन्पूर्वाननृणो दिवि मोदते ॥६

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणाऽऽनन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण नाकमेवाधिरोहतीति ॥७

विज्ञायते च ॥८

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति ॥९

एवमृणसंयोगं वेदो दर्शयति ॥१०

सत्पुत्रमुत्पाद्याऽऽत्मानं तारयति ॥११

सप्तावरान्सप्त पूर्वान्षडन्यानात्मसप्तमान्।
सत्पुत्रमधिगच्छानस्तारयत्येनसो भयात् ॥१२

तस्मात्प्रजासंतानमुत्पाद्य फलमवाप्नोति ॥१३

तस्माद्यत्नवान्प्रजामुत्पादयेदौषधमन्त्रसंयोगेन ॥१४

तस्योपदेशः श्रुतिसामान्येनोपदिश्यते ॥१५

सर्ववर्णेभ्यः फलवत्त्वादिति फलवत्त्वादिति ॥१६

इति द्वितीयप्रश्ने नवमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रश्ने दशमोऽध्यायः ।

अथ संन्यासविधिवर्णनम् ।

अथातः संन्यासविधिं व्याख्यास्यामः ॥१

सोऽत एव ब्रह्मचर्यवान्प्रव्रजतीत्येकेषाम् ॥२

अथ शालीनयायावराणामनपत्यानाम् ॥३

विधुरो वा प्रजाः स्वधर्मे प्रतिष्ठाप्य वा ॥४

सप्तत्या ऊर्ध्वं संन्यासमुपदिशन्ति ॥५

वानप्रस्थस्य वा कर्मविरामे ॥६

एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न कर्मणा वर्धते नो कनीयान् ।
तस्यैवाऽऽत्मा पदवित्तं विदित्वा न कर्मणा लिप्यते पापकेनेति ॥७

अपुनर्भवं नयतीति नित्यः ॥८

महदेनं गमयतीति महिमा ॥९

केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वोपकल्पयते ॥१०

यष्टयः शिक्यं जलपवित्रं कमण्डलुं पात्रमिति ॥११

एतत्समादाय ग्रामान्ते ग्रामसीमान्तेऽग्न्यगारे वाऽऽज्यं पयो दधीति त्रिवृत्प्राश्योपविशेत् ॥१२

अपो वा ॥१३

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१४

ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि ॥१५

ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयादिति ॥१६

पच्छोऽर्धर्चशस्ततः समस्तया च व्यस्तया च ॥१७

आश्रमादाश्रममुपनीय ब्रह्मपूतो भवतीति विज्ञायते ॥१८

अथाप्युदाहरन्ति ॥१९

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः।
भिक्षाबलिपरिश्रान्तः पश्चाद्भवति भिक्षुक इति ॥२०

स एष भिक्षुरानन्त्याय ॥२१

पुराऽऽदित्यस्यास्तमयाद्गार्हपत्यमुपसमाधायान्वाहार्यपचनमाहृत्य ज्वलन्तमाहवनीयमुद्धृत्य गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्वत्याहवनीये पूर्णाहुतिं जुहोति, ओं स्वाहेति ॥२२

एतद्ब्रह्मान्वाधानमिति विज्ञायते ॥२३

अथ सायं हुतेऽग्निहोत्र उत्तरेण गार्हपत्यं तृणानि संस्तीर्य तेषु द्वंद्वं न्यञ्चि पात्राणि सादयित्वा दक्षिणेनाऽऽहवनीयं ब्रह्मायतने दर्भान्संस्तीर्य तेषु कृष्णाजिनं चान्तर्धायैतां रात्रिं जागर्ति ॥२४

य एवं विद्वान्ब्रह्मरात्रिमुपोष्य ब्राह्मणोऽग्नीन्समारोप्य प्रमीयते सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्याम् ॥२५

अथ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय काल एव प्रातरग्निहोत्रं जुहोति ॥२६

अथ पृष्ठ्यां स्तीर्त्वाऽपः प्रणीय वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपति सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते ॥२७

आहवनीयेऽग्निहोत्रपात्राणि प्रक्षिपत्यमृण्मयान्यनश्ममयानि ॥२८ गार्हपत्येऽरणी ॥२६

भवतं नः समनसाविति आत्मन्यग्नीन्समारोपयते ॥३०

या ते अग्ने यज्ञिया तनूरिति त्रिस्त्रिरेकैकं समाजिघ्रति ॥३१

अथान्तर्वेदि तिष्ठन्, ओं भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया संन्यस्तं मया संन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशूक्त्वा त्रिरुच्चैः ॥३२

त्रिषत्या हि देवा इति विज्ञायते ॥३३

अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्त इति चापां पूर्णमञ्जलिं निनयति ॥३४

अथप्युदाहरन्ति ॥३५

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः ।
न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयं चापि ह जायत, इति ॥३६

स वाचंयमो भवति ॥३७

सखा मा गोपायेति दण्डमादत्ते ॥३८

यदस्य पारे रजस इति शिक्यं गृह्णाति ॥३६

येन देवाः पवित्रेणेति जलपवित्रं गृह्णाति ॥४०

येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्निति कमण्डलुं गृह्णाति ॥४१

सप्तव्याहृतिभिः पात्रं गृह्णाति ॥४२

यष्टयः शिक्यं जलपवित्रं पात्रमित्येतत्समादाय यत्राऽऽपस्तद्गत्वा स्नात्वाऽप आचम्य सुरभिमत्याऽब्लिङ्गाभिर्वारुणीभिर्हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभि-

रिति मार्जयित्वाऽन्तर्जलगतोऽघमर्षणेन षोडश प्राणा-
यामान्धारयित्वोत्तीर्य वासः पीडयित्वाऽन्यत्प्रयतं
वासः परिधायाऽप आचम्य, ओं भूर्भुवः स्वरिति
जलपवित्रमादाय तर्पयति ॥४३

ओं भूस्तर्पयाम्यों भुवस्तर्पयाम्यों स्वस्तर्पयाम्यों
महस्तर्पयाम्यों जनस्तर्पयाम्यों तपस्तर्पयाम्यों सत्यं
तर्पयामिति ॥४४

देववत्पितृभ्योऽञ्जलिमादाय, ओं भूः स्वधों भुवः स्वधों
स्वः स्वधों भूर्भुवः स्वर्महर्नम इति ॥४५

अथोदुत्यं चित्रमिति द्वाभ्यामादित्यमुपतिष्ठते ॥४६

ओमिति ब्रह्म ब्रह्म वा एष ज्योतिर्य एष तपत्येष वेदो
य एष तपति वेद्यमेवैतद्य एषं तपति एवमेवैष आत्मानं
तर्पयत्यात्मने नमस्करोति ॥४७

आत्मा ब्रह्मात्मा ज्योतिः ॥४८

सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो वा ॥४९

ओं भूर्भुवः स्वरिति जलपवित्रमादायापो गृह्णाति ॥५०

न चात ऊर्ध्वमनुद्धृताभिरद्भिरपरिस्रुताभिरपरिपूताभि-
र्वाऽऽचामेत् ॥५१

न चात ऊर्ध्वं शुक्लवासो धारयेत् ॥५२

एकदण्डी त्रिदण्डी वा ॥५३ अथेमानि व्रतानि भवन्ति ॥५४

अहिंसा सत्यमस्तैन्यं मैथुनस्य च वर्जनम् ।
त्याग इत्येव पञ्चैवोपव्रतानि भवन्ति (हि) ॥५५

अक्रोधो गुरुशुश्रूषाऽप्रमादः शौचमाहारशुद्धिश्चेति ॥५६

अथ भैक्षचर्या ॥५७

ब्राह्मणानां शालीनयायावराणामपवृत्ते वैश्वदेवे भिक्षां लिप्सेत भवत्पूर्वां प्रचोदयेत् ॥५८

गोदोहमात्रमाकाङ्क्षेत् ॥५९

अथ भैक्षचर्यादुपावृत्य शुचौ देशे न्यस्य हस्तपादा-न्प्रक्षाल्याऽऽदित्यस्याग्रं निवेदयेत् ॥६०

उदुत्यं चित्रमिति ब्रह्मणे निवेदयते ब्रह्मजज्ञानमिति विज्ञायते ॥६१

आधानप्रभृति यजमान एवाग्नयो भवन्ति तस्य प्राणो गार्हपत्योऽपानोऽन्वाहार्यपचनो व्यान आहवनीय उदानसमानौ सभ्यावसथ्यौ पञ्च वा एतेऽग्नय आत्मस्था आत्मन्येव जुहोति स एष आत्मयज्ञ आत्मनिष्ठ आत्मप्रतिष्ठ आत्मानं क्षेमं नयतीति विज्ञायते ॥६२

भूतेभ्यो दयापूर्वं संविभज्य शेषमद्भिः संस्पृश्यौषध-वत्प्राश्नीयात् ॥६३

प्राश्याप आचम्य ज्योतिष्मत्याऽऽदित्यमुपतिष्ठते उद्वयं तमसस्परीति ॥६४

वाङ्म आसन्नसोः प्राण इति जपित्वा ॥६५

अयाचितमसंक्लृप्तमुपपन्नं यदृच्छया ।
आहारमात्रं भुञ्जीत केवलं प्राणयात्रिकमिति ॥६६

अथाप्युदाहरन्ति ॥६७

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः।

द्वात्रिंशतं गृहस्थस्यापरिमितं ब्रह्मचारिणः ॥६८

भैक्षं वा सर्ववर्णेभ्य एकान्नं वा द्विजातिषु।

अपि वा सर्ववर्णेभ्यो न चैकान्नं द्विजातिष्विति ॥६९

अथ यत्रोपनिषदमाचार्या ब्रुवते तत्रोदाहरन्ति ॥७०

स्थानमौनवीरासनसवनोपस्पर्शनचतुर्थषष्ठाष्टमकाल-व्रतयुक्तस्य कणपिण्याकयावकदधिपयोव्रतत्वं चेति ॥७१

तत्र मौनेयुक्तस्त्रैविद्यवृद्धैराचार्यैर्मुनिभिरन्यैर्वाऽऽश्रमिभिर्बहुश्रुतैर्दन्तान्संधायान्तर्मुख एव यावदर्थं संभाषीत न यत्र लोपो भवतीति विज्ञायते ॥७२

स्थानमौनवीरासनानामन्यतमेन संप्रयोगो न त्रयं संनिपातयेत् ॥७३

यत्र गतश्च यावन्मात्रमनुव्रतयेदापत्सु न यत्र लोपो भवतीति विज्ञायते ॥७४

स्थानमौनवीरासनसवनोपस्पर्शनचतुर्थषष्ठाष्टमकालव्रत-युक्तस्य ॥७५

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं घृतं पयः।

हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधमिति ॥७६

सायं प्रातरग्निहोत्रमन्त्राञ्जपेत् ॥७७

वारुणीभिः सायं संध्यामुपस्थाय मैत्रीभिः प्रातः ॥७८

अनग्निरनिकेतः स्याद्शर्माऽशरणो मुनिः ।

भैक्षार्थी ग्राममन्विच्छेत्स्वाध्याये वाचमुत्सृजेदिति ॥७६

विज्ञायते च ॥७६

परिमिता वा ऋचः परिमितानि सामानि परिमितानि यजूंष्यथैतस्यैवान्तो नास्ति यद्ब्रह्म तत्प्रतिगृणत आचक्षीत स प्रतिगर इति ॥८१

एवमेवैष आ शरीरविमोक्षणाद्वृक्षमूलिको वेदसंन्यासी ॥८२

वेदो वृक्षस्तस्य मूलं प्रणवः प्रणवात्मको वेदः ॥८३

प्रणवं ध्यायेत् ॥८४

प्रणवो ब्रह्मभूयाय कल्पत इति होवाच प्रजापतिः ॥८५

सप्तव्याहृतिभिर्ब्रह्मभाजनं प्रक्षालयेदिति ॥८६

इति द्वितीयप्रश्ने दशमोऽध्यायः ।

[एकदण्डी त्रिदण्डी वा ॥१

अथातः संन्यासविधिं व्याख्यास्यामः ॥२

प्रजाकामस्योपदेशः ॥३

अथ वै भवत्यग्नौकरणशेषेण पित्र्यमायुष्यम् ॥४

यथा हि तूलमैषीकम् ॥५

अथ शालीनयायावराणाम् ॥६ अथेमे पञ्च महायज्ञाः ॥७

अथ प्राचीनावीती ॥८ अग्निः प्रजापतिः ॥९

अथ हस्तौ प्रक्षाल्य ॥१०

अथातः सन्ध्योपासनविधिं व्याख्यास्यामः ॥११

न पिण्डशेषम् ॥१२ तपस्यवगाहनम् ॥१३

अब्राह्मणस्य शारीरो दण्डः ॥१४

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती ॥१५ अथ पतनीयानि ॥१६

अथातः प्रायश्चित्तानि ॥१७]

कोष्ठान्तर्गतो ग्रन्थ एतत्प्रश्नगतप्रथमादि दशमान्ताध्यायस्यादिममध्यमवाक्यानां व्युत्क्रमेण परिगणनात्मक इतिबोध्यम् ।

इति द्वितीय प्रश्नः ।

अथ तृतीयः प्रश्नः ।

तत्र प्रथमोऽध्यायः ।

अथ शालीनयायावरादीनां धर्मनिरूपणम् ।

अथ शालीनयायावरचक्रचरधर्मकाङ्क्षिणां नवभिर्वृत्तिभिर्वर्तमानानाम् ॥१ तेषां तद्वर्तनाद्वृत्तिरित्युच्यते ॥२

शालाश्रयत्वाच्छालीनत्वम् ॥३

वृत्त्या वरया यातीति यायावरत्वम् ॥४

अनुक्रमेण चरणाच्चक्रचरत्वम् ॥५ ता अनुव्याख्यास्यामः ॥६

षण्णिवर्तनी कौद्दाली ध्रुवा संप्रक्षालनी समूहा पालनी शिलोञ्छा कापोता सिद्धेच्छेति नवैताः ॥७

तासामेव वाऽन्याऽपि दशमी वृत्तिर्भवति ।।८

आ नववृत्तेः ।।९

केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वोकल्पयते कृष्णाजिनं
कमण्डलुं यष्टिं वीवधं कुतपहारमिति ।।१०

त्रैधातवीयेनेष्ट्वा प्रस्थास्यति वैश्वानर्या वा ।।११

अथ प्रातरुदित आदित्ये यथासूत्रमग्नीन्प्रज्वाल्य गार्हपत्य
आज्यं विलाप्योत्पूय स्रुक्स्रुवं निष्टप्य संमृज्य स्रुचि
चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये वास्तोष्पतीयं जुहोति ।।१२

वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मानिति पुरोनुवाक्यामनूच्य।। [illegible]
वास्तोष्पते शग्मया संसदा त इति याज्यया जुहोति ।।१३

सर्व एवाऽऽहिताग्निरित्येके ।।१४ यायावर इत्येके ।।१५

निर्गत्य ग्रामान्ते ग्रामसीमान्ते वाऽवतिष्ठते तत्र कुटीं मठं
वा करोति कृतं वा प्रविशति ।।१६

कृष्णाजिनादीनामुपक्लृप्तानां यस्मिन्नर्थे येन येन यत्प्रयोजनं
तेन तेन तत्कुर्यात् ।।१७

प्रसिद्धमग्नीनां परिचरणं प्रसिद्धं दर्शपूर्णमासाभ्यां यजनं
प्रसिद्धः पञ्चानां महतां यज्ञानामनुप्रयोग उत्पन्नानामो-
षधीनां निर्वापणं दृष्टं भवति ।।१८

विश्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं निर्वपामीति वा तूष्णीं वा ताः
संस्कृत्य सादयति ।।१९

तस्याध्यापनयाजनप्रतिग्रहा निवर्तन्तेऽन्ये च यज्ञक्रतव इति ।।२०

हविष्यं च व्रतोपायनीयं दृष्टं भवति ।।२१

तद्यथा सर्पिर्मिश्रं दधिमिश्रमक्षारलवणमपिशितमपर्युषितम् ॥२२

ब्रह्मचर्यमृतौ वा गच्छति ॥२३

पर्वणि पर्वणि केशश्मश्रुलोमनखवापनं शौचविधिश्च ॥२४

अथाप्युदाहरन्ति ॥२५

श्रूयते द्विविधं शौचं यच्छिष्टैः पर्युपासितम् ।
बाह्यं निर्लेपनिर्गन्धमन्तः शौचमहिंसकम् ॥२६

अद्भिः शुध्यन्ति गात्राणि बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।
अहिंसया च भूतात्मा मनः सत्येन शुध्यतीति ॥२७

इति तृतीयप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ षण्निवर्तन्यादिवृत्तीनां स्वरूपकथन वर्णनम् ।

य(अ)थो एतत्षण्निवर्तनीति ॥१

षडेव निवर्तनानि निरुपहतानि करोति ॥२

स्वामिने भागमुत्सृजत्यनुज्ञातं वा गृह्णाति ॥३

प्राक्प्रातराशात्कर्षी स्यादस्यूतनासिकाभ्यां समुष्काभ्यामतुदन्नारया मुहुर्मुहुरभ्युच्छन्दयन् ॥४

एतेन विधिना षण्निवर्तनानि करोतीति षण्निवर्तनी ॥५

कौद्दालीति ॥६

जलाभ्याशे कुद्दालेन वा फालेन वा तीक्ष्णकाष्ठेन वा खनति

बीजान्यावपति ॥७ कन्दमूलफलशाकौषधीर्निष्पादयति ॥८
कुद्दालेन करोतीति कौद्दाली ॥९
ध्रुवया वर्तमानः शुक्लेन वाससा शिरो वेष्टयति भूत्यै त्वा
शिरो वेष्टयामीति ॥१०
ब्रह्मवर्चसमिति (मसि) ब्रह्मवर्चसाय त्वेति कृष्णाजिन-
मादत्ते ॥११ अब्लिङ्गाभिः पवित्रम् ॥१२
बलमसि बलाय त्वेति कमण्डलुम् ॥१३
धान्यमसि पुष्ट्यै त्वेति वीवधम् ॥१४
सखा मा गोपायेति दण्डम् ॥१५
अथोपनिष्क्रम्य व्याहृतीर्जपित्वा दिशामनुमन्त्रणं जपति ॥१६

पृथिवी चान्तरिक्षं च द्यौश्च नक्षत्राणि च या दिशः ।
अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च पान्तु मां पथि देवता इति ॥१७

मानस्तोकीयं जपित्वा ग्रामं प्रविश्य गृहद्वारे गृहद्वार आत्मानं
वीवधेन सह दर्शनात्संदर्शनीत्याचक्षते ॥१८
वृत्तेर्वृत्तेरवार्तायां तयैव तस्य ध्रुवं वर्तनाद्ध्रुवेति
परिकीर्तिता ॥१९ संप्रक्षालनीति ॥२०
उत्पन्नानामोषधीनां प्रक्षेपणम् ॥२१
निक्षेपणं नास्ति निचयो वा ॥२२
भाजनानि संप्रक्षाल्य न्युब्जतीति संप्रक्षालनी ॥२३
समूहेति ॥२४ अवारितस्थानेषु पथिषु वा क्षेत्रेषु
वाऽप्रतिहतावकाशेषु वा यत्र यत्रौषधयो विद्यन्ते तत्र तत्र
समूहन्या समुह्य ताभिर्वर्तयतीति समूहा ॥२५

पालनीति ॥२६ अहिंसिकेत्येवेदमुक्तं भवति ॥२७
तुषविहीनांस्तण्डुलानिच्छति सज्जनेभ्यो बीजानि वा
पालयतीति पालनी ॥२८ शिलोञ्छेति ॥२६
अवारितस्थानेषु पथिषु वा क्षेत्रेषु वाऽप्रतिहतावकाशेषु वा
यत्र यत्रौषधयो विद्यन्ते तत्र तत्रैकैकं कणिशमुञ्छयित्वा
काले काले शिलैर्वर्तयतीति शिलोञ्छा ॥३० कापोतेति ॥३१
अवारितस्थानेषु पथिषु वा क्षेत्रेषु वाऽप्रतिहतावकाशेषु वा
यत्र यत्रौषधयो विद्यन्ते तत्र तत्राङ्गुलिभ्यामेकैकामोषधि-
मुञ्छयित्वा संदर्शनात्कपोतवदिति कापोता ॥३२
सिद्धेच्छेति ॥३३
वृत्तिभिः श्रान्तो वृद्धत्वाद्धातुक्षयाद्वा सज्जनेभ्यः सिद्धमन्न
मिच्छतीति सिद्धेच्छा ॥३४
तस्याऽऽत्मसमारोपणं विद्यते संन्यासिवदुपचारः
पवित्रकाषायवासोवर्जम् ॥३५
वान्याऽपि वृक्षलतावल्ल्यौषधीनां च तृणौषधीनां च
श्यामाकजर्तिलादीनां वन्याभिर्वर्तयतीति वान्या ॥३६
अथाप्युदाहरन्ति ॥३७

मृगैः सह परिस्पन्दः संवासस्तेभिरेव च ।
तैरेव सदृशी वृत्तिः प्रत्यक्षं स्वर्गलक्षणमिति ॥३८

इति तृतीयप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ।

पचमानकापचमानकभेदेन वानप्रस्थस्य द्वैविध्यवर्णनम् ।

अथ वानप्रस्थद्वैविध्यम् ॥१

पचमानका अपचमानकाश्चेति ॥२

तत्र पचमानकाः पञ्चविधाः ॥३

सर्वारण्यका वैतुषिकाः कन्दमूलफलभक्षाः शाकभक्षाश्चेति ॥४

तत्र सर्वारण्यका नाम द्विविधा द्विविधमारण्यमाश्रयन्त इन्द्रावसिक्ता रेतोवसिक्ताश्चेति ॥५

तत्रेन्द्रावसिक्ता नाम वल्लीगुल्मलतावृक्षाणामानयित्वा श्रपयित्वा सायं प्रातरग्निहोत्रं हुत्वा यत्यतिथिव्रतिभ्यश्च दत्त्वाऽथेतरच्छे(शे)षभक्षाः ॥६

रेतोवसिक्ता नाम मांसं व्याघ्रवृकश्येनादिभिरन्यतमेन वा हतमानयित्वा श्रपयित्वा सायं प्रातरग्निहोत्रं हुत्वा यत्यतिथिव्रतिभ्यश्च दत्त्वाऽथेतरच्छे(शे)षभक्षाः ॥७

वैतुषिकास्तुषधान्यवर्जं तण्डुलानानयित्वा श्रपयित्वा सायं प्रातरग्निहोत्रं हुत्वा यत्यतिथिव्रतिभ्यश्च दत्त्वाऽथेतरच्छे(शे)षभक्षाः ॥८

कन्दमूलफलशाकभक्षाणामप्येवमेव ॥९

पञ्चैवापचमानकाः ॥१०

उन्मज्जकाः प्रवृत्ताशिनो मुखेनाऽऽदायिनस्तोयाहारा वायुभक्षाश्चेति ॥११

तत्रोन्मज्जका नाम लोहाश्मकरणवर्जम् (?) ॥१२

हस्तेनाऽऽदाय प्रवृत्ताशिनः ॥१३

मुखेनाऽऽदायिनो मुखेनाऽऽददते ॥१४

तोयाहाराः केवलं तोयाहाराः ॥१५

वायुभक्षा निराहाराश्चेति ॥१६

वैखानसानां विहिता दश दीक्षाः ॥१७

यः स्वशास्त्रमभ्युपेत्य दण्डं च मौनं चाप्रमादं च ॥१८

वैखानसाः शुध्यन्ति निराहाराश्चेति ॥१६

शास्त्रपरिग्रहः सर्वेषां ब्रह्मवैखानसानाम् ॥२०

न दुह्येद्दंशमशकान्हिमवांस्तापसो भवेत् ।
वनप्रतिष्ठः संतुष्टश्चीरचर्मजलप्रियः ॥२१

अतिथीन्पूजयेत्पूर्वं काले त्वाश्रममागतान् ।
देवविप्राग्निहोत्रे च युक्तस्तपसि तापसः ॥२२

कृच्छ्रां वृत्तिमसंहार्यां सामान्यां मृगपक्षिभिः ।
तदहर्जनसंभारां काषायकटुकाश्रयाम् ॥२३

परिगृह्य शुभां वृत्तिमेतां दुर्जनवर्जिताम् ।
वनवासमुपाश्रित्य ब्राह्मणो नावसीदति ॥२४

मृगैः सह परिस्पन्दः संवासस्तै(स्त्वे)भिरेव च ।
तैरेव सदृशी वृत्तिः प्रत्यक्षं स्वर्गलक्षणमिति ॥२५

इति तृतीयप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ ब्रह्मचारिण अभक्ष्यभक्षणे प्रायश्चित्त वर्णनम् ।

अथ यदि ब्रह्मचार्यव्रत्यमिव चरेत्मांसं वाऽश्नीया-
त्स्त्रियं वोपेयात्सर्वास्वेवाऽऽर्तिष्वन्तराऽगारेऽग्निमुप-
समाधाय संपरिस्तीर्याग्निमुखात्कृत्वाऽथाऽऽज्याहुती-
रुपजुहोति ॥१

कामेन कृतं कामः करोति कामायैवेदं सर्वं यो मा
कारयति तस्मै स्वाहा ॥२

मनसा कृतं मनः करोति मनस एवेदं सर्वं यो मा
कारयति तस्मै स्वाहा ॥३

रजसा कृतं रजः करोति रजस एवेदं सर्वं यो मा
कारयति तस्मै स्वाहा ॥४

तमसा कृतं तमः करोति तमस एवेदं सर्वं यो मा
कारयति तस्मै स्वाहा ॥५

पाप्मना कृतं पाप्मा करोति पाप्मन एवेदं सर्वं यो मा
कारयति तस्मै स्वाहा ॥६

मन्युना कृतं मन्युः करोति मन्यव एवेदं सर्वं यो मा
कारयति तस्मै स्वाहेति ॥७

जयप्रभृति सिद्धमा धेनुवरप्रदानात् ॥८

अपरेणाग्निं कृष्णाजिनेन प्राचीनग्रीवेणोत्तरलोम्ना
प्रावृत्य वसति ॥९

व्युष्टायां जघनार्धादात्मानमपकृष्य तीर्थं गत्वा प्रसिद्धं स्नात्वाऽन्तर्जलगतोऽघमर्षणेन षोडश प्राणायामान्धारयित्वाऽप्रसिद्धमाऽऽदित्योपस्थानात्कृत्वाऽऽचार्यस्य गृहानेति ॥१०

यथाऽश्वमेधावभृथ एवमेवैतद्विजानीयादिति ॥११

इति तृतीयप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ॥४

अथ तृतीपप्रश्ने पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ अघमर्षणकल्पव्यख्यानवर्णनम् ।

अथातः पवित्रातिपवित्रस्याघमर्षणस्य कल्पं व्याख्यामः ॥१

तीर्थं गत्वा स्नातः शुचिवासा उदकान्ते स्थण्डिलमुद्धृत्य सकृत्क्लिन्नेन वाससा सकृत्पूर्णेन पाणिनाऽऽदित्याभिमुखोऽघमर्षणं स्वाध्यायमधीयीत ॥२

प्रातः शतं मध्याह्ने शतमपराह्णे शतमपरिमितं वा ॥३

उदितेषु नक्षत्रेषु प्रसृतयावकं प्राश्नीयात् ॥४

ज्ञानकृतेभ्योऽज्ञानकृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः सप्तरात्रात्प्रमुच्यते ॥५

द्वादशरात्राद् भ्रूणहननं गुरुतल्पगमनं सुवर्णस्तैन्यं सुरापानमिति च वर्जयित्वैकविंशतिरात्रात्तान्यपि तरति तान्यपि जयति ॥६

सर्वं तरति सव जयति सर्वक्रतुफलमवाप्नोति सर्वेषु
तीर्थेषु स्नातो भवति सर्वेषु वेदेषु चीर्णव्रतो भवति
स सर्वैर्देवर्ज्ञातो भवत्या चक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति
कर्माणि चास्य सिध्यन्तीति बौधायनः ।।७

इति तृतीयप्रश्ने पञ्चमोऽध्यायः ।।५

अथ तृतीयप्रश्ने षष्ठोऽध्यायः ।

आत्मकृतदुरितोपशमाय प्रसृतयावकस्य हवनविधिवर्णनम् ।

अथ कर्मभिरात्मकृतैर्गुरुमिवाऽऽत्मानं मन्येताऽऽत्मार्थे
प्रसृतयावकं श्रपयेदुदितेषु नक्षत्रेषु ।।१
न ततोऽग्नौ जुहुयात् ।।२ न चात्र बलिकर्म ।।३
अश्रृतं श्रप्यमाणं श्रृतं चाभिमन्त्रयेत ।।४
यवोऽसि धान्यराजोऽसि वारुणो मधुसंयुतः ।
निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतम् ।।५
घृतं यवा मधु यवा आपो यवा अमृतं यवाः ।
सर्वं पुनीथ मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।।६
वाचा कृतं कर्मकृतं मनसा दुर्विचिन्तितम् ।
अलक्ष्मीं कालरात्रीं च सर्वं पुन(नी)थ मे यवाः ।।७
महापातकसंयुक्तं दारुणं राजकिल्बिषम् ।
बालवृद्धमधर्मं च सर्वं पुन(नी)थ मे यवाः ।।८

सुवर्णस्तैन्यमव्रत्यमयाज्यस्य च याजनम्।
ब्राह्मणानां परीवादं पुन(नी)थ मे यवाः ॥९
गणान्नं गणिकान्नं च शूद्रान्नं श्राद्धसूतकम्।
चौरस्यान्नं नवश्राद्धं सर्वं पुन(नी)थ मे यवा इति ॥१०
श्रप्यमाणे रक्षां कुर्यात् ॥११
नमो रुद्राय भूताधिपतये द्यौः शान्ता कृणुष्व पाजः
प्रसितिं न पृथ्वीमित्येतेनानुवाकेन ॥१२
ये देवाः पुरःसदोऽग्निनेत्रा रक्षोहण इति पञ्चभिः पर्यायैः ॥
मानस्तोके ब्रह्मा देवानामिति द्वाभ्याम् ॥१४
शृतं च लब्ध्वश्नीयात्प्रयतः पात्रे निषिच्य ॥१५
ये देवा मनोजाता मनोयुजः सुदक्षा दक्षपितरस्ते नः
पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहेति ॥१६
आत्मनि जुहुयात् ॥१७
त्रिरात्रं मेधार्थी षड्रात्रं पीत्वा पापकृच्छुद्धो भवति ॥१८
सप्तरात्रं पीत्वा भ्रूणहननं गुरुतल्पगमनं सुवर्णस्तैन्यं
सुरापानमिति च पुनाति ॥१९
एकादशरात्रं पीत्वा पूर्वपुरुषकृतमपि पापं निर्णुदति ॥२०
अपि वा गोनिष्क्रान्तानां यवानामेकविंशतिरात्रं पीत्वा
गणान्पश्यति गणाधिपतिं पश्यति विद्यां पश्यति
विद्याधिपतिं पश्यतीत्याह भगवान्बौधायनः ॥२१

इति तृतीयप्रश्ने षष्ठोऽध्यायः।

तृतीयप्रश्ने सप्तमोऽध्यायः ।

अथ कूष्माण्डहोमविधिवर्णनम् ।

अथ कूष्माण्डैर्जुहुयाद्योऽपूत इव मन्येत यथा स्तेनो यथा भ्रूणहैवमेष भवति यो योनौ रेतः सिञ्चति यदर्वाचीन-मेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मुच्यत इति ॥१

अयोनौ रेतः सिक्त्वाऽन्यत्र स्वप्नादरेपो वा पवित्रकामः ॥२

अमावास्यायां पौर्णमास्यां वा केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वा ब्रह्मचारिकल्पेन व्रतमुपैति ॥२

संवत्सरं मासं चतुर्विंशत्यहं द्वादश रात्रीः षट् तिस्रो वा ॥४

न मांसमश्नीयान्न स्त्रियमुपेयान्नोपर्यासीत जुगुप्सेतानृतात् ॥५

पयोभक्ष इति प्रथमः कल्पः ॥६

यावकं वोपयुञ्जानः कृच्छ्रद्वादशरात्रं चरेत् ॥७

भिक्षेद्वा तद्विधेषु यवागूं राजन्यो वैश्य आमिक्षाम् ॥८

पूर्वाह्णे पाकयज्ञिकधर्मेणाग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्या-ऽऽग्निमुखात्कृत्वाऽथाऽऽज्याहुतीरुपजुहोति ॥६

यद्देवा देवहेडनं यद्दीव्यन्नृणमहं बभूवाऽऽयुष्टे विश्वतो दधदिति ॥१०

एतैस्त्रिभिरनुवाकैः प्रत्यृचमाज्यस्य जुहुयात् ॥११

सिꣳहे व्याघ्र उत या पृदाकाविति चतस्रः स्रुवाहुतीः ॥१२

अग्नेऽभ्यावर्तिन्नग्ने अङ्गिरः पुनरूर्जा सह रय्येति चतस्रो-ऽभ्यावर्तिनीर्हुत्वा समित्पाणिर्यजमानलोकेऽवस्थाय

वैश्वानराय प्रतिवेदयाम इति द्वादशर्चेन सूक्तेनोपतिष्ठते ॥१३

यन्मया मनसा वाचा कृतमेनः कदाचन
सर्वस्मा(त्तस्मा)न्मेडितो मोग्धि त्वं हि वेत्थ यथातथं
स्वाहेति ॥१४

समिधमाधाय वरं ददाति ॥१५

जयप्रभृति सिद्धमा धेनुर्वरप्रदानात् ॥१६

एक एवाग्नौ परिचर्य ॥१७ अथाग्न्याधेये ॥१८

यद्देवा देवहेडनं यददीव्यन्नृणमहं बभूवाऽऽयुष्टे विश्वतो
दधदिति ॥१९

पूर्णाहुतिं हुत्वाऽग्निहोत्रमारप्स्यमानो दशहोत्रा हुत्वा
दर्शपूर्णमासावारप्स्यमानश्चतुर्होत्रा हुत्वा चातुर्मास्यान्या-
रप्स्यमानः पञ्चहोत्रा हुत्वा पशुबन्धे षड्ढोत्रा सोमे
सप्तहोत्रा ॥२० विज्ञायते च ॥२१

कर्मादिष्वेतैर्जुहुयात्पूतो देवलोकान्समश्नुत इति हि
ब्राह्मणमिति हि ब्राह्मणम् ॥२२

इति तृतीयप्रश्ने सप्तमोऽध्यायः।

अथ तृतीयप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः।

अथ चान्द्रायणकल्पाभिधानवर्णनम्।

अथातश्चान्द्रायणस्य कल्पं व्याख्यास्यामः ॥१

शुक्लचतुर्दशीमुपवसेत् ॥२

केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वाऽपि वा श्मश्रूण्येवाहतं
वासो वसानः सत्यं ब्रुवन्नावसथमभ्युपेयात् ॥३
तस्मिन्नस्य सकृत्प्रणीतोऽग्निररण्योर्निर्मन्थ्यो वा ॥४
ब्रह्मचारी सुहृत्प्रैषायोपकल्पी स्यात् ॥५
हविष्यं च व्रतोपायनीयम् ॥६
अग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्याऽऽग्निमुखात्कृत्वा
पक्वाज्जुहोति ॥७
अग्नये या तिथिः स्यान्नक्षत्राय सदैवताय ॥८
अत्राह गोरमन्वतेति चान्द्रमसीं पञ्चमीं द्यावापृथिवीभ्यां
षष्ठीमहोरात्राभ्यां सप्तमीं रौद्रीमष्टमीं सौरीं नवमीं
वारुणीं दशमीमैन्द्रीमेकादशीं वैश्वदेवीं द्वादशीमिति ॥९
अथापराः समामनन्ति दिग्भ्यश्च सदैवताभ्य उरोरन्त-
रिक्षाय सदैवताय नवो नवो भवति जायमान इति
सौविष्टकृतीं हुत्वाऽथैतद्धविरुच्छिष्टं कंसे वा चमसे वा
व्युद्धृत्य हविष्यैर्व्यञ्जनैरुपसिच्य पञ्चदश पिण्डान्
प्रकृतिस्थान्प्राश्नाति ॥१०
प्राणाय त्वेति प्रथमम् ॥११ अपानाय त्वेति द्वितीयम् ॥१२
व्यानाय त्वेति तृतीयम् ॥१३ उदानाय त्वेति चतुर्थम् ॥१४
समानाय त्वेति पञ्चमम् ॥१५
यदा चत्वारो द्वाभ्यां पूर्वं यदा त्रयो द्वाभ्यां द्वाभ्यां पूर्वौ
यदा द्वौ द्वाभ्यां पूर्वं त्रिभिरुत्तरमेकं सर्वैः ॥१६
निम्राभ्याः स्थेति ॥१७

अपः पीत्वाऽथाऽऽज्यस्य जुहोति प्राणापान० वाङ्मनः०
शिरःपाणि० त्वक्चर्म० शब्द० पृथिवी० अन्नमयप्राणमय-
मनोमयविज्ञानमयानन्दमया मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं
विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहेति सप्तभिरनुवाकैः ॥१८
जयप्रभृति सिद्धमा धेनुवरप्रदानात् ॥१९
सौरीभिरादित्यमुपतिष्ठते चान्द्रमसीभिश्चन्द्रमसम् ॥२०
अग्ने त्वं सुजागृहीति संविशञ्जपति ॥२१
त्वमग्ने व्रतपा असीति प्रबुद्धः ॥२२
स्त्रीशूद्रैर्नाभिभाषेत ॥२३ मूत्रपुरीषे नावेक्षेत ॥२४
अमेध्यं दृष्ट्वा जपति ॥२५
अनद्धं मनो दरिद्रं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषां श्रेष्ठो दीक्षे मा मा
हसीरिति ॥२६ प्रथमायामपरपक्षस्य चतुर्दश ग्रासान् ॥२७
एवमेकापचयेनाऽऽमावास्यायाः ॥२८
अमावास्यायां ग्रासो न विद्यते ॥२९
प्रथमायां पूर्वपक्षस्यैको द्वौ द्वितीयस्याम् ॥३०
एवमेकोपचयेनाऽऽपौर्णमास्याः ॥३१
पौर्णमास्यां स्थालीपाकस्य जुहोत्यग्नये या तिथिः
स्यान्नक्षत्रेभ्यश्च सदैवतेभ्यः ॥३२
पुरस्ताच्छ्रोणाया अभिजितः सदैवतस्य हुत्वा गां
ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ॥३३
तदेतच्चान्द्रायणं पिपीलिकामध्यं विपरीतं यवमध्यम् ॥३४
अतोऽन्यतरच्चरित्वा सर्वेभ्यः पातकेभ्यः पापकृच्छुद्धो
भवति ॥३५

कामाय कामायैतदाहार्थमित्याचक्षते ॥३६

यं कामं कामयते तमेतेनाऽऽप्नोति ॥३७

एतेन वा ऋषय आत्मानं शोधयित्वा पुरा कर्माण्यसाधयन् ॥

तदेतद्धन्यं पुण्यं पुत्र्यं पौत्र्यं पशव्यमायुष्यं स्वर्ग्यं यशस्यं सार्वकामिकम् ॥३८

नक्षत्राणां सूर्याचन्द्रमसोरेव सायुज्यं सलोकतामाप्नोति य उ चैनदधीते य उ चैनदधीते ॥४०

इति तृतीयप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रश्ने नवमोऽध्यायः ।

अनश्नत्पारायणविधि व्याख्यानम् ।

अथातोऽनश्नत्पारायणविधिं व्याख्यास्यामः ॥१

शुचिवासाः स्याच्चीरवासा वा हविष्यमन्नमिच्छेदपः फलानि वा ॥२

ग्रामात्प्राचीं वोदीचीं वा दिशमुपनिष्क्रम्य गोमयेन गोचर्ममात्रं चतुरस्रं स्थण्डिलमुपलिप्य प्रोक्ष्य लवण–मुल्लिख्याद्भिरभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्यैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् ॥३

अग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा सोमाय स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वयंभुवः ऋग्भ्यो यजुर्भ्यः सामभ्योऽथर्वभ्यः

श्रद्धायै प्रज्ञायै मेधायै श्रियै ह्रियै सवित्रे सावित्र्यै सदसस्पतयेऽनुमतये च हुत्वा वेदादिमारभेत सततमधीयीत नान्तरा व्याहरेन्न चान्तरा विरमेत् ॥४

अथान्तरा व्याहरेदथान्तरा विरमेत्त्रीन्प्राणायामानायम्य वृत्तान्तादेवाऽऽरभेत ॥५

अप्रतिमायां यावता कालेन न वेद तावन्तं कालं तदधीयीत स यदा जानीयादुक्तो यजुष्टः सामत इति ॥६

तद्ब्राह्मणं तच्छान्दसं तद्दैवतमधीयीत ॥७

द्वादश वेदसंहिता अधीयीत ॥८

यदनेनानध्यायेऽधीयीत यद्गुरवः कोपिता यान्यकार्याणि भवन्ति ताभिः पुनीते ॥९

शुद्धमस्य पूतं ब्रह्म भवति ॥१० अत ऊर्ध्वं संचयः ॥११

अपरा द्वादश वेदसंहिता अधीत्य ताभिरुशनसो लोक-मवाप्नोति ॥१२

अपरा द्वादश वेदसंहिता अधीत्य ताभिर्बृहस्पतेर्लोक-मवाप्नोति ॥१३

अपरा द्वादश वेदसंहिता अधीत्य ताभिः प्रजापतेर्लोक-मवाप्नोति॥ १४

अनश्नन्संहितासहस्रमधीयीत ब्रह्मभूतो विरजो ब्रह्म भवति ॥१५

संवत्सरं भैक्षं प्रयुञ्जानो दिव्यं चक्षुर्लभते ॥१६

षण्मासान्यावकभक्षश्चतुरो मासानुदकसक्तुभक्षो द्वौ मासौ

फलभक्षो मासमब्भक्षो द्वादशरात्रं वा प्राश्नन्क्षिप्र-
मन्तर्धीयते ज्ञातीन्पुनाति सप्तावरान्सप्तपूर्वानात्मानं
पञ्चदशं पङ्क्तिं च पुनाति ॥१७
तामेतां देवनिश्रयणीमित्याचक्षते ॥१८
एतया वै देवा देवत्वमगच्छन्नृषय ऋषित्वम् ॥१६
तस्य ह वा एतस्य यज्ञस्य त्रिविध एवाऽऽरम्भकालः
प्रातःसवने माध्यंदिने सवने ब्राह्मे वाऽपररात्रे ॥२०
तं वा एतं प्रजापतिः सप्तर्षिभ्यः प्रोवाच सप्तर्षयो
महाजज्ञवे महाजज्ञुर्ब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः ॥२१

इति तृतीयप्रश्ने नवमोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रश्ने दशमोऽध्यायः ।

अथ याप्यकर्मण्योपेतस्य निष्क्रयार्थं जपादिनिरूपणम् ।

उक्तो वर्णधर्मश्चाऽऽश्रमधर्मश्च ॥१
अथ खल्वयं पुरुषो याप्येन कर्मणा मिथ्या चरत्ययाज्यं
वा याजयत्यप्रतिग्राह्यस्य वा प्रतिगृह्णात्यनाश्यान्नस्य
वाऽन्नमश्नात्यचरणीयेन वा चरति तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न
कुर्यादिति मीमांसन्ते ॥२
न हि कर्म क्षीयत इति कुर्यादित्येव ॥३
पुनः स्तोमेन यजेत ॥४ पुनः सवनमायान्तीति ॥५

अथाप्युदाहरन्ति ॥६ सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्यां यो ऽश्वमेधेन यजत इति ॥७

अग्निष्टुता वाऽभिशस्यमानो यजेतेति ॥८

तस्य निष्क्रयाणि जपस्तपो होम उपवासो दानम् ॥९

उपनिषदो वेदादयो वेदान्ताः सर्वच्छन्दःसु संहिता मधून्य-घमर्षणमथर्वशिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे बृहद्रथंतरे पुरुषगतिर्महानाम्न्यो महावैराजं महादिवाकीर्त्यं ज्येष्ठ-साम्नामन्यतमद्ध(मं ब)हिष्पवमानः कूष्माण्ड्यः सावित्री चेति पावनानि ॥१०

उपसन्न्यायेन पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता मूल-भक्षता प्रसृतयावको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सोमपान-मिति मेध्यानि ॥११

सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्रवन्त्यः सरितः पुण्या ह्रदास्तीर्था-न्यृषिनिकेतनानि गोष्ठक्षेत्रपरिष्कन्दा इति देशाः ॥१२

अहिंसा सत्यमस्तैन्यं सवनेषूदकोपस्पर्शनं गुरुशुश्रूषा ब्रह्मचर्यमधःशयनमेकवस्त्रताऽनाशक इति तपांसि ॥१३

हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिला घृतमन्नमिति देयानि ॥१४

संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहो द्वादशाहः षडहस्त्र्यहोऽहोरात्र एकाह इति कालाः ॥१५

एतान्यनादेशे क्रियेरन् ॥१६

एनःसु गुरुषु गुरूणि लघुषु लघूनि ॥१७

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तिः-
सर्वप्रायश्चित्तिः ॥१८

इति तृतीयप्रश्ने दशमोऽध्यायः ।

उक्तो वर्णधर्मश्चाऽऽश्रमधर्मश्च ॥१
अथातोऽनश्नत्पारायणविधिम् ॥२
अथातश्चान्द्रायणस्य ॥३ अथ कूष्माण्डैर्जुहुयात् ॥४
अथ कर्मभिरात्मकृतैः ॥५ अथातः पवित्रातिपवित्रस्य ॥६
अथ यदि ब्रह्मचार्यव्रत्यमिव चरेत् ॥७
अथ वानप्रस्थद्वैविध्यम् ॥८ य(अ)थो एतत्षण्निवर्तनीति ॥९
अथ शालीनयायावरचक्रचरधर्मकाङ्क्षिणाम् ॥१०
(इत्तरमेतद्वर्तते—अशीत्युत्तरशतश्लोकैः
समाप्तोऽयं दशखण्डयुक्तः तृतीयः प्रश्नः ।)
समाप्तोऽयं तृतीयः प्रश्नः ।

अथ चतुर्थः प्रश्नः ।

तत्र प्रथमोऽध्यायः ।

अथ चक्षुःश्रोत्रत्वग्घ्राणमनोव्यतिक्रमादिषु प्रायश्चित्तम् ।

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामो नानार्थानि पृथक्पृथक् ।
तेषु तेषु च दोषेषु गरीयांसि लघूनि च ॥१

यद्यत्र हि भवेद्युक्तं तद्धि तत्रैव निर्दिशेत्।
भूयो भूयो गरीयःसु लघुष्वल्पीयसस्तथा (?) ॥२
विधिना शास्त्रदृष्टेन प्राणायामान्समाचरेत्।
यद्युपस्थकृतं पापं पद्भ्यां वा यत्कृतं भवेत् ॥३
बाहुभ्यां मनसा वाचा श्रोत्रत्वग्घ्राणचक्षुषा ॥४
अपि वा चक्षुःश्रोत्रत्वग्घ्राणमनोव्यतिक्रमेषु त्रिभिः प्राणायामैः शुध्यति ॥५
शूद्रान्नस्त्रीगमनभोजनेषु केवलेषु पृथक्पृथक्सप्ताहं सप्त सप्त प्राणायामान्धारयेत ॥६
अभक्ष्याभोज्यापेयान्नाद्यप्राशनेषु तथाऽपण्यविक्रयेषु मधुमांसघृततैलक्षारलवणावरान्नवर्जेषु यच्चान्यदप्येवं युक्तं द्वादशाहं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् ॥७
पातकपतनीयोपपातकवर्जेषु यच्चान्यदप्येवं युक्तमर्धमासं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् ॥८
पातकपतनीयवर्जेषु यच्चान्यदप्येवं युक्तं द्वादश द्वादशाहान्द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् ॥९
पातकवर्जेषु यच्चान्यदप्येवं युक्तं द्वादशार्धमासान्द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् ॥१०
अथ पातकेषु संवत्सरं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् ॥
दद्याद्गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे।
अपि वा गुणहीनाय नोपरुन्ध्याद्रजस्वलाम् ॥१२

त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यः कन्यां न प्रयच्छति ।
स तुल्यं भ्रूणहत्यायै दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥१३
न याचते चेदेवं स्याद्याचते चेत्पृथक्पृथक् ।
एकैकस्मिन्नृतौ दोषं पातकं मनुरब्रवीत् ॥१४
त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम् ।
ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम् ।
अविद्यमाने सदृशे गुणहीनमपि श्रयेत् ॥१५
बलाच्चेत्प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता ।
अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥१६
निसृष्टायां हुते वाऽपि यस्यै भर्ता म्रियेत सः ।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागता सती ॥१७
पौनर्भवेन विधिना पुनः संस्कारमर्हति ॥१८
त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यो भार्यां नाधिगच्छति ।
स तुल्यं भ्रूणहत्यायै दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥१६
ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति ।
पितरस्तस्य तन्मासं तस्मिन्रजसि शेरते ॥२०
ऋतौ नोपैति यो भार्यामनृतौ यश्च गच्छति ।
तुल्यमाहुस्तयोर्दोषमयोनौ यश्च सिञ्चति ॥२१
भर्तुः प्रतिनिवेशेन या भार्या स्कन्दयेदृतुम् ।
तां ग्राममध्ये विख्याप्य भ्रूणघ्नीं निर्धमेद्गृहात् ॥२२
ऋतुस्नातां न चेद्गच्छेन्नियतां धर्मचारिणीम् ।
नियमातिक्रमे तस्य प्राणायामशतं स्मृतम् ॥२३

प्राणायामान्पवित्राणि व्याहृतीः प्रणवं तथा।
पवित्रपाणिरासीनो ब्रह्म नैत्यकमभ्यसेत् ॥२४
आवर्तयेत्सदा युक्तः प्राणायामान्पुनः पुनः।
आ केशान्तान्नखाग्राच्च तपस्तप्यत उत्तमम् ॥२५
निरोधाज्जायते वायुर्वायोरग्निश्च जायते।
तापेनाऽऽपोऽधिजायन्ते ततोऽन्तः शुध्यते त्रिभिः ॥२६
योगेनावाप्यते ज्ञानं योगो धर्मस्य लक्षणम्।
योगमूला गुणाः सर्वे तस्माद्युक्तः सदा भवेत् ॥२७
प्रणवाद्यास्तथा वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः।
प्रणवो व्याहृतयश्चैव नित्यं ब्रह्म सनातनम् ॥२८
प्रणवे नित्ययुक्तस्य व्याहृतीषु च सप्तसु।
त्रिपदायां च गायत्र्यां न भयं विद्यते क्वचित् ॥२९
सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
त्रिः पठेदायत प्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥३०
सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहर्धृताः ॥३१
एतदाद्यं तपः श्रेष्ठमेतद्धर्मस्य लक्षणम्।
सर्वदोषोपघातार्थमेतदेव विशिष्यत एतदेव विशिष्यत इति ॥३२

इति चतुर्थप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः।

अथ चतुर्थप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः।

अथ प्रायश्चित्तविधिवर्णनम्।

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामो नानार्थानि पृथक्पृथक्।
तेषु तेषु च दोषेषु गरीयांसि लघूनि च ॥१
यद्यत्र हि भवेद्युक्तं तद्धि तत्रैव निर्दिशेत्।
भूयो भूयो गरीयःसु लघुष्वल्पीयसस्तथा (?) ॥२
विधिना शास्त्रदृष्टेन प्रायश्चितानि निर्दिशेत्।
प्रतिग्रहीष्यमाणस्तु प्रतिगृह्य तथैव च ॥३
ऋचस्तरत्समन्द्यस्तु चतस्रः परिवर्तयेत्।
अभोज्यानां तु सर्वेषामभोज्यान्नस्य भोजने ॥४
ऋग्भिस्तरत्समन्दीयैर्मार्जनं पापशोधनम्।
भ्रूणहत्याविधिस्त्वन्यस्तं तु वक्ष्याम्यतः परम् ॥५
विधिना येन मुच्यन्ते पातकेभ्योऽपि सर्वशः ॥६
प्रणायामान्पवित्राणि व्याहृतीः प्रणवं तथा।
जपेदघमर्षणं सूक्तं पयसा द्वादश क्षपाः ॥७
त्रिरात्रं वायुभक्षो वा क्लिन्नवासाः प्लुतः शुचिः।
प्रतिषिद्धांस्तथाऽऽचारानभ्यस्यापि पुनः पुनः ॥८
वारुणीभिरुपस्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यत इति ॥९
अथावकीर्ण्यमावास्यायां निश्यग्निमुपसमाधाय
दार्विहोमिकीं परिचेष्टां कृत्वा द्वे आज्याहुती जहोति ॥१०
कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा
कामाभिद्रुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति ॥११

हुत्वा प्रयताञ्जलिः (?) कवातिर्यङ्ङग्निमुपतिष्ठेत ॥१२

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृहस्पतिः ।
सं माऽयमग्निः सिञ्चत्वायुषा च बलेन चाऽऽयुष्मन्तं करोतु मेति ॥१३

प्रति हास्मै मरुतः प्राणान्दधाति प्रतीन्द्रो बलं प्रति बृहस्पतिर्ब्रह्मवर्चसं प्रत्यग्निरितरत्सर्वं सर्वतनुर्भूत्वा सर्वमायुरेति त्रिरभिमन्त्रयेत त्रिषत्या हि देवा इति विज्ञायते ॥१४

योऽपूत इव मन्येत आत्मानमुपपातकैः ।
स हुत्वेतेन विधिना सर्वस्मापापात्प्रमुच्यते ॥१५

अपि वाऽनाद्यापेयप्रतिषिद्धभोजने दोषवच्च कर्म कृत्वाऽभिसंधिपूर्वमनभिसंधिपूर्वं शूद्रायां च रेतः सिक्त्वाऽयोनौ वाऽब्लिङ्गाभिर्वारुणीभिश्चोपस्पृश्य प्रयतो भवति ॥१६ अथाप्युदाहरन्ति ॥१७

अनाद्यापेयप्रतिषिद्धभोजने विरुद्धधर्माचरिते च कर्मणि ।
मतिप्रवृत्तेऽपि च पातकोपमैर्विशुध्यतेऽथापि च सर्वपातकः ॥१८

त्रिरात्रं वाऽप्युपवसंस्त्रिरह्नोऽभ्युपेयादपः ।
प्राणानात्मनि संयम्य त्रिः पठेदघमर्षणम् ॥१९
यथाऽश्वमेधावभृथ एवं तन्मनुरब्रवीत् ॥२०
विज्ञायते च ॥२१
चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि ।
तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अति पाप्मानमरातिं तरेम इति ॥

इति चतुर्थप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः।

प्रायश्चित्तविधिवर्णनम् ।

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामो विख्यातानि विशेषतः।
समाहितानां युक्तानां प्रमादेषु कथं भवेत् ॥१
ॐ पूर्वाभिर्व्याहृतीभिः सर्वाभिः सर्वपातकेष्वाचामेत् ।
यत्प्रथममाचामति तेनर्ग्वेदं प्रीणाति यद्द्वितीयं तेन
यजुर्वेदं यत्तृतीयं तेन सामवेदम् ॥४
यत्प्रथमं परिमार्ष्टि तेनाथर्ववेदं यद्द्वितीयं तेनेतिहास-
पुराणम् ॥४
यत्सव्यं पाणिं प्रोक्षति पादौ शिरो हृदयं नासिके चक्षुषी
श्रोत्रे नाभिं चोपस्पृशति तेनौषधिवनस्पतयः सर्वाश्च
देवताः प्रीणाति ॥५
तस्मादाचमनादेव सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥६
अष्टौ वा समिध आदध्यात् ॥७
देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा ॥८
मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा ॥६
पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा ॥१०
आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा ॥११
यद्दिवा च नक्तं चैनश्चकृम तस्यावयजनमसि स्वाहा ॥१२
यत्स्वपन्तश्च जाग्रतश्चैनश्चकृम तस्यावयजनमसि स्वाहा ॥१३
यद्विद्वांसश्चाविद्वांसश्चैनश्चकृम तस्यावयजनमसि स्वाहा ॥१४

एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहेति ॥१५

एतैरष्टाभिर्हुत्वा सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥१६

अथाप्युदाहरन्ति ॥१७

अघमर्षणं देवकृतं शुद्धवत्यस्तरत्समाः ।
कूष्माण्ड्यः पावमान्यश्च विरजा मृत्युलाङ्गलम् ॥१८

दुर्गा व्याहृतयो रुद्रा महादोषविनाशना इति ॥१९

इति चतुर्थप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ।

....

अथ चतुर्थप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ।

प्रायश्चित्तविधिवर्णनम् ।

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामो विख्यातानि विशेषतः ।
समाहितानां युक्तानां प्रमादेषु कथं भवेत् ॥१

ऋतं च सत्यं चेत्येतदघमर्षणं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥२

आऽयं गौः पृश्निरक्रमीदित्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥३

द्रुपदादिव मुमुचान इत्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥४

हंसः शुचिषदित्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात् पापात्प्रमुच्यते ॥५

अपि वा सावित्रीं गायत्रीं पच्छोऽर्धर्चशस्ततः समस्ता-
मित्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥६
अपि वा व्याहृतीर्व्यस्ताः समस्ताश्चेति त्रिरन्तर्जले
पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥७
अपि वा प्रणवमेव त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥
तदेतद्धर्मशास्त्रं नापुत्राय नाशिष्याय नासंवत्सरोषिताय
दद्यात् ॥९
सहस्रं दक्षिणा ऋषभैकादशं गुरुप्रसादो वा-
गुरुप्रसादो वा ॥१०

इति चतुर्थप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थप्रश्ने पञ्चमोऽध्यायः ।

कृच्छ्रसांतपनादि व्रतविधिवर्णनम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि सामर्ग्यजुरथर्वणाम् ।
कर्मभिर्यैरवाप्नोति क्षिप्रं कामान्मनोगतान् ॥१
जपहोमेष्टियन्त्राद्यैः शोधयित्वा स्वविग्रहम् ।
साधयेत्सर्वकर्माणि नान्यथा सिद्धिमश्नुते ॥२
जपहोमेष्टियन्त्राणि करिष्यन्नादितो द्विजः ।
शुक्लपुण्यादिनक्षत्रेषु केशश्मश्रूणि वापयेत् ॥३

स्नायात्त्रिषवणं पायादात्मानं क्रोधतोऽनृतात्।
स्त्रीशूद्रैर्नाभिभाषेत ब्रह्मचारी हविर्व्रतः ॥४
गोविप्रपितृदेवेभ्यो नमस्कुर्याद्दिवा स्वपन्।
जपहोमेष्टियन्त्रस्थो दिवास्थानो निशासनः ॥५
प्राजापत्यो भवेत्कृच्छ्रो दिवारात्रावयाचितम्।
क्रमशो वायुभक्षश्च द्वादशाहं त्र्यहं त्र्यहम् ॥६
अहरेकं तथा नक्तमज्ञातं वायुभक्षणम्।
त्रिवृदेष परावृत्तो बालानां कृच्छ्र उच्यते ॥७
एकैकं ग्रासमश्नीयात्पूर्वोक्तेन त्र्यहं त्र्यहम्।
वायुभक्षस्त्र्यहं चान्यदतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥८
अम्बुभक्षस्त्र्यहानेतान्वायुभक्षस्ततः परम्।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्तृतीयस्तु विज्ञेयः सोऽतिपावनः ॥९
त्र्यहं त्र्यहं पिबेदुष्णं पयः सर्पिः कुशोदकम्।
वायुभक्षस्त्र्यहं चान्यत्तप्तकृच्छ्रः स उच्यते ॥१०
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रः सांतपनः स्मृतः ॥११
गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥१२
शुक्रमसि ज्योतिरसीत्याज्यं देवस्य त्वेति कुशोदकम्।
गोमूत्रभागस्तस्यार्धं शकृत्क्षीरस्य तत्त्रयम् ॥१३
द्वयं दध्नो घृतस्यैक एकश्च कुशवारिणः।
एवं सांतपनः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥१४

गोमूत्रं गोमयं चैव क्षीरं दधि घृतं तथा ।
पञ्चरात्रं तदाहारः पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१५

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१६

गोमूत्रादिभिरभ्यस्तमेकैकं तं त्रिसप्तकम् ।
महासांतपनं कृच्छ्रं वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥१७

एकवृद्ध्या सिते पिण्डानेकहान्याऽसिते ततः ।
पक्षयोरुपवासौ द्वौ तद्धि चान्द्रायणं स्मृतम् ॥१८

चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः ।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं चरेत् ॥१९

अष्टावष्टौ मासमेकं पिण्डान्मध्यं दिने स्थिते ।
नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं चरेत् ॥२०

यथा कथंचित्पिण्डानां द्विजस्तिस्रस्त्वशीतयः ।
मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥२१

यथोद्यंश्चन्द्रमा हन्ति जगतस्तमसो भयम् ।
एवं पापाद्भयं हन्ति द्विजश्चान्द्रायणं चरन् ॥२२

कणपिण्याकतक्राणि यवाचामोऽनिलाशनः ।
एकत्रिपञ्च सप्तेति पापघ्नोऽयं तुलापुमान् ॥२३

यावकः सप्तरात्रेण वृजिनं हन्ति देहिनाम् ।
सप्तरात्रोपवासो वा दृष्टमेतन्मनीषिभिः ॥२४

पौषभाद्रपदज्येष्ठा आर्द्राकाशातपाश्रयात् ।
त्रीन्छुक्लान्मुच्यते पापात्पतनीयादृते द्विजः ॥२५

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
यवाचामेन संयुक्तो ब्रह्मकूर्चोऽतिपावनः ॥२६

अमावास्यां निराहारः पौर्णमास्यां तिलाशनः।
शुक्लकृष्णकृतात्पापान्मुच्यतेऽब्दस्य पर्वभिः ॥२७

भैक्षाहारोऽग्निहोत्रिभ्यो मासेनैकेन शुध्यति।
यायावरवनस्थेभ्यो दशभिः पञ्चभिर्दिनैः ॥२८

एकाहधनिनोऽन्नेन दिनेनैकेन शुध्यति।
कापोतवृत्तिनिष्ठस्य पीत्वाऽपः शुध्यते त्रिभिः ॥२६

ऋग्यजुः सामवेदानां वेदस्यान्यतमस्य वा।
पारायणं त्रिरभ्यस्येदनश्नन्सोऽतिपावनः ॥३०

अथ चेत्त्वरते कर्तुं दिवसे मारुताशनः।
रात्रौ जले स्थितो व्युष्टः प्राजापत्येन तत्समम् ॥३१

गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वोत्थिते रवौ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यदि न भ्रूणहा भवेत् ॥३२

योऽन्नदः सत्यवादी च भूतेषु कृपया स्थितः।
पूर्वोक्तयन्त्रशुद्धेभ्यः सर्वेभ्यः सोऽतिरिच्यते ॥३३

अथ चतुर्थप्रश्ने पञ्चमोऽध्यायः।

अथ चतुर्थप्रश्ने षष्ठोऽध्यायः ।

अथ मृगारेष्टिः पवित्रेष्टिश्च वर्णनम् ।

समाधुच्छन्दसा रुद्रा गायत्री प्रणवान्विता ।
सप्त व्याहृतश्चैव जप्याः पापविनाशनाः ॥१
मृगारेष्टिः पवित्रेष्टिस्त्रिहविः पावमान्यपि ॥२
इष्टयः पापनाशिन्यो वैश्वानर्या समन्विताः ।
इदं चैवापरं गुह्यमुच्यमानं निबोधत ॥३
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महतः पातकादृते ।
पवित्रैर्मार्जनं कुर्वन्रुद्रैकादशिकां जपन् ॥४
पावित्राणि घृतैर्जुह्वन्प्रयच्छन्हेमगोतिलान् ।
योऽश्नीयाद्यावकं पक्वं गोमूत्रे सशकृद्रसे ।
सदधिक्षीरसर्पिष्के मुच्यते सोंऽहसः क्षणात् ॥५
प्रसूतो यश्च शूद्रायां येनागम्या च लङ्घिता ।
सप्तरात्रात्प्रमुच्येते विधिनैतेन तावुभौ ॥६
रेतोमूत्रपुरीषाणां प्राशनेऽभोज्यभोजने ।
पर्याधानेज्ययोरेतत्परिवित्ते च भेषजम् ॥७
अपातकानि कर्माणि कृत्वैव सुबहून्यपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्य इत्येतद्वचनं स ताम् ॥८
मन्त्रमार्गप्रमाणं तु विधानं समुदीरितम् ।
भारद्वाजादयो येन ब्रह्मणः साम्य(सम)तां गताः ॥९
प्रसन्नहृदयो विप्रः प्रयोगादस्य कर्मणः ।
कामांस्तांस्तानवाप्नोति ये ये कामा हृदि स्थिताः ॥१०

इति चतुर्थप्रश्ने षष्ठोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थप्रश्ने सप्तमोऽध्यायः।

अथ वेद पवित्राणामभिधानवर्णनम्

निवृत्तः पापकर्मभ्यः प्रवृत्तः पुण्यकर्मसु।
यो विप्रस्तस्य सिध्यन्ति विना यन्त्रैरपि क्रियाः ॥१

ब्राह्मणा ऋजवस्तस्माद्यद्यदिच्छन्ति चेतसा।
तत्तदासादयन्त्याशु संशुद्धा ऋजुकर्मभिः ॥२

एवमेतानि यन्त्राणि तावत्कार्याणि धीमता।
कालेन यावतोपैति विप्रहः शुद्धिमात्मनः ॥३

एभिर्यन्त्रैर्विशुद्धात्मा त्रिरात्रोपोषितस्ततः।
तदारभेत येनर्धिं कर्मणा प्राप्तुमिच्छति ॥४

क्षापपित्रं सहस्राक्षो मृगारांहोमुचौ गणौ।
पावमानश्च कूष्माण्ड्यो वैश्वानर्य ऋचश्च याः ॥५

घृतौदनेन ता जुह्वत्सप्ताहं सवनत्रयम्।
मौनव्रतो हविष्याशी निगृहीतेन्द्रिय ॥६

सिंहे म इत्यपां पूर्णं पात्रेऽन्वेक्ष्य चतुष्पथे।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महतः पातकादपि ॥७

वृद्धत्वे यौवने बाल्ये यः कृतः पापसंचयः।
पूर्वजन्मसु वाऽज्ञातस्तस्मादपि विमुच्यते ॥८

भोजयित्वा द्विजानन्ते पायसेन सुसर्पिषा।
गोभूमितिलहेमानि भुक्तवद्भ्यः प्रदाय च ॥९

विप्रो भवति पूतात्मा निर्दग्धवृजिनेन्धनः।
काम्यानां कर्मणां योग्यस्तथाऽऽधानादिकर्मणाम् ॥१०

इति चतुर्थप्रश्ने सप्तमोऽध्यायः।

अथ चतुर्थप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः ।

अथ गणहोमफलमेतदध्यापनादौ फलनिरूपणञ्च ।

अतिलोभात्प्रमादाद्वा यः करोति क्रियामिमाम् ।
अन्यस्य सोंऽहसाऽऽविष्टो गरगीरिव सीदति ॥१

आचार्यस्य पितुर्मातुरात्मनश्च क्रियामिमाम् ।
कुर्वन्भात्यर्कवद्विप्रः सा कार्यैषामतः क्रिया ॥२

क एतेन सहस्राक्षं पवित्रेणाकरोच्छुचिम् ।
अग्निं वायुं रविं सोमं यमादींश्च सुरेश्वरान् ॥३

यत्किंचित्पुण्यनामेह त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
विप्रादि तत्कृतं केन पवित्रक्रिययाऽनया ॥४

प्राजापत्यमिदं गुह्यं पापघ्नं प्रथमोद्भवम् ।
समुत्पन्नान्यतः पश्चात्पवित्राणि सहस्रशः ॥५

योऽब्दायनर्तुपक्षाहाञ्जुहोत्यष्टौ गणानिमान् ।
पुनाति चाऽऽत्मनो वंश्यान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥६

ज्ञायते चामरैर्द्युस्थैः पुण्यकर्मेति भूस्थितः ।
देववन्मोदते भूयः स्वर्गलोकेऽपि पुण्यकृत् ॥७

एतानष्टौ गणान्होतुं न शक्नोति यदि द्विजः ।
एकोऽपि तेन होतव्यो रजस्तेनास्य नश्यति ॥८

सूनवो यस्य शिष्या वा जुह्वत्यष्टौ गणानिमान् ।
अध्यापनपरिक्रीतैरंहसः सोऽपि मुच्यते ॥९

धनेनापि परिक्रीतैरात्मपापजिघांसया ।
हावनीया ह्यशक्तेन नावसाद्यः शरीरधृक् ॥१०

धनस्य क्रियते त्यागः कर्मणां सुकृतामपि ।
पुंसोऽनृणस्य पापस्य विमोक्षः क्रियते क्वचित् ॥११
मुक्तो यो विधिनैतेन सर्वपापार्णसागरात् ।
आत्मानं मन्यते शुद्धं समर्थं कर्मसाधने ॥१२
सर्वपापार्णमुक्तात्मा क्रिया आरभते तु याः ।
अयत्नेनैव ताः सिद्धिं यान्ति शुद्धशरीरिणः ॥१३
प्राजापत्यमिदं पुण्यमृषीणां समुदीरितम् ।
इममध्यापयेन्नित्यं धारयेच्छृणुतेऽपि वा ॥१४
मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोके महीयते ।
यान्सिसाधयिषुर्मन्त्रान्द्वादशाहानि ताञ्जपेत् ॥१५
घृतेन पयसा दध्ना प्राश्य निश्योदनं सकृत् ।
दशवारं तथा होमः सर्पिषा सवनत्रयम् ॥१६
पूर्वसेवा भवेदेषा मन्त्राणां कर्मसाधने ।
मन्त्राणां कमसाधन इति ॥१७

इति चतुर्थप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः ।

अतिलोभात्प्रमादाद्वा ॥१ निवृत्तः पापकर्मभ्यः ॥२
समाधुच्छन्दसा रुद्राः ॥३ अथातः संप्रवक्ष्यामि ॥४
प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामः ॥५ प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामः ॥६
प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामः ॥७ प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामः ॥८

इति चतुर्थः प्रश्नः ॥

समाप्ताचेयं बौधायनस्मृतिः ।

समाप्तश्चायं धर्मशास्त्रस्य (स्मृतिसन्दर्भस्य)

तृतीयोभागः ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।